

वर्ष : 10 • अंक : 39 • जनवरी-मार्च 2024 • ISSN 2347-6605

# वाक् सुधा

**VAAK SUDHA**

( अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका )

**(International Peer Reviewed Refereed Journal of  
Multidisciplinary Research)**

**(A Scholarly Peer Reviewed Journal)**

विशेष सूचना :  
विचार की प्रतिबद्धता में राष्ट्रहित सर्वोपरि है।

**रूपेश कुमार चौहान**

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक

द्वारा 47, ब्लॉक ए-3, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, दिल्ली-43 से प्रकाशित एवं डॉल्फिन  
प्रिंटोग्राफिक्स, 4ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

दूरभाष संख्या-09555222747, 9267944100, 9555666907

Email: vaaksudha@gmail.com • Website : www.vsirj.com

## प्रकाशनार्थ सूचना

- \* लेखक से अनुरोध है कि शोध-पत्र वॉकमैन चाणक्य 905 या कृतिदेव फॉन्ट में वर्ड या पेजमेकर में टाइप (टङ्कण) कराकर शोध-पत्रिका के ई-मेल पर प्रेषित करें।
- \* शोध-लेख हिन्दी अथवा संस्कृत भाषा में न्यूनतम 1500 शब्द एवं अधिकतम 3500 शब्द तक मान्य है तथा इसके साथ लेखक का पद-नाम के साथ स्वयं की फोटो (छवि-चित्र) अत्यन्त अनिवार्य है।
- \* प्रकाशनार्थ प्राप्त लेख सलाहकार परिषद् एवम् संपादक मण्डल की अनुमति के पश्चात् स्तरीय होने पर ही प्रकाशित होगा।
- \* लेख में यदि चित्र का प्रयोग हुआ है तो उसे भी अवश्य प्रेषित करें।
- \* 'वाक् सुधा' किसी भी तरह के परामर्श का स्वागत करती है, इसलिए अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दें।
- \* यह स्पष्ट किया जाता है कि शोध पत्र में प्रस्तुत तथ्य शोध लेखक के अपने विचार हैं तथा इसमें सलाहकार परिषद् एवं सम्पादक मण्डल के विचारों की उद्भावना स्पष्टतः नहीं है। अतः इसके लिए शोध-लेखक स्वयं उत्तरदायी है।
- \* शोध-पत्रिका की किसी भी सामग्री को प्रकाशक एवं मुद्रक की जानकारी के बिना अन्यत्र प्रकाशन अनुचित होगा।
- \* आगामी अङ्क में प्रकाशनार्थ लेख आमंत्रित हैं। यदि आप लेख टाइप करा कर भेजने में असमर्थ हैं तो हस्तलिखित प्रति पत्रिका में दिये गये पत्र-व्यवहार के पते पर भेज दें।
- \* प्रत्येक अङ्क पत्रिका की वेबसाइट पर अध्ययन हेतु उपलब्ध रहता है।
- \* अपेक्षित आर्थिक सहयोग अथवा अंशदान के लिए हम आपके अत्यंत आभारी रहेंगे।
- \* कृपया लेख के साथ अपनी पासपोर्ट साइज की फोटो अवश्य भेजें।
- \* पत्रिका का वितरण निःशुल्क किया जाता है एवं विशेष अनुदान के लिए किसी पर कोई प्रतिबंध नहीं है। प्रकाशन के लिए कोई भी आवश्यक शुल्क नहीं है।
- \* शोध-पत्र हमारी विशेषज्ञ समीक्षा समिति (Peer Reviewed Committee) के द्वारा द्वि-स्तरीय समीक्षित होकर प्रकाशन हेतु स्वीकृत किया जाता है।

© सर्वाधिकार सुरक्षित : रूपेश कुमार चौहान

ISSN : 2347-6605

- सभी पद अवैतनिक एवं परिवर्तनीय हैं।
- 'वाक् सुधा' से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।
- सारे भुगतान मनीआर्डर : चेक/ बैंक ड्राफ्ट 'वाक् सुधा' के नाम से किए जाएं। कृपया दिल्ली से बाहर के चेक में बैंक कमीशन के 35.00 रुपये अतिरिक्त जोड़ें।

**विशेष सूचना :** शोध पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गये तथ्यों और इनसे सम्बन्धित किसी भी विवाद का पूर्ण दायित्व लेखक का होगा, प्रकाशक, सम्पादक, मुद्रक एवं पत्रिका से सम्बन्धित अन्य किसी भी व्यक्ति का नहीं। प्रेषित स्पष्टीकरण अवश्य प्रकाशित किया जायेगा।

## सलाहकार परिषद् :

- |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                                |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| <ul style="list-style-type: none"> <li>• डॉ. एम.एस. चौहान<br/>(निदेशक, राष्ट्रीय डेयरी शोध संस्थान, करनाल, हरियाणा)</li> <li>• प्रो. अरविन्द कुमार पाण्डेय<br/>(पूर्व कुलपति, कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा)</li> <li>• प्रो. मदन मोहन अग्रवाल<br/>(पूर्व कला संकाय अध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)</li> <li>• महामहोपाध्याय प्रो. वेद प्रकाश शास्त्री<br/>(पूर्व उप-कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार)</li> <li>• प्रो. गिरीश चन्द्र पंत<br/>(अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली)</li> <li>• प्रो. रामनाथ झा<br/>(संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली)</li> <li>• डॉ. राजवीर शर्मा<br/>(पूर्व प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)</li> <li>• प्रो. शम्स-उल-इस्लाम<br/>(प्रधानाचार्य, गया कॉलेज, गया, बिहार)</li> <li>• प्रो. राम सरेख सिंह<br/>(पूर्व विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया)</li> <li>• प्रो. पवन अग्रवाल<br/>(हिन्दी एवं आधुनिक भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)</li> </ul> | <ul style="list-style-type: none"> <li>• प्रो. मोहम्मद मंसूर आलम<br/>(अध्यक्ष, उर्दू विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया)</li> <li>• प्रो. आभा त्रिवेदी<br/>(पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)</li> <li>• प्रो. कमला उपाध्याय<br/>(विभागाध्यक्षा, संस्कृत, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया)</li> <li>• प्रो. रसाल सिंह<br/>(प्रोफेसर, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू)</li> <li>• डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर<br/>(राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतीय दलित साहित्य अकादमी एवं प्रसिद्ध दलित चिंतक)</li> <li>• डॉ. विक्रमादित्य राय<br/>(अध्यक्ष, समाज-शास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, (बी.एच.यू.) वाराणसी)</li> <li>• प्रो. राजेश रंजन<br/>(पालि विभाग, नालन्दा नव-महाविहार)</li> <li>• प्रो. सत्यदेव पोद्दार<br/>(इतिहास विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा)</li> <li>• प्रो. काशीनाथ जेना<br/>(राजनीति-शास्त्र विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा)</li> <li>• प्रो. मनीष सिन्हा<br/>(अध्यक्ष, इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया)</li> <li>• डॉ. एम. रहमतुल्लाह<br/>(कंसल्टिंग एडिटर, दूरदर्शन न्यूज, भारत सरकार)</li> </ul> |
|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|

*Editor*

**Dr. Rupesh Kumar Chauhan**

M.A., M.Phil., Ph.D. (Sanskrit),

M.A. (History)

Mob : 9555222747, 9540468787,  
9267944100

*Executive Editor*

**Dr. Pramod Kumar Singh**

M.A., Ph.D. (Sanskrit), M.A. (Philosophy)

Gold Medalist

Assistant Professor,

Department of Sanskrit, Maitreyi College,

University of Delhi

Mob : 9717189242

*Sub.- Editor*

**Dr. Rajesh Kumar**

M.A., M.Phil., Ph.D. (Sanskrit),

Asst. Prof., Department of Sanskrit

PGDAV College, University of Delhi

Mob. 9555666907, 9891526584

*Co- Editor*

**Abhishek Priyadarshi**

M.A., Ph.D. (History),

Asst. Prof., History Department

Satyawati College, University of Delhi

Mob. 9971656921

*Legal Advisor :*

**Arun Kumar Shukla**

LL.B., LL.M., D.U.

Mob. : 7011474039, 9650088311

*Managing Editor*

**Thakur Prasad Chaubey**

Mob. : 9810636082

*Office Addresses :*

**Head Office (Delhi) :**

**Dharam Pal**

I-11, Usha Kiran Building, Commercial  
Complex, Azadpur, **Delhi-110033**

Mob : 9267944100

**Branch Office (Bihar) :**

**Prof. D.S. Chauhan**

C/o Late Bindeshwari Singh, Jaiprakash  
Nagar, Gewal Bigha,

**Gaya-823001**

Mob. : 9263078395

**Branch Office (International) :**

• **Mrs Kirthee Devi Ramjaton**

Impasse Bois Cheri, Bois Cheri Road,

Moka- 80804 Mauritius

Email: kdramjaton@yahoo.com

Contact no.: +230 57882178

**Correspondence Address :**

B-11/39, MIG Flats, Near DDA Market,

Sector 18, Rohini, Delhi-110089

Mob : 9555222747

**www.vsirj.com**

*Designer :*

**Kawal Malik, J.D. Computers**

Mob. : 9818455819

### सम्पादक मंडल :

• डॉ. वी.के. यादव

(एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

• डॉ. शाहिद तस्लीम

(असिस्टेंट प्रोफेसर, उज्बेक भाषा विशेषज्ञ, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली)

• डॉ. कृष्ण लाल

(सेवानिवृत्त प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, अरविन्दो कॉलेज (प्रातः), दिल्ली)

• डॉ. शंकर नाथ तिवारी

(असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा)

• प्रो. गिरिधर गोपाल शर्मा

(प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पीजीडीएवी महाविद्यालय (प्रातः), दिल्ली)

• प्रो. दिलीप कुमार झा

(प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पीजीडीएवी महाविद्यालय (प्रातः), दिल्ली)

• डॉ. जितेन्द्र कुमार

(असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अनुग्रह नारायण स्मारक महाविद्यालय, मगध विश्वविद्यालय)

• डॉ. देवेन्द्र नाथ ओझा

(असिस्टेंट प्रोफेसर, एमिटी इंस्टीट्यूट फॉर संस्कृत स्टडीज, एण्ड रिसर्च, एमिटी विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, नोएडा)

• डॉ. राजमोहिनी सागर

(एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

• डॉ. वी.के. तोमर

(एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

• डॉ. चंद्रशेखर पासवान

(बौद्ध अध्ययन एवं सभ्यता विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा)

• डॉ. के.के. झा

(सीनियर लेक्चरर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट, मोका, मॉरिशस)

• डॉ. सुधीर कुमार सिंह

(राजनीति विभाग, दयाल सिंह कॉलेज (प्रातः), दिल्ली)

• प्रो. सुभाष कुमार सिंह

(प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली)

• प्रो. चन्द्रशेखर राम

(प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय, दिल्ली)

• डॉ. नन्दिनी सहाय

(समाज-कार्य, एमिटी यूनिवर्सिटी, नोएडा)

• Mrs. Kirthee Devi Ramjatton

(Lecturer, Department of Sanskrit, School of Indological Studies, Mahatma Gandhi Institute, Moka - 80808 Mauritius)

• डॉ. कुमारी शुभ्रा

(प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार, दिल्ली)

• डॉ. लालजी

(एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

### संरक्षक :

प्रो. मदन मोहन अग्रवाल

पूर्व अध्यक्ष एवं संकाय अध्यक्ष,  
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. दलवीर सिंह चौहान

पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

प्रो. राजवीर शर्मा

पूर्व उपाचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग,  
आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## अनुक्रमणिका

|                                                     |      |
|-----------------------------------------------------|------|
| सम्पादकीय .....                                     | viii |
| प्रौढमनोरमोक्तदिशा 'कृतद्धितसमासाश्च'               |      |
| इति सूत्रस्य विवेचनम्.....                          | 1    |
| देवकी मिश्रा                                        |      |
| उत्तर प्रदेश में ब्रिटिशकालीन भूमि-बंदोबस्त         |      |
| व्यवस्था का उद्भव एवं विकास .....                   | 4    |
| अनुराग यादव / प्रो. (डॉ.) आशा रानी                  |      |
| 'चंद हसीनों के खतूत' एक अध्ययन .....                | 9    |
| हिमांचल                                             |      |
| रीतिकालीन सूफी कवि नूर मोहम्मद कृत                  |      |
| अनुराग बांसुरी में अभिव्यक्त धर्म का स्वरूप ...     | 12   |
| डॉ. ज्योति शर्मा                                    |      |
| उपनिषद और आधुनिक विश्व : एक                         |      |
| विश्लेषणात्मक अध्ययन .....                          | 18   |
| डॉ. मंजुला गुप्ता                                   |      |
| भिक्षावृत्ति - एक सामाजिक तथ्य : केस स्टडी ..       | 23   |
| रूपक वर्मा                                          |      |
| वेदवाक्यों का संगतिकरण : वाल्मीकि रामायण            |      |
| के संदर्भ में .....                                 | 32   |
| डॉ. सुखराम                                          |      |
| कुर्वन्नेवेह कर्माणि इत्यादि मन्त्रे अपूर्वादिविधि- |      |
| विमर्शः .....                                       | 36   |
| विद्वान् मञ्जेशः एम्                                |      |
| अर्थवदिति सूत्रे कौमुदीशेखरदिशा सूत्रत्वविमर्शः .   | 39   |
| कु. अंकना खांडा                                     |      |
| नाट्यदर्पणकारस-दोषविमर्श .....                      | 43   |
| प्रियांशी                                           |      |
| उपनिषद्दिशा सृष्टिक्रमविचारः .....                  | 49   |
| दिवाकरः चक्रवर्ती                                   |      |
| लौह युगीन संस्कृति सर्वप्रथम विकास भारत भूमि        |      |
| या विदेश : एक द्वंद्व .....                         | 52   |
| शिवम गंगानिया                                       |      |
| कर्तृकारकविचार .....                                | 56   |
| डॉ. रवि प्रभात / सुचेता                             |      |
| विद्यालयी स्तर पर इतिहास की कक्षाओं में             |      |
| स्थानीय अतीत और उसका महत्त्व .....                  | 62   |
| आसिफ अली                                            |      |

|                                                     |     |
|-----------------------------------------------------|-----|
| न्यायामृत में वर्णित अखण्डार्थ विवेचन की            |     |
| समीक्षा .....                                       | 67  |
| डॉ. राजेन्द्र कुमार                                 |     |
| महाभारत की दृष्टि में दैव एवं पुरुषार्थ की          |     |
| समस्या .....                                        | 72  |
| डॉ. दिलीप कुमार जायसवाल                             |     |
| भारत की वैज्ञानिक प्रगति .....                      | 76  |
| नेहा गांधी                                          |     |
| आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का आलोचना साहित्य :          |     |
| एक अध्ययन .....                                     | 78  |
| डॉ. धनंजय कुमार                                     |     |
| मृदुला गर्ग की कृतियों में नारी मानवाधिकार ....     | 82  |
| डॉ. ज्योति सिंह                                     |     |
| रामदरस मिश्र के उपन्यासों में ग्राम्यजीवन .....     | 86  |
| श्रीमती सीमा राठौर                                  |     |
| नाटकों में रस की स्थिति एवं आनंदमयता .....          | 90  |
| डॉ. सुनीता मीना                                     |     |
| परंपरा की दूसरी खोज .....                           | 93  |
| प्रियंका टोप्पो                                     |     |
| यशपाल की कहानियों में 'व्यंग्य-चेतना' .....         | 96  |
| बिकाश कुमार गुप्ता                                  |     |
| हिन्दी साहित्य पर विचारधाराओं का प्रभाव ....        | 101 |
| विजय यादव                                           |     |
| 'गिलिगडु' में अभिव्यक्त सेवानिवृत्त बुजुर्ग का      |     |
| जीवन .....                                          | 105 |
| नेहा शर्मा                                          |     |
| हिंदी कहानी की विकास यात्रा-मनोरंजन से              |     |
| उत्तर यथार्थ तक .....                               | 109 |
| मधु बाला                                            |     |
| 'एक इंच मुस्कान' में नये प्रयोग .....               | 116 |
| डॉ. राम किशोर यादव                                  |     |
| लोककथा में लोकमन (सन्दर्भ : भोजपुरी लोक कथाएँ) .... | 121 |
| डॉ. साक्षी                                          |     |
| कथा 'नीम का पेड़' की और समकालीन परिदृश्य..          | 126 |
| डॉ. अरविन्द कुमार सम्बल                             |     |
| आधे-अधूरे नाटक में स्त्री चेतना के विभिन्न आयाम     | 134 |
| ओम प्रकाश                                           |     |

|                                                                                           |     |
|-------------------------------------------------------------------------------------------|-----|
| हिन्दी आलोचना में जातीय साहित्य की अवधारणा .....                                          | 139 |
| डॉ. संजय गौतम                                                                             |     |
| सिद्ध साहित्य .....                                                                       | 143 |
| डॉ. नारायण कुमार झा                                                                       |     |
| फैशन का बदलता स्वरूप और मीडिया .....                                                      | 146 |
| डॉ. प्रेम प्रकाश मीणा                                                                     |     |
| वृद्धाश्रमों की प्रबन्धन पद्धति का विश्लेषणात्मक अध्ययन : रोहतक जिले के सन्दर्भ में ..... | 150 |
| निर्मला                                                                                   |     |
| रोगमुक्ति में चिकित्सक की भूमिका .....                                                    | 157 |
| डॉ. मीना कुमारी                                                                           |     |
| अनाहत जिजीविषा के कवि : रघुवीर सहाय ...                                                   | 161 |
| कुणाल भारती / डॉ. विजय कुमार                                                              |     |
| प्रेमचंद का क्रांतिकारी व्यक्तित्व एवं कृतित्व दलित संबंधी प्रेमचंद का चिंतन .....        | 165 |
| कुमकुम गुलहरे                                                                             |     |
| अलङ्कार्य का अलङ्कारकत्व प्रतिपादन .....                                                  | 170 |
| प्रो. ब्रजेश कुमार पाण्डेय / अभिषेक कुमार पाण्डेय                                         |     |
| यात्रा के जरिए जीवन को अर्थ और संभावनाएँ देती स्त्रियाँ .....                             | 173 |
| सुनील कुमार                                                                               |     |
| नये मूल्यों की खोज का गीति-नाट्य : 'अंधायुग' ....                                         | 178 |
| डॉ. सीमा माहेश्वरी                                                                        |     |
| अमीर खुसरो : भारतीय संस्कृति के प्रणेता .....                                             | 181 |
| अनीश कुमार यादव                                                                           |     |
| आदिवासी समाज के संघर्ष और संस्कृति की गाथा : सहराना .....                                 | 184 |
| प्रीती                                                                                    |     |
| सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारत में क्षेत्रीय स्तर पर इसके निहितार्थ .....                  | 187 |
| दुर्गेश नंदिनी / डॉ. सुधा निकेतन रंजनी                                                    |     |
| स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासी वीरांगनाएं .....                                           | 192 |
| सीता मीना                                                                                 |     |
| सामाजिक यथार्थों में जीती मंगलेश डबराल की कविताएं .....                                   | 195 |
| काम्या भारद्वाज                                                                           |     |
| गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में सत्संग की महिमा .....                             | 200 |
| डा. शिव कुमार                                                                             |     |



## सम्पादकीय

**र**ाम भारतवर्ष की आत्मा हैं। राम सर्वस्व हैं। व्यापक हैं। देश के कण-कण में व्याप्त हैं। राम की मर्यादा युगों-युगों तक रहेगी। उसी भगवान् राम के जन्म स्थान अयोध्या में 500 से भी अधिक वर्षों के संघर्ष के बाद भव्य, दिव्य एवं अलौकिक मंदिर बना। उस नव्य मंदिर में 22 जनवरी 2024 को श्रीरामलला विराजे हैं। हमारी पीढ़ियों के लिए यह गर्व का विषय है कि हमने राम मंदिर को बनते देखा और उसमें श्रीरामलला की प्राण प्रतिष्ठा होते भी देखा। पौष मास के द्वादशी तिथि को अभिजीत मुहूर्त में 12:26 मिनट पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पूरे शास्त्रीय विधि विधान के अनुसार नव निर्मित मंदिर में मुख्य यजमान के रूप में रामलाल की प्राण प्रतिष्ठा की। इस ऐतिहासिक अवसर पर प्रधानमंत्री का संबोधन भी अभूतपूर्व रहा। प्रधानमंत्री ने कहा कि यह मंदिर मात्र एक देव मंदिर नहीं। यह भारत की दृष्टि का, भारत के दर्शन का, भारत के दिग्दर्शन का मंदिर है। यह राम के रूप में राष्ट्र चेतना का मंदिर है। राम भारत की आस्था है। राम भारत का आधार है। राम भारत का विचार है। राम भारत का विधान है। राम भारत की चेतना है। राम भारत का चिंतन है। राम भारत की प्रतिष्ठा है। राम भारत का प्रताप है। राम भारत का प्रभाव है। राम नेति भी है, राम नीति भी है। राम नित्यता भी है, राम निरंतर भी है। राम व्यापक भी है। राम विश्व भी हैं। विश्वात्मा भी है इसलिए जब राम की प्रतिष्ठा होती है तो उसका प्रभाव शताब्दियों तक नहीं होता बल्कि हजारों वर्षों तक होता है। प्रधानमंत्री ने साफ-साफ कहा कि मैं पवित्र मन से महसूस कर रहा हूँ कि कालचक्र बदल रहा है।

यहां यह भी याद रखिए राम का वनवास त्रेता युग में 14 वर्षों का था और कल्युग में 500 वर्षों का रहा। सोने के आभूषणों एवं फूलों से सजा भगवान श्रीरामलला का मनोहरी और नयनाभिरामी मूर्ति इतनी संजीव है कि हर किसी का मन मोह लेती है। भगवान श्रीरामलला के इस विग्रह को मैसूर के अरुण योगीराज ने बनाया है। मंदिर की निर्माण मकराना के पत्थरों से किया गया है। यह मंदिर नागर शैली का है।

यहां एक बात और बता दूँ कि जनवरी महीने में खासतौर पर 22 जनवरी को पूरा देश राममय हो गया था। हर कोई भावुक था। हर मुख पर राम नाम का जाप था। रोम-रोम में राम राम बसे हुए थे। कई बार तो लगता था कि हम त्रेता युग में आ गए हैं। भारत का हर मार्ग राम जन्मभूमि की ओर आ रहा था। हर घर, नगर, हर ग्राम अयोध्या बना हुआ था। रिक्षा, ठेला से लेकर हवाई जहाज तक सब भगवामय बना हुआ था। राममंदिर प्रकरण समूचे विश्व का पहला और अंतिम अनूठा प्रकरण है जहां अपने आराध्य देव के जन्मस्थान पर मंदिर के लिए बहुसंख्यक सनातनियों को सैकड़ों वर्षों की लड़ाई विभिन्न स्तर और अलग-अलग मोर्चे पर लड़नी पड़ी। अंतिम बात यह है कि 22 जनवरी 2024, भारत के इतिहास में, सनातन के इतिहास में और मानव सभ्यता के इतिहास में एक ऐतिहासिक दिन के रूप में याद किया जाएगा। यह दिन भारतीय संस्कृति के उन्नयन और पुनरुत्थान के लिए सदियों तक याद किया जाएगा। यह घटना एक प्रस्थान बिन्दु है, जहां से देश की संस्कृति उस रूप में नहीं रह जाएगी जिस रूप में वह दिखती है। दुनिया भर की निगाहें राममंदिर पर हैं, अयोध्या पर है। अब साल में दो दिवाली मनेगी। जय श्रीराम।

डॉ. राजेश कुमार  
उपसम्पादक



देवकी मिश्रा

## प्रौढमनोरमोक्तदिशा 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इति सूत्रस्य विवेचनम्

**प्रा**तिपदिकसंज्ञाविधाकं भगवता पाणिनिना सूत्रद्वयं विरचितम्। तत्र आदिमं सूत्रम् “अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्”। द्वितीयं सूत्रं “कृत्तद्धितसमासाश्च”। अत्र सूत्रे कृत्तद्धितपदयोः प्रत्ययमात्रवृत्तिविषयताप्रयोजकत्वेन प्रत्ययमात्रवृत्तिविषयताप्रयोजके प्रत्ययबोधके पदे तदादि इतुपतिष्ठते इत्यर्थिकया “प्रत्ययग्रहणे यस्मात् स विधिस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्” इत्यनया परिभाषया “तदादेः” इत्यंशस्य उपस्थितिः। उपस्थितं तदाद्यंशं विशेषीकृत्य “येन विधिस्तदन्तस्य” इति तदन्तविधौ कृदन्ततदादेः तद्धितान्ततदादेः समासस्य च अनेन सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा भवति।

तत्र पूर्वसूत्रे “अधातुः” इति पर्युदासेन धातोः प्रातिपदिक-संज्ञायाम् अप्राप्त्याम्, प्रातिपदिकसंज्ञाविधायकसूत्रे कृद्ग्रहणं विध्यर्थम्। यतो हि “लिट्” “धुक्” इत्यादीनां “क्विप्-प्रत्ययान्तत्वेन क्विबन्ताः विजन्ताः धातुत्वं न जहति” इत्यनेन नियमेन “लिट्” “धुक्” इत्यादौ धातुत्वस्य सत्वेन पूर्वसूत्रेण धातुभिन्नत्वस्यैव प्रातिपदिकसंज्ञाविधानात् सूत्रे कृद्ग्रहणं विध्यर्थम्। कृते च कृद्ग्रहणे, कृदन्ततदादेः “कृत्तद्धितसमा-साश्च” इति सूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा भवति।

### सूत्रे समासग्रहणस्य नियमार्थत्वविचारः

अत्र सूत्रे ‘राजन् + डस् पुरुष + सु’ इत्यादि समासानां प्रातिपदिकसंज्ञाविधानार्थं सूत्रे भगवता पाणिनिना समासग्रहणं कृतम्। किन्तु अत्र इदं विचार्यते यत् ‘राजन् + डस् पुरुष + सु’ इत्यस्य धातुभिन्नत्वेन प्रत्ययभिन्नत्वेन प्रत्ययान्ततदादि-भिन्नत्वेन अर्थवत्-शब्दस्वरूपत्वेन च पूर्वसूत्रेण सिद्धायां प्रातिपदिकसंज्ञायाम् उत्तरसूत्रे समासग्रहणं किमर्थं चेत् अत्र उच्यते यत् “सिद्धे सति विधिः नियमाय कल्प्यते” इत्यनेन

नियमेन ‘राजन् + डस् पुरुष + सु’ इत्यादि समासस्य सिद्धायाम् अपि प्रातिपदिकसंज्ञायाम् उत्तरसूत्रे समासग्रहणं नियमार्थम्। अत्र अयं भावः, यथा ‘राजन् + डस् पुरुष + सु’ इत्यस्य समासस्य पूर्वसूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा प्राप्ता, तद्वदेव “देवदत्तो गच्छति” इत्यादि वाक्यानाम् अपि पूर्वसूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा प्राप्ता, धातुभिन्नप्रत्ययभिन्नप्रत्ययान्ततदादिभिन्नार्थत्वात्। तत्र ‘राजन् + डस् पुरुष + सु’ इति समासस्य प्रातिपदिकसंज्ञा इष्टा किन्तु वाक्यस्य प्रातिपदिकस्य नेष्टा। अतः वाक्यस्य प्रातिपदिकसंज्ञा व्यावृत्त्यर्थं, सूत्रे समासग्रहणं नियमार्थम्।

एवञ्च यत्र नियम्यशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदकव्याप्यं नियामकशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदकव्यापकं यत् रूपम्, तद्रूपावच्छिन्नातिरिक्तत्वेन नियम्यशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छिन्ने संकोचः सर्वत्र भवति। अत्र नियम्यशास्त्रम् - “अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्”। नियामकशास्त्रम् - “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति सूत्रे समासम्। एवञ्च नियम्यशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदकव्याप्यं नियामकशास्त्रीयोद्देश्यता-वच्छेदकव्यापकत्वञ्च मध्यवर्तिरूपं पूर्वभागपदघटितत्वम्। एवञ्च पूर्वभागपदघटितत्वातिरिक्तत्वेन नियम्यशास्त्रीयोद्देश्यता-वच्छेदकावच्छिन्ने अथात् धातुभिन्नप्रत्ययभिन्नप्रत्ययान्त-तदादिभिन्नार्थवच्छब्दस्वरूपस्य प्रातिपदिकसंज्ञा भवति।

तथा हि ‘राजन् + डस् पुरुष + सु’ इति समासस्य “देवदत्तो गच्छति” इति वाक्यस्य च पूर्वभागपदघटितत्वेन उभयोः पूर्वसूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा न प्राप्ता। अत्र उत्तरसूत्रे समासग्रहणात्, ‘राजन् + डस् पुरुष + सु’ इत्यस्य प्रातिपदिक-संज्ञा भवति किन्तु “देवदत्तो गच्छति” इति वाक्यस्य प्रातिपदिकसंज्ञा भवति, तस्य समासत्वाभावात्। एवञ्च समासस्य सङ्ग्रहः, वाक्यस्य च व्यावृत्तिः नियमेन सिद्धा। इत्येवम्

अभिप्रेत्य सिद्धान्तकौमुद्याम् श्रीमता भट्टोजीदीक्षितेन उक्तं यत् – “यत्र संघाते पूर्वो भागः पदम्, तस्य चेत्तर्हि समासयैव। तेन वाक्यस्य न।”

अत्रेदं जिज्ञास्यते यत् “कृत्तद्धितसमासाश्च” इति सूत्रघटकसमासग्रहणस्य नियमार्थम् अभिष्टम्। किन्तु तन्न सम्भवति। यतो हि अनुपसर्जनः यः स्त्रीप्रत्ययः, तद्बोधक-प्रत्ययघटिते तदादेः तदादिविधेः “स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जनेन” इत्यनया परिभाषया निषेधात्, “राज्ञः कुमारी राजकुमारी” इत्यादौ ङीप्-प्रत्ययस्य अनुपसर्जनस्त्रीप्रत्ययत्वात्। एतस्य प्रातिपदिकसंज्ञाविधानार्थम्, “अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्” इति सूत्रे “तदादेः” इत्यंशस्य उपस्थितत्वाभावेन प्रत्ययान्त-भिन्नस्यैव प्रातिपदिकसंज्ञा स्यात्। एवञ्च “राजकुमारी” इत्यस्य प्रत्ययान्तभिन्नत्वाभावेन पूर्वसूत्रेण “अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्” इत्यनेन प्रातिपदिकसंज्ञायाः अप्राप्तत्वात् “राजकुमारी” इत्यस्य प्रातिपदिकसंज्ञाविधानार्थम्, “कृत्तद्धित-समासाश्च” इति सूत्रे समासग्रहणं विध्यर्थं स्यात्, न तु नियमार्थम्।

अत्र उच्यते “अन्तरङ्गानपि विधिन् बहिरङ्गो लुग्बाधते” इत्यनया परिभाषया अत्र अन्तरङ्गस्यापि “हल्ङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्” इति सूत्रेण विधीयमानस्य सुलोपस्य लुक्प्रयोजिकीभूतः समासः बाधकः स्यात्। एवञ्च श्रूयमाणे सुपि सत्येव “षष्ठी” इति सूत्रेण समासस्य विधानं स्यात्। तथा च “राजन + ङस् कुमारी + सु” इत्यत्र विधीयमानायाः प्रातिपदिकसंज्ञायाः “एकदेशविकृतमनन्यवत्” इत्यनया परिभाषया “राजकुमारी” इत्यत्रापि सत्वेन, तस्य प्रातिपदिकसंज्ञा पूर्वसूत्रेण सिद्धा एव। अतः तस्य विधानार्थं सूत्रे समासग्रहणं कृतम्, तन्नियमार्थम्।

वस्तुतस्तु अत्र “प्रत्ययग्रहणे यस्मात् स विहितस्तदादेः तदन्तस्य ग्रहणम्” इत्यस्याः परिभाषायाः बाधिका “स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जनेन” इति परिभाषा। अत्र उत्सर्गापवादयोः समानविषयकत्वनियमात्, यथा “प्रत्ययग्रहणे यस्मात् स विहितस्तदादेः तदन्तस्य ग्रहणम्” इयं परिभाषा प्रत्ययमात्रवृत्ति-विषयताप्रयोजकपदघटिते शास्त्रे एव प्रवर्तते, तद्वत् “स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जनेन” इयं परिभाषा अपि अनुपसर्जनस्त्रीप्रत्ययमात्र-प्रत्ययघटिते शास्त्रे एव प्रवर्तते। तथा सति, “अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्” इति सूत्रघटकप्रत्ययबोधकपदस्य अनुपसर्जन-स्त्रीप्रत्ययमात्रबोधकत्वाभावेन, अत्र “स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जनेन” इत्यस्याः परिभाषायाः प्रवृत्तेः अवसरः एव नास्ति। अतः “राज्ञः कुमारी राजकुमारी” इत्यादौ समासग्रहणस्य विध्यर्थत्वं

प्रतिपादयितुम् अयुक्तम् एव। तस्माद् वैयाकरणैः यत् नियमार्थत्वं प्रतिपादितम्, तदेव समीचीनम्।

किञ्च यदि “स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने” इत्यस्याः परिभाषायाः अनुपसर्जनस्त्रीप्रत्ययबोधके अपि प्रवृत्तिः स्वीक्रियते, तदा “अन्तरङ्गानपि विधिन् बहिरङ्गो लुग्बाधते” इत्यनया परिभाषया अत्र दोषः वारणीयः। अतः “गोमत्प्रियः” इत्यादौ अन्तरङ्गत्वात् “हल्ङ्याभ्यो-” इति सूत्रेण प्राप्तं सुलोपं बाधयित्वा लुक् प्रयोजिकीभूतः बहुव्रीहिसमासः भवति, तदनन्तरं “सुपो धातुप्रातिपदिकयोः” इति सूत्रेण विभक्तेः लुक् भवति।

अत्र यदि “अन्तरङ्गानपि विधिन् बहिरङ्गो लुग्बाधते” इत्यस्याः परिभाषायाः यदि प्रवृत्तिः न स्यात्, तर्हि अन्तरङ्गत्वात् “हल्ङ्याभ्यो-” इति सूत्रेण गोमत्-शब्दोत्तर-सुप्रत्ययस्य लोपे कृते, पश्चात् समासे “प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्” इति सूत्रेण लुप्यमानप्रत्ययम् आदाय “उगिदचां सर्वनामस्थाने चाधातोः” इति सूत्रेण नुमागमापत्तिः स्यात् “अत्वसन्तस्य चाधातोः” इति सूत्रेण दीर्घापत्तिश्च। अतः “अन्तरङ्गानपि विधिन् बहिरङ्गो लुग्बाधते” इति परिभाषा अङ्गीकार्या। परिभाषायाः अङ्गीकृतायां तु अत्र अन्तरङ्गत्वात् प्राप्तं सुलोपं बाधयित्वा, लुक्प्रयोजिकीभूतबहुव्रीहिसमासः प्रवर्तते। तथा सति “प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्” इति सूत्रस्य “न लुमताङ्गस्य” इति सूत्रेण बाधात्, अत्र प्रत्ययलक्षणं न भवति। तथा च अत्र नुमादेः प्राप्तिः भवति। तेन “गोमत्प्रियः” इति प्रयोगस्य सिद्धिः भवति।

अत्रेदं जिज्ञास्यते यत् यथा “दशदाडिमानि षडपूपाः” इति अनर्थकसमुदाये पूर्वसूत्रेण अर्थवत्वस्य अभावात् प्रातिपदिकसंज्ञा न स्यात्। तथा सति उच्यते यत् “अर्थवद-धातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्” इति सूत्रे “पदस्य” अनुवृत्तिः स्यात्। तर्हि अत्रोच्यते यद्यपि “असूर्यं पश्याः” इत्यादौ नञर्थभावस्य दृश्-धात्वर्थक्रियायाम् अन्वयात्, अत्र सामर्थ्यं नास्ति। सामर्थ्याभावेन पूर्वसूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा न प्राप्ता, न वा उत्तरसूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा प्राप्ता। तथापि अस्य “असूर्यललाटयोः दृशितपोः” इति सूत्रेण असूर्य-इत्युपपदात्, दृश्-धातोः खश्-विधानसामर्थ्यात् तस्य प्रातिपदिकसंज्ञा भवति। तथा हि “असूर्यललाटयोः दृशितपोः” इत्यनेन सूत्रेण असूर्यशब्दोपपदे दृश्-धातोः खश्-प्रत्ययः विधीयते। तत्र उपोच्चरितं पदम् उपपदम्। पदञ्च सुप्तिङन्तमेव। अतः प्रातिपदिकसंज्ञां विना, सुप्रत्ययस्य उत्पत्तिः न भवति। एवमेव सुप्रत्ययस्य उत्पत्त्यभावे पदञ्च न सम्भवति। पदत्वाभावे च

अर्य-इत्युपपदात् दृश्-धातोः खश्-प्रत्ययविधानसामर्थ्यात्, तस्य प्रातिपदिकसंज्ञा भवति इति ज्ञाप्यते। तदुक्तं रत्नकृता प्रातिपदिकसंज्ञा धर्मः, तद्धर्मी असमर्थसमासः, तद्ग्राहकं मानं खश्-विधायकं शास्त्रम्। तथा च धर्मीग्राहकमानात्, असूर्यपश्य इत्यादौ प्रातिपदिकसंज्ञा भवति।

अत्र श्रीमता भट्टोजिदीक्षितेन नियमशरीरं कीदृशम्, इत्याकांक्षायाम् उक्तम्-“यत्र संघाते पूर्वो भागः पदम्, तस्य चेत् तर्हि समासस्यैव”। एवञ्च यत्र संघाते पूर्वो भागः पदम्, उत्तरभागः प्रत्ययो न, तस्य प्रातिपदिकसंज्ञा भवति चेत् समासस्यैव इति नियमशरीरम् आगतम्।

अधुना उच्यते यत् अत्र “संघाते पूर्वो भागः पदम्” इति निवेशस्य का आवश्यकता? केवलं “यत्र संघाते, उत्तरभागः प्रत्ययो न, तस्य प्रातिपदिकसंज्ञा भवति चेत् समासस्यैव” एतावदेव नियमशरीरम् अस्तु तर्हि को दोषः इत्याकांक्षायाम् श्रीमता भट्टोजिदीक्षितेन उक्तं यत् “बहुपटवः” इत्यादौ बहुविशिष्टस्य प्रातिपदिकसंज्ञा न स्यात्। अत्र समासस्य

अभावेन अस्यापि समासग्रहणकृतनियमेन व्यावृत्तिः न भवति। तेन “बहुपटवः” इत्यत्र प्रथमजसो लुकि बहुपटु-शब्दस्य चित्-स्वरे, पुनर्जसि उपोत्तमोदात्तत्वं सिद्ध्यति।

किन्तु एतादृशं नियमशरीरम् अपि न संभवति। तथा हि, “वृषण्वसुः” इत्यादौ व्यभिचारात्। तथाहि अत्र समासत्वं वर्तते। किन्तु पूर्वभागपदघटितत्वम् अत्र नास्ति। यतो हि “वृषण्वश्वसयोः” इति सूत्रेण, वृषण् इत्यस्य भसंज्ञायाः विधानात्। एवञ्च अत्र समासत्वस्य सत्वेऽपि पूर्वभाग-पदघटितत्वस्य अभावात्, नियामकशास्त्रीयोद्देश्यतावच्छेदक-व्यापकत्वं पूर्वभागपदघटितत्वे न सम्भवति इति कृत्वा श्रीमता भट्टोजिदीक्षितेन नियमशरीरं परिवर्तितम्। तदुक्तम्- “यद्वा प्रकृतिप्रत्ययभावापन्नसंघातविषयको नियमोऽस्तु” इति।

असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी)

दिल्ली स्कूल ऑफ जर्नलिज्म,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली



\*अनुराग यादव



\*\*प्रो. ( डॉ. ) आशा रानी

## उत्तर प्रदेश में ब्रिटिशकालीन भूमि-बंदोबस्त व्यवस्था का उद्भव एवं विकास

### सार

उत्तर प्रदेश में ब्रिटिश भू-राजस्व प्रशासन की स्थापना उन्नीसवीं सदी के प्रथम दशक में सत्तांतरित एवं विजित राज्यों (अपर प्रोविंस) के ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन आ जाने के बाद हुई। प्रारम्भ में त्रैवार्षिक बंदोबस्त के माध्यम से बंगाल व्यवस्था को लागू करने का प्रयास किया गया किन्तु 10 वर्ष के बाद ही इस विचार को त्याग दिया गया। तत्पश्चात् हॉल्ट मैकेंजी के प्रयासों से भूमि-बंदोबस्त की महालवारी व्यवस्था को इस क्षेत्र में अपनाया गया, जिसके अंतर्गत ग्राम समुदायों से सामूहिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ व्यक्तिगत स्तर पर बंदोबस्त किया गया। इस व्यवस्था की कमियों को दूर करने के लिए मार्टिन बर्ड एवं जेम्स टॉमसन द्वारा संशोधन किए गए।

### मुख्य शब्द

भूमि-बंदोबस्त, सत्तांतरित एवं विजित प्रांत, हॉल्ट मैकेंजी, महालवारी व्यवस्था, नंबरदार, ताल्लुकदार।

### भूमिका

भारतीय इतिहास में प्राचीन काल से ब्रिटिश काल तक राज्य की आय का प्रमुख स्रोत भू-राजस्व रहा है। इस भू-राजस्व की नियमित प्राप्ति के लिए भूमि-बंदोबस्त की व्यवस्थित प्रणाली को अपनाया गया। 1765 ई. में जब ईस्ट इंडिया कंपनी को दीवानी अधिकार मिले तो उसने तात्कालिक रूप से मुगल काल से चली आ रही व्यवस्था को ही जारी रखा। किन्तु आगे चलकर उन्होंने कर निर्धारण और संग्रहण की अलग-अलग व्यवस्थाएँ अपनायीं जो भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों की सामाजिक व्यवस्था व शासन की जरूरतों के अनुसार तय की गई थी। ये भूमि

व्यवस्थाएँ क्रमशः स्थायी बंदोबस्त, रैय्यतवारी बंदोबस्त एवं महालवारी बंदोबस्त थीं।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के संदर्भ में प्रस्तुत शोध-पत्र में ब्रिटिश शासन के दौरान वर्तमान उत्तर प्रदेश के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में भूमि बंदोबस्त के उद्भव एवं विकास के विभिन्न चरणों का ऐतिहासिक अध्ययन करना है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश का अधिकांश भाग ब्रिटिश काल में क्रमशः सत्तांतरित एवं विजित राज्य, आगरा व अवध प्रांत या पश्चिमोत्तर प्रांत एवं संयुक्त प्रांत के नाम से जाना जाता था। इस क्षेत्र के खेतिहर ढांचे में एक ओर तो थोड़े-से कुलीन थे, जो ताल्लुकदार कहलाते थे। नुरुल हसन ने उनको “बिचौलिये जमींदार” कहा है, जो एक विशेष क्षेत्र की मालगुजारी की वसूली के लिए राज्य से अनुबंध करते थे।<sup>1</sup> दूसरी ओर, “प्राथमिक जमींदारों” का एक बड़ा समूह था, जो खेतिहर और रिहाइशी, दोनों तरह की जमीनों पर मालिकाना अधिकारों के स्वामी थे। अंग्रेजों ने आरंभिक बंदोबस्त में इन्हीं ताल्लुकदारों से मालगुजारी वसूल करनी प्रारम्भ की।

### प्रारम्भिक बंदोबस्त

ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा उत्तर प्रदेश के विभिन्न राजस्व क्षेत्रों के अधिग्रहण की शुरुआत 1775 ई. में संपन्न ‘फैजाबाद पेक्ट’ के माध्यम से हुई। इसके तहत अवध के पूर्वी क्षेत्र यथा जौनपुर, गाजीपुर, बनारस एवं मिर्जापुर कंपनी को प्राप्त हुए।<sup>2</sup> 1788 ई. में जोनाथन डंकन ने बनारस के राजा को इस क्षेत्र में भूमि बंदोबस्त व्यवस्था लागू करने की अनुमति दी। किन्तु 1795 ई. में बनारस को कार्नवालिस की स्थायी बंदोबस्त प्रणाली (1793 ई.) के

अंतर्गत लाया गया। अवध राज्य के क्षेत्रों का द्वितीय अधिग्रहण 1801 ई. में हुआ जब इसे वेलेजली की सहायक संधि प्रणाली के अंतर्गत लाया गया। इस संधि द्वारा सुरक्षा के वायदे के तहत गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, आजमगढ़, इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर, इटावा, मैनपुरी, एटा, फर्रुखाबाद, बरेली, मुरादाबाद, बदायूं, पीलीभीत, शाहजहांपुर का अधिग्रहण कर लिया गया।<sup>3</sup> इस क्षेत्र को ब्रिटिश प्रशासन में सत्तांतरित प्रांत (Ceded Province) कहा गया। 1802 ई. में हेनरी वेलेजली ने इस क्षेत्र में भू-राजस्व का आकलन कराके त्रिवर्षीय बंदोबस्त लागू कराया, जिसे 1803 ई. के रेगुलेशन गट के द्वारा कानूनी मान्यता प्रदान की गई।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ब्रिटिश शासन का विस्तार द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध के बाद दौलतराव सिंधिया एवं कंपनी के मध्य संपन्न हुई सुर्जी अर्जुन गाँव की (1803 ई.) के परिणामस्वरूप हुआ। इस संधि के फलस्वरूप कंपनी को मेरठ मंडल, आगरा मण्डल के शेष भाग एवं ग्वालियर के क्षेत्र यथा अलीगढ़, मेरठ, आगरा, मथुरा, बुलंदशहर, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, दिल्ली, गुड़गाँव, रोहतक, हिसार एवं करनाल प्राप्त हुए।<sup>4</sup> इन क्षेत्रों को विजित क्षेत्र (conquered provinces) की संज्ञा दी गई एवं यहाँ भूमि बन्दोबस्त को एक वर्ष के लिए लागू किया गया। 1805 ई. के रेगुलेशन XIX द्वारा तीन वर्षीय बंदोबस्त लागू किया गया जिसे आगे क्रमशः तीन एवं चार वर्ष के बंदोबस्त द्वारा प्रतिस्थापित करके स्थायी बंदोबस्त लागू करने का आश्वासन दिया गया। किन्तु 1815 ई. तक ईस्ट इंडिया कंपनी को अहसास हो गया था कि अपर प्रोविंस में चौथे बंदोबस्त को स्थायी बंदोबस्त नहीं बनाया जा सकता है।

प्रारंभिक बंदोबस्त अपने अनिश्चित एवं ढीले स्वरूप के कारण अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहे। इन बंदोबस्तों की प्रथम कमी यह थी कि इनमें भूमि के शुद्ध एवं सकल उत्पादन आकलन की कोई व्यवस्था नहीं थी और उत्पादन का आकलन किए बिना सबसे अधिक बोली लगाने वाले को लगान वसूलने की अनुमति दे दी जाती थी।<sup>5</sup> दूसरी कमी इसमें सबसे योग्य उम्मीदवार को कम बोली लगाने के कारण अवहेलना कर दी जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ क्षेत्रों जैसे कि रुहेलखण्ड, पूर्वी क्षेत्र में इस व्यवस्था ने इजारेदारी का रूप ले लिया। सरकार ने मालगुजारी न दे सकने वाली जागीरों को बेच

डाला। इसके परिणामस्वरूप 1820 ई. तक, जिनको एरिक स्टोक्स ने 'उत्तरी भारत का अप्रतिष्ठित धनी वर्ग' कहा है, उसके बहुत से सदस्यों की स्थिति या तो पूरी तरह समाप्त हो गई या फिर बहुत ही मामूली रह गई।<sup>6</sup>

जागीरों की नीलामी ने सामाजिक संरचना में बदलाव लाकर भू-स्वामियों के एक नए वर्ग का उदय हुआ। नीलामी में बिकी जमीनों को सामान्यतः राजस्व विभाग के अधीनस्थ कर्मचारियों यथा तहसीलदार एवं अमलों द्वारा खरीद लिया गया। उदाहरण के लिए बनारस के क्षेत्र में उन्नीसवीं सदी के मध्य तक लगभग 40 प्रतिशत जमीनों के स्वामी बदले जा चुके थे। एक अनुमान के अनुसार कानपुर एवं इलाहाबाद के जिलों में भूमि के आधे भाग पर सरकार के पूर्व कर्मचारियों का स्वामित्व हो गया था।<sup>7</sup> हालांकि थॉमस मेटकॉफ का मानना है कि इस समय तक भूमि बाजार अपूर्ण था और प्रायः नए खरीददारों द्वारा जमीनों को पुराने मालिकों की ही निगरानी में छोड़ना पड़ता था, जिसके कारण जमीनों का वास्तविक हस्तांतरण कुछ मामलों में ही हुआ। फिर भी इस स्थिति में एक भय खड़ा कर दिया कि भूमि गैर-खेतिहरों के हाथ में जा रही है। 1819 ई. में होल्ट मैकेंजी ने इसे एक "अवसाद क्रांति" की संज्ञा दी, क्योंकि उसकी राय में मात्र गाँव के सहृदयी निकाय ही भूमि के अकेले स्वामी थे।<sup>8</sup>

### महालवारी व्यवस्था

प्रारंभिक बंदोबस्तों की कमियों को दूर करने के लिए बोर्ड ऑफ कमिशनर्स ने प्रादेशिक विभाग के सचिव होल्ट मैकेंजी को एक प्रतिवेदन तैयार करने को कहा जिसमें अपर प्रोविंस के नए भूमि बंदोबस्त के लिए सुझाव मांगे गए। मैकेंजी उपयोगितावादी विचार से प्रभावित थे एवं बंगाल की भू-राजस्व व्यवस्था के मुखर आलोचक थे। वे जमींदारों पर आधारित स्थायी बंदोबस्त को "घाटे का सौदा" (lose bargain) कहते थे।<sup>9</sup> मैकेंजी का कहना था कि प्रारंभिक बंदोबस्तों द्वारा ग्रामीण समाज की पूरी रूपरेखा ध्वस्त कर दी गई जिसमें किसानों के पास जो संपत्ति सम्बंधी असंख्य अधिकार थे, वे समाप्त हो गये और स्वतंत्रता के मद में डूबे लोग अपने पूर्वजों के खेतों में काम करने वाले मजदूरों की तरह हो गये।<sup>10</sup>

मैकेंजी ने समस्या के समाधान के लिए ग्रामीण समुदायों या महालों पर भरोसा जताया। उसका तर्क था कि तालुकदारों और लगान वसूलने वाले किसानों को लगान

जमा करने का कोई विरासती अधिकार प्राप्त नहीं है। मैकेंजी का मानना था कि मौलिक संपत्ति अधिकार ग्रामीण समुदाय का है और उसने ही लगान जमा करने का दायित्व दिया जाना चाहिए। निजी किरायेदारी संपत्ति के प्रति अविश्वास संबंधी उपयोगितावादी विचार से प्रेरित मैकेंजी ने तर्क दिया कि अधिकार मौजूदा जमा के 1/10वें हिस्से के भत्ते से अधिक नहीं होना चाहिए एवं ग्रामीण समुदायों को इससे अधिक वसूलने से रोकना चाहिए। उपर्युक्त विचारों को मैकेंजी ने “1 जुलाई 1819 के स्मरण-पत्र” (Minutes of 1st July 1819) के तहत जारी किया। मैकेंजी के प्रमुख सुझाव निम्नलिखित थे-

1. प्रत्येक खेत का सर्वेक्षण किया जाए।
2. सभी ग्रामों में किसानों के राजस्व भुगतानों का रजिस्टर रखा जाए।
3. राज्य द्वारा भूमि राजस्व मांगों का निर्धारण संतुलित दर पर किया जाना चाहिए।
4. संस्थाओं के शोषण से काश्तकारों के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिए।
5. मालिकाना अधिकारों के अलावा रिहायशी खेतिहर किसानों से मिलने वाले लगान को लिपिबद्ध किया जाना चाहिए।

### 1822 का रेगुलेशन VII

मैकेंजी के 1 जुलाई के प्रस्ताव को सर्वप्रथम 1822 के रेगुलेशन सात द्वारा व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया। इस विनियमन ने भूमि-सर्वेक्षण की एक विस्तृत योजना की शुरुआत की जिसमें एक-एक खेत के भू-राजस्व आकलन की व्यवस्था थी। इस व्यवस्था में भू-राजस्व का निर्धारण महाल या समूचे ग्राम के उत्पादन के आधार पर किया जाता था। ग्राम समुदाय के अतिरिक्त जहाँ जमींदार या ताल्लुकदार उपलब्ध थे वहाँ उनके साथ बंदोबस्त की व्यवस्था की गई। ताल्लुकदार पूरी तरह खत्म नहीं किये गए, लेकिन जहाँ भी संभव हुआ, भूमि का मालिकाना अधिकार ग्राम समुदायों में निहित कर दिया गया।<sup>11</sup>

इस विनियमन में महाल या एस्टेट के वास्तविक उत्पादन पर ध्यान न देकर केवल भूमि-राजस्व के आकलन पर जोर दिया गया। इसने राज्य की मांग को महाल या एस्टेट के कुल उत्पादन के किराया मूल्य का 83 प्रतिशत निर्धारण किया एवं आवश्यकता के अनुरूप इसे समय-समय पर संशोधित करने की व्यवस्था की।<sup>12</sup> जिन ग्रामों में

भू-राजस्व संपूर्ण ग्राम द्वारा जमा किया जाना था वहाँ इसका मूल्य 95 प्रतिशत निर्धारित किया गया। 1822 के कानून ने मनमानी का विरोध किया एवं संतुलित निर्धारण का आश्वासन दिया। विनियमन में भूमि के उत्पादन एवं जमा का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था।

1822 के बंदोबस्त का मूल्यांकन करते हुए बी.एच. बेडेन पॉवेल का कहना है कि यह बंदोबस्त सैद्धांतिक तौर पर उत्कृष्ट था किंतु यह अधिकारियों के अत्यधिक कार्य बोझ एवं अति-आकलन के कारण प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर सका।<sup>13</sup> बंदोबस्त अधिकारियों को इसके कार्यान्वयन में विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन्हें उनके कार्यों के संबंध में कोई परिभाषित कर्तव्य एवं दिशानिर्देश प्रदान नहीं किये गए थे। बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के सदस्य रॉबर्ट मार्टिन बर्ड का मानना था कि 1822 के रेगुलेशन द्वारा निर्धारित भू-राजस्व बहुत अधिक एवं किसानों की क्षमता से परे था। इस व्यवस्था के सफल न होने के पीछे इसे होल्ड मैकेंजी की इच्छा के अनुसार लागू न करना भी था जोकि दो बुराइयों यथा विद्यमान भूमि अधिकारों में अनावश्यक हस्तक्षेप एवं अति-आकलन के विरुद्ध तत्कालीन सुरक्षा चाहते थे। इन्हीं कमियों को दूर करने के लिए होल्ड मैकेंजी ने 1825 में 1822 के रेगुलेशन को दो बार संशोधित किया किन्तु यह भी अपर्याप्त साबित हुआ।

### 1833 का रेगुलेशन IX

उत्तर भारत की राजस्व प्रणाली में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन तब आया जब रॉबर्ट मार्टिन बर्ड के निर्देशन में 1833 ई. का रेगुलेशन पारित किया गया। बर्ड ने पूरे महाल की लगान को आकलन करने के लिए एक विस्तृत सर्वेक्षण का सुझाव दिया। इस व्यवस्था का आधार भूमि की संभावित उपज का मात्र मूल्य होता था एवं इस प्रकार निर्धारित की गई लगान को एक हिस्सेदार समूह के सदस्यों में विभाजित कर दिया जाता था।<sup>14</sup> इसमें लगान की मात्रा भूमि की कुल उपज का दो-तिहाई भाग अर्थात् लगभग 66 प्रतिशत तय की गई थी। 1822 के रेगुलेशन के विपरीत, जिसमें की संक्षिप्त काल के लिए बंदोबस्त किया गया था, इस रेगुलेशन ने एक दीर्घ अवधि के लिए भू-राजस्व निश्चित कर दिया। यह अवधि प्रारम्भ में 20 वर्ष थी जिसे बाद में बढ़ाकर 30 वर्ष कर दिया गया था।

1833 के रेगुलेशन को पारित करने के पीछे लॉर्ड बैंटिक का उद्देश्य विद्यमान भू-राजस्व प्रणाली में सरलता

एवं व्यावहारिकता का समावेश करके स्थानीय लोगों की स्थिति में सुधार लाना था। लेकिन यह बंदोबस्त निर्धारित 30 वर्ष के काल में कभी भी सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं हो सका। 1849 ई. में जेम्स टॉमसन ने महालवारी व्यवस्था के अंतर्गत सर्वेक्षण का कार्य पूर्ण किया। हालांकि बर्ड द्वारा आरम्भ किये गए एवं जेम्स टॉमसन द्वारा पूरे किए गए ग्रामवार बंदोबस्त भी अधूरे सर्वेक्षण, असटीक गणना और अति आकलन पर आधारित थे। 1842 में बर्ड की सेवानिवृत्ति के बाद प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने इस नीति का मूल्यांकन करते हुए टिप्पणी की थी, कि इसने “समाज की पूरी सतह को लगभग सपाट” बना दिया।<sup>15</sup>

### 1855 ई. के सहारनपुर नियम

गवर्नर-जनरल डलहौजी ने 1833 के बंदोबस्त द्वारा निर्धारित 66 प्रतिशत की मालगुजारी को अत्यधिक पाया। जैसा कि भू-राजस्व की दर के सम्बन्ध में आर.सी. दत्त ने लिखा है कि “भू-राजस्व का निर्धारण अत्यधिक एवं अनिश्चित भी है। यदि इन नियमों के अंतर्गत संसार के किसी भी देश को रखा जाये तो कृषि की अवनति होगी।”<sup>16</sup> इसी कारण से सहारनपुर नियम के अंतर्गत लगान की दर को घटाकर उपज का 50 प्रतिशत निर्धारित कर दिया गया। 1878 ई. के एक ओर संशोधन द्वारा भू-बंदोबस्त को पूर्णता प्रदान की गई एवं ग्रामीण रिकॉर्ड्स द्वारा उच्च स्तर की सटीकता लायी गई। अंततः 1901 ई. के टेनेंसी बिल द्वारा लगान घटाकर 33 प्रतिशत कर दी गई। 1927-28 ई. में ब्रिटिश सरकार द्वारा कराये गए सर्वेक्षण के अनुसार महालवारी व्यवस्था के अंतर्गत ब्रिटिश आधिपत्य वाले क्षेत्र का 30 प्रतिशत भू-भाग शामिल था।<sup>17</sup>

### महालवारी व्यवस्था की संरचना

महालवारी व्यवस्था का तंत्र अनेक अधिकारियों को उनके कौशल एवं विशेषज्ञता के अनुसार आवंटित कार्यो व कर्तव्यों के आधार पर संगठित था। बंदोबस्त कार्यो का मुख्य नियंत्रण मंडल के मुख्य आयुक्त के हाथ में होता था जो कि बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के प्रति जिम्मेदार था। राजस्व प्रशासन में निम्न अधिकारी शामिल थे - 1. राजस्व या बंदोबस्त अधिकारी 2. लम्बरदार या ग्राम के मुखिया 3. तहसीलदार 4. कानूनगो एवं पटवारी 5. मुकद्दम या बिस्वादार और अन्य छोटे अधिकारी।

### राजस्व या बंदोबस्त अधिकारी

बंदोबस्त अधिकारियों की नियुक्ति सीधे बोर्ड ऑफ

रेवेन्यू द्वारा की जाती थी। मैकेंजी ने 1819 के मिनट में बंदोबस्त अधिकारियों के कार्यों का विस्तृत ब्यौरा दिया था। बंदोबस्त अधिकारी का प्राथमिक कर्तव्य सरकार द्वारा जारी बंदोबस्त अधिसूचना में निर्धारित भू-राजस्व को प्राप्त करना था। वे भूमि की उर्वरता एवं फसल की उत्पादकता के आधार पर लगान का निर्धारण एवं इसे नकद राशि में परिवर्तित करते थे। इस कार्य के लिए वे पटवारियों की मदद लेते थे। बंदोबस्त अधिकारी का अन्य कार्य जमीन को कृषि भूमि, चारागाह भूमि या बंजर भूमि में वर्गीकृत करना तथा खेत की सीमाओं से जुड़े विवादों का निपटारा करना भी था।<sup>18</sup>

### नंबरदार या लम्बरदार

शाब्दिक रूप से नंबरदार नंबर (एक निश्चित संख्या या भूमि राजस्व का प्रतिशत) एवं दार (फारसी शब्द जिसका अर्थ धारक या मालिक) से मिलकर बना है अर्थात् वह जो भू-राजस्व का एक निश्चित प्रतिशत रखता है। एक लम्बरदार स्वयं या संपूर्ण ग्राम के प्रतिनिधि के तौर पर भू-राजस्व अदा करने के लिए जिम्मेदार होता था। एस.सी. गुप्ता अपनी पुस्तक ‘एग्रेरियन स्ट्रक्चर इन उत्तर प्रदेश इन दि लेट एटीन्थ सेंचुरी एंड अर्ली नाइन्टीथ सेंचुरी’ में लिखते हैं कि लंबरदार ईस्ट इंडिया कंपनी प्रशासन की तीन तरह से सहायता करते थे - प्रथम राज्य के कर्मचारियों के सहयोग से सरकारी मूल्यांकन को समायोजित करने में, द्वितीय प्रत्येक देनदार का हिस्सा निर्धारित करने में एवं तृतीय राज्य प्राधिकरण को निर्धारित राशि एकत्र करने एवं भुगतान करने में।<sup>19</sup>

### तहसीलदार

तहसीलदार जिला कलेक्टर के अधीन जिले के उपखंड या तहसील का प्रभारी होता था। तहसीलदार का प्रमुख कार्य स्थानीय जमींदारों एवं नंबरदारों से भू-राजस्व का एकत्रण करना एवं राजस्व वसूली में उनकी मदद करना था। वह जमींदारों की सूची, काश्तकारों के प्रकार एवं संख्या, राजस्व उगाही की दर एवं माध्यम, महाल से संबंधित सूचना आदि प्राप्त करने के लिए कानूनगो, पटवारी एवं अन्य ग्रामीण अधिकारियों को कार्य का आवंटन करता था।

### पटवारी एवं कानूनगो

पटवारी एवं कानूनगो ग्रामीण स्तर के राजस्व पदाधिकारी होते थे। वे नंबरदार के नजदीक सहयोग में कार्य करते थे।

पटवारी ग्रामीण भू-राजस्व संबंधी आंकड़ों से संबंधित वहीखातों का विवरण रखता था। कानूनगो एक राजस्व-निरीक्षक था जो कि पटवारी के विवरणों की जाँच एवं उनमें सुधार करता था।

### निष्कर्ष

महालवारी व्यवस्था सैद्धांतिक रूप से उचित होने के बावजूद इसके क्रियान्वयन एवं संरचना से संबंधित कमियों के कारण असफल रही। राज्य की अत्यधिक मांग एवं लगान संग्रहण में व्याप्त भ्रष्टाचार की प्रथाओं ने इस व्यवस्था को कृषि समुदायों के लिए अनुपयोगी सिद्ध कर दिया। इसने ग्राम समुदायों को लगान की उच्च मांग एवं इसके परिणामस्वरूप संपत्तियों की बिक्री के माध्यम से नष्ट कर दिया। अनेक मामलों में जमीनें सूदखोरों एवं सौदागरों के हाथ में चली गई।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों पर ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना के साथ वहाँ भू-बंदोबस्त की त्रैवार्षिक प्रणाली लागू की गई जो कालांतर में महालवारी

व्यवस्था के रूप में विकसित हुई। प्रारंभ में लगान का अत्यधिक निर्धारण किया गया लेकिन 1901 ई. तक इसे घटाकर 33 प्रतिशत कर दिया गया। हालांकि प्रशासन में विद्यमान भ्रष्टाचार की प्रथाएँ एवं मध्यस्थों की मौजूदगी के कारण शायद ही इसका लाभ ग्रामीण समुदाय को मिल सका।

\*पीएच.डी. शोधार्थी

इतिहास विभाग

कु. मायावती राजकीय महिला  
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर,  
गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.)

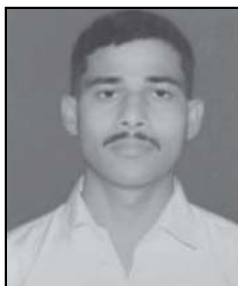
\*विभागाध्यक्षा

इतिहास विभाग,

कु. मायावती राजकीय महिला  
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर,  
गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.)

### संदर्भ सूची

1. बंदोपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2013, पृ. 92
2. सेन, एस.पी. (संपा.), स्टडीज इन मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री (ए रीजनल सर्वे), पृ. 36
3. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, यूनाइटेड प्रोविंसेस ऑफ आगरा एण्ड अवध, वोल्यूम-I, पृ. 30
4. सेन, पृ. 36.
5. सिंह, ए.के., द अर्ली ब्रिटिश लैंड रिवेन्यू सेटलमेंट्स इन दि अपर प्रोविंसेस एंड देअर इंपैक्ट अपॉन दि अग्रेरियन लाई 1775-1833, प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, वोल्यूम-52, 1991, पृ. 710
6. बंदोपाध्याय, 2013, पृ. 93
7. सिंह, ए.के., 1991, पृ. 710
8. बंदोपाध्याय, 2013, पृ. 93
9. हॉल्ट, मैकेन्जी, मिनट्स ऑफ 1st जुलाई, 1819, कलकत्ता, 1866, पृ. 67
10. सुब्रमण्यम, लक्ष्मी, भारत का इतिहास (1707 से 1857 तक), ओरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2013, पृ. 117
11. बंदोपाध्याय, 2013, पृ. 94
12. दत्त, आर.सी., इंडिया इन विक्टोरियन एज, पृ. 34
13. बी.एस. बेडेन पॉवेल, ए शॉर्ट एकाउंट ऑफ लैंड रेवेन्यू एंड इट्स एडमिनिस्ट्रेशन इन ब्रिटिश इंडिया, 1907, पृ. 174-75
14. बंदोपाध्याय, 2013, पृ. 94
15. रीक्स, पी.डी., लैंडलोर्ड्स एंड गवर्नमेंट्स इन उत्तर प्रदेश : ए स्टडी ऑफ देअर रिलेसंस अनटिल जमींदारी अबोलिशन, बॉम्बे, 1991
16. दत्त, आर.सी., दि इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, द्वितीय भाग, पृ. 33-34
17. बंदोपाध्याय, 2013, पृ. 95
18. बी.एच. बेडेन पॉवेल, लैंड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इंडिया, वोल्यूम-II, लंदन, 1892, पृ. 39
19. गुप्ता, एस.सी., एग्रेरियन स्ट्रक्चर इन उत्तर प्रदेश इन द लेट एटीन्थ सेंचुरी एंड अर्ली नाइन्टीन्थ सेंचुरी, वोल्यूम-I, कलकत्ता, 1966, पृ. 43



हिमांचल

## ‘चंद हसीनों के खतूत’ एक अध्ययन

### शोधसार :

पांडेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ प्रेमचंद युगीन उपन्यासकार थे, जिनके ऊपर हमें संत कवियों, गांधी और प्रेमचंद के विचारों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रस्तुत आलेख ‘उग्र’ के उपन्यास ‘चंद हसीनों के खतूत’ के अध्ययन पर आधारित है। इस उपन्यास में ‘उग्र’ ने अंग्रेजों की ‘फूट डालो, राज करो’ की नीति से सावधान रहते हुए समाज को भी सजग करने का कार्य किया है, उपन्यासकार का उद्देश्य समाज में हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष का हल ढूँढना व सांप्रदायिक सौहार्द व सद्भाव कायम करना है। उपन्यासकार धार्मिक कट्टरता का विरोध करते हुए किस हद तक वैचारिक उदारता व प्रगतिशीलता का परिचय देता है इसका विश्लेषण इस आलेख में किया गया है। उपन्यासकार अपने उपन्यास में स्त्री मुक्ति के प्रश्न को भी उठाता है, तथा उनके प्रति पितृसत्तात्मक व धर्मगत संकीर्णता और रूढ़ियों के बन्धनों को तोड़ने की वकालत करता है।

### बीजशब्द :

सांप्रदायिकता, मानवतावाद, मुक्ति, स्त्री, धर्म, पितृसत्तात्मक, प्रेम।

### प्रस्तावना :

‘चंद हसीनों के खतूत’ पांडेय बेचन शर्मा ‘उग्र’ द्वारा स्वाधीनता आंदोलन के दौरान लिखा गया उपन्यास है, जिसकी रचना सन् 1927 में हुई। उपन्यास के प्रकाशन के सन्दर्भ में लेखक का कथन है :- “याद रहे, यह उपन्यास सन् 1927 में लिखा गया था, याने पाकिस्तान के

जन्म से बीसों बरस पहले।”<sup>1</sup> यह उपन्यास ‘पत्रात्मक प्रविधि’ में लिखा हुआ हिंदी का पहला उपन्यास है। इस उपन्यास में ‘उग्र’ जी ने तत्कालीन ब्रिटिश औपनिवेशिक कूटनीति ‘फूट डालो और राज करो’ का भारतीय समाज पर हुए प्रभाव का यथार्थपरक चित्रण किया है। अंग्रेजों द्वारा अपनाई गयी जाति और भाषा के आधार पर, धर्म और मजहब के नाम पर गंगा जमुनी तहजीब और आपसी सद्भाव व भाईचारे में विष घोलने की नीति को भांपते हुए इस उपन्यास की रचना की, व इसके माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन की चेतना का प्रसार लोगों के बीच प्रसारित करने का कार्य उन्होंने किया। प्रेमचंद के समानांतर ‘उग्र’ जी ही एक ऐसे लेखक दिखाई पड़ते हैं, जो हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के विरोध में कलम चलाते हुए गांधीवादी व साम्यवादी मूल्यों की बात करते हैं और एक प्रेम से परिपूर्ण, किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित समता आधारित समाज की बात करते हैं। ‘उग्र’ धर्म के बन्धनों में जकड़ी हुयी स्त्री की मुक्ति का प्रश्न भी सामने रखते हैं, व सामाजिक संरचना और उसके ढाँचे में स्त्री के प्रति अपनी सहानुभूति व चिंता प्रकट करते हैं। ‘उग्र’ की दृष्टिकोण में स्त्री की आजादी धर्मगत व परंपरागत सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर ही संभव है, वे स्त्री के आधुनिक व पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त करने के पक्षधर हैं।

### सांप्रदायिकता बनाम मानवतावाद :

प्रेमचंद युग से पहले उपन्यास साहित्य में मुस्लिम पात्रों का चरित्र प्रायः नकारात्मक, असामाजिक और कट्टर दिखाया गया है, ऐसा प्रदर्शित किया गया है जैसे हर तरह

की सांप्रदायिकता के पीछे गैरहिंदू जाति व धर्म के लोग ही हों। 'उग्र' जी दिल्ली जैसे राजनीतिक हलचल के केंद्र में रहकर अपना लेखन कर रहे थे। वे जानते थे की हिंदू-मुस्लिम एकता के बिना राष्ट्रीय एकता कायम नहीं की जा सकती। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए और अंग्रेजों को हराने के लिए साम्प्रदायिक राजनीति से उबरना होगा, धर्मगत संकीर्णता का त्याग कर मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने में ही समाज की उन्नति होगी। वे कबीर की तर्ज पर हर धर्म को आड़े हाथ लेते हैं, और धार्मिक उन्माद का विरोध करते हुए इंसानियत को तरजीह देते हैं। 'उग्र' लिखते हैं :- "पहले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या यहूदी कोई नहीं था। सभी आदमी थे, सभी खुदा के प्यारे बच्चे थे। फिर? सब लोग मिलकर फिरसे आदमी' क्यों नहीं बन जाते? क्या हिन्दू, मुसलमान? या ईसाई? यहूदी के नाम पर आदमियों में फूट डालने वालों पर खुदा खुश होगा?"<sup>2</sup>

लेखक सांप्रदायिक सद्भाव की नजीर पेश करता हुआ नर्गिस के हवाले से रहीम, रसखान, जायसी, कबीर और नजीर जैसे संतों व कवियों का जिक्र करता है। और इस तरह वह इन मुसलमान कवियों की वैचारिक उदारता, प्रगतिशीलता की और सायास ही ध्यान आकर्षित करता है और दोनों समुदाय के लोगों को इनका मार्ग अनुसरण कर धार्मिक कट्टरता छोड़ने की अपील व मानवीय प्रेम व संवेदनाओं को अपनाने की अपील करता है, वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का आधार अतीत और वर्तमान में जहाँ कहीं भी दिखाई पड़ता हो उसे ग्रहण करता है -

"अभी-अभी नर्गिस का एक खत आया है। उफ! देखने लायक है। तुम देखो, तो--कसम तुम्हारे कदमों की!--रो पड़ो। मेरी प्यारी जान उस काफिर के बच्चे" पर दीवानी हो गयी है। लिफाफे पर आँसू, लेटर-पेपर पर आँसू, एक-एक लाइन पर आँसू! खत के साथ उन्होंने हिन्दी की कई ऐसी किताबें भी भेजी हैं, जो मुसलमानों की लिखीं हुई हैं। कोई 'रहीम' की, कोई 'रसखान' की, कोई 'मुहम्मद जायसी' की, कोई 'नजीर' की और कोई 'कबीर' की। उन्होंने लिखा है, कि ये लोग मुसलमान होकर भी सच्चाई के पुजारी थे। हिन्दू-धर्म की खूबियों के कायल थे।"<sup>3</sup>

उग्र विवाह संबंधी सामाजिक कुप्रथाओं के विरोध में लिखते हैं, और इसके लिए उनके पात्र अंतर्जातीय विवाह और धर्म परिवर्तन भी करते हैं। "फिर आओ न मेरे मालिक! हम लोग एलान कर दें कि हम - पहले

आदमी? हैं, फिर हिन्दू या मुसलमान या कोई ओर।"<sup>4</sup> उग्र के अनुसार "विवाह का एकमात्र आधार नर-नारी का पावन प्रेम है, वह धर्म, कानून, समाज तथा अन्य बन्धनों से बलवान है। सच्चे प्रेम में स्वार्थ, वासना तथा लोभ को अपेक्षा त्याग एवं आत्म-समर्पण के तत्व प्रधान होते हैं। उसी पर अवलम्बित विवाह व्यक्ति एवं समाज के लिए वरदान सिद्ध हो सकते हैं।"<sup>5</sup>

उग्र की दृष्टि मानवीय मूल्यों से बढ़ रही है। उसमें संकीर्णता की जगह व्यापकता व कट्टरता की जगह उदारता सर्वोपरि है। उग्र 'रूढ़िवादी धार्मिकता के घोर विरोधी हैं और वे धर्मान्धता, अज्ञानता, कट्टरता और रक्तपात को धर्म नहीं मानते हैं, उसकी भर्त्सना करते हैं।"<sup>6</sup> उग्र की मान्यता थी कि जब-जब इंसान इंसानियत से विमुख होगा, वह सांप्रदायिक और असामाजिक तत्व में बदल जाएगा, और अपने पतन की ओर उन्मुख होगा।

### धर्म और औरत की मुक्ति का सवाल :

उपन्यास की कथावस्तु नायक 'मुरारिकृष्ण' और नायिका 'नर्गिस' के आपसी प्रेम पर आधारित है। दोनों ही अलग अलग धर्मों के होने के बावजूद एक दूसरे से प्रेम करते हैं। उनके प्रेम के सफल होने के बीच में काफी सारी समस्याएं हैं जोकि साम्प्रदायिक भी हैं, सामाजिक भी हैं। इन दोनों के बीच उत्पन्न होने वाली समस्याओं का 'उग्र' न सिर्फ यथातथ्य चित्रण करते हैं बल्कि राजनीतिक व इतिहासबोध की चेतना से लैस होकर उनका वास्तविक स्वरूप सामने लाते हैं। उनकी 'नर्गिस' पढ़ी-लिखी आधुनिक नारी है जोकि अपने अधिकारों के लिए हर तरह के धर्मगत बंधन और रूढ़ियों को पुरजोर ढंग से नकारती है, और नारी को वस्तु मानने वाली असंवेदनशील पितृसत्तात्मक सोच को चुनौती देती है। "दोनों के विवाह संबंध के बीच संप्रदाय की मर्यादा का व्यवधान एक भीषण समस्या बनकर खड़ा हो जाता है। अपनी कैशोर्य सुलभ भावनाओं के चेतन ओज से प्रेरित नर्गिस इस्लाम धर्म से घृणा करने लगती है। नर्गिस की विचारधारा में आनेवाले इस मोड़ द्वारा कथानक के औपन्यासिक कुतूहल में कई नवीनतायें आई हैं। नर्गिस के मानसिक अंतर्द्वंद्वों का मनोवैज्ञानिक चित्रण भारतीय समाज की रूढ़िबद्धता के प्रति जनमानस की बदलती हुई चेतना उद्घाटित करता है।"<sup>7</sup>

नर्गिस एक प्रगतिशील पात्र है, वह निर्भीक होकर

अपने प्रेम के लिए पिता का विरोध करते हुए साफ-साफ कहती है। “औरत का दिल ऐसी चीज नहीं जिसे आज ‘हिंदू’ और कल ‘मुसलमान’ कह दिया जाये। सच्ची औरत अपना आका, अपना मालिक, अपना खुदा एक बार चुनती है-हजार बार नहीं। इसलिये औरतें मर्दों से ऊँची हैं-माँ हैं। मुहब्बत करने से अगर कोई चिढ़ता है, तो चिढ़ा करे। अगर यह जुर्म है तो ऐसे गुनहगार बहुत हैं। मैंने उन्हें अपना मान लिया है अब दुनियाँ की कोई भी ताकत हमें अलग नहीं कर सकती। मैं उनकी हूँ और वह मेरे हैं।”<sup>18</sup>

नर्गिस अपने पिताजी का विरोध करते हुए स्त्री की आजादी और उनके अधिकारों की बात करती है। लेखक ने इस वार्तालाप में यूरोप व एशिया में 19वीं सदी से ही चले आ रहे स्त्री की आजादी संबंधी आन्दोलनों का जिक्र किया है और जिंदगी संबंधी उनके चुनाव व फैसले का समर्थन किया है। वह धार्मिक कट्टरता का विरोध करने के लिए धर्म परिवर्तन तक करती है, इसी के साथ वह परंपरागत सामाजिक मान्यताओं और रूढ़ियों के प्रति क्रांति करती है। वह औरतों के बारे में पितृसत्तात्मक नजरिये को कठघरे में खड़ा करते हुए कहती है -

“इस मुल्क की औरतों? पर आपका ‘रिमाक’ एक ही रहा। अपनी औरत की गुस्ताखी को माफ कीजियेगा, क्या मर्दों के हाथ में औरतों के दिलो-दिमाग का, दीनों-दुनिया का, बहिश्तो-दोजख का ठेका है? मर्द जिसे कहे औरत उसी को प्यार करे, उसी के गले पड़े; उसी को ‘अपना’ बनाये! औरतें गन्दी हैं, औरतें बेवकूफ हैं, औरतें गुलाम हैं, औरतें बदतहजीब और बेतमीज हैं-यानी दुनिया में सबसे खराब अगर हैं तो औरतें हैं। फिर, बन्दापरवर! आप मर्द लोग, जो अपनी सफाई, अकलमन्दी, बहादुरी और तहजीब के लिये मशहूर हैं, औरतों को नेस्तो-नाबूद क्यों नहीं कर देते? यही कीजिये ओर जरूर कीजिये। बढ़ा सवाव होगा। दुनिया (अमेरिका, जापान, इंग्लैंड, फ्राँस, जर्मनी, इटली,

रूस, चीन, तुर्की) औरतों को आजादी दे रही है। हुजूर के मुल्क के मर्दों को चाहिये कि दुनियाँ के खिलाफ बगावत करें। औरतों को जेलों में रखें। खाने न दें, देखने न दें, सुनने न दें, प्यार करने न दें ओर पढ़ने-लिखने तो जरूर न दें। अगर आपके मुल्क को ‘बागे-अदम’ और मर्दों को ‘खुदा’ कहा जाये तो बुरा न होगा। आप लोग हम औरतों को समझा दीजिये कि इल्म ही वह ‘फारबिडेन ट्री’ है, जिसका फल खाने की आज्ञा नहीं। औरतें भी, ‘आदम’ और ‘ईव’ की तरह, इल्म के पेड़ के फल खाकर चौकन्नी हो जाएंगी, होश में आ जाएंगी।”<sup>19</sup>

इस प्रकार ‘उग्र’ अपने उपन्यास में ‘स्त्री की मुक्ति’ का प्रश्न बराबर उठाते हैं। तथा वे दोनों ही धर्मों की स्त्री विरोधी मानसिकता, स्त्री की सामाजिक दुर्दशा का विरोध करते हैं।

#### निष्कर्ष :

‘उग्र’ ने अंग्रेजों द्वारा अपनाई गयी जाति और भाषा के आधार पर, धर्म और मजहब के नाम पर गंगा जमुनी तहजीब और आपसी सद्भाव व भाईचारे में विष घोलने की नीति को भांपते हुए इस उपन्यास की रचना की, व इसके माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन की चेतना का प्रसार लोगों के बीच प्रसारित करने का कार्य। प्रेमचंद के समानांतर ‘उग्र’ जी ही एक ऐसे लेखक दिखाई पड़ते हैं, जो हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के विरोध में कलम चलाते हुए गांधीवादी व साम्यवादी मूल्यों की बात करते हैं और एक प्रेम से परिपूर्ण, किसी भी प्रकार के भेदभाव से रहित समता आधारित समाज की बात करते हैं। वे स्त्री जीवन में सुधारों के पक्षधर हैं, उनके सामाजिक, व्यक्तिगत, शैक्षिक अधिकारों को भी लेकर वे काफी निर्भीकता से अपनी बात रखते हैं।

शोधार्थी, हिन्दी-विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

ईमेल : himanchal98676@gmail.com

#### संदर्भ सूची

1. चंद हसीनों के खतूत - पांडेय बेचन शर्मा ‘उग्र’, उग्र प्रकाशन, आठवां संस्करण-1955, पृ. सं. 6-7
2. वही, पृ. 71
3. वही, पृ. 71
4. वही, पृ. 75
5. प्रेमचंद युग का हिन्दी उपन्यास - डॉ. मोहनलाल

रत्नाकर, प्रकाशक-ऋषभचरण जैन एवं सन्तति, संस्करण-1979, पृ. 196

6. वही, पृ. 246
7. रत्नाकर पाण्डेय - उग्र और उनका साहित्य-1, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, संस्करण-2007, पृ. 114
8. चंद हसीनों के खतूत, उग्र प्रकाशन, पृ. 50-51
9. वही, पृ. - 68



डॉ. ज्योति शर्मा

## रीतिकालीन सूफी कवि नूर मोहम्मद कृत अनुराग बांसुरी में अभिव्यक्त धर्म का स्वरूप

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल की समय सीमा संवत् 1700-1900 तक मानी जाती है। इस समय रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त एवं रतिइतर काव्यों का प्रणयन किया जा रहा था। रीतिइतर काव्य के अंतर्गत प्रकृति, वीरता एवं नीति आदि प्रवृत्तियों के साथ राम काव्य, कृष्ण काव्य, संत काव्य और सूफी काव्य अथवा प्रेमाख्यान काव्य का सृजन भक्तिकाल की भांति किया जा रहा था जिसमें कुछ प्रेमाख्यान केवल आध्यात्मिक सिद्धांतपरक थे तो कुछ लौकिक प्रेमकथाओं के माध्यम से ईश्वर प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। “इनके रचिताओं में कुछ मुसलमान सूफी कवि थे और कुछ हिंदू संत कवि। मुसलमान सूफी कवियों में कासिमशाह, नूर मोहम्मद और शेख निसार विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। हिंदू कवियों में सूरदास और दुखहरण दास अधिक प्रसिद्ध हैं। लौकिक प्रेमाख्यानकारों में सोना, चतुर्भुज दास आदि का उल्लेख अभिष्ट है।”

सूफी कवि नूर मोहम्मद के जीवन संबंधी जो साक्ष्य उपलब्ध हैं उनके आधार पर उन्हें मोहम्मद शाह के समय विद्यमान माना जा सकता है। “इनका रचनाकाल संवत् 1744 से 1764 है”<sup>12</sup> और “मोहम्मद शाह का शासनकाल संवत् 1776-1805 है।”<sup>13</sup> नूर मोहम्मद ने अपनी रचना इंद्रावती में शाहेवक्त के साथ मोहम्मद को स्थान देकर उनकी प्रशंसा भी की है।

“कौंह मोहम्मदसाह बखानूँ, है सूरज दिल्ली सल्तानूँ,  
सब काहू पर दाया धरई, धर्म सहित सुल्तानी करई” नूर मोहम्मद की मृत्यु तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। पंडित चंद्रबली पाण्डेय नूर मोहम्मद द्वारा रचित फारसी

दीवान में दिए गए 1193 हिजरी (सन् 1779)<sup>4</sup> तक इनको विद्यमान माना है।

नूर मोहम्मद ने अनुराग बांसुरी की रचना सन् 1178 हिजरी अर्थात् संवत् 1821 में की। इसके रचनाकाल की ओर संकेत करते हुए स्वयं कवि ने लिखा है “यह इग्यारह सौ अठहत्तर, फेर सुनाएगी वचन मनोहर”<sup>5</sup> लौकिक प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक कथा सुनाने वाली अनुराग बांसुरी रीतिकालीन प्रेमाख्यान साहित्य की महत्वपूर्ण निधि है जिससे तत्कालीन समय में इस्लाम धर्म में धर्म का जो स्वरूप प्रचलित था उसे जानने और समझने में सहायता मिलती है।

मानव जीवन में धर्म का स्थान सर्वोपरि है। धर्म शब्द ‘धृ’ धातु से बना है जिसका अर्थ धारण करना, आलंबन देना, पालन करना करना है। नूर मोहम्मद सूफी कवि थे। उनकी अनुराग बांसुरी में धर्म का जो स्वरूप मिलता है वह सूफी भावना से अनुप्रेरित है। “सूफी का साधारण अर्थ इस्लामी संत समझा जाता है फारसी में जिसे तसव्वुर कहते हैं वह हिन्दी का सूफी मत है। तसव्वुफ और सूफी दोनों ही प्रायः एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं और सूफ शब्द से व्युत्पन्न हैं।”<sup>6</sup> कुछ विद्वान सूफी शब्द की उत्पत्ति “सूफा नाम की अरबी जाति अरब के अन्धकार-युग में (मोहम्मद से पूर्व) अपने को अज्ञानतावश अरबों से पृथक् करके मक्का के तत्काल स्थित मंदिर में पूजोपासना में लग गए गई थी”<sup>7</sup> से मानते हैं तो कुछ सूफा शब्द का अर्थ “पवित्रता या शुचिता से”<sup>8</sup> और कुछ सूफी शब्द की व्युत्पत्ति भावात्मक संज्ञाओं से जोड़ते हैं जिसका तात्पर्य

पवित्रता, निश्छलता और ज्ञान से संबंधित होता है।”<sup>9</sup> अब्दुल हसन अलहुज्वेरी के अनुसार “वह शख्स जो मुहब्बत के वास्ते से मुसस्फा होता है, वह साफी और जो शख्स दोस्त की मुहब्बत में गर्क हो, गैर दोस्त से बरी हो, वह सूफी होता है।”<sup>10</sup> इस प्रकार सूफी ऐसे संन्यासियों, फकीरों एवं साधकों को कहा जाता था जो परमात्मा के प्रेम में अनुरक्त रहकर पवित्रता और शुचिता को अपना कर ईश्वर की आध्यात्मिक प्रेम साधना में निमग्न रहते थे।

“सूफी मत का इतिहास तब से प्रारंभ होता है जब मोहम्मद साहब मक्का से मदीना गये थे। इस प्रकार सूफी मत का इतिहास 623 ई. के लगभग प्राप्त होता है।”<sup>11</sup> मोहम्मद बिन कासिम ने 711 ई. में भारत पर आक्रमण कर सिंध और मुल्तान को विजित किया तदुपरांत ही भारत में इस्लाम धर्म का प्रसार हुआ और उसके साथ सूफी मत का भारत में अनुगमन हुआ। “आचार्य परशुराम चतुर्वेदी भारत में सूफी मत का आगमन 12वीं सदी जब अलहुज्वेरी भारत आए तब से मानते हैं।”<sup>12</sup> इस प्रकार मुगल शासक अकबर के शासनकाल तक सूफी मत सर्वमान्य हो चुका था। निजामुद्दीन औलिया इसके प्रवर्तक थे। शैने-शैने: सूफी मत में भारतीय योगियों की चमत्कारवादी प्रवृत्ति, चिश्तिया संप्रदाय का आवेशवाद, हल्लाज का विश्वात्मवाद, कलंदरों का चमत्कारवाद, इमाम गदारी का नैतिक आचरणवाद, भारतीय नृत्य-संगीत भी सम्मिलित हो गया था। “इस समन्वय से ऐसा चित्र उपस्थित हो गया जिसका एक विशेष नाम रखना अथवा इस्लाम का अनुमोदी ठहराना कठिन हो गया।”<sup>13</sup> सूफीमत ने स्वयं को प्रेम और सत्पुरुषों के आदर्शों से ऐसा सुसज्जित किया कि इसमें इस्लामी कट्टरता का पदार्पण न हो पाया, संभवतः इसका श्रेय भारतीय उपासना पद्धतियों को दिया जा सकता है क्योंकि भारतीय प्रारंभ से ही भक्ति और प्रेम के उपासक रहे हैं। भारत में आने वाले सूफी संप्रदायों में कादिरिया, नक्शबंदिया, चिश्तियाँ और सुहरावर्दिया प्रमुख थे। भारत में चिश्तियाँ संप्रदाय के मुईनुद्दीन चिश्ती का नाम सभी धर्मों में बड़े आदर सम्मान से लिया जाता है। “हिंदी के अधिकांश सूफी कवियों का संबंध चिश्तियाँ संप्रदाय से है।”<sup>14</sup>

अनुराग बांसुरी ईश्वर के अलौकिक स्वरूप को दृष्टिगत

रखकर भारतीय लौकिक प्रेम कथा को आधार बनाकर लिखी गई है। नूर मोहम्मद जनभाषा हिन्दी तत्कालीन समय में अवधि भाषा में इस्लाम के प्रचार हेतु अनुराग बांसुरी का प्रणयन करते हैं, जिससे इस्लाम धर्म को सरलता से लोक परिवेश तक पहुंचा सकें “नूर मोहम्मद ने हिन्दी का पक्ष हिन्दी-हित की दृष्टि से नहीं लिया उन्हें तो दीन का प्रचार करना था और उस प्रचार का प्रमुख साधन था भाषा।”<sup>15</sup> नूर मोहम्मद स्वयं कहते हैं “जानते हैं वह सिरजन हारा, जो किछु है मन मर्म हमारा, हिंदू मग पर पांव न राखेऊं, का जौं बहुतैं हिन्दी भाखेऊं, मन इस्लाम मसल कै मांजेऊं, दीन जवेरी कसकर भांजेऊं, जहां रसूल अल्लाह फिराया, उम्मत को मुक्तानंद हारा, यहां दूसरों कैसें भावें, जच्छ-असुर-सुर-काज न आवैं, जहां हसनैन-बतुल-सनेहा, यहां न समाई धूसरित देहा, जहां अली हैदर हैं अब्दुल्लाह, यहां कहां को उराछस, पावै राह?”<sup>16</sup> नूर मोहम्मद का अभीष्ट केवल दीन का प्रचार था सर्वमंगला रागिनी के माध्यम से वे अपने मत को पुष्ट करते हैं “यह सनेह की बात नीकों, से अनुराग बांसुरी जी को, है पुनि सरबमंगला सोई, सरबमंगला रागिनी सोईमैहि करतार, भरोसा है सब ठाऊं, या दरगाह छाड़ि कै केहि दिसि जाऊं।”<sup>17</sup> इसमें नूर मोहम्मद सर्वमंगला को रागिनी बता रहे हैं और इस प्रकार उस संगीत को सामने लाते हैं जिसे कट्टर हनीफी शासक आलमगीर (औरंगजेब) के शासन में दफनाने का स्वांग रचा गया था। कारण अनुभव के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? दीन का प्रचार प्रच्छन्न रूप में जितना प्रबल होता है प्रकट रूप में उतना थोड़े ही। निदान नूर मोहम्मद को भी पट के भीतर गुप्त रीति से इस्लाम का प्रचार इष्ट हुआ।”<sup>18</sup>

नूर मोहम्मद सिया मुस्लिम थे। वे अनुराग बांसुरी का प्रारंभ अल्लाह के स्थान पर अली का गुणगान करते हैं “तेहि सुबहान अली की भागा, उपजाऊ मन मों अभिलाखा, ताको नाम लगे अति प्यारा, आदि अंत दोउ जग उजियारा।”<sup>19</sup> नूर मोहम्मद रसूल वंदना करने के साथ “जानत है वह सिरजनहारा, जो किछु है मन-मरम हमारा” कहकर सर्वज्ञता को भी स्वीकार करते हैं। वह मोहम्मद, अली, फातिमा, हसन और हुसैन के प्रति भी श्रद्धा अभिव्यक्त करते हैं।<sup>20</sup>

धर्म और दर्शन का संबंध परस्पर अनोन्याश्रित है।

“सूफी मत का अपना कोई विशिष्ट तथा एकमात्र दर्शन नहीं है, प्रत्युत इसमें नाना भेदात्मक तथा अभेदात्मक दर्शनों का समावेश मिलता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के परस्पर विरोधी दार्शनिक विचारों के कारण तसव्वुफ का रूप समन्वयात्मक जान पड़ता है।”<sup>21</sup> भारतीय दर्शन में ब्रह्म, जीव, जगत की स्थिति एवं मोक्ष के साधनों का विश्लेषण किया जाता है वहीं इस्लाम दर्शन में भी सृष्टि के विविध तत्वों, माया, शैतान तत्वों पर विचार-विमर्श होता है। सूफी दर्शन इन दोनों के मूल तत्वों को आत्मसात कर उनका अध्ययन करता है। अनुराग बांसुरी में भी परमसत्ता के अलख अवर्णनीय स्वरूप का उल्लेख मिलता है जिसकी कृपा से विद्या प्राप्त होती है “जो कोई विद्या लागि मनावै, अलख-दया सों विद्या पावें”<sup>22</sup> इसके साथ जीव<sup>23</sup>, जगत “जगत देवहारा थानों, मूर्ति एक, हित ताहू पर चिंता, करैं अनेक”<sup>24</sup> अर्थात् जगत रूपी मंदिर में एक ही मूर्ति प्रतिष्ठित है, उस एक की उपासना न करके अनेक की उपासना निरर्थक है। कवि की ये पंक्ति तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप है। सभी इस्लामी चिंतक मानते हैं सृष्टि अल्लाह की कृति है। अनुराग बांसुरी में सृष्टि का उल्लेख परब्रह्म के प्रतिबिंब होने के संबंध में मिलता है जब छाया दर्पण में देखता हूँ तो उस परब्रह्म के अतिरिक्त किसी और को नहीं पाता “ता सम दूसर दिस्टि न आएगी, आप समां दरपन में पाएऊ।”<sup>25</sup> माया संसार का मिथ्या तत्व है जो साधक को आगे बढ़ने से रोकता है और भोग की ओर प्रवृत्त करता है। अनुराग बांसुरी के नायक अंतःकरण को इंद्रियपुर में निवास करना पड़ता है जहां भोग ही जीवन का लक्ष्य है “रहती बसेरा ठावै खाऊं, जाग परे इंद्रियपुर खाऊं तासों माया के बस, बहुत लोग, जोग न चाहे कीन्हो, चाहे भोग”<sup>26</sup> नूर मोहम्मद भी संत कवियों की भांति बारस्त्री और पत्नी को माया का रूप मानते हैं जो साधक को पथभ्रष्ट करती हैं। नूर मोहम्मद ने तत्कालीन समय में परमात्मा, सृष्टि, जीव, जगत और माया के संदर्भ में जो दार्शनिक मान्यताएं प्रचलित थीं उनके अनुरूप प्रस्तुत किए हैं।

अनुराग बांसुरी में नायक अंतःकरण सूफी साधना की शरीयत, तरीकत, हकीकत और मार्फत अवस्थाओं को पार कर अपने साध्य को प्राप्त करता है। नूर मोहम्मद “मन के

भालै सुमिरै नेही लोग मोहि सिखावौं सुमिरन, मानहिं मोहि”<sup>27</sup> कहकर नाम स्मरण की महत्ता प्रतिपादित करते हैं। सूफी साधना पद्धतियों में गुरु का अति महत्वपूर्ण स्थान है। अनुराग बांसुरी में स्नेह गुरु और उपदेशी सुधा गुरु कर्म का निर्वहन करते हैं। गुरु के अनुकूल होने पर सारी प्रतिकुलता नष्ट हो जाती है। अगुवा या गुरु वहीं हो सकता है जो स्वयं सही पर से परिचित हो “अगुवा भएउ सुधा उपदेशी, अगुवाई हो दीपक लेसी, अगुवा सोई पंथ हो जाना, अगुवा सहिता फिरे भुलाना!”<sup>28</sup> अनुराग बांसुरी में गुरु को महत्व देने की परम्परा इस्लाम और भारतीय संस्कृति के समान दृष्टिकोण पर आधारित है।

अनुराग बांसुरी में एक और भारतीय हठयोग, धार्मिक आचार व्यवहार, मान्यताओं और आस्थाओं का कथानक को विस्तार देने के लिए स्थान दिया गया है साथ ही सूफी उपासना पद्धति में शरीयत के सौम, एकांत, हज्ज, एवं नई पद्धतियों में तिलवत, जिक्र, फिक्र, पैगम्बरों की पूजा, संगीत आदि का आश्रय भी भारतीय धार्मिक परम्पराओं का साथ निभाकर अपनी प्रेम रंग से अनुरजित सूफी समन्वयात्मक साधना पद्धति की शक्ति की निश्छल प्रतीति कराता है। यह भारतीय धार्मिक आचार व्यवहार का प्रभाव है कि नायक अंतःकरण कंठी माला पहनकर “भएऊ कुंवर वैरागी भेसू, रखि वैराग भुलान योगेसू, गेरुआ वस्त्र सलोनी काया, अधिक विराजा शोभा पाया”<sup>29</sup> सूफियों की वैरागी वेशभूषा में नाथपंथियों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। प्रेम साधना की सूफियों की साधना पद्धति का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं “सूफियों का प्रेम प्रछन्न के प्रति है। सूफी कवि अपनी प्रेम-व्यजंजा साधारण नायक-नायिका के रूप में करते हैं, प्रसंग सामान्य प्रेम का ही रहता है किन्तु उनका संकेत परम-तत्त्व का ही होता है।”<sup>30</sup> अनुराग बांसुरी का कथानक लौकिक प्रेम की अलौकिक प्रेम कहानी कहता है। सभी पात्र एवं परिस्थितियां ईश्वरीय प्रेम के स्वरूप को प्रस्तुत करने का माध्यम बनकर कथा को विस्तार देते हैं। अंतःकरण स्नेह नगर की यात्रा के दौरान सूफी साधना की विभिन्न अवस्थाओं को पार करता है।<sup>31</sup> अनुराग बांसुरी में प्रेम-पात्र की प्राप्ति के लिए किए गए प्रयास ही वास्तव में सूफी साधना के अंग हैं। वे सारे संसार को प्रीति एवं दया के वशीभूत मानते हैं “प्रीति दया बस है संसारा प्रीति फांद सब फांद निहारा।”<sup>32</sup> नूर

मोहम्मद हृदय में प्रेम पात्र को धारण करने के पश्चात् किसी दूसरे को देखने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं “जब एक मूर्ति हिय समानी दूसर कहां बिलोके ज्ञानी, जो मन बीच नैन हों सोई, वहां लगै झल दूसर कोई।”<sup>33</sup> नूर मोहम्मद ने अनुराग बांसुरी में आदियां प्रेम के अलौकिक पक्ष को बनाए रखा है जो उनकी इस रचना प्रणयन का ध्येय भी है।

अनुराग बांसुरी में नूर मोहम्मद की दृष्टि सौंदर्य के लौकिक स्वरूप को अभिव्यक्ति देने के साथ उसके अलौकिक सौंदर्य के प्रतिपादन की भी रही है। तभी तो उनका नख-शिख वर्णन अलौकिकता लिए हुए है। अनुराग बांसुरी की नायिका सर्वमंगला का नाम गुणद्योतक और रूपनिधान है “सरबमंगला है अभिधानू, गुन मंगला और रूप-निधान”<sup>34</sup> विद्यार्थी ज्ञातस्वाद तो सर्वमंगला के सौंदर्य को व्याख्यायित करने में स्वयं को असमर्थ पाता है “अंत न पावै या छवि, बरनै कोई, एक सुषमा जो बरनै दूनि होई।”<sup>35</sup> नूर मोहम्मद ने अंतःकरण को सर्वमंगला पर उसी तरह मोहित कराया है जैसे भक्त अपने आराध्य के स्वरूप पर मोहित होता है, हो भी क्यों न? सर्वमंगला का सौंदर्य अपरिमेय और दिव्यता जो लिए है।

सूफी दर्शन साधना के अंतर्गत विरह प्रेम की कसौटी के रूप में चित्रित हुआ है। आत्मा-परमात्मा से जब तक उसका मिलन न हो जाए विरह पीड़ा से अभिशप्त रहती है। अनुराग बांसुरी में नायक अंतःकरण भी विरहावस्था को पार करने के लिए अपनी मानसिक दृढ़ ध्यान संकल्प शक्ति को जागृत करता है “अंतःकरण प्रेम की बाधा, गौर बदनभा दुर्बल आधा, माता-पिता बहुतै समझावा, ध्यान स्नेहनगर पर लावा।”<sup>36</sup> नूर मोहम्मद सूफी साधना का लक्ष्य परमसत्ता की अलौकिकता की आभा में अपने अहम् का विलय करना अपना परम लक्ष्य मानते हैं जिससे जीवात्मा को सांसारिक संतापों से मुक्ति एवं मोक्ष रूपी आनंद की प्राप्ति हो सके “आपुहि हेरथ हौं घट माहिं, तेहि पावत हौं आपुहि नाहिं, आपहु हेराई गई मैं कैसे जल के बीच बताशा जैसे।”<sup>37</sup>

अनुराग बांसुरी में स्वर्ग-नरक<sup>38</sup>, कर्मफल<sup>39</sup>, सुख-दुःख<sup>40</sup> संबंधी धार्मिक मान्यताएं भी दृष्टिगत होती हैं जो भारतीय धार्मिक परिवेश एवं धार्मिक मान्यताओं के समान हैं। अनुराग बांसुरी में नूर मोहम्मद शिव मंदिर

गिरिस देवहारा<sup>41</sup> हिंदू देवी देवताओं<sup>42</sup> का नामोल्लेख करते हैं। एक स्थान पर भारतीय धार्मिक उपासना पद्धति की झलक भी दृष्टिगत होती है “देखा सपन एक निहित माहिं, ध्यान देवहरा कै परछाहीं, आपुहि मूर्ति ऐसी पावा, बैरागी एक माथ नवावा, जैसे पूजै मूरति देवा, तस वैरागी, कीन्हीं सेवा, कै बन्दन कर जोरी मनाना, पूजा चंदन मार चढ़ावा”<sup>43</sup> तो दूसरे स्थान पर इस्लामी उपासना पद्धति का दृश्य मिलता है जो हमें पढ़ने में हमें भले ही असहज एवं कट्टरतापूर्ण लगे पर उन्होंने वही लिखा जो उनके धर्म में प्रचलित है “निसिदिन अमूरत पूजा, मूरति नाहिं देवता दूजा, जहां अमूरत पूजा करै तहां देवता मारा धरै, कहूं परे रागी-बैरागी, संन्यासी, जोगी, अनुरागी, देखि देवहारा अघमिति जाई, धर्म परगटै, पाप नसाई, औरें मन, औरें भा प्रांशु, औरै, ध्यान भएउ मति ज्ञानू।”<sup>44</sup>

सारांश में कहा जा सकता है कि नूर मोहम्मद कृत अनुराग बांसुरी लौकिक प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की कथा सुनाकर रीतिकालीन परिवेश में भी भारतीय धर्म, दर्शन और सूफी साधना पद्धतियों का समावेश कर दोनों धर्मों के मध्य समन्वय स्थापित करने का ऐसा प्रयास है जो नूर मोहम्मद द्वारा इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिए रची गई इस रचना के प्रणयन के दौरान अनजाने उनसे हो गया। वे स्वयं रचना में अनेक स्थलों पर स्वीकार करते हैं उनका रचना करने का उद्देश्य दीन (इस्लाम) का प्रचार करना है। ये स्वीकारोक्ति करने के दौरान वे कट्टर इस्लाम मतावलंबी प्रतीत होते हैं। उन्होंने जगत को ईश्वर की प्रतिकृति माना है, उस ईश्वर की प्राप्ति स्वयं अथवा अहम् का परित्याग कर संभव है। उन्होंने ईश्वर को प्राप्त करने के लिए साधना की अनेक अवस्थाओं का उल्लेख भारतीय और सूफी साधना पद्धतियों के माध्यम से प्रतिपादित किया है। भारतीय देवी देवताओं, हिंदू पूजा पद्धतियों दान-व्रत, तीर्थयात्रा, नाथपंथी वैरागी वेशभूषा, कर्मयोग, सुख-दुःख की अवधारणा आदि मान्यताएं नूर मोहम्मद पर भारतीय धार्मिक लोकजीवन के प्रभाव को दर्शाती हैं और उन्हें एक ऐसे जिज्ञासु धार्मिक व्यक्ति के रूप में दिखाती हैं जो अपनी धार्मिक जिज्ञासाओं का शमन करने विभिन्न संप्रदायों और मत-मतांतरों के निकट गया होगा, क्योंकि तभी हिंदू धर्म, उपासना पद्धतियों का उल्लेख अनुराग बांसुरी में वे सफलतापूर्वक कर पाये, जो उनकी समन्वयवादी प्रवृत्ति

का द्योतक भी है। परन्तु ये केवल उनकी समन्वयवादी प्रवृत्ति का गौण रूप है। नूर मोहम्मद ने भारतीय धार्मिक आस्थाओं को अपनी रचना में स्थान अवश्य दिया पर वे कहीं भी अपने रचना करने के मूल उद्देश्य से नहीं भटके हैं उन्होंने भारतीय धार्मिक आस्थाओं का आश्रय केवल इस्लामी सूफी धार्मिक मान्यताओं और इस्लाम प्रचार के लिए किया है। पर हम ये भी मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति की अपने धार्मिक विश्वास, आस्थाएं एवं मान्यताएं होती हैं जिसके अनुपालन का उसे अधिकार होता है, उसी के अनुरूप नूर मोहम्मद को भी अपनी धार्मिक आस्था अनुरूप व्यवहार करने का पूर्ण अधिकार है उसे उनकी कट्टरता कहना एक पक्षीय होगा, उन्होंने धर्म को जीवन में सर्वोपरि स्थान दिया है। परन्तु यह भी सच है साहित्य वही शाश्वत होता है जो सभी प्राणियों का, सभी धर्मों का, समाज के सभी वर्गों का समन्वय करता हो, बार-बार जहां साहित्यकार को अपने धर्म की दुहाई न देनी पड़ती हो जैसी नूर

मोहम्मद को देनी पड़ती है। अगर वे अपने दीन प्रचार की परिसीमा से ऊपर उठ जाते तो एक समन्वयात्मक एवं समस्त मानवता के हितार्थ रचे गये साहित्य के प्रणेता कहलाते, जो भी हो अपने दीन का प्रचार उनका व्यक्तिगत विश्वास है, इस पर कुठाराघात उनके वैयक्तिक विश्वास पर आघात होगा, जो हमारा उद्देश्य नहीं है।

अनुराग बांसुरी में भारतीय लोक जीवन की पृष्ठभूमि में सूफी एवं भारतीय धार्मिक परम्पराओं के अनुरूप धर्म और दर्शन का स्वरूप दिखाई देता है। ये प्रेमाख्यान ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र माध्यम प्रेम मानता है। ऐसी प्रेमकथा का सृजनकर्ता स्वयं प्रेम रहित कैसे हो सकता है? क्योंकि प्रेम धर्म है और धर्म का मुख्य उद्देश्य ही प्रेम है जो लोगों को और धर्मों को परस्पर जोड़ता है।

एसोसिएट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग, दौलतराम महाविद्यालय  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ. नगेंद्र, पृष्ठ-350
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक, पृष्ठ-351
3. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ. सरला शुक्ल, पृष्ठ-452
4. अनुराग बांसुरी बीती बात, संपादक पंडित चंद्रबली पाण्डेय, पृष्ठ-7
5. अनुराग बांसुरी, नूर मोहम्मद, पृष्ठ-86
6. सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण, निजामुद्दीन अंसारी, पृष्ठ-17
7. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ. सरला शुक्ल, पृष्ठ-3
8. वही, पृष्ठ-3
9. वही, पृष्ठ-3
10. सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण, निजामुद्दीन अंसारी पृष्ठ-19
11. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, श्याम मनोहर पाण्डेय, पृष्ठ-27
12. सूफी काव्य संग्रह, परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ-49
13. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ. सरला शुक्ल, पृष्ठ-26
14. वही, पृष्ठ-28
15. अनुराग बांसुरी, दीन की चर्चा, संपादक पंडित चंद्रबली पाण्डेय, पृष्ठ-50
16. अनुराग बांसुरी, दीन की चर्चा, संपादक पंडित चंद्रबली पाण्डेय, छंद-10, पृष्ठ-90
17. वही, छंद-7, पृष्ठ-87
18. वही, दीन का प्रचार, संपादक, चंद्रबली पाण्डेय, पृष्ठ-50
19. अनुराग बांसुरी, छंद-3, पृष्ठ-86
20. वही, छंद-10, पृष्ठ 90
21. जायसी काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. भीम सिंह, पृष्ठ-269
22. अनुराग बांसुरी, छंद-8, पृष्ठ-88
23. वही, छंद-1, पृष्ठ-91
24. वही, छंद-73, पृष्ठ-167
25. वही, छंद-15, पृष्ठ-113
26. वही, छंद-7, पृष्ठ-137
27. वही, छंद-8, पृष्ठ 107
28. वही, छंद-31, पृष्ठ-128
29. वही, छंद-5, पृष्ठ-123
30. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डॉ. सरला शुक्ल, पृष्ठ-111

31. अनुराग बांसुरी, छंद-12, पृष्ठ-137
32. वही, छंद-23, पृष्ठ 117
33. वही, छंद-4, पृष्ठ-134
34. वही, छंद-12, पृष्ठ-96
35. वही, छंद-16, पृष्ठ-98
36. वही, छंद-104, पृष्ठ-32
37. वही, छंद-14, पृष्ठ-182
38. वही, छंद-8, पृष्ठ-88
39. वही, छंद-9, पृष्ठ-89
40. वही, छंद-8, पृष्ठ-111
41. वही, छंद-1, पृष्ठ-108
42. वही, छंद-4, पृष्ठ-139
43. वही, छंद 17, पृष्ठ-144
44. वही, छंद-4, पृष्ठ-60



डॉ. मंजुला गुप्ता

## उपनिषद और आधुनिक विश्व : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

### सारांश :

आधुनिक युग तर्क और विज्ञान का युग है। मनुष्य हर क्षेत्र में अधिक उन्नति कर रहा है। लेकिन इन सबके अलावा दुनिया में कुछ अशांति भी है। आधुनिकता ने शांति और स्वस्थ वातावरण वाले विश्व की प्राचीन छवि को बिगाड़ दिया है। उपनिषद प्राचीन भारतीय शास्त्रीय संकलन हैं जिनमें ज्ञान, रहस्योद्घाटन और तर्क शामिल हैं। उपनिषदों का संदेश आधुनिक दुनिया में बहुत उपयोगी है, क्योंकि उपनिषद निर्माण में विश्वास करते हैं। दुनिया की वर्तमान तस्वीर को प्रभावित किए बिना एक स्वस्थ वातावरण का निर्माण ही आधुनिक समय की मांग है।

### परिचय :

उपनिषद भारतीय दर्शन का मूल है। वे मूल मौखिक प्रसारण से लेखों का एक अद्भुत संग्रह हैं, जिन्हें श्री अरबिंदो ने “भारतीय दिमाग का सर्वोच्च कार्य” के रूप में वर्णित किया है। यहीं पर हमें मौलिक शिक्षाएँ ‘कर्म’ (क्रिया), ‘संसार’ (पुनर्जन्म), ‘मोक्ष’ (निर्वाण), ‘आत्मन’ (आत्मा), और ‘ब्रह्म’ (पूर्ण सर्वशक्तिमान) की अवधारणाएँ मिलती हैं, जो हिंदू धर्म के केंद्र में हैं। उन्होंने आत्म-साक्षात्कार, योग और ध्यान के प्रमुख वैदिक सिद्धांतों को भी सामने रखा। उपनिषद मानव जाति और ब्रह्मांड पर विचार के शिखर हैं, जो मानव विचारों को उनकी सीमा और उससे भी आगे तक ले जाने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं। वे हमें आध्यात्मिक दृष्टि और दार्शनिक तर्क दोनों देते हैं, और केवल व्यक्तिगत प्रयास से ही कोई सत्य तक पहुंच सकता है। उपनिषद धार्मिक और दार्शनिक प्रकृति के ग्रंथों का एक संग्रह है और इसमें पारंपरिक वैदिक

धार्मिक व्यवस्था शामिल है। उपनिषद प्राचीन ग्रंथ हैं, जो हिंदू विचार की नींव को दर्ज करते हैं। वे वेदों के अंतिम भाग हैं, वह भाग जो शुद्ध ज्ञान से संबंधित है और वेदों के दार्शनिक सिद्धांतों को संक्षेप में समझाते हैं और वेदों का सार माने जाते हैं। उपनिषदों की रचना शास्त्रीय हिंदू शिक्षा की मुख्य भाषा संस्कृत में की गई थी।

‘वेद’ शब्द का अर्थ है ‘ज्ञान’; और उपनिषदों को कभी-कभी ‘वेदांत’ के रूप में वर्णित किया जाता है, जिसका अर्थ है ‘ज्ञान की पराकाष्ठा’। उपनिषदों का दर्शन उत्कृष्ट, गहन, उदात्त और आत्मा को झकझोर देने वाला है। उपनिषद आत्मा (व्यक्तिगत आत्मा) और ब्रह्म (परमात्मा) की पहचान की बात करते हैं। वे अत्यंत सूक्ष्म और गहन आध्यात्मिक सत्य प्रकट करते हैं। उपनिषदों में वेदों का सार है। वे वेदों के अंतिम भाग हैं और वेदांत दर्शन के स्रोत हैं। प्रत्येक श्लोक से गहन, मौलिक, उच्च एवं उत्कृष्ट विचार उत्पन्न होते हैं। उनमें द्रष्टाओं, या संतों, ऋषियों के प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभव या रहस्योद्घाटन शामिल हैं। वे सर्वोच्च दिव्य ज्ञान के उत्पाद हैं।

उपनिषद आध्यात्मिक ग्रंथ हैं जो वेदांत की उत्कृष्ट अवधारणाओं और सार्वभौमिक सत्य के अंतर्ज्ञान से परिपूर्ण हैं। प्राचीन काल के भारतीय ऋषि-मुनियों ने अस्तित्व के मूलभूत सत्य को समझने का प्रयास किया। उन्होंने मनुष्य और ब्रह्मांड की उत्पत्ति, प्रकृति और नियति की समस्याओं को हल करने का प्रयास किया। उन्होंने जानने और होने के अर्थ और मूल्य को समझने का प्रयास किया। उन्होंने जीवन और संसार के साधनों और व्यक्ति के ‘अदृश्य’ या परमात्मा से संबंध की समस्याओं का समाधान खोजने का

प्रयास किया।

व्युत्पत्ति के अनुसार, उपनिषद् नाम उप (पास) और शब्द (बैठना) शब्दों से बना है, जिसका अर्थ-“पास बैठना” है। यह उस अवधि की ओर इशारा करता है जब विद्यार्थियों के समूह शिक्षक के पास बैठते थे और जंगल के ‘आश्रमों’ या आश्रमों के एकांत में उनसे गुप्त शिक्षाएँ सीखते थे। शब्द के दूसरे अर्थ में, ‘उपनिषद्’ का अर्थ है ‘ब्रह्म-ज्ञान’ जिसके द्वारा अज्ञान का नाश होता है। यौगिक शब्द ‘उपनिषद्’ के कुछ अन्य संभावित अर्थ हैं “अगल-बगल रखना” (समता या सहसंबंध), “निकट दृष्टिकोण” (पूर्ण अस्तित्व के लिए), “गुप्त ज्ञान” या यहां तक कि “प्रबुद्ध के निकट बैठना।” उपनिषदों के रचयिता अनेक थे। वे आध्यात्मिक ज्ञान की झलक पाने वाले कवि थे, और उनका उद्देश्य कुछ चुने हुए विद्यार्थियों को मुक्ति के बिंदु तक मार्गदर्शन करना था, जिसे उन्होंने स्वयं प्राप्त किया था। उपनिषदों की पारंपरिक संख्या 108 है, हालाँकि कई और भी हैं, विशेष रूप से हाल ही में उत्पन्न हुए। इनमें से 11 को आमतौर पर सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है।

**उपनिषदों का सार**—वेद पौराणिक और कर्मकांडीय ग्रंथों के रूप में शुरू होते हैं। वेदों में तीन भाग हैं : उपासना खंड, ज्ञान खंड और कर्म खंड। यही तीन भाग उपनिषदों में भी समाहित हैं। ये उपनिषद् मनुष्य को बताते रहे हैं कि उसे क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए; कौन से रास्ते अपनाए जाने पर वह अच्छे की ओर ले जाएगा, कौन से रास्ते अपनाए जाने पर वह बुरे की ओर ले जाएगा, इत्यादि। जब हम उपनिषदों की विषय-वस्तु को गहराई से समझेंगे और उनके आंतरिक अर्थ को समझेंगे, तब हमें अपना जीवन एक सुखद स्वप्न के समान प्रतीत होगा। यह आपको ऐसी स्थिति में ले जाएगा जब आप दोबारा इस जीवन से जुड़ना नहीं चाहेंगे। उपनिषदों में, हमें ब्रह्मांड की प्रकृति और उत्पत्ति से संबंधित मिथकों और किंवदंतियों और ब्रह्माण्ड संबंधी अटकलों के एक समूह के साथ मिश्रित सत्यापित और सत्यापन योग्य आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि का एक समझदार संग्रह मिलता है।

उपनिषदों में व्यक्तियों और उनकी शिक्षाओं की कहानियाँ हैं। ये व्यक्ति आश्चर्यजनक रूप से अक्सर राजा और योद्धा होते हैं; वे कभी-कभी विद्वान और पुजारी होते

हैं; वे अक्सर गृहस्थ होते हैं, कभी-कभी संन्यासी; वे पुरुष या महिला हो सकते हैं। लेकिन ऐसी व्यक्तिगत विशेषताएँ कोई मायने नहीं रखतीं। सभी व्यक्तित्वों से परे, जो मायने रखता है वह है ज्ञान। उपनिषदों के कथनों के दो पहलू हैं:-

- पहले पहलू को ‘मंत्र’ कहा जाता है, जिसका अर्थ है ‘उपकरण’ या ‘डिजाइन’। यहां, उच्चारित शब्दों में ध्वनि का आकार मूड को उसी तरह प्रभावित करता है, जिस तरह संगीत करता है। जैसे ही श्रोता उच्चारित ध्वनि के इन आकारों के माध्यम से ध्यान केंद्रित करता रहता है, मन अनुभव की विशेष अवस्थाओं में चला जाता है, जिन्हें ‘समाधि’ कहा जाता है। ये समाधियाँ मानसिक एकाग्रता की समाधि जैसी अवस्थाएँ हैं, जहाँ मन की शक्तियाँ सामान्य अनुभव की सामान्य सीमाओं से परे, एक असाधारण डिग्री तक विस्तारित हो जाती हैं। इस प्रकार मंत्र पहलू योग या रहस्यमय ध्यान के अनुशासन से जुड़ा हुआ है।

- दूसरे पहलू को ‘विचार’ कहा जाता है, जिसका अर्थ है ‘विचार’ या ‘पूछताछ’। यहां, मन ध्वनि के सभी भौतिक या मानसिक आकारों के नीचे, समझ के अपने आधार को प्रतिबिंबित करता है। शारीरिक और मानसिक ध्वनियाँ मन के ध्यान की सीमित सतह पर सुनाई देती हैं। विकारके प्रश्नवाचक विचार का संबंध उच्चारित ध्वनियों के आकार से नहीं, बल्कि उनके अर्थ से है। यहां, विचार अर्थ की ओर मुड़कर देखता है, इस प्रकार समझ की अंतर्निहित जमीन की ओर अपना रास्ता बनाता है। यह विकार पहलू और कुछ नहीं बल्कि दर्शन का चिंतनशील कारण है।

उपनिषदों का उद्देश्य सांसारिक और आध्यात्मिक रूप से सभी प्राणियों का सच्चा कल्याण सुनिश्चित करना है। उपनिषदों की रचना और अध्ययन ऐसे वातावरण में किया गया था जिसमें बहुत अधिक रहस्यमय और अनुष्ठानिक अभ्यास शामिल था। और इस कारण से, उन्होंने एक शक्तिशाली मंत्र पहलू विकसित किया, जिसका उपयोग अक्सर उनकी दार्शनिक जांच में मदद के लिए किया जाता था। उपनिषदों का अध्ययन विभिन्न प्रकारों से किया जा सकता है जैसे कि एक ऐतिहासिक दस्तावेज, एक आध्यात्मिक ग्रंथ, दैनिक जप और प्रार्थना के लिए एक शास्त्रीय पाठ, एक उत्कृष्ट कविता, व्याकरण और छंद की व्याख्या, या एक प्रबंधन नियमावली, जो किसी के

अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

**उद्देश्य :** आत्म-ज्ञान (आत्मनज्ञान) जो हमारी अज्ञानता और परिणामी समस्याओं को समाप्त करता है और हम सभी के लिए परम कल्याण प्रदान करता है, उपनिषदों का मुख्य विषय है। उपनिषद हमें एक ऐसे व्यक्ति का दर्शन कराते हैं जिसने सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त कर लिया है और वह उसमें लीन रहता है। उपनिषद पीढ़ियों के लिए प्रेरणा और ज्ञान का एक परम स्रोत हैं। उपनिषदों का संदेश केवल एक सामान्य आध्यात्मिक दर्शन या नैतिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि इसका हमारे दैनिक जीवन में ऐसे सिद्धांतों के अनुप्रयोग में व्यावहारिक पहलुओं पर असर पड़ता है। उपनिषद आम तौर पर क्रिया और प्रक्रिया की निम्नलिखित पद्धति से निपटते हैं—

- समस्या की पहचान करना,
- समाधान ढूँढना,
- समाधान लागू करना,
- जीवन के मूल्यों को समझना, तथा
- पूर्णता प्राप्त करना

उपनिषदों का मुख्य दार्शनिक विषय पाँच मूल अवधारणाओं की व्याख्या है।

- जीव, व्यक्तिगत आत्मा या जीवित प्राणी
- जगत्, वह ब्रह्मांड जिसमें वह रहता है या प्रकृति या पदार्थ
- जगदीश्वर, ब्रह्मांड के निर्माता या सर्वोच्च नियंत्रक, और जीव, जगत् और जगदीश्वर के बीच संबंध
- धर्म (ईश्वरीय कानून द्वारा कर्तव्य)
- काल (समय)

विभिन्न आध्यात्मिक अनुभवों को चित्रित करने के अलावा, उपनिषद साधना यानी आध्यात्मिक प्राप्ति के मार्गों पर कुछ संकेत भी देते हैं। साधना की इन विधियों को विद्या कहा जाता है। उपनिषद विद्याओं के बारे में अधिक विवरण नहीं देते क्योंकि ऐसे विवरण मुद्रित रूप में नहीं दिये जा सकते। आमतौर पर, एक शिक्षक इन सच्चाइयों को अक्सर मौन रहकर छात्रों तक पहुँचाता है। ऐसी बहुत सी किताबें प्रिंट में नहीं हैं जो आध्यात्मिक अभ्यास के लिए उपनिषदिक विचारों की प्रासंगिकता पर चर्चा करती हों। अनुभवजन्य ज्ञान या 'साधना' की विधि ने विद्याओं के सिद्धांत को पूरी तरह से अपने कब्जे में ले लिया, जिसके माध्यम से मुक्ति प्राप्त की जाती है।

उपनिषदिक साधना मुख्य रूप से सभी इच्छाओं को दूर करना, और बहुलता की चेतना को हटाने से संबंधित है।

उपनिषदों में हमें ब्रह्मांड की प्रकृति और उत्पत्ति से संबंधित मिथकों, किंवदंतियों और ब्रह्मांड संबंधी अटकलों के साथ मिश्रित सत्यापित और सत्यापन योग्य आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि का एक समझदार संग्रह मिलता है। जबकि पहले की सार्वभौमिक वैधता है और सभी युगों में मानव बुद्धि पर दावा है, बाद वाला ऐसे सभी दावों को खारिज कर देता है। धार्मिक साहित्य सहित किसी भी साहित्य में निहित सभी सकारात्मक ज्ञान सीमित है, और समकालीन वैज्ञानिक ज्ञान के स्तर से अनुकूलित है। बाद की प्रगति के कारण इस ज्ञान के अधिकांश भाग में संशोधन, और यहाँ तक कि खत्म होने से, मनुष्य की अधिकांश साहित्यिक विरासत की सत्य-वैधता पर असर पड़ा है, जिसमें उसकी धार्मिक और दार्शनिक विरासत भी शामिल है।

### उपनिषद और आधुनिक विश्व-

विज्ञान ने आज उन रास्तों पर चलना छोड़ दिया है जिनसे लोगों के लिए उपयोगी परिणाम मिलने की संभावना है। दूसरी ओर, वैज्ञानिक ऐसे रास्ते अपना रहे हैं जो लोगों के लिए हानिकारक होंगे। वे ऐसे रास्ते भी अपना रहे हैं जो लोगों के लिए कुछ कठिनाइयाँ और संघर्ष पैदा करते हैं। क्योंकि उन्होंने उपयोगी रास्ते छोड़ दिए हैं और हानिकारक और खतरनाक रास्ते अपना लिए हैं, इसका परिणाम यह हुआ है कि वे ईश्वर की उपस्थिति को भूल गए हैं। चाहे कोई भी क्षेत्र हो यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार कार्य कर रहा है कि अहंकार उस पर हावी हो जाए तो यह न केवल उसे खतरनाक स्थिति में पहुँचा देगा बल्कि उसके लिए काफी कठिनाइयाँ भी खड़ी कर देगा। मनुष्य के कद पर अहंकार वैसे ही काम करता है जैसे सुबह की सूरज की किरणें उसकी छाया पर काम करती हैं। सुबह सूर्य की किरणों के कारण हमारी छाया बहुत लंबी होगी। जैसे-जैसे सूर्य आकाश में ऊपर जाएगा, सूर्य की किरणों से बनने वाली छाया की लंबाई छोटी होती जाएगी। उसी तरह, एक अहंकारी का कद कुछ ऐसा है जो समय के साथ-साथ नीचे गिरता ही जाता है।

आधुनिक दुनिया में स्थिति काफी अलग है, क्योंकि हमारे समाज ने अब संदेहपूर्ण प्रश्न करना सीख लिया है। अब दार्शनिक जिज्ञासा को सामान्य जीवन और शिक्षा से छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं है। उस पारंपरिक

रहस्यवाद की कोई आवश्यकता नहीं है जिसने उपनिषदों को अप्राप्य बनाए रखा। प्रसिद्धि, धन की इच्छा और राष्ट्रीय वित्त की अत्यधिक प्रतिस्पर्धी दुनिया से परिणामी दबाव, वैज्ञानिक स्वतंत्रता की अदृश्य दुनिया से जुड़े दबाव ने शोधकर्ताओं को अघुलनशील त्रुटियों से बचने के विश्वसनीय रास्ते स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। मुक्ति की प्रक्रिया एक गहन सिद्धांत के माध्यम से हर गंभीर और अपूरणीय त्रुटि को कम करना था। यह अविश्वसनीय लेकिन सच है कि भौतिकी और ब्रह्मांड विज्ञान में प्रत्येक गहन सिद्धांत उन छिपी हुई समस्याओं से ग्रस्त क्षेत्रों पर प्रकाश डालता है जो मानवीय समझ को चुनौती देती हैं।

उपनिषद मानवीय समस्याओं का मानवीय ढंग से समाधान करते हैं। इसीलिए इसमें जबरदस्त अपील है। इसने दुनिया में सदियों से मानव मस्तिष्क को प्रेरित किया है और आज यह दुनिया के विभिन्न हिस्सों में लाखों लोगों पर अपना जादू चला रहा है। यह विश्व में सर्वाधिक अनुवादित कृति बनी हुई है। इंटरनेट जैसी आधुनिक तकनीक ने दुनिया के कोने-कोने तक अपना संदेश पहुंचाकर इसकी प्रतिष्ठा और बढ़ा दी है। इतनी लोकप्रियता के बावजूद, उपनिषद कम समझा जाने वाला लेकिन अधिक प्रसिद्ध पाठ बना हुआ है; लोग इसके बारे में इससे अधिक जानते हैं कि यह किस बारे में है। उपनिषद एक व्यक्तिपरक विज्ञान होने के कारण शायद ही कोई यह जानने की कोशिश करता है कि अपनी कमजोरियों को कैसे दूर किया जाए और आंतरिक शक्ति कैसे विकसित की जाए। इसके द्वारा प्रतिपादित आदर्शों पर खरा उतरने और अपने जीवन में परिणामी पुनः समायोजन लाने की कोशिश तो बिल्कुल भी नहीं की जाती है। हम परंपरा, अधिकार, झुंड वृत्ति और समूह मानसिकता की आवाज को टटोलते हैं। उपनिषद सिखाते हैं कि सभी बाहरी ऊर्जाओं को वश में करके और दर्द और खुशी, घृणा और आकर्षण, सफलता और विफलता आदि जैसे विपरीत युग्मों के साथ समभाव में रहकर असामंजस्य के बीच देवत्व के साथ सद्भाव कैसे प्राप्त किया जाए। आज हमारे सामने जो समस्या है वह यह है कि जब दुनिया शारीरिक रूप से करीब आ रही है, मानसिक और भावनात्मक रूप से दूर हो रही है। इसलिए दुनिया भर में सभी संघर्ष, हिंसा, विनाश और क्षति होती है। इसलिए, एक वैश्विक

दृष्टि विकसित करने और सार्वभौमिक भाईचारा लाने के लिए मानवीय मानसिकता में सामंजस्य और सुधार की तत्काल आवश्यकता है। हालाँकि, उपनिषदों की आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि समय के इस अत्याचार का अपवाद है। बाद की वैज्ञानिक प्रगति ने न केवल उनके सत्य मूल्य को प्रभावित किया है, बल्कि इसके विपरीत, केवल उनकी अंतर्दृष्टि के तर्कसंगत आधार को प्रकट करने और उनकी आध्यात्मिक अपील को बढ़ाने में मदद की है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि ये अंतर्दृष्टि अनुभव के एक अलग क्षेत्र, अर्थात् मनुष्य के आंतरिक जीवन की दुनिया में समान रूप से वैज्ञानिक जांच के उत्पाद हैं। सारा विज्ञान एकता की खोज है। उपनिषदों ने आत्मा में इस एकता की खोज कीय इसने जांच के इस क्षेत्र के लिए प्रासंगिक अपनी पद्धति का पालन किया। लेकिन इसने अपने निष्कर्षों को उस समय उपलब्ध सकारात्मक ज्ञान के आधार पर दर्शाया। हाल की शताब्दियों में इस ज्ञान को आधुनिक विज्ञान द्वारा मौलिक रूप से और व्यापक रूप से उन्नत किया गया है, जिसका उपनिषदों पर प्रभाव, हालाँकि, सबसे अच्छा रहा है। उपनिषद आधुनिक विज्ञान में और अधिक मौलिक प्रगति की आशा करते हैं और उसका स्वागत करते हैं, जिसके द्वारा अनेक में से एक की आध्यात्मिक दृष्टि को सकारात्मक वैज्ञानिक ज्ञान द्वारा पुष्ट किया जा सकता है, ताकि विज्ञान की आध्यात्मिकता और धर्म की आध्यात्मिकता सभी को उर्वर बनाने के लिए एक संयुक्त धारा के रूप में प्रवाहित हो सके। इस प्रकार मानव जीवन के पहलू उपनिषद एक धार्मिक और दार्शनिक परंपरा दोनों हैं।

धार्मिक परंपरा के रूप में, यह आंतरिक दुनिया की सच्चाइयों की खोज करता है, और दूसरों द्वारा उसी खोज को बढ़ावा देता है। दार्शनिक परंपरा के रूप में, यह आंतरिक दुनिया के इस विज्ञान को बाहरी दुनिया के अन्य विज्ञानों के साथ संश्लेषित करता है। कुल वास्तविकता की एक एकीकृत दृष्टि प्रस्तुत करता है, और मानव जीवन और चरित्र को विश्वास और दृष्टिकोण की गहराई के साथ-साथ दृष्टिकोण की गहराई प्रदान करता है।

उपनिषद अपेक्षाकृत स्पष्ट और प्रत्यक्ष हैं। वे विचारों और विश्वासों की किसी जटिल प्रणाली का निर्माण नहीं करते हैं। वे दुनिया की कोई विस्तृत या अजीब या कठिन तस्वीर नहीं बनाते। उपनिषद काफी हद तक यूनानी

दार्शनिक सुकरात के समान हैं, जिन्होंने पश्चिमी तर्क की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाई थी। उनके जीवन के बारे में हमें जो बताया गया है, उससे पता चलता है कि वह कुछ हद तक एक रहस्यवादी व्यक्ति थे, जो अपनी ट्रान्स-जैसी मानसिक तल्लीनता और सहनशक्ति की असाधारण शक्तियों के लिए जाने जाते थे। जैसा कि उन्होंने कहा: अपरीक्षित जीवन जीने लायक नहीं है। 'उपनिषदों के साथ भी ऐसा ही है। उनके चारों ओर रहस्यवाद प्रचुर मात्रा में था और उन्होंने बाकी सब चीजों के साथ-साथ इसका भी हिसाब लिया। परन्तु उन्हें मानसिक शक्ति के रहस्यमय विस्तार से कोई सरोकार नहीं है। उनका मूल तत्व दर्शनशास्त्र का शुद्ध ज्ञान है। यहां, जो स्पष्ट रूप से विचार या पूछताछ पहलू पर है: चिंतनशील तर्क पर। उपनिषद इस उद्देश्य के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं, क्योंकि वे चेतना के विविध और विरोधाभासी रूपों को एक साथ लाने का प्रयास करते हैं और मानवता की मूल अवधारणाओं पर जोर देते हैं जो न तो प्राचीन हैं और न ही आधुनिक, जो न तो पूर्व और न ही पश्चिम से संबंधित हैं, बल्कि शाश्वत और सार्वभौमिक हैं।

**निष्कर्ष**—उपनिषद अन्तःमन को पढ़ने का एक प्रभावशाली माध्यम हैं। उपनिषद एकमात्र पवित्र पुस्तकें हैं जो विशेष रूप से आवश्यक आध्यात्मिक सत्य की खोज और मनुष्य को, पंथ और नस्ल से परे, अपने जीवन में उनकी प्राप्ति के लिए प्रेरित करती हैं। आधुनिक दुनिया गतिशील और वैज्ञानिक है, और सब कुछ तर्क की कसौटी पर आधारित है। प्राचीन काल की तुलना में मानव की समझ अधिक तर्कसंगत है। धार्मिक बहुलवाद और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के समकालीन युग में हमें अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए कुछ बेहतर करना चाहिए। उपनिषद ज्ञान, रहस्योद्घाटन और तर्क का अथाह भंडार हैं; और समझने और लागू करने में आसान है। आधुनिक दुनिया अपनी बेहतरी के लिए अधिक तर्कसंगत तरीकों और क्रिया की मांग करती है क्योंकि सभी एक-दूसरे पर निर्भर हैं, और उपनिषद इसके योग्य हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर  
जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## संदर्भ सूची

- Wood Ananda 2010, The Upanishads---An Introduction.
- Wood Ananda (2009), From the Upanishads, Mumbai: Zen Publication.
- Wood Ananda (2009), Interpreting the Upanishads, Mumbai: Zen Publication.
- Deussen Paul (1908), The Philosophy of Upanishads, Edinburgh: T&T Clarke.
- Complete Works of Vivekananda---1-9 vol.
- Muller F. Max (1886), The Upanishads, London: Clarendon Press.



रूपक वर्मा

## भिक्षावृत्ति - एक सामाजिक तथ्य : केस स्टडी

### सार-संक्षेप

भिक्षावृत्ति एक प्राचीन पद्धति है जो समाज में गरीबी और असमानता के साथ संबंधित है, जिसमें लोग आर्थिक कारणों के कारण धार्मिक अथवा मानसिक तरीकों से भिक्षावृत्ति में प्रवेश करते हैं। यह विश्लेषण सामाजिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे हम समाज में गरीबी और सामाजिक असमानता के कारणों को समझ सकते हैं, और समाज में समानता और न्याय की दिशा में कदम उठा सकते हैं। इस समीक्षा में हम भिक्षावृत्ति के सामाजिक क्षेत्रीय पहलुओं, इसके प्रभावों, और समाज में उसके अवसरों को विश्लेषित करेंगे। इसके अलावा, हम भिक्षावृत्ति के संबंध में धर्म, सामाजिक विशेषताएँ, और आर्थिक एवं मानसिक परिप्रेक्ष्य का भी विश्लेषण करेंगे।

### मुख्य-शब्द

भिक्षावृत्ति, सामाजिक घटना, शोषण, मानसिक अस्वस्थता, धार्मिक भिक्षावृत्ति

### प्रस्तावना

किसी भी स्थिति और परिस्थिति में किसी भी समाज के लिए भीख माँगना एक अभिशाप है। यह व्यक्तिगत संगठन का एक रूप है क्योंकि यह व्यक्ति की सामाजिक परिवेश के साथ खुद को समायोजित करने में विफलता का संकेत देता है। भीख माँगना निजी संपत्ति के उद्भव से जुड़ा हुआ है। आदिम समाजों में कोई भिखारी नहीं था और प्राचीन काल में भीख माँगने को एक जंगली कृत्य माना जाता था। हाल के दिनों में भीख माँगना न केवल एक पेशा बन गया है, बल्कि आजीविका का एक संगठित तरीका भी बन गया है। इसलिए भीख माँगने की समस्या

का वैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण करना आवश्यक है। भिक्षावृत्ति को अक्सर एक सामाजिक घटना के रूप में समझा जाता है जो गरीबी, असमानता, सामाजिक बहिष्कार और एक समाज के भीतर संरचनात्मक कमियों जैसे विभिन्न कारकों द्वारा आकार दिया जाता है। इसमें उन व्यक्तियों का अभ्यास शामिल है जो अपनी बुनियादी जरूरतों को स्वतंत्र रूप से पूरा करने में असमर्थता के कारण दूसरों से सहायता या संसाधनों की मांग करते हैं। समाजविज्ञानी सामाजिक स्तरीकरण के व्यापक संदर्भ के भीतर भिक्षावृत्ति की जांच करते हैं, इस बात की जांच करते हैं कि आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक कारक किस प्रकार उन परिस्थितियों के निर्माण और निरंतरता में योगदान देते हैं जो व्यक्तियों को उत्तरजीविता रणनीति के रूप में भीख माँगने के लिए प्रेरित करते हैं। वे भीख माँगने वालों के प्रति नीतियों, दृष्टिकोण और धारणाओं सहित भीख माँगने वालों के प्रति सामाजिक प्रतिक्रियाओं का भी पता लगा सकते हैं, साथ ही भिखारियों और समाज दोनों पर इन प्रतिक्रियाओं के प्रभाव का भी पता लगा सकते हैं। भीख माँगना या भिखारी होने की स्थिति को दर्शाता है। इसमें जीवन या आजीविका के साधन के रूप में दूसरों से धन, भोजन या अन्य प्रकार की सहायता प्राप्त करना शामिल है। भिखारी अक्सर गरीबी, बेघरता, बेरोजगारी, या अन्य सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों से जुड़ा होता है जो लोगों को जनता से मदद माँगने के लिए मजबूर करते हैं। यह शारीरिक या मानसिक विकलांगताओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, धार्मिक विश्वासों, और सांस्कृतिक प्रथाओं जैसे कारकों से भी प्रभावित हो सकता है। भीख माँगना एक

जटिल सामाजिक मुद्दा है जो असमानता, हाशिए पर रहने और बुनियादी संसाधनों और अवसरों तक पहुंच की कमी के व्यापक मुद्दों को दर्शाता है।

### भिक्षावृत्ति की परिभाषा

भिक्षावृत्ति एक सामाजिक बुराई है और स्वस्थ सार्वजनिक जीवन के लिए एक उन्माद है। यह एक सामाजिक समस्या है क्योंकि यह मानव हितों और मूल्यों की प्राप्ति में बाधा है। सामान्य सामाजिक जीवन में भी यह एक बाधा है। किसी भिखारी की स्पष्ट परिभाषा प्रस्तुत करना कठिन है।

भिक्षावृत्ति एक ऐसी प्रथा है जो दूसरों को अनुग्रह प्रदान करने के लिए बाध्य करती है, अक्सर पैसे का एक उपहार, कम या आदान-प्रदान की कोई उम्मीद नहीं होती है। ऐसा करने वाले व्यक्ति को भिखारी कहा जाता है। भिखारी सार्वजनिक स्थानों जैसे परिवहन मार्गों, शहरी पार्कों और बाजारों में काम कर सकते हैं। पैसे के अलावा, वे भोजन, पेय, सिगरेट या अन्य छोटी चीजों के लिए भी पूछ सकते हैं।

### भिक्षावृत्ति के प्रकार

1. **किशोर भिक्षावृत्ति** : ये युवा लोग हैं जो अक्सर गरीबी, पारिवारिक परिस्थितियों, या दूसरों द्वारा शोषण के कारण भीख मांगते हैं। किशोर भिखारियों को शिक्षा और बुनियादी आवश्यकताओं तक पहुंच की कमी हो सकती है, जिससे वे अस्तित्व के लिए भीख मांग सकते हैं।

2. **शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग भिक्षावृत्ति** : इस श्रेणी में शारीरिक विकलांगता या मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े ऐसे व्यक्ति शामिल हैं जो आजीविका के साधन के रूप में भीख मांगते हैं। उन्हें रोजगार खोजने या सहायक सेवाओं तक पहुंचने में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, उन्हें भीख मांगने की ओर धकेल सकता है।

3. **रोगग्रस्त भिक्षावृत्ति** : ये ऐसे व्यक्ति हैं जो विभिन्न स्वास्थ्य स्थितियों से पीड़ित होते हैं, जैसे त्वचा रोग, विकलांगता, या पुरानी बीमारियाँ, जो काम करने और कमाने की उनकी क्षमता को बाधित करते हैं। भीख माँगना उनके लिए अपनी स्वास्थ्य चुनौतियों का सामना करने का एक तरीका बन जाता है।

4. **धार्मिक भिक्षावृत्ति** : ऐसे लोग हैं जो अपने धार्मिक विश्वासों या प्रथाओं के भाग के रूप में भीख

माँगते हैं। कुछ संस्कृतियों में, धार्मिक भिखारियों को दान देना एक पुण्य कार्य माना जाता है, और ये लोग जीविका के लिए दान पर निर्भर करते हैं।

5. **योग्य मृत भिक्षावृत्ति** : इस श्रेणी में वे लोग शामिल हैं जो शारीरिक रूप से काम करने में सक्षम हैं लेकिन रोजगार के अवसरों की कमी, लत के मुद्दे, या व्यक्तिगत परिस्थितियों जैसे विभिन्न कारणों से भीख माँगने का विकल्प चुनते हैं।

6. **वृद्ध और दुर्बल भिक्षावृत्ति** : वृद्ध व्यक्ति या जो शारीरिक रूप से कमजोर हैं और काम करने में असमर्थ हैं वे अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए आखिरी सहारा के रूप में भीख माँग सकते हैं। उन्हें सामाजिक सहायता या कल्याणकारी सेवाओं तक पहुंच की कमी हो सकती है।

7. **आकस्मिक भिक्षावृत्ति** : ये ऐसे व्यक्ति हैं जो अस्थायी रूप से ठहराव व्यवस्था के रूप में भीख मांगते हैं जब तक कि वे रोजगार प्राप्त कर सकें या आय के वैकल्पिक स्रोत प्राप्त कर सकें। आकस्मिक भिखारी वित्तीय संकट या अस्थिरता के समय भीख मांग सकते हैं।

8. **सामुदायिक/सांस्कृतिक भिक्षावृत्ति** : कुछ समुदाय या जाति समूह भीख माँगने को पारंपरिक या वंशानुगत पेशा मानते हैं। इन लोगों को शायद ऐसी संस्कृति में पाला गया हो, जहां भीख माँगने की प्रथा सामाजिक रूप से स्वीकार की गई है और पीढ़ियों से चली आ रही है।

### शोध - उद्देश्य

विविध जीवन स्थितियों में भिक्षावृत्ति के कारणों का तुलनात्मक विश्लेषण करना।

### शोध- प्रश्न

विभिन्न जीवन - स्थितियों में भीख माँगने के कारण का तुलनात्मक रूप से विश्लेषण क्या है?

### साहित्यिक- समीक्षा

सिम्पसन भिखारियों के इतिहास और संस्कृति के बारे में बात करते हैं और वे मदद के लिए गीत गाते हैं। सिम्पसन ने पुरानी कहानियों, कविताओं और परंपराओं को यह जानने के लिए देखा कि भीख माँगने का पेशा कैसे बन गया और लोगों ने अतीत में भिखारियों को कैसे देखा। उन्होंने पाया कि भिखारी केवल गरीब लोगों की मदद नहीं चाहते थे, वे एक समूह का हिस्सा थे जिसमें विभिन्न प्रकार के घुमक्कड़ लोग जैसे कलाकार, स्त्री और विद्वान

शामिल थे। इन भिखारियों के पास बताने के लिए दुखद और हास्य दोनों कहानियां थीं, और उनके गीत उनके जीवन में कठिनाइयों और हास्य दोनों को प्रतिबिंबित करते थे। सिम्पसन का लेख हमें यह समझने में मदद करता है कि अतीत में भीख मांगने और भीख मांगने के गीत कैसे देखे गए थे, हमें दर्शाता है कि इन परंपराओं के लिए केवल पैसे की मांग करने की तुलना में अधिक है। उनका शोध हमें भिखारियों के जीवन और अनुभवों पर गहराई से विचार करता है और कैसे उनके गीत उनकी संस्कृति का हिस्सा थे (सिम्पसन, 1928)।

ग्रामीण भारत में भीख मांगना गरीबी, आर्थिक असुरक्षा, खराब स्वास्थ्य और बुढ़ापे के कारण एक जीवित रणनीति के रूप में देखा जाता है। यह काम या संस्थागत परंपरा से बचने का जानबूझकर किया गया कृत्य नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब भूमिहीन परिवारों के लिए भीख मांगना आवश्यक हो सकता है ताकि भोजन और नकद कठिनाइयों का बेहतर जवाब मिल सके। भीख मांगने के लिए छोटी यात्रा ग्रामीण पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश में आम है। वे धन की कमी, सामाजिक सुरक्षा प्रणाली और सामाजिक-आर्थिक असमानता से प्रभावित ग्रामीण परिवारों के लिए धन कमाने का एक तरीका है। भारत में भीख मांगने के कारण केवल आलस्य, मद्यपान, नशीले पदार्थों की लत और एक गिरोह द्वारा शोषण, भुखमरी या बेघरता तक सीमित नहीं हैं। अन्य कारणों में वृद्धावस्था, स्वास्थ्य, भोजन की कमी, आश्रितों के लिए श्रमिकों का अनुपात और वैवाहिक स्थिति शामिल हैं। भीख मांगने के लिए प्रवासियों के निर्णयों में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में भिखारी मुख्य रूप से पुरुष प्रवासी हैं, जबकि महिलाएं शहर के कुछ हिस्सों में अपने बच्चों से भीख मांगने वाली अंधे महिलाओं को छोड़कर एकांत में रहती हैं। भीख मांगने को बच्चों और ग्रामीण स्वदेशी महिलाओं और बच्चों सहित प्रवासियों के लिए आजीविका रणनीति के रूप में भी देखा जा सकता है, जो भीख मांगने के लिए पलायन करते हैं। इसे किंग्स्टन, जमैका, ईरान और ब्रिटेन में देखा जा सकता है। ऐसे अध्ययन हैं जो भीख मांगने के संस्थागतकरण को उजागर करते हैं, जहां भिक्षा-दान धार्मिक विश्वास और कर्तव्य की प्रणालियों में निहित होता है (मलिक, 2012)।

लेखक का तर्क है कि भिखारी का एकांत में विश्लेषण

करना भ्रामक और भ्रामक है क्योंकि भीख मांगने को व्यवहार के पैटर्न के रूप में नहीं समझा जा सकता है, केवल भिखारी और दाता के बीच बातचीत की प्रक्रिया के रूप में। लेखक इस बात पर जोर देता है कि यद्यपि भीख मांगना व्यवहार का एक विकृत रूप माना जाता है, फिर भी यह अपराध से अलग है कि इसमें बड़े समाज के सदस्यों की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। लेखक का सुझाव है कि भीख मांगने के व्यवहार का विश्लेषण भिखारी और दाता के बीच बातचीत और उनके संबंधित समूहों की विशेषता वाले मानदंडों और भूमिकाओं को ध्यान में रखना चाहिए (गोरे, 1958)।

निकोलस ब्लॉमली द्वारा एक भिखारी को बस स्टॉप में बदलना इस बात का प्रतीक है कि सार्वजनिक स्थानों के नियामक ढांचे के भीतर गरीबी और बेघरता का अनुभव करने वाले व्यक्तियों को वस्तुओं या तत्वों में बदल दिया गया है। यह विशेष रूप से भीख मांगने और बेघर होने के संबंध में शहरी वातावरण में व्यवहार और गतिविधियों को नियंत्रित करने वाले कुछ कानूनों और विनियमों के अमानवीय प्रभावों को रेखांकित करता है। स्थान के कार्य की अवधारणा शहरी परिदृश्य के भीतर एक विशिष्ट स्थान के उद्देश्य या उपयोग को संदर्भित करती है। वाक्यांश के संदर्भ में, यह सुझाव देता है कि जो लोग हाशिए पर हैं, जैसे कि भिखारियों को माना जाता है और उनके साथ इस आधार पर व्यवहार किया जाता है कि वे सार्वजनिक स्थानों के निर्दिष्ट कार्यों में कैसे फिट या बाधित होते हैं। यह परिप्रेक्ष्य इन स्थानों के भीतर व्यवस्था और नियंत्रण बनाए रखने के लिए व्यवहार और गतिविधियों के विनियमन पर जोर देता है, अक्सर कमजोर आबादी के अधिकारों और गरिमा की कीमत पर। इस स्थान के कार्य की धारणा के साथ एक भिखारी को एक बस स्टॉप में परिवर्तित करने के द्वारा, ब्लॉमली उन तरीकों को रेखांकित करता है जिनमें शहरी शासन और कानूनी ढांचे गरीबी का अनुभव करने वाले व्यक्तियों को शहरी परिदृश्य के भीतर वस्तुओं या बाधाओं की स्थिति में स्थानांतरित कर सकते हैं। यह बिजली की गतिशीलता, सामाजिक असमानताओं और सार्वजनिक स्थानों के विनियमन में निहित नैतिक विचारों और उन स्थानों के इच्छित कार्यों के लिए उनकी कथित उपयोगिता या व्यवधान के आधार पर हाशिए पर पड़े व्यक्तियों के उपचार पर प्रतिबिंबित करता है (ब्लोमले,

2007)।

भिखारियों की भीख मांगने की रणनीतियों की खोज पर किए गए अध्ययन में पाया गया कि भीख मांगने का काम केवल खाना या पैसा मांगने का नहीं है, बल्कि यह एक कौशल है जिसके लिए प्रशिक्षण और अभ्यास की आवश्यकता है। पेशेवर भिखारी मानव भावनाओं को समझने और जनता से समर्थन प्राप्त करने के लिए उनका उपयोग करने में कुशल होते हैं। वे धन कमाने के लिए लक्षित दाता की भावनाओं को भड़काने के लिए विभिन्न भाषाई और मुखर क्षमताओं का उपयोग करते हैं। इन भिखारियों के पास समृद्ध सांस्कृतिक और पारंपरिक ज्ञान है और वे अपनी संवेदनशीलता को इस तरह से उजागर करने में विशेषज्ञ हैं जो सच लगता है। वे धीरे-धीरे लक्षित दाता के पास आते हैं, विनम्रतापूर्वक उनका स्वागत करते हैं, और फिर अपनी संवेदनशीलता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे भीख मांगने वाले नहीं हैं, लेकिन वे उस स्थिति में फंस गए थे जिसने उन्हें कुछ मदद के लिए भीख मांगने के लिए मजबूर किया। इसके अलावा, अध्ययन में पाया गया कि भिखारी दान या वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए विभिन्न रणनीतियों का उपयोग करते हैं, जैसे सहानुभूति की सार्वजनिक भावनाओं का लाभ उठाना, घर-घर भीख मांगने की रणनीतियों का उपयोग करना, और लोगों की धार्मिक भावनाओं का लाभ उठाते हुए गरीबी का पर्दाफाश करना। इन रणनीतियों को भिखारियों द्वारा जनता से समर्थन प्राप्त करने के लिए नियोजित किया जाता है और उन्हें एक कौशल माना जाता है जिसमें प्रशिक्षण और अभ्यास की आवश्यकता होती है। अध्ययन भीख मांगने की रणनीतियों की जटिल गतिशीलता को रेखांकित करता है और आम जनता के साथ अपने दैनिक संवाद में भिखारियों के सामने आने वाली सामाजिक गतिशीलता, प्रेरणा और चुनौतियों के बारे में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है (फरीद एट अल. 2021)।

शहरी भारत में भिखारी एक बढ़ती हुई सामाजिक-आर्थिक समस्या है और अभाव और गरीबी का एक चरम रूप है। यह अक्सर चरम गरीबी और सामाजिक बहिष्कार का संकेत है, और उत्पादकता और आजीविका के स्थायी साधनों की कमी ने कुछ व्यक्तियों को एक अंतिम उपाय के रूप में भीख मांगने के लिए मजबूर कर दिया है। भिखारी बेघरता के साथ जुड़ा हुआ है, क्योंकि बिना

उचित आश्रय के व्यक्ति उत्तरजीविता के लिए भीख मांग सकते हैं। भारत में धन और प्रगति के असमान वितरण के साथ-साथ असंतुलित क्षेत्रीय विकास ने कुछ समूहों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मार्जिनता के आयामों को जन्म दिया है और उन्हें भीख मांगने की ओर धकेल दिया है। भारत में तेजी से हो रहे शहरीकरण और विपणन ने पूंजी का विस्तार बढ़ाया है, जिसके परिणामस्वरूप अमीर और कुलीन वर्ग के हाथों में धन की सांद्रता बढ़ी है। इस प्रक्रिया ने अल्पसंख्यकों, वंचितों और गरीब लोगों को हाशिए पर डाल दिया है और उनका शिकार किया है, जिससे गरीबी बढ़ी है और बाद में भीख मांगती है। भिखारी सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों से भी प्रभावित है। भिखारियों के कुछ समूहों की व्यवहार अभिव्यक्ति, भीख मांगने की प्रकृति और पैटर्न काफी हद तक सामाजिक परिवेश, धर्म और समुदाय मानदंडों से प्रभावित होते हैं, जिनसे वे जुड़े हुए और आते हैं। अपने समूहों के भीतर, वे बंधन की भावना भी बनाए रखते हैं और 'हम महसूस करते हैं' और भिखारियों के अन्य समूहों के साथ मेल नहीं खाना चाहेंगे। कुछ राज्यों या क्षेत्रों के विशेष क्षेत्रों से आने वाले भिखारियों के समूहों में जातीय लक्षण मुख्य रूप से देखे जाते हैं। भारत के प्रमुख महानगरों, जैसे दिल्ली, मुंबई और कोलकाता का भिक्षावृत्ति अधिनियम सार्वजनिक स्थानों पर भीख मांगने को अपराध और दंडनीय अपराध बनाता है। हालांकि, यह योजना स्पष्ट रूप से दंडात्मक और आक्रामक प्रकृति की है और यह गरीब विरोधी कानून के रूप में कार्य करती है जिसका उद्देश्य गरीब और गरीब लोगों के पुनर्वास के बजाय भीख मांगने वालों को खत्म करना है (सरकार, 2007)।

“मदुरई में : मरिलिन क्राईस्टल द्वारा मंदिर भिखारी को एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में चित्रित किया गया है जो लेखक में आत्मनिरीक्षण और प्रतिबिंब को प्रेरित करता है।” मंदिर के पास भिखारी की उपस्थिति दुखों के प्रति व्यक्तिगत प्रतिक्रिया और परोपकार के कृत्यों के आसपास के नैतिक विचारों के बारे में सवाल उठाती है। लेखक दान देने की दिशा में व्यक्तियों द्वारा लिए गए विभिन्न दृष्टिकोणों का वर्णन करता है, जिसमें प्रतिदिन नकद का एक हिस्सा अलग रखना या भीख मांगने को प्रोत्साहित करने के लिए सीधे मना करना शामिल है। भिखारी का सामना करने के लिए लेखक की अपनी प्रतिक्रियाएं

भावनाओं और प्रतिक्रियाओं के मिश्रण को प्रतिबिम्बित करती हैं, उदारता के क्षणों से बचने के लिए अतीत में भाग लेने से और धर्मार्थ कार्यों के प्रभाव के बारे में आत्म-प्रश्न करने के बारे में आत्म-परीक्षण करने से। कथा लेखक के आंतरिक संघर्ष को दर्शाती है क्योंकि वह भिखारी की दुर्दशा और सामाजिक असमानता और पीड़ा के व्यापक मुद्दों पर प्रतिक्रिया देने की जटिलताओं से जूझ रही है। मंदिर भिखारी के चित्रण और परोपकार और करुणा की अवधारणा के साथ लेखक की बातचीत के माध्यम से, कथा पाठकों को सामाजिक अन्याय के समाधान की चुनौतियों के लिए अपने स्वयं के दृष्टिकोण पर विचार करने के लिए आमंत्रित करती है। भिखारी की उपस्थिति एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है जो उदारता, व्यक्तिगत जिम्मेदारी की प्रकृति और असमानता और पीड़ा से भरी दुनिया में मानव आवश्यकता के प्रति प्रतिक्रिया की जटिलताओं पर गहरा प्रतिबिम्ब के लिए कार्य करता है (क्रयसल, 1998)।

चेन्नई कॉर्पोरेशन ने शहर में भिखारियों के पुनर्वास के लिए एक अभियान शुरू किया, उन्हें निदान, उपचार और परामर्श के लिए संक्रामक रोग अस्पताल के एक विशेष वार्ड में ले गया। कुछ केंद्रीय और राज्य स्तरीय परियोजनाओं, जैसे कि पेहचान (बिहार सरकार की पहल) और चाइल्डलाइन (पुणे में) ने भिखारियों के पुनर्वास के लिए आंशिक रूप से पहल को सफलतापूर्वक लागू किया है। स्वाधर और डोरस्टेप स्कूल जैसे गैर-सरकारी संगठनों ने भिखारियों के पुनर्वास के अपने मिशन में चाइल्डलाइन की मदद स्वेच्छा से की है। गुडगांव, एसोसिएशन फॉर इंडिया डेवलपमेंट का एक अध्याय है, जो वंचित बच्चों के लिए शिक्षा पर केंद्रित है। भारत में भ्रष्टाचार एक गंभीर मुद्दा है जो सहायता कार्यक्रमों की प्रभावशीलता को बाधित करता है। आत्मसम्मान और आत्मसम्मान के महत्व पर परामर्श देने वाले भिखारियों को भीख मांगने से मना कर सकते हैं, हालांकि यह एक कठिन काम है। समाज में संरचनात्मक अन्याय को पहचानने और उससे निपटने की आवश्यकता है, और भिखारियों के लिए आजीविका विकल्पों का विस्तार किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (नरेगा) जैसी सरकारी पहलों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया जाना चाहिए। मुंबई में एक अध्ययन से पता

चला है कि कई भिखारी भीख मांगते हैं और कुछ उच्च शिक्षा की योग्यता रखते हैं। भिखारी अक्सर परिवार में व्यसन, मनोरोग बीमारी और परिवार के सदस्यों से खराब रवैये का इतिहास रखते हैं। हैदराबाद में एक अध्ययन में पाया गया कि भारत में 730,000 भिखारी हैं जो प्रति वर्ष 1.8 बिलियन रुपये कमाते हैं, लेकिन यह राशि बिखरी हुई और अव्यवस्थित चैरिटी और सहायता के कारण उनकी स्थिति में सुधार नहीं कर पा रही है। दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क के एक सर्वेक्षण में पिछले दशक में भारत में भिखारियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। भिखारियों की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाना चाहिए ताकि उनकी दुर्दशा को समझा जा सके। अध्ययन से पता चलता है कि निगमों और सरकार को भीख मांगने वालों के पुनर्वास के लिए हाथ मिलाने चाहिए। स्ट्रीट भीख का मुकाबला करने के प्रभावी तरीकों में पुनर्वास केंद्र, मासिक उत्तरजीविता भत्ता, डायवर्ट की गई योजना और इस्लामी स्कूलों के लिए भोजन का प्रावधान शामिल हैं (मस्से एट अल., 2010)।

यह पत्र भिखारियों को देने के कार्य के आसपास की गतिशीलता की एक व्यापक खोज प्रदान करता है, भीख मांगने के मुठभेड़ की जटिलताओं और बारीकियों पर प्रकाश डालता है। एक भिखारी का सामना करते समय व्यक्तियों के दृष्टिकोण, धारणाओं और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में परिवर्तन करके, लेखक इस संदर्भ में देने के सामाजिक, भावनात्मक और नैतिक आयामों में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। अध्ययन प्रभावी रूप से अस्पष्टता और अस्पष्टता को व्यक्त करता है जो अक्सर भिखारियों के साथ बातचीत को चित्रित करता है, जो व्यक्तियों द्वारा अनुभव की गई भावनात्मक उथल-पुथल और अनिश्चितता को उजागर करता है जब फैसला किया जाता है कि क्या देना है या नहीं। पारस्परिकता की धारणा, धन के उपयोग के बारे में चिंता और भिखारियों के प्रति नैतिक जिम्मेदारी के विचार प्रमुख विषय हैं जो विश्लेषण से उभर कर सामने आते हैं, भीख मांगने के संदर्भ में देने की बहुआयामी प्रकृति को रेखांकित करते हैं। इसके अलावा, यह पत्र भीख मांगने की बातचीत के व्यापक सामाजिक निहितार्थों, प्रणालीगत विफलता के मुद्दों, नैतिक जिम्मेदारी और सामान्य मौद्रिक बातचीत के व्यवधान को रेखांकित करता है। देने के कार्य में आर्थिक, सामाजिक और नैतिक विचारों के

बीच परस्पर क्रिया की जांच करके, लेखक उन लोगों के प्रति प्रतिक्रिया देने में शामिल जटिलताओं के बारे में एक सूक्ष्म समझ प्रदान करते हैं। कुल मिलाकर, यह पत्र भिखारियों को देने में निहित चुनौतियों और कश्मकशों के बारे में विचार-उत्तेजित अन्वेषण की पेशकश करता है, जिसमें इस तरह की बातचीत को रेखांकित करने वाले नैतिक पारस्परिकता और जिम्मेदारियों के बारे में गहरी समझ की आवश्यकता पर बल दिया गया है। यह भीख मांगने के मौजूदा साहित्य में मूल्यवान् अंतर्दृष्टि देता है और पाठकों को जरूरतमंदों के प्रति अपने स्वयं के व्यवहार और व्यवहार पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है (मकलनतोष, 2000)।

भिखारियों को दान करने की इच्छा पर लिंग, स्थिति और जातीय समानता के प्रभाव इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि कैसे लिंग भीख मांगने के प्रति व्यक्तियों के व्यवहार और व्यवहार को प्रभावित करता है। शोध के निष्कर्षों से पता चलता है कि भिक्षुओं को देने के मामले में पुरुषों और महिलाओं के बीच दान व्यवहार में उल्लेखनीय अंतर हैं। अध्ययन से पता चलता है कि महिलाएं आम तौर पर साम्राज्ञी की भावनाओं के कारण भिखारियों को दान करने के लिए अधिक इच्छुक होती हैं, जबकि पुरुष अक्सर सामाजिक पहचान और सांस्कृतिक विचारों जैसे बाहरी कारकों से प्रेरित होते हैं। भिक्षुओं के प्रति दान व्यवहार में यह लिंग असमानता इंगित करती है कि पुरुषों और महिलाओं के लिए अवसर का सामना करने पर विशिष्ट प्रेरणा और निर्णय लेने की प्रक्रिया हो सकती है। भीख मांगने के प्रति दृष्टिकोण पर लिंग के प्रभाव को समझना परोपकारी संगठनों और लक्षित धन जुटाने की रणनीतियों को विकसित करने में सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों के लिए आवश्यक है। भिक्षुओं के प्रति दान व्यवहार में लिंग-विशिष्ट अंतर को पहचानते हुए, संगठन पुरुष और महिला दाताओं दोनों को प्रभावी ढंग से अपील करने के लिए अपने आउटरीच प्रयासों को तैयार कर सकते हैं। अध्ययन में भीख मांगने वालों को दान करने की इच्छा पर लिंग के प्रभाव को रेखांकित किया गया है, जिसमें भीख मांगने और बेघर होने से संबंधित मुद्दों को हल करने के लिए धन जुटाने के अभियानों और पहलों को डिजाइन करते समय लिंग संबंधी कारकों पर विचार करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है (बूतोवस्कया

एट अल., 2002)।

### अनुसंधान- क्रियाविधि

यह शोध मुख्य रूप से प्राथमिक डेटा संग्रह पर आधारित है। इसमें समझ हासिल करने के लिए विभिन्न मौजूदा साहित्य भी शामिल हैं। इस अध्ययन ने दिल्ली में डेटा एकत्र करने के लिए साक्षात्कार गाइड का उपयोग किया है। सात प्रतिवादी का साक्षात्कार उद्देश्यपरक नमूने के उपयोग से किया गया है।

### केस स्टडी 1 : दिल्ली में शहरी भिक्षावृत्ति

महानगर दिल्ली में पिछले कुछ वर्षों में शहरी भिखारी में वृद्धि हुई है। इस मामले के अध्ययन में इस घटना में योगदान देने वाले कारकों और शहर के सामाजिक ताने-बाने पर इसके प्रभाव की जांच की गई है।

**आर्थिक विषमताएं :** अमीर और गरीब के बीच व्यापक अंतर के कारण वंचित आबादी में बेघरता और हताशा बढ़ी है।

**मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियां :** महानगरों दिल्ली में भिखारियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मानसिक स्वास्थ्य मुद्दों के साथ संघर्ष करता है, अक्सर उचित स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच की कमी से बढ़ जाता है।

**नशीले पदार्थों का दुरुपयोग :** भिखारियों के बीच नशीले पदार्थों का दुरुपयोग प्रचलित है, जो उनके जीवन की कठोर वास्तविकताओं के लिए एक संघर्षकारी तंत्र के रूप में कार्य करता है। यह गरीबी और लत के चक्र को आगे बढ़ाता है।

**सीमित सामाजिक समर्थन :** मजबूत सामाजिक समर्थन प्रणाली की अनुपस्थिति ने कई व्यक्तियों को बिना किसी सुरक्षा नेट के छोड़ दिया है, उन्हें अस्तित्व के साधन के रूप में भीख मांगने की ओर धकेल दिया है।

### केस स्टडी 2 : गांव में भिक्षावृत्ति

ग्राम औचंदी, एक कृषि समुदाय, भिखारियों से संबंधित अपनी अनूठी चुनौतियों का सामना करता है। इस मामले के अध्ययन में ग्रामीण परिवेश में भिक्षु को प्रभावित करने वाले कारकों की पड़ताल की गई है।

**कृषि संकट :** कृषि क्षेत्र में आर्थिक मंदी ने कई ग्रामीणों को बेरोजगार कर दिया है और आजीविका के वैकल्पिक साधनों के बिना उन्हें भीख मांगने के लिए

मजबूर कर दिया है।

**शिक्षा की कमी :** औचंदी गांव में शिक्षा तक सीमित पहुंच ने गरीबी का चक्र जारी रखा है, जिससे लोगों के लिए भीख मांगने के चक्र से मुक्त होना चुनौतीपूर्ण हो गया है।

**सामाजिक कलंक :** ग्रामीण क्षेत्रों में भिखारियों को अक्सर भेदभाव और सामाजिक कलंक का सामना करना पड़ता है, जिससे उनके लिए समाज में फिर से एकीकरण करना मुश्किल हो जाता है, भले ही वे भीख मांगने से बचने का प्रयास करें।

### केस स्टडी 3 : शहर में बाल भिक्षावृत्ति

शहर नांगलोई बाल भिक्षावृत्ति के प्रचलित मुद्दे से जूझ रहा है। इस मामले का अध्ययन भीख मांगने की गतिविधियों में शामिल बच्चों के मूल कारणों और परिणामों की जांच करता है।

**पारिवारिक अस्थिरता :** अनेक बच्चे भिखारी अस्थिर पारिवारिक पृष्ठभूमि से आते हैं, जो गरीबी, घरेलू हिंसा, या माता-पिता के नशीले पदार्थों के दुरुपयोग की विशेषता है।

**शिक्षा के अवसरों की कमी :** शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण के अवसरों तक सीमित पहुंच बच्चों को आजीविका के वैकल्पिक साधन के रूप में भिखारी की ओर धकेलती है।

**शोषण :** भीख मांगने वाले बच्चों का अक्सर संगठित अपराध समूहों या वयस्कों द्वारा शोषण किया जाता है जो उन्हें भीख मांगने और अपनी कमाई का महत्वपूर्ण हिस्सा लेने के लिए मजबूर करते हैं।

### केस स्टडी 4 : प्राकृतिक आपदाओं के परिणामस्वरूप भीख माँगना

हाल ही में हुई प्राकृतिक आपदा के परिणामस्वरूप समुदाय के लोगों को भीख माँगना पड़ता है। इस मामले का अध्ययन आपदा के बाद और स्थानीय आबादी पर इसके प्रभाव के बारे में बताता है।

**विस्थापन :** प्राकृतिक आपदा ने कई निवासियों को अपने घरों से पलायन करने के लिए मजबूर किया, जिससे विस्थापन और आजीविका का नुकसान हुआ, कुछ को भीख मांगने के लिए धकेल दिया।

**बुनियादी ढांचा नुकसान :** बुनियादी ढांचे के विनाश ने समुदाय की उबरने की क्षमता को बाधित किया, आर्थिक संघर्षों को तेज किया और निवासियों के लिए अपने जीवन का पुनर्निर्माण करना मुश्किल बना दिया।

**मानवीय सहायता चुनौतियाँ :** अपर्याप्त मानवीय सहायता और राहत प्रयासों ने कई निवासियों को बिना उचित समर्थन के छोड़ दिया है, उन्हें उत्तरजीविता के लिए भीख मांगने के लिए मजबूर किया है।

### केस स्टडी 5 : बुजुर्ग भिक्षावृत्ति

सामुदायिक बुजुर्ग में, वृद्ध लोगों द्वारा भीख मांगने का सहारा लेना एक बढ़ती चिंता है। इस केस स्टडी में इस समुदाय के बुजुर्गों के सामने मौजूद अनोखी चुनौतियों का पता चलता है।

**पेंशन और सामाजिक सुरक्षा की कमी :** समुदाय में कई बुजुर्ग व्यक्तियों को पर्याप्त पेंशन या सामाजिक सुरक्षा लाभों तक पहुंच की कमी है, जो उन्हें अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए भीख मांगने पर मजबूर करते हैं।

**स्वास्थ्य समस्याएं :** स्वास्थ्य देखभाल की उच्च लागत और चिकित्सा सेवाओं तक सीमित पहुंच बुजुर्ग आबादी की असुरक्षा में योगदान देते हैं, जिससे कुछ लोगों को चिकित्सा खर्च के लिए भीख मांगने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

**सामाजिक अलगाव :** बुजुर्गों की आबादी अक्सर सामाजिक अलगाव का अनुभव करती है, जिससे उनके लिए अपने समुदायों से समर्थन प्राप्त करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है, जिससे कुछ लोग उत्तरजीविता के लिए भीख मांगने लगते हैं।

### केस स्टडी 6 : शरणार्थियों के बीच भिक्षावृत्ति

मजनों का टीला युद्धग्रस्त क्षेत्रों से विस्थापित व्यक्तियों के लिए एक शरण बन गया है, जिससे भिक्षावृत्ति में वृद्धि हुई है। यह अध्ययन शरणार्थी संदर्भ में भीख मांगने को प्रभावित करने वाले कारकों की जटिल परस्पर क्रिया की जांच करता है।

**मानसिक एवं भावनात्मक चुनौतियाँ :** शरणार्थी अक्सर उनके साथ संघर्ष और विस्थापन का आघात लाते हैं, जिससे मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियाँ पैदा होती हैं जो

भीख मांगने में योगदान दे सकती हैं।

**सीमित रोजगार के अवसर :** भाषा की बाधाएं, विदेशी योग्यताओं की मान्यता की कमी और भेदभाव शरणार्थियों के लिए स्थायी रोजगार खोजने में मुश्किल बना देते हैं, जिससे भीख मांगने की संभावना बढ़ जाती है।

**कानूनी प्रतिबंध :** सख्त आव्रजन नीतियां और कानूनी रोजगार के अवसरों तक सीमित पहुंच कुछ शरणार्थियों को भीख मांगने सहित अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में रहने के लिए मजबूर करती है।

### केस स्टडी 7 : समाज में भिक्षावृत्ति पर लिंग और गतिशीलता

समाज में पुरुष और महिला भिखारियों के प्रचलन में उल्लेखनीय अंतर है। इस मामले के अध्ययन में लिंग गतिशीलता और सामाजिक कारकों का पता चलता है जो भिक्षावृत्ति में योगदान देते हैं।

**लिंग आधारित हिंसा :** समाज में महिला भिखारियों को अक्सर उत्पीड़न और हमले सहित लिंग आधारित हिंसा की उच्च दर का सामना करना पड़ता है, जिससे उनके लिए सुरक्षित भीख मांगना जारी रखना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

**महिलाओं के लिए सीमित रोजगार के अवसर :** सामाजिक मानदंड और भेदभाव महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों को सीमित करता है, कुछ को जीविका के साधन के रूप में धकेलता है।

### निष्कर्ष

केस स्टडी से साफ है कि भीख मांगने का मुद्दा जटिल और बहुआयामी है। हर उदाहरण ने भीख मांगने के पीछे के विभिन्न कारणों को उजागर किया, जैसे कि गरीबी, बेघरता, और बेरोजगारी। यह स्पष्ट है कि एक ही आकार का फल-फूलना भीख मांगने के अंतर्निहित कारणों का प्रभावी ढंग से समाधान नहीं होगा। इसके बजाय, एक समग्र दृष्टिकोण जो इस मुद्दे में योगदान देने वाले सामाजिक-आर्थिक कारकों को संबोधित करता है, आवश्यक है। इसके अलावा, मानसिक स्वास्थ्य और नशे के मुद्दों को दूर करना उन लोगों के लिए दीर्घकालिक समाधान प्रदान करने में महत्वपूर्ण है जो भीख मांगने के लिए मजबूर हैं।

मूल कारणों को समझने और लक्षित हस्तक्षेपों को लागू करने के द्वारा, हम एक ऐसा समाज बनाने की दिशा में काम कर सकते हैं जहां व्यक्तियों को अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए भीख मांगने की जरूरत नहीं है।

भारत में भिक्षावृत्ति के खतरनाक विकास का श्रेय विभिन्न कारकों को दिया जा सकता है:

**1. आर्थिक कारण :** आर्थिक संकट, बेरोजगारी, अप्रतिम नियोजन, गरीबी, भूख और प्रतिकूल आर्थिक स्थितियां लोगों को उत्तरजीविता के साधन के रूप में भीख मांगने की ओर धकेलती हैं।

**2. कृषि व्यवसाय का नुकसान :** ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि रोजगार में गिरावट भूमिहीन व्यक्तियों को शहरी क्षेत्रों में पलायन करना पड़ता है जहां वे वैकल्पिक रोजगार अवसरों की कमी के कारण भीख मांग सकते हैं।

**3. सामाजिक विघटन :** सामाजिक कारक जैसे संयुक्त परिवारों का विघटन, सांस्कृतिक संघर्ष, सामुदायिक संगठन और दोषपूर्ण सामाजिककरण भीख मांगने के प्रचलन में योगदान देते हैं।

**4. धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभाव :** हिंदू धर्म और इस्लाम में धार्मिक विश्वास जो परोपकार और दान देने पर जोर देते हैं, साथ ही भीख मांगने वालों को देने के लिए प्रोत्साहित करने वाले सामाजिक मानदंडों पर भी जोर देते हैं, भीख मांगने की प्रथा को बनाए रखने में भूमिका निभाते हैं।

**5. व्यावसायिक भिखारी :** संगठित गिरोहों और पेशेवर अपहरणकर्ताओं का अस्तित्व जो बच्चों को अमानवीय तरीके से भीख मांगने के लिए मजबूर कर उनका शोषण करते हैं, भारत में भिखारी के विकास में योगदान देता है।

**6. प्रभावी कानूनों और प्रवर्तन का अभाव :** कड़े कानूनों और भिक्षावृत्ति के मुद्दे को हल करने के लिए प्रभावी प्रवर्तन तंत्र का अभाव अभ्यास को कुछ क्षेत्रों में जारी रखने और यहां तक कि फलने-फूलने की अनुमति देता है।

शोधार्थी

समाजशास्त्र विभाग

हरियाणा केन्द्रीय शिवविद्यालय

## संदर्भ सूची

- इकबाल, आर. (2013), बेगिंग : ए ग्रीडिंग मेनिस इन इंडिया, इंटरनेशनल जौराल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन मैनिज्मन्ट एण्ड सोशल साइंस, 2(8), 37-62.
- क्रयसल, एम. (1998), मदुरै : टेम्पल बेगर, द नॉर्थ अमेरिकन रिव्यू, 283 (1), 6-8
- गोरे, एम. एस. (1958), सोसाइटी एण्ड द बेगर, सोसीअलाजिकल बुलेटिन, 7(1), 23-48.
- फरीद, एस., हुसैन, एस. - जाहिद, एम. (2021), अन एक्सप्लोरेशन ऑफ बेगिंग स्तरतेगीस ऑफ बेगगर्स, पाकिस्तान जर्नल ऑफ सोशल रिसर्च, 3(01) 1-10
- ब्लोमले, एन. (2007), हो तो टर्न ए बेगर ईटों ए बस स्टॉप:ला, ट्रॉफिक एण्ड “द फंगक्शन ऑफ ऑफ द प्लेस”, अर्बन स्टडीस, 44(9), 1697-1712
- बूतोवस्कया, एम., दलकोनोव, आई., - सॉल्ट, एफ. (2002), एफफएक्टस ऑफ सेक्स, स्टैटस एण्ड एथनिक सिमिलैरिटी ऑन विलिंगनस तो डोनेट तो बेगगर्स: ए क्वेस्चनेर स्टडी, अँठरोपोलोगी (1962), 40(2), 119-128
- मकलनतोष, आइ., - एरसकिने, ए. (2000), “मनी फॉर नथिंग”? अन्डर्सूटैन्डिंग गइविंग तो बेगगर्स, सोसीअलाजिकल रिसर्च अनलाइन, 5(1), 107-115
- मलिक, एस.,- रॉय,एस. (2012). ए स्टडी ऑन बेगिंग: ए सोशल स्टिग्मा- एन इंडियन पर्सपेक्टिव. जर्नल ऑफ यूमन वैल्यूस, 18(2), 187-199.
- मस्से, द., रफईकुए, ए.,- सीले, जे. (2010), बेगिंग इन रुरल इंडिया एण्ड बांग्लादेश, इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, 64-71
- सिम्पसन, वी.ए. (1928), बेगगर्स एण्ड बेगिंग सॉन्स, द वर्जीनिया कॉर्टली रिव्यू, 4(1), 40-51.
- सरकार,एस. (2007) बेगरी इन अर्बन इंडिया, रेफलेक्टिओनस ऑन डेस्टिटूशन एण्ड एक्सप्लॉइटिओ। इंडियन जर्नल ऑफ सोशल वर्क, 68(4), 531-544



डॉ. सुखराम

## वेदवाक्यों का संगतिकरण : वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में

**वे**दों के सिद्धांत सार्वभौमिक हैं। वेद सार्वभौमिक सत्य, कर्तव्य, सिद्धांतों व आदर्शों का वर्णन करते हैं जो किसी भूखंड विशेष अथवा संप्रदाय विशेष के लिए नहीं है अपितु इस संपूर्ण धरा पर रहने वाले मानवमात्र के लिए है। वेद सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। वेद कहता है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥<sup>1</sup>

अर्थात् - “भाई अपने भाई से द्वेष न करें, बहन अपनी बहन से द्वेष न करें, समान गति से एक-दूसरे का सम्मान करते हुए मिल-जुलकर कर्मों को करें तथा भद्रभाव से संभाषण करें।” वेद ने यह सिद्धांत स्थापित कर दिया किंतु इस वेद वाक्य का आदर्श कहां प्राप्त होता है? यह आदर्श हमें वाल्मीकि रामायण में दृष्टिगोचर होता है।

वेद जिन सिद्धांतों का वर्णन करते हैं रामायण में राम ने उन सिद्धांतों के अनुरूप आदर्श स्थापित किया है। इन्हीं सब तथ्यों के आलोक में इस लेख में रामायण में वर्णित कुछ संदर्भों का वेद वाक्यों के साथ संगतिकरण करने का प्रयास किया है। अर्थात् रामायण के आदर्श वैदिक सिद्धांतों के अनुसार है यह प्रतिपादित किया जा रहा है।

### राजा के कर्तव्य

रामायण में राम ने एक आदर्श राजा के रूप में अपने व्यक्तित्व को स्थापित किया है। राजा का कर्तव्य है कि वह दुष्टों को दंड दे व राष्ट्र में शांति स्थापित करे। जब राक्षसों का आतंक व्याप्त हो गया था उस समय ऋषि विश्वामित्र ने राम जैसे योद्धा के द्वारा उनके विनाश का निश्चय किया। अनेक दुष्ट राक्षसों का वध किया गया।

किंतु जब ताटका जैसी स्त्री राक्षसी के वध का आदेश विश्वामित्र ने राम को दिया तो यह चिंतनीय है कि क्या दुष्ट आचरण करने वाले स्त्री अथवा पुरुष को दंड देने में भेदभाव करना चाहिए? इस तरह की आशंका उत्पन्न होने से पहले ही वाल्मीकि ने निम्न श्लोक में राम को ताटका जैसी दुष्टा स्त्री के वध का आदेश दिया—

न हि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम।

का चातुर्वर्ण्यं हितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना॥<sup>2</sup>

अर्थात् हे नरोत्तम ! तुम्हें ऐसी स्त्री का वध करने में घृणा नहीं होनी चाहिए क्योंकि चारों वर्णों का हितसाधन राजकुमार का कर्तव्य होता है।

विश्वामित्रजी का यह उपदेश सर्वथा उचित और वेदानुकूल है। वेद में राजा के लिए आदेश है—

इन्द्र जहि पुमान्सं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।

विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्सूर्यमुच्चरन्तम्॥<sup>3</sup>

हे राजन् ! पीड़ा देने वाले पुरुष को और छल-कपट से दूसरों का नाश करने वाली स्त्री का विनाश कर दो। उनकी गर्दनों को काटकर उन्हें नष्ट कर दो। ऐसे दुष्ट-स्त्री-पुरुष दूसरे दिन तक जीवित न रहें।

इस वेद मंत्र से स्पष्ट है कि वेद दुष्टता करने वाले पुरुष हो अथवा स्त्री उनमें भेद नहीं करता।

रामायण में अन्य स्थल पर भी यही दंड विधान दृष्टिगोचर होता है। जब लक्ष्मण ने शूर्पनखा के नाक और कान काट डाले इसका वर्णन करते हुए वाल्मीकि कहते हैं—

इत्युक्तो लक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धो रामस्य पश्यतः।

उद्धृत्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः॥<sup>4</sup>

अर्थात् श्रीराम के ऐसा कहने पर बलशाली लक्ष्मण ने क्रुद्ध हो म्यान से तलवार निकालकर राम के देखते-देखते उस राक्षसी के नाक और कान काट डाले।

लक्ष्मण ने यह कार्य श्रीराम के संकेत करने के उपरांत किया।<sup>5</sup>

ऐसे में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या राम ने शूर्पनखा के नाक-कान काट कर कोई अनुचित कार्य किया था? इस प्रश्न के उत्तर में हम कह सकते हैं कि श्रीराम ने उस राक्षसी को जो दण्ड दिया वह उचित एवं शास्त्रसम्मत ही था। महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं-

**स्वजातावृत्तमो दण्ड प्राणुलोम्ये तु मध्यमः।**

**प्रतिलोम्ये वधः पुंसः स्त्रीणां नासादिकर्त्तनम्॥<sup>6</sup>**

यदि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की इच्छा के बिना धींगामस्ती से स्व-वर्ण में विवाह करना चाहें तो उन्हें उत्तम-दण्ड= कठोरतम दण्ड देना चाहिए। यदि वे अपने से हीन वर्ण में अनुलोम विवाह करना चाहें तो मध्यम दण्ड और यदि अपने से उच्चवर्ण में प्रतिलोम विवाह करना चाहें तो पुरुष को वधदण्ड देना चाहिए और स्त्री के नाक-कान काट लेने चाहिए।

शूर्पनखा विधवा थी और पुलस्त्यवंशी रावण की बहन थी। वह शास्त्र मर्यादा के विरुद्ध क्षत्रिय राम से प्रतिलोम विवाह करना चाहती थी। अतः श्रीराम ने उसे जो दण्ड दिया वह सर्वथा उचित ही था।

**राजा रहित राष्ट्र की दुर्दशा का वर्णन**

दशरथ की मृत्यु के उपरान्त अयोध्या राजाविहीन हो गई थी क्योंकि राम, लक्ष्मण वनवास काट रहे हैं और भरत, शत्रुघ्न ननिहाल में है। ऐसे में अयोध्या बिना राजा के अनाथ हो गई। ऋषि वाल्मीकि ने अयोध्याकांड के इक्यानवे सर्ग में अराजकता के दोषों का विस्तृत वर्णन किया है। वाल्मीकि कहते हैं-

**इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव राजा कश्चिद्विधीयताम्।**

**अराजके हि नो राष्ट्रं न विनाशमवाप्नुयात्॥**

अतः इक्ष्वाकुवंशीय किसी पुरुष को आज ही राजा नियुक्त करना चाहिए जिससे सम्राट्-हीन हमारा यह राष्ट्र नष्ट न हो।

**नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः।**

**अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा॥<sup>8</sup>**

सम्राट्-हीन देश में बिजली की चमक सहित महागर्जन करने वाला विद्युन्माली नाम का मेघ अपने दिव्य जल से

पृथिवी को नहीं सींचता।

**नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते।**

**नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशः॥<sup>9</sup>**

अराजक राष्ट्र में कृषक खेतों में बीज नहीं बोते तथा पुत्र पिता के और स्त्री अपने पति के अधीन नहीं रहती अर्थात् सब स्वतन्त्र हो जाते हैं।

**अराजके धनं नास्ति भार्याप्यराजके।**

**इदमत्याहितं चान्यत्कृतः सत्यम राजके॥<sup>10</sup>**

अराजक देश में धन नहीं रहने पाता (क्योंकि चोर डाकू लूट लेते हैं।) स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती हैं और घर में नहीं रहतीं। जब सब ओर भय एवं आतंक का साम्राज्य होता है तब सत्य का व्यवहार कैसे हो सकता है?

**नाराजके जनपदे कारयन्ति सभां।**

**उद्यानानि च रम्याणि हृष्टाः पुण्यगृहाणि च॥<sup>11</sup>**

अराजक देश में शुभ-अशुभ कर्मों के लिए लोग सभा नहीं करते, न रमणीक उद्यान लगवाते (दण्ड-भय न होने के कारण लोग वृक्ष काट डालते हैं।) और न यज्ञशाला आदि बनवाते हैं।

**नाराजके जनपदे यज्ञशीला द्विजातयः।**

**सत्राण्यन्वासते दान्ता ब्राह्मणाः संशितव्रताः॥<sup>12</sup>**

अराजक देश में शान्त, दान्त, व्रती और यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण लोग (विघ्न के भय से) दीर्घ समय तक चलने वाले महायज्ञ भी नहीं करते।

**नाराजके जनपदे महायज्ञेषु यज्वनः।**

**ब्राह्मणा वसुसम्पन्ना विसृजन्त्याप्तदक्षिणा॥<sup>13</sup>**

सम्राट्-हीन राज्य में धन-धान्य से परिपूर्ण लोग भी ऋत्विजों को यथोचित दक्षिणा नहीं देते।

**नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः।**

**उत्सवाश्च समाजाश्च वर्धन्ते राष्ट्रवर्धनाः॥<sup>14</sup>**

अराजक राज्य में नट और नर्तक भी प्रसन्न नहीं रहते तथा राष्ट्रोन्नति के लिए उत्सव या सम्मेलन भी नहीं होते।

**नाराजके जनपदे सिद्धार्था व्यवहारिणः।**

**कथाभिरनुरज्यन्ते कथाशीलाः कथाप्रियैः॥<sup>15</sup>**

नरपति-हीन राज्य में लेन-देन अथवा क्रय-विक्रय करने वालों में विवाद उपस्थित होने पर मुकदमों के निर्णय ठीक नहीं होते। अराजक देश में कथावाचक उत्तम कथाएं कहकर कथा प्रेमियों को संतुष्ट नहीं करते।

इस प्रकार का यह वर्णन 32 श्लोकों में है। इस सम्पूर्ण सर्ग में राजा विहीन राज्य में अराजकता के दोषों

का वर्णन है। यह सर्ग वेद के दो मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या है। वेद में अराजकता के दोषों का कथन निम्न रूप में हुआ है-

**न वर्ष मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभिवर्षति।**

**नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम्॥<sup>16</sup>**

अराजक राष्ट्र में वर्षा नहीं होती, समिति अराजक राज्य को योग्य नहीं समझती। अराजक राष्ट्र शत्रु की तो बात ही क्या मित्र को भी अपने वश में नहीं कर सकता।

यजुर्वेद में अराजक राज्य की इससे भी अधिक स्पष्ट शब्दों में निंदा की गई है-

**यकासको शकुन्तिका हलगिति वञ्चति।**

**शाहन्ति गभे पसो निगलालीति धारका॥<sup>17</sup>**

जिस प्रकार बड़ी चिड़िया के सामने छोटी चिड़िया दबी रहती है उसी प्रकार अराजक देश में प्रजा दबी रहती है जैसे छोटी दरार में मोटी वस्तु घुसेड़ने से वह छिन्न-भिन्न हो जाती है वैसे ही अराजक देश में प्रजा की दशा होती है। अराजक देश में प्रजा का विनाश होता है। अतः अराजक देश प्रजा का घातक होता है।

स्पष्ट है कि वाल्मीकि का उक्त वर्णन वेदानुमोदक ही है।

#### **रामराज्य व वेद**

चौदह वर्ष के वनवास के उपरान्त राम का राज्याभिषेक हुआ। राम के शासन को वर्तमान में भी आदर्श माना जाता है व रामराज्य कहकर आदर्श रूप में स्वीकार किया जाता है। वाल्मीकि ने रामराज्य का वर्णन युद्धकांड के 74वें सर्ग में किया है। वाल्मीकि कहते हैं-

**निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत्।**

**न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते॥<sup>18</sup>**

राज्य भर में चोरों, डाकुओं और लुटेरों का कहीं नाम तक नहीं था। दूसरे के धन को लेने की बात तो दूर रही, कोई छूता तक नहीं था और राम के शासन काल में वृद्ध ने किसी बालक का मृतक संस्कार नहीं किया (अर्थात् बालमृत्यु नहीं होती थी)

श्रीराम के राज्य का यह वर्णन वेद के निम्न वाक्य का आदर्श क्रियारूप में प्रचलित था-

**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥<sup>19</sup>**

प्रभु- प्रदत्त पदार्थों को ही त्यागपूर्वक भोगो। लालच मत करो। सोचो, यह धन किसका है।

साथ ही रामराज्य में अकाल मृत्यु का न होना भी

वेदानुसार ही है। वेद का निम्न आदर्श भी राम-राज्य में साकार रूप में दृष्टिगोचर होता था-

**यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम्।**

**यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूषि कल्पयैषाम्॥<sup>20</sup>**

जैसे दिन अनुक्रम से होते हैं (अर्थात् रात्रि के पश्चात् दिन) जैसे ऋतुएँ एक-दूसरे के पीछे क्रमानुसार आती हैं इसी प्रकार हे भगवन्! आप मनुष्यों के जीवनो का ऐसा निर्माण करो कि जो पीछे आया है वह पहले न मरे। पुत्र पिता से पीछे आया है अतः वह पिता के पश्चात् मरे।

**यज्ञ, संध्योपासना विषयक वेद सम्मत वर्णन**

वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थलों पर याग, संध्योपासना आदि का वर्णन आया है। यह वर्णन भी वेदानुसार ही है।

#### **पुत्रेष्टि याग का वर्णन**

तीन रानियों के होते हुए भी जब दशरथ के संतान नहीं हुई तो दशरथ ने ऋषि ऋष्य शृंग से पुत्रेष्टि यज्ञ का आग्रह किया। तब ऋष्य शृंग कहते हैं-

**इष्टि तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात्।**

**अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः॥<sup>21</sup>**

हे राजन्! मैं आपके लिए अथर्ववेद में कहे हुए मन्त्रों द्वारा विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ कराऊँगा। इसके विधिपूर्वक संपादन होने से आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा।

इस संदर्भ को अथर्ववेद से प्रतिपुष्ट होना चाहिए। अथर्ववेद के निम्न मन्त्र में पुत्रेष्टि का संकेत मिलता है-

**शमीमश्वत्थ श्रारूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।**

**तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि॥<sup>22</sup>**

शमी (छौंकड़) वृक्ष पर जो पीपल उगता है वह पुत्र उत्पन्न करने का साधन है। यह पुत्र प्राप्ति का उत्तम साधन है। वह हम स्त्रियों को देते हैं।

अथर्ववेद में इसी प्रकार के और भी बहुत-से प्रयोग हैं।

#### **सायंप्रातः संध्योपासना**

विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण राक्षसों के विनाश के लिए अनेक स्थानों से विचरते हुए रात्रिकालीन विश्राम हेतु शिवाश्रम में रुके। प्रातःकाल होने पर ऋषि विश्वामित्र बोले-

**कौसल्या सुप्रजा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।**

**उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं देवमाह्निकम्॥**

हे कौसल्यानन्दन! नरशार्दूल राम! प्रातःकाल होने को है, उठो और प्रातः कृत्य (शौच, स्नान, सन्ध्या) आदि कर

डालो।

श्रीराम 'वेदाङ्गतत्त्वज्ञः'<sup>23</sup> वेद को जानने वाले थे। वेद में दोनों समय सन्ध्या करने का विधान है।

**उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।**

**नमो भरन्त एमसि।**<sup>24</sup>

हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! ज्ञानविज्ञान-प्राप्ति के लिए हम प्रतिदिन सायं और प्रातः अपनी बुद्धि और कर्मों से आपको धारण करते हुए, नमस्कार करते हुए आपको प्राप्त होते हैं।

वेदों ने सिद्धांत रूप में जिन कर्तव्य, आचरण आदि का वर्णन किया है उनका आदर्श यदि कहीं मिलता है तो

वह वाल्मीकि रामायण ही है। वाल्मीकि स्वयं ऋषि थे इसलिए वेद प्रतिपादित शिक्षाओं को उन्होंने आदर्श रूप में रामायण के पात्रों में दर्शाया है। इस लेख में कुछ ही स्थल दर्शाए हैं किंतु अनेक स्थल वेदानुमोदक दिखाई देते हैं। पति पत्नी के कर्तव्य, भाई का भाई के प्रति स्नेह, पुत्र के कर्तव्य, परिवार में रहते हुए त्याग की भावना आदि प्रसंग आज भी आदर्श हैं जिनका अनुसार कर वर्तमान समाज अनेक समस्याओं से मुक्ति पा सकता है।

**सहायक आचार्य**

**शिवाजी कॉलेज**

**दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

### संदर्भ सूची

1. अथर्ववेद 3.30.3
2. वाल्मीकि रामायण, बालकांड, 15.18
3. अथर्व. 8। 4। 24
4. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकांड, 12.41
5. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकांड, 12.39
6. याज्ञवल्क्य स्मृ. 2286
7. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 51.06
8. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 51.07
9. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 51.08
10. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 51.09
11. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 51.10
12. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 51.11
13. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 51.12
14. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 51.13
15. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड, 51.14
16. अथर्व. 5।19।15
17. यजु. 23।22
18. वाल्मीकि रामायण, युद्धकांड, 74.06
19. यजु. 40.11
20. अथर्ववेद, 12.02.25
21. बालकांड, 8.4
22. अथर्ववेद 6.11.1
23. बालकाण्ड 1.14
24. ऋ. 1.1.75



विद्वान् मज्जेशः एम्

## कुर्वन्नेवेह कर्माणि इत्यादि मन्त्रे अपूर्वादिविधिविमर्शः

तत्र विधिनाम “अज्ञातार्थज्ञापकोवेदभागोविधिः” इति अर्थसंग्रहे। स च विधिः यादृशं प्रमाणान्तरेण अप्राप्तं भवति तादृशं विधत्ते। तेन च अज्ञातप्रयोजनत्वात् अर्थविधानेन अर्थवत्त्वं विधेः सिद्ध्यति। यथा अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः इति इह विधिअह् मानान्तरेण अप्राप्तं स्वर्गरूपप्रयोजनमुद्दिश्य होमं विधत्ते। तेन च अग्निहोत्रहोमेन स्वर्गं भावयेत् इति वाक्यार्थः सम्पत्स्यते। स च विधिः त्रिविधः इति पूर्वकाण्डे स्थितम्—अपूर्वः, नियमः, परिसंख्या।

तत्र कालत्रयेऽपि कथमपि अप्राप्तस्यप्राप्तिफलकः विधिः अपूर्वविधिः। अर्थात् कथमपि दृष्टारथत्वेन अदृष्टार्थत्वेन वा केनापि प्रकारेण कालत्रयेऽपि कदापि विधिं विना प्राप्तिरहितस्य प्रोक्षणादेः प्रपिफलकः विधिः अपूर्वविधिः इत्यर्थः। यथा व्रीहीन् प्रोक्षति। व्रीहीन् इति द्वितीयश्रुत्या व्रीहीणां संस्कार्यत्वावगमात् प्रोक्षणस्य संस्कार जायते। अत्र व्रीहीणां प्रोक्षणस्य संस्कारकर्मणः विनियोगं विना मानान्तरेण कथमपि प्राप्तिः नास्ति। एवं तत्र अपूर्वविधिः।

नियमविधिः—पक्षे प्राप्तस्य अप्राप्तांशपूरणफलको विधिः नियमविधिः। यथा व्रीहीन् अवहन्ति इति। दर्शपूर्णमासयोः आग्नेयादियागानाम् उत्पत्तौ पुरोडाशद्रव्यं विहितम्। व्रीहीणां विधानन्तु “यदग्नेयः” इत्यादि उत्पत्तिवाक्येन उत्पन्ने यागे यागानुवादेन कृतम्।

उत्पत्तिवाक्यविहितकर्मानुवादेन “व्रीहिभिर्यजेत” इत्यदिवाक्येन व्रीहीणां यागे साक्षात् साधनत्वायोगात् पुरोडाशप्रकृतिद्रव्यत्वेन भागसाधनत्वं पर्यवस्यति। पुरोडाशप्रकृतित्वन्तु व्रीहीणां तण्डुलनिष्पत्तिद्वारकम्।

तण्डुलनिष्पत्तिश्च अन्वयव्यतिरेकाभ्याम् अवहनपूर्विका इति विधिं विना एव तण्डुलनिष्पत्तिकारणस्य प्राप्तिः अस्ति इति कृत्वा तत्प्राप्त्यर्थः अयं विधिर्न, किन्तु यथा आक्षेपात् अवहननस्य प्राप्तिः अस्ति तद्वदेव नखविदलनादीनमपि पक्षे प्राप्तिः वर्तते। तत्प्राप्तौ च अवहननस्य अप्राप्तेः सद्भावात् तदंशपरिपूरणफलको भवति नियमविधिः। “आक्षेप-प्रमाणावतारतारप्रतिबन्धद्वारा अवघाते नियमप्रवृत्तिविषयता-प्रयोजकप्रतीतिः नियमविधेः फलम्।”<sup>1</sup>

अयमेवार्थः अस्यां कारिकायां प्रणीतः –

विधिरत्यन्त अप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति।

तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्येति गीयते।<sup>2</sup>

तृतीयविधिः परिसंख्याविधिः तल्लक्षणमित्थम् – द्वयोः शेषिणोः एकस्य शेषस्य नित्यप्रवृत्तौ शेष्यन्तरस्य निवृत्तिफलकः, एकस्मिन् शेषिणि द्वयोः शेषयोः नित्यप्राप्तौ शेषान्तरस्य निवृत्ति फलको वा विधिः परिसंख्या विधिः।

पञ्चपञ्चनखा भक्ष्याः इति।

अथवा इमामगृभ्णन्नशनामृतस्य इत्यादि। इह अग्निचयने अश्वरशनाग्रहणं गर्दभरशना चेति हयमपि अनुष्ठेयं। तत्र हि अश्वरशना ग्रहणं “इमामगृभ्णन्नशना” मन्त्रः लिङ्गात् एव रशनाग्रहण प्रकाशरूपत्वात् नित्यं प्रप्नोति इति न अश्वस्य रशनाग्रहणप्राप्त्यर्थं परिसंख्याविधिः किन्तु लिङ्गस्याविशेषत्वात् गर्भरशनाग्रहणस्य प्राप्तौ, तन्निवृत्त्यर्थः अयं विधिः।

अत्र किञ्चित् चिन्त्यम् – नियमविधावपि पक्षे प्राप्तस्य अवहनस्य अप्राप्तांशे पूरणे कृते तदवरुद्धत्वात् पाक्षिक-साधनान्तरस्य नखविदलनादेः निवृत्तिः अपि लभ्यते इति

कृत्वा इतरनिवृत्तिफलकत्वाविशेषात् नियमविधेः  
परिसंख्याविधेश्च फलभेदह नास्ति इति न आशङ्कनीयं।

अथवा स्मार्तम् उदाहरणं—

गोधा कूर्मः शशः श्वावित् सल्लकीचेति सप्तमाः।

भक्ष्याः पञ्चनखाः नित्यं मनुराह प्रजापतिः॥<sup>3</sup>

अपि च—

भक्ष्याः पञ्चनखाः संधागोधाकच्छप।

शल्यकाः। शशश्च—॥<sup>4</sup>

इह किञ्चित् अवधेयम्। नियमविधौ नियमः तात्पर्य-  
विषयीभूतः इति कृत्वा शाब्दबोधे नियमो भासते अर्थापत्या  
इतरनिवृत्तिः अवगम्यते। परिसङ्ख्याविधौ तु शाब्दबोधे  
इतरनिवृत्तिः अवगम्यते नियमस्तु अर्थापत्या भासते। एवं  
रूपेणापि उभयोः भेदे विवेकः कर्तुं शक्यते। यथा नखविदलनेन  
तुषविमोकः कृतश्चेत् पुनः तस्यैववस्तुनः अवहननं कर्तुम् न  
शक्यते तुषविमोकरूपकारणेन तण्डुलनिष्पत्त्यात्मकस्य कार्यस्य  
जातत्वात्। परन्तु परिसङ्ख्याविधौ तु अपञ्चनखयुक्तस्य  
प्राणिनः भक्षणे कृतेऽपि पुनरपि पञ्चनखयुक्तः प्राणी भोक्तुं  
शक्यते। तेन च परिसङ्ख्याविधौ पक्षे अप्राप्तिः इति न  
किन्तु नित्यप्राप्तिः।

एवं रूपेण त्रयो विधयो निरूपिताः। तेषां विधिलक्षणानां  
यविधिबोधकप्रत्यययुक्त घटित वाक्येषु समन्वयेन तद्वाक्ये  
को विधिः इति अग्रे विचारोऽनुवर्तते। यद्यपि उपासनादिप्रकरणे  
विधेः द्वितीये क्रमे उत्पत्ति-गुणादिविधयो वर्तन्ते तथापि  
एतद्विधिनां प्रकृतेऽप्रसक्तत्वात् नेह विधियन्ते। सङ्कल्पितं  
तु यत् अपूर्वाणं तु त्रयाणां विधीनां वेदान्तेषु विचारः इति  
तदर्थं यत्नः कृत्यते मया। अपि यानि वाक्यानि पुरुषं प्रति  
सक्षात् प्रवर्तयन्ति तानि इह सङ्गृह्यन्ते यथा—तव्य, तव्यत<sup>5</sup>,  
लोट<sup>6</sup>, विधिलिङ<sup>7</sup> इत्यादि प्रत्यययुक्तपदश्रवणेन इह वाक्ये  
किञ्चित् प्रवर्तनानुकूलव्यपारो बोध्यते। इह बुद्ध्वा पुरुषो  
प्रवर्तते।

पुरुषप्रवर्तनमपि द्विधा भवितुमर्हति— विधिवाक्यैः प्रवर्तनं,  
निषेधवाक्यैश्च निवर्तनम्।

निवर्तनमपि पुरुषनिष्ठा क्रिया दुष्कर्मभ्यश्च निवर्तिका  
तत्वेन च पुण्यसम्पदिका इति कृत्वा अस्मिन् प्रबन्धे निषेध  
वाक्यानि अपि सङ्गृह्य व्याख्यायन्ते —

पुर्वोक्त प्रकरणे वेदविभागे एव विधिः मन्त्र नामधेय  
निषेधः, इत्यादि रूपेण यदुक्तं तत्र निषेधस्यापि वेदविभागत्वात्

कीदृशः निषेधः इति उच्यते।

पुरुषस्य निवर्तकम् वाक्यं निषेधः यथा— न कलञ्जं  
भक्षेत् इत्यादि निषेधवाक्यानां अनर्थहेतुभूतायाः कलञ्जादि  
भक्षणादि क्रियायाः सकक्षात् पुरुषस्य प्रवृत्ति जनकत्वेनैव  
अर्थवत्त्वम् न तु किञ्चित्कर्तव्यता प्रतिपादकत्वेन इति। यथा  
विधिवाक्यानां स्वप्रवर्तकत्वं अन्यथाऽनुपपत्त्या विधेयार्थस्य  
स्वर्गादिरूप — इष्टसाधनत्वं चोदनेन तत्र विधेयार्थे  
पुरुषप्रवृत्तिजनकत्वं तथा निषेधवाक्यानामपिस्वनिवर्तकत्वं  
अन्यथाऽनुपपत्त्या, निषेधस्य पुरुषनिष्ठसाधनत्वं प्रत्यायनेन  
कलञ्जभक्षणादेः पुरुषनिवृत्ति जनकत्वं भवति, एवं रूपेण  
विधिनिषेधयोः तुल्यता अर्थापत्यादिरूपेण दर्शयितुं शक्यते।

सः निषेध प्रकृतप्रबन्ध पर्यालोचनेन त्रिधा वक्तुं शक्यते।

पुरुषार्थः, क्रत्वर्थः, उपासनार्थ

तत्र पुरुषार्थो निषेधः नाम पुरुषं लोकिकार्थाङ्गत्वेन  
निवर्तयति यथा—“मा गृधः कस्यस्विद धनम्”<sup>8</sup> सामान्यतः  
इह अन्यस्य धनविषयकगृधमाकार्षीः इति लोकिकः निषेधः  
प्रतीयते।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेत् शतं समाः।

एवं ते नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥<sup>9</sup>

कुर्वन् निवर्तयन् अर्थात् यानि अग्निहोत्रादीनि कर्माणि  
तानि कुर्वन्नेव जिजिविषेत् शतं संवत्सरान्। यतः पुरुषस्य  
तावदेवायुः। इह कुर्वन्नेव जिजिविषेत् इति न विधिः  
जीवनेच्छायाः रागतः प्राप्तत्वात्। किन्तु यदि जिजिविषेत्  
तर्हि कुर्वन्नेव इति इच्छामनूद्य कर्मकरणं विधीयते। अयं  
विधिः रागिणः गृहस्थस्य विहितः न अन्येषाम्। ब्रह्मचर्ये  
सामर्थ्याभावात्, सन्यासिनस्तु सर्वम् ईश्वरः इति त्यागो विहितः  
पूर्वमन्त्रे।

“अर्थो समर्थो विद्वान् यजेत्”<sup>10</sup> इति श्रुतत्वात्  
धनसम्पन्नस्यैव यागादिषु अधिकारः। प्रथममन्त्रार्थाधिकारिणः  
ज्ञानवतः तु धनाकाङ्क्षानिषेधेन कर्माधिकारनिषेधः उदितः।  
अतः नेह ज्ञानवताम् अधिकारः। इह वाक्ये को विधिः इति  
चेत् इच्छामनूद्य कर्मकरणं विधीयते इति कृत्वा अनुवादत्वात्  
तु न कोऽपि विधिः। जीवनेच्छायाः रागतः प्राप्तत्वात् तस्य  
अविधायकत्वात् न नियमविधिः किन्तु यत् कर्मकरणं विधीयते  
तस्य तु त्रिषु कालेषु अप्राप्तत्वात् इह अपूर्वं विधिः इति  
वक्तुं शक्यते।

शोधच्छात्रः

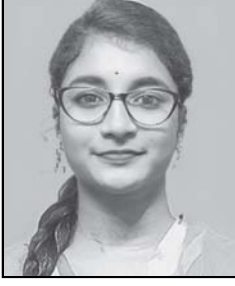
कर्नाटकसंस्कृतविश्वविद्यालयः बेंगलूरु

### शब्द संकेत

1. सिद्धान्तलेशसङ्ग्रहः
2. अर्थसङ्ग्रहः
3. कूर्मपुराणम् 70/53
4. याज्ञवल्क्यस्मृतिः (1.177)
5. तव्यतव्यानीयरः, अष्टाध्यायी 3/1/96
6. लोट्च, अष्टाध्यायी 3/3/162
7. विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाऽधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषुलिङ्, अष्टाध्यायी 3/3/161
8. ईशावास्योपनिषद् 1
9. ईशावास्योपनिषद् 2
10. मीमांसान्यायप्रकाशः

### परिशीलितग्रन्थसूचिः

1. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, स्वामी सत्यानन्दसरस्वती, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली
2. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम् भामती, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली
3. जैमिनीयसूत्रम्, मुरलीधरशर्मा, प्राभाकरीययन्त्रालयम्, काशी
4. जैमिनीयसूत्रम्, श्री सीतारामशर्मा, चौखम्बाविद्याभवन वाराणसी
5. अर्थसंग्रहः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली
6. भारतीयदर्शन चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली



कृ. अंकना खांडा

## अर्थवदिति सूत्रे कौमुदीशेखरदिशा सूत्रत्वविमर्शः

### भूमिका

वेदानां रक्षार्थं व्याकरणाध्ययनम् अत्यावश्यकम्। “मुखं व्याकरणं स्मृतम्”<sup>1</sup> इत्यत्र मुखम् इत्यस्य मुख्यम् इत्यर्थः। मुखम् इव प्रधानत्वात् व्याकरणस्य मुख्यत्वं सिद्धम्। स हि मुख्यः यथा सर्वेभ्यः हस्तादिभ्योऽवयवेभ्यः पूर्वं मुखम् अवलोक्यते। तस्मात् मुखमिव मुख्यः इति शाखादियान्तेन (शाखादिभ्यो यः - पा सु 5-3-103) मुख्यशब्देन अभिधीयते। अर्थात् मनुष्यस्य शरीराङ्गेषु मुखं यथा मुख्यम् अङ्गं भवति तद्वदेव शिक्षाकल्पाद्यङ्गेषु व्याकरणमेव वेदस्य मुख्यम् अङ्गं भवति। इदं च व्याकरणं लौकिक-वैदिक-भेदेन द्विधा व्यभाजि। तत्र लौकिक-वैदिक-शब्दानाम् अन्वाख्यानानां वेदाध्येतव्यानां तदध्यापकानाञ्च, व्याकरणज्ञानम् अत्यावश्यकम्।

### मुख्यप्रतिपाद्यविषयः

‘सुप्तिङन्तं पदम्’ इति सूत्रात् ज्ञायते यत् सुबन्त-तिङन्तभेदेन पदं द्विविधम् इति। सुप्-प्रत्ययाः प्रातिपदिकाद् भवन्तीति ‘ङ्याप्रातिपदिकाद्’ इति सूत्राद् गम्यते। सुपः प्रातिपदिकाद् भवन्ति इत्युक्तम्। अतः किं नाम प्रातिपदिकम् इति जिज्ञासायामाह अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् (1.2.45) इति सूत्रम्।

### पदच्छेदः पदविश्लेषणञ्च :-

षड्विधेषु पाणिनीयसूत्रेषु संज्ञासूत्रमिदम्। सूत्रेणानेन प्रातिपदिकसंज्ञा विधीयते। पदचतुष्टयात्मके सूत्रेऽस्मिन् अर्थवद् इति प्रथमैकवचनान्तं पदम्। अधातुः इति प्रथमैकवचनान्तम्। अप्रत्ययः इत्यपि प्रथमैकवचनान्तम्। प्रातिपदिकम् इत्यपि

तथा। अत्र अर्थवद् अधातुः अप्रत्ययः चेति पदानि संज्ञापदानि। प्रातिपदिकम् इति संज्ञापदम्।

### सूत्रस्य सूत्रत्वविचारः :-

भगवता भाष्यकारेण पतञ्जलिना व्याकरणपदस्य अर्थद्वयं निगदितम्। तत्र एकं सूत्रमिति, अपरञ्च लक्ष्यलक्षणे इति। तयोः सूत्रं व्याकरणमित्येव सिद्धान्तपक्षः वर्तते। ननु सूत्रं किमिति प्रतिपाद्यते। सीव्यते अनेनेति सूत्रम्। शास्त्रीयबर्थप्रतिपादकसंक्षिप्तवाक्यविशेषः इत्यर्थः। षिवु तन्तुसन्ताने इति धातोः ष्टनप्रत्यये<sup>2</sup> कृते सूत्रशब्दः निष्पद्यते। तथा चोक्तम्-

“अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम्।

अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥” इति॥

अर्थः- यदल्पाक्षरम्, असन्दिग्धम्, सारवद्, विश्वतोमुखम्, अस्तोभम्, अनवद्यम्, च भवति तत् सूत्रम् इत्युच्यते इति सूत्रविदः विदुः।

तत्र अल्पाक्षरत्वेनाम प्रतिपिपादयिषितार्थविषयक-प्रतिपत्तिजनकप्रकारान्तरापेक्षया न्यूनवर्णकत्वम्। असन्दिग्धत्वञ्च स्वगतसन्देहनिवर्तकप्रमाणान्तरानपेक्षतत्त्वम्। सारवत्त्वञ्च साक्षात्प्रवर्तकत्वम्। विश्वतोमुखत्वञ्च योगविभागादिभिरनेकार्थबोधकत्वम् इत्यर्थः। विश्वतोमुखमिति इत्यस्य तात्पर्यं वर्तते विविधार्थबोधकत्वम्, अथवा परायणेन पुण्यजनकत्वमिति। अनवद्यत्वं नाम सर्वविधदोषरहितत्वम्। अस्तोभत्वेनाम स्तोभरहितत्वम्। स्तोभत्वञ्च हाऊ हाऊ इति रूपेण मध्ये मध्ये सामवेदे उच्चार्यते वैदिकैः स एव स्तोभ उच्यते, सूत्रे तद्राहित्यबोधनाय अस्तोभमिति, अथवा अनर्थकपदरहितत्वमिति। यथा अस्य चौ इत्यत्र अल्पाक्षत्वमपि

वर्तते, असन्दिग्धत्वमपि विद्यते, विश्वतोमुखत्वमपि अस्ति, अनवद्यत्वमपि अस्ति, सारवत्वमपि विद्यते, विश्वतोमुखत्वमपि वर्तते, अस्तोभत्वमपि विद्यते, तस्मादिदं सूत्रमपि भावः। एवमेवान्यत्रापि समन्वयः बोध्यः।

अथ यदि अल्पाक्षरत्वमित्यस्य अल्पवर्णवत्त्वमित्यर्थः स्यात् तर्हि चुटू इत्यादिषु अल्पवर्णवत्त्वस्य सत्त्वेन सूत्रत्वं सिध्यति। किन्तु “अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्षाम-वाक्यनसाक्षिध्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिः श्रेयसपुरुषाय षड्वायुषर्त्यायुषर्यजुषजातोक्षमहोक्ष-वृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः” इत्यादौ तु अल्पवर्णवत्त्वं नास्ति, ततश्च कथमस्य सूत्रत्वमिति जिज्ञासायामुच्यते, प्रकृते लक्षणे अल्पवर्णवत्त्वमित्यस्यार्थः ‘प्रतिपिपादयिषितार्थविषयकप्रतिपत्ति-जनकप्रकारान्तरापेक्षया न्यूनवर्णकत्वम्’ इति। अर्थात् अभीष्टस्य अर्थस्य प्रतिपादनाय ये प्रकाराः सन्ति, तेषु यत्र सर्वतो भावेन न्यूनवर्णाः सम्भवन्ति, तदेव अल्पाक्षरत्वम्। एवञ्च अचतुर... इत्यत्र यः अर्थः इष्टः सः अन्येन प्रकारेण प्रतिपादयितुमशक्यः तस्मादत्र अल्पाक्षरत्वं विद्यते।

अत्र लक्षणे द्वितीयं पदं विद्यते असन्दिग्धत्वमिति। अस्य च न सन्देहरहितत्वमित्यर्थः। किन्तु स्वगतसन्देह-निवर्तकप्रमाणान्तरानपेक्षत्वम् इत्यर्थः। अर्थात् यत्र सन्देहनिवारणाय अन्यस्य प्रमाणस्य अपेक्षा न भवति तदेव असन्दिग्धपदेन विवक्षितम्। यथा सन्देहः विद्यते प्रत्याहारेषु इतां ग्रहणं भवति नवेति, तत्र उत्तरं विद्यते प्रत्याहारेषु इतां ग्रहणं न भवति, तत्र च अनुनासिक इत्यादौ अच्कार्यस्य अदर्शनमेव। एवमेवान्यत्रापि बोध्यम्।

अत्र सूत्रे तृतीयं दलं विद्यते सारवदिति। अस्य च साक्षात्प्रवर्तकत्वमित्यर्थः।

अत्र लक्षणे चतुर्थं दलं विद्यते विश्वतोमुखमिति। अस्य योगविभागादिभिरनेकार्थबोधकत्वमित्यर्थः। यथा सह सुपा इति सूत्रमस्ति। इदमेकमेव सूत्रमस्ति। किन्तु अस्य योगविभागः क्रियते तत्र सह इति प्रथमः योगः, सुपा इति द्वितीयः योगः। तत्र सहेत्यस्यार्थः भवति सुबन्तं समर्थन सह समाससंज्ञं भवति। तेन अनुव्यचलत, पर्यभूषयत् इत्यादी समासः सिध्यति। द्वितीयस्य सुपा इत्यस्य योगस्यार्थः भवति सुबन्तं सुबन्तेन सह समाससंज्ञं स्यादिति। तेन भूतपूर्वः विस्पष्टपटुः इत्यादी समासः सिध्यति। एवमन्यत्रापि बोध्यम्।

अत्र पञ्चमं दलम् अस्तोभमिति। अस्य च अनर्थकपदरहितत्वमित्यर्थः। यथा प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यमिति

सूत्रं विद्यते। अत्र शङ्का समुदेति यत् प्रकृतसूत्रे नित्यमिति पदं विकल्पनिवृत्त्यर्थं नास्ति, अतः किमर्थं प्रकृतसूत्रे नित्यमिति पदमुपात्तम्। तदोच्यते नित्यमिति किम् हरी एतौ इत्यादावयमेव प्रकृतभावो यथा स्यात्। इकोऽसवर्णे इति ह्रस्वसमुचितो मा भूत। एवमेवान्यत्रापि बोध्यम्। अत्र षष्ठं दलं विद्यते अनवद्यमिति। अस्य च सर्वविधदोषरहितत्वमित्यर्थः। अव्याप्त्यादिदोषरहितत्वमिति यावत्। यथा मन्यकर्मण्यनादरे इति सूत्रं विद्यते। अत्र च सूत्रे अव्याप्तिदोषः, अतिव्याप्तिदोषश्च विद्यते। तद्वारणाय वार्तिकं कृतम् - अप्राणिष्वित्यपनीय नौकाकान्शुकशृगालवर्ज्यष्विति वाच्यमिति। तेन दोषस्य वारणं भवति। तस्मान्न दोष इति भावः। तेन इदं सूत्रं दोषरहितं भवति।

**सूत्रव्याख्यानम् :-**

अर्थः अस्य अस्ति इति अर्थशब्दात् मतुप्प्रत्यये<sup>3</sup> कृते निष्पन्नम् अर्थवत् इति पदम्। न धातुः इति अधातुः इति नञ्तत्पुरुषसमासः। तस्य च धातुभिन्नम् इत्यर्थः। न प्रत्ययः अप्रत्ययः इति नञ्तत्पुरुषः। ‘अप्रत्ययः’ इति पदस्य आवृत्तिः क्रियते। तेन अप्रत्ययः अप्रत्ययः इति लभ्यते। तत्र प्रथमस्य प्रत्ययभिन्नम् इत्यर्थः। द्वितीयस्य च प्रत्ययान्तभिन्नम् इत्यर्थः। शब्दस्वरूपम् इति विशेष्यम् अध्याह्रियते। अधातुरप्रत्ययश्चेति शब्दस्वरूपमस्य विशेषणम्। ततः धातुभिन्नं प्रत्ययभिन्नं प्रत्ययान्तभिन्नम् अर्थवत् शब्दस्वरूपं प्रातिपदिकम् इति सूत्रार्थः लभ्यते। तदुक्तं दीक्षितेन सिद्धान्तकौमुद्यां- “धातुं प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वाऽर्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यात्” इति।

अव्युत्पन्नाः डित्थ-डवित्थादिशब्दाः अस्योदाहरणानि। डित्थादिशब्दः व्यक्तिविशेषं बोधयति इत्यस्मात् कारणात् अर्थवान्, स शब्दः न धातुः, न प्रत्ययः, नापि प्रत्ययान्तः इत्यतः तस्य प्रकृतसूत्रेण प्रातिपदिकसंज्ञा विधीयते। अव्युत्पन्नपक्षे रामादिशब्दाः अपि उदाहरणानि।

**पदकृत्यम् :-**

ननु प्रश्नः जायते यत् किमर्थं सूत्रे ‘अर्थवद्’ इति पदं दत्तम्? अधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् इत्येवास्तु इति चेदुच्यते यत् धनं, वनम् इत्यादौ प्रतिवर्णं प्रातिपदिकसंज्ञा यथा न स्याद् इत्येतदर्थम्। अनर्थकाः धकारादयो वर्णाः न धातवः, न प्रत्ययाः, नापि प्रत्ययान्ताः इति प्रातिपदिकसंज्ञा स्यात्। तेन च प्रतिवर्णं प्रातिपदिकसंज्ञायां सुबुत्पत्तिः स्यात्। संख्याकारकबोधकत्वाभावात् उत्सर्गतः विहितम् एकवचनम्

अवश्यं स्यात्। तत्र हल्वर्णेभ्यः उत्पन्नानां सुप्रत्ययानां 'हलङ्याभ्यो दीर्घात्सुतिस्यपृक्तं हल' इति सूत्रेण लोपेऽपि अज्वर्णाद् उत्पन्नस्य सोः रुत्वं, ततः विसर्गः इति दोषः स्यात्। किञ्च धनम् इत्यत्र नकाराद् उत्पन्नस्य सोः लोपेऽपि पदत्वस्य अक्षतत्वात् 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपः स्यात्।

अधुना अर्थवत्पदस्य अर्थविवक्षाविषये दीक्षितनागेशाचार्ययोः वैमत्यं दृश्यते। दीक्षितमते सूत्रे लौकिकमर्थवत्त्वं वर्तते। अर्थः यस्यास्तीति विग्रहे मत्पुत्र्यये कृते निष्पन्नः अर्थवच्छब्दः। परन्तु नागेशाचार्येण तु अत्र पारिभाषिकम् अर्थवत्त्वम् स्वीकृतम्। पारिभाषिकार्थवत्पदस्य लक्षणं तावत्- 'एतत्संज्ञाफलभूत-विभक्तीतरसमभिव्याहारानपेक्षया लोके अर्थविषयकबोध-जनकत्वमिति'। अस्य सामान्यार्थः- एतत्संज्ञाफलभूत-विभक्तिः = स्वादिविभक्तयः।

तदितर = घटपटादयः।

एतदनपेक्षया लोके अर्थविषयकबोधजनकत्वं यस्य शब्दस्वरूपस्य भवति, तस्यैव अर्थवत्त्वम् गृह्यते। यथा- रामः इति। यथा लोके केवलराममात्रस्य अर्थवत्त्वं नास्ति, राम इति पदेनार्थः वक्तव्यश्चेत् स्वादिविभक्तीनामपेक्षा वर्तते। अतः रामः इति रूपस्य लोके अर्थविषयकबोधजनकत्वे स्वादिविभक्तीकृतस्य घटपटादेः अपेक्षा नास्तीति कृत्वा रामे प्रकृतलक्षणस्य समन्वयः वर्तते। एवञ्च रामः इति पदस्य अर्थवत्त्वं सुतरां सिद्धत्वेन। सम्प्रति लक्षणस्यास्य दलसार्थक्यं प्रदर्श्यते- I) यदि लक्षणेऽस्मिन् एतत्फलभूत इति पदं नोच्यते तर्हि "देवदत्त पत्न्यै" इति समुदायोऽपि 'ति' इति विभक्तिमात्रस्यैव अपेक्षां करोतीति कारणात् तत्रापि प्रातिपदिकसंज्ञापत्तिः स्यात्। तद्वारणाय प्रकृतलक्षणे एतत्संज्ञाफलभूत इति विशेषणं उपात्तम्। II) यदि लक्षणे इतर, अनपेक्षया इति नञ्द्वयं न विनियोज्यते चेत् - 'दधिमधु'-इत्यादिशब्दानां सुब्लक्त्वात् एतत्संज्ञाफल-भूतविभक्तेः किञ्च तदितरस्यापि अनपेक्षया लोके स्वतन्त्रतया अर्थबोधकत्वात्, एतेषां प्रातिपदिकत्वं न स्यात्। अतः तद्वारणाय लक्षणेऽस्मिन् इतर, अनपेक्षया चेति पदद्वयं योक्तव्यम्।

किन्तु तथा सति इमे अव्याप्तिदोषाः भवन्ति-

A) ननु खट्वा, गौरी इत्यादौ स्वादिविभक्तीनामपेक्षया इतरेषां ट्वादिस्त्रीप्रत्ययानामपेक्षा अस्तीति कृत्वा एतेषां स्त्री-प्रत्ययान्तशब्दानामपि प्रातिपदिकत्वं न स्यात्, अर्थवत्त्वाभावात्।

B) पुनः एधाम् चक्रे इत्यत्र एधामित्यस्य अर्थबोधनाय

चक्रे इत्यस्य स्वादिविभक्तीतरस्यापेक्षा अस्तीति कृत्वा एधामित्यस्य प्रातिपदिकत्वं न स्यात्।

C) पुनः 'मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते' इत्यत्र उपदंशपदस्य एतत्संज्ञाफलभूतविभक्तीतरमूलकपदेन सह समभिव्याहारात्वात् उपदंशस्यापि अर्थवत्त्वं न स्यात्। तेन न प्रातिपदिकसंज्ञा। परन्तु सर्वत्र प्रातिपदिकत्वम् इष्टम्।

अतः एतत्संज्ञाफलभूत इत्यस्य स्थाने प्रातिपदिक-संज्ञाप्रयोज्यप्रत्ययेतर इति पदं योजनीयम्। तेन प्रातिपदिकसंज्ञां ये प्रत्ययाः प्रयोजयन्ति तान् विहाय अन्ये ये प्रत्ययाः वर्तन्ते, ते एव इतरपदेन गृह्यन्ते। तेन टाप्, डीप् इत्यादिप्रत्ययास्तु प्रयोज्याः एव भवन्ति इति कृत्वा इतरपदेन तेषां ग्रहणं न। अतः खट्वा, गौरी इत्यादौ दर्शितः दोषः वारितः।

'एधाञ्चक्रे' इत्यत्र दोषवारणाय इतरपदेन प्रकृति-प्रत्ययान्यतरः स्वीक्रियते, न तु प्रकृतिप्रत्ययसमुदायः। तेन चक्रे इति न तु प्रकृति न वा प्रत्ययः इति कृत्वा इतरपदेन तस्य ग्रहणं न। अतः एधाम् चक्रे इत्यत्र प्रदर्शितः दोषः वारितः। अनेनैव रीत्या 'मूलकेनोपदंशं भुङ्क्ते' इत्यत्रापि दोषः वारितः।

अर्थवत्सूत्रात् अर्थवत्पदस्य कृतद्धितसमासाश्चेति सूत्रे अनुवृत्तिकारणात् कृदन्तस्य तद्धितान्तस्यैव प्रातिपदिकसंज्ञा भवति, अत्रापि केवलकृदन्तस्य केवलतद्धितान्तस्यैव अर्थवत्त्वाभावात् कृदन्तेन तद्धितान्तेन सह यदा सुबादिविभक्तिः युज्यते, तदैव अर्थवत्त्वं भवति।

पुनः कृतद्धितसमासाश्चेति सूत्रे शास्त्रीयमर्थवत्त्वं स्वीक्रियते चेत् अर्थवत्पदमेव व्यर्थम्। व्यर्थं सत् ज्ञापयति उभयत्रापि सूत्रे पारिभाषिकार्थवत्त्वमेव ग्राह्यम्। उभयत्रापि सूत्रे यदि पारिभाषिकार्थवत्त्वं न स्वीक्रियते तर्हि पञ्चनावप्रिय इत्यत्र टचः तद्धितत्वात् तद्धितान्तत्वात् च पञ्चनाव इत्यस्य प्रातिपदिकत्वं स्यात्। तद्वारणाय पारिभाषिकार्थवत्त्वमेव नेयम्। तदा प्रियशब्दसमभिव्याहारास्यापेक्षासत्त्वात् अर्थवत्त्वाभावात् केनापि सूत्रेण प्रातिपदिकत्वं न सिद्ध्यति। अन्यथा पञ्चनाव इत्यस्य प्रातिपदिकत्वे पञ्चनाव इत्यस्मात् टाबापत्तिप्रसङ्गः स्यात्। तेन पञ्चनावाप्रिय इति अनिष्टरूपापत्तिः। अतः अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् किञ्च कृतद्धितसमासाश्चेति सूत्रद्वयेऽपि पारिभाषिकार्थवत्त्वमेव ग्रहणीयम्।

ननु सूत्रे 'अधातुः' इति किमर्थम् उपात्तम्? अर्थवदप्रत्ययः प्रातिपदिकम् इत्येव सूत्रमस्तु इति चेन्न। तथा सति अहन् इत्यत्र नकारलोपापत्तिः स्यात्। तथाहि अधातुपदाग्रहणे

प्रत्ययभिन्नस्य प्रत्ययान्तभिन्नस्य अर्थवतः धातोः अपि प्रातिपदिकसंज्ञा स्यादिति सूत्रार्थः लभ्यते। ततः हन्-धातोः अपि प्रातिपदिकसंज्ञापत्तिः। तदानीं सर्वेषामपि धातूनां प्रातिपदिकत्वात् सर्वत्रैव सुपः प्रसक्तिः भवेत्, तेन च तिङ् निरवकाशः स्यात्। ततः निरवकाशत्वेन अपवादत्वात् सुपं प्रबाध्य तिङ् स्यात्। एवं हन्धातोः लङि तिपि शपि शब्लुकि इतश्चेतीकारलोपे अडागमे हल्ङ्यादिलोपे अहन् इति स्थिते प्राग् उत्पन्नायाः प्रातिपदिकसंज्ञायाः अक्षतत्वात् 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति नलोपप्रसक्तिः। तद्वारणाय अधातुग्रहणम्। ननु कार्यकालपक्षे अहन् इत्यत्र नलोपार्थम् अहन् इत्यस्यैव प्रातिपदिकसंज्ञा वक्तव्या, अहन् इत्यत्र च प्रत्ययलक्षणेन लुप्तं तिपमादाय प्रत्ययान्तभिन्नत्वाभावात् प्रातिपदिकसंज्ञा न स्यादिति चेन्न, प्रत्ययलक्षणमाश्रित्य अप्रत्ययान्तः इति पर्युदासो न प्रवर्तते। तत्र प्रमाणं भवति 'न डिसम्बुद्धयोः' इति सूत्रम्। तथाहि - हे राजन् इत्यत्र 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' इति सूत्रेण प्राप्तस्य नलोपस्य निषेधार्थं 'न डिसम्बुद्धयोः' इति सूत्रं भगवता प्रणीतम्। यदि प्रत्ययलक्षणमाश्रित्य अप्रत्ययान्तः इति पर्युदासः प्रवर्तते तर्हि हे राजन् इत्यत्र प्रत्ययलक्षणेन लुप्तं संबुद्धिप्रत्ययमाश्रित्य राजन् इत्यस्य प्रत्ययान्तत्वात् प्रातिपदिकसंज्ञा न स्यात्, ततश्च लोपापत्तिरेव नास्ति इति तद्वारणाय सूत्रप्रणयनम् अनपेक्षितम्। तथापि यतः सूत्रं प्रणयति ततः ज्ञायते प्रत्ययलक्षणमाश्रित्य पर्युदासः न प्रवर्तते।

किञ्च सूत्रे अप्रत्ययः इत्यस्य ग्रहणं किमर्थं कृतं सूत्रकृता। अत्र उत्तरत्वेन निगद्यते यत् अप्रत्यय इत्यस्य

ग्रहणाभावे हरिषु करोषि इत्यत्रापि सुप्सिपोरर्थवत्त्वात् अप्रत्ययान्तत्वाच्च प्रातिपदिकत्वे प्राप्ते तन्निवृत्त्यर्थम् अप्रत्ययः इत्यस्य ग्रहणम्। यद्यपि हरिषु करोषि इत्यत्रापि अर्थवत्त्वम् अप्रत्ययान्तत्वम् अस्ति तथापि सुप्सिपोः प्रत्ययत्वात् एतेषां प्रातिपदिकसंज्ञा न।

अपि च हरिषु करोषि इत्यत्र प्रकृतिप्रत्ययसमुदाययोः प्रत्ययभिन्नत्वात् अर्थवत्त्वाच्च प्रातिपदिकसंज्ञा मा भूत् इति प्रातिपदिकसंज्ञायाः निवृत्त्यर्थम् अप्रत्ययान्त इति प्रत्ययान्तपर्युदासः। एतस्य अभावे प्रातिपदिकसंज्ञायां हरिषु करोषि इत्यादौ औत्सर्गिक सुप्रत्यये अनिष्टापत्तिः स्यात्। तस्मात् सूत्रे अस्मिन् अप्रत्ययान्तः इति पदग्रहणं कृतम्।

परन्तु नागेशमते दीक्षितैः या आवृत्तिः कृता, सा अनपेक्षिता। यतो हि अर्थवत्त्वस्य परिष्कृतलक्षणानुसारेण केवलप्रत्ययस्य प्रातिपदिकसंज्ञा प्राप्ता एव नास्ति। यथा 'सु' इत्यादिप्रत्ययानामर्थवत्त्वं नास्ति, प्रकृतिप्रत्ययसमुदायस्यैव अर्थवत्त्वम्। इतरपदेन प्रकृतिप्रत्ययान्यतरः स्वीकृतमिति कृत्वा एतत्संज्ञाफलभूतविभक्तीतरा या प्रकृतिरस्ति, तस्याः अपेक्षया एव अर्थः बोध्यते। अतः केवलप्रत्ययस्य अर्थवत्त्वाभावात् प्रातिपदिकसंज्ञायाः प्राप्त्यभावात् अप्रत्यय इति निषेधस्य प्रयोजनं नास्तीति शम्।

शोधयित्री

सा.प्रा.- श्रीसत्यसाई-मानव-

अभ्युदयविश्वविद्यालयः मुद्देनहळ्ळी

## संदर्भ सूची

1. पाणिनीयशिक्षा
2. सिविमुच्योष्टेरूच (उणादिसूत्रम् 4. 162) इति सूत्रेणष्टन-प्रत्ययः।
3. "तदस्यास्त्यस्मिन्निमित्तमुत्प" इति सूत्रेणात्रमत्तुप्रत्ययः।

## संदर्भ ग्रन्थ

- **संस्कृतसाहित्य का इतिहास** - बलदेवोपाध्याय, शारदा निकेतन प्रकाशन वाराणसी, 2010
- **अष्टाध्यायी** - ईश्वरचन्द्र, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, प्र. सं. 2004

- **काशिकासूत्रवृत्तिः** - जयादित्य वामन, सम्पा. रघुवीर वेदालङ्कार, चौखम्बा पब्लिशर्स, दिल्ली, प्र.सं. 2006
- **लघुशब्देन्दुशेखरः** - नागेशभट्टः, संपा. मूर्ति, श्रीसत्यनारायणः, राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपतिः, 2008
- **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी (तत्त्वबोधिनी)** - भट्टोजिदीक्षितः, ज्ञानेन्द्रसरस्वती, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1961
- **व्याकरणमहाभाष्यम्**, पतञ्जलिः, हरिनारायणतिवारी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 2020



प्रियांशी

## नाट्यदर्पणकारस-दोषविमर्श

### भूमिका-

‘रस’ न केवल साहित्य में अपितु साहित्येतर संगीत, वास्तु आदि कलाओं में आनन्द के अपर पर्याय के रूप में सहृदय समाज को अभिमत रहा है। रसवादी और ध्वनिवादी आचार्यों के द्वारा यह काव्य का आत्मस्थानीय अपरिहार्य तत्त्व स्वीकार किया गया है। रसप्रतीति के ग्राहक व्यापार के विषय में विद्वानों के एकमत न होने पर भी लोल्लट, शंकुक, आनन्दवर्धन, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, धनिक-धनञ्जय, महिमभट्ट, भोज, अग्निपुराणकार, मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्यों ने रस को सर्वोपरि स्वीकार किया है। कवि एवं काव्य के समस्त व्यापारों का एकमात्र उपादेय रस ही है। रस की अद्वितीयता एवं अलौकिकता के कारण ही यह सर्वस्वीकार्य रहा है।

भरतरस को नाट्य में स्थानित करते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति नानाविध व्यंजनों से संस्कृत अन्न का उपभोग करते हुए रसों का आस्वादन करता है और हर्षादि का अनुभव करता है उसी प्रकार प्रसन्नचित्त सामाजिक विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यञ्जित-वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक (मानसिक) अभिनयों से संयुक्त स्थायी भावों का आस्वादन करते हुए हर्षादि को प्राप्त करते हैं। इसलिए नाट्य के माध्यम से आस्वादित होने के कारण ये नाट्य रस कहलाते हैं। अभिनवगुप्त ने भी भरत उक्त विचार को अपनी प्रतिभा से अधिक सरल कर दिया है। उनके मत में रससमुदाय ही नाट्य है और नाट्य ही रस है। केवल नाटक में ही रस नहीं होता अपितु काव्य में भी नाटक के सदृश प्रतीत होने से रस होता है। काव्यार्थ के विषय में

भावना बल से प्रत्यक्षरूप (साक्षात्कारात्मक) उत्पन्न ज्ञान की नाट्यायमान रसानुभूति होती है- रससमुदायोहिनाट्यम्। नाट्यएवचरसाः। काव्येऽपिनाट्या-यमानएव रसः। काव्यार्थविषयेहिप्रत्यक्षकल्पसंवेदनोदयेरसोदय-इत्युपाध्यायाः।

अतः नाट्य काव्य से इतर नहीं है। भरत और उनकी परम्परा के आचार्यों ने नाट्य और रस को पर्याय के रूप में और कुछ ने नाट्य को रस पर ही प्रतिष्ठित माना है। भरत कहते हैं कि नाट्य में ही रस होते हैं (अष्टौ नाट्ये रसा स्मृताः), अभिनवगुप्त रससमुदाय को नाट्य कहते हैं (रससमुदायो नाट्यम्)। धनञ्जय रूपक के दसों भेदों को रसाश्रित कहते हैं (दशचैव रसाश्रयम्)। इसी परम्परा में रामचन्द्र गुणचन्द्र रसविषयक बहुविध मौलिक मान्यताओं को स्थापित करते हुये भी नाट्य के अपरिहार्यतत्त्व के रूप में रस की सत्ता के पक्ष से किसी भी प्रकार की विमति नहीं रखते।

इस प्रकार नाट्य में होने वाले रस ही काव्य रस हैं और उसके दोष ही रस के भी दोष हैं। नाट्यशास्त्र में स्वतंत्र रूप से रस-दोषों पर प्रकाश नहीं किया गया है। नाट्यशास्त्र में वर्णित काव्य-दोषों के आधार पर ही रस-दोषों को समझने का प्रयास प्रस्तुत में किया गया है।

नाट्यदर्पण आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र विरचित प्रमुख नाट्य विषयक प्रामाणिक और मौलिक ग्रन्थ है। नाट्यदर्पण नाट्यशास्त्रीय प्रमुख-ग्रन्थ होने के साथ-साथ संस्कृत नाट्यशास्त्रीय साहित्य का अद्भुत परिचायक है, जिसमें अनेक काव्य-नाट्य विषयक तत्त्वों पर मौलिक चिन्तन

किया गया है। यह संस्कृत काव्यशास्त्रीय जगत् में विशिष्ट महत्व रखता है। काव्य में रस-निबन्धन के प्रसंग में पूर्व प्राप्त काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुरूप ही काव्य-स्वरूप आचार्यद्वय को सम्मत है। नाट्यदर्पण भी शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर एवं रस को काव्य-प्राण सिद्ध करता है—अर्थ-शब्दवपुःकाव्यरसैःप्राणैर्विसर्पति।

नाट्यदर्पण को प्रमुख रसवादी आचार्यों में स्थान दिया जाना चाहिए क्योंकि नाट्यदर्पण मुख्य रूप से नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ होने पर भी पग-पग पर 'रस' को महत्वपूर्ण एवं प्रमुख विवेच्य के रूप में उल्लिखित करता है। आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र नाट्यदर्पण के तृतीय विवेक में नाट्यवृत्तियों को जननी का स्थान प्रदान करते हुए विस्तार से उनका विवेचन करते हैं—भारती सात्वती कैशिक्यारभटी च वृत्तयः।

रस-भावाभिनयगाश्चतस्रो नाट्यमातरः॥

वृत्तियों के विशेषण रूप में “रस” पद का प्रयोग आचार्यों द्वारा किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में रस-स्वरूप संख्यादि का विचार नाट्यदर्पण में विस्तार से प्राप्त होता है।

#### नाट्यदर्पण का रस-स्वरूप

आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र के मत में “विभाव और व्यभिचारी भावों के द्वारा परिपोष से उत्कर्ष को प्राप्त हुआ स्पष्ट अनुभावों द्वारा निश्चित स्थायी भाव रूप सुख-दुःखात्मक रस है”। इनका रस-सूत्र है—

स्थायी भावः श्रितोत्कर्षो विभावव्यभिचारिभिः।

स्पष्टानुभावानिश्चयः सुखदुःखात्मको रसः॥

यहाँ रस को सुख-दुःखात्मक स्वीकार करना आचार्यों का विशुद्ध विचार है। इनसे पूर्व प्रायः सभी आचार्यों ने रस को केवल सुखात्मक स्वीकार किया है। सुख दुःखत्मकता का यह विभाग आचार्यों ने 'विभाव' को मूल में रख कर किया है। इष्ट विभावादि द्वारा स्वरूप को प्रकाशित करने वाले शृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत और शान्त्येसुखात्मकरस हैं और अनिष्ट विभावादि द्वारा आविर्भूत करुण, रौद्र, बीभत्स और भयानक ये दुःखात्मकरस हैं। आचार्य मानते हैं कि सभी रसों की सुखात्मकता प्रतीति के विरुद्ध होने से अमान्य है—यत्पुनःसर्वरसानांसुख-दुःखात्मकत्वमुच्य-तेतत्प्रतीतिबाधितम्।

नाट्यदर्पण रस को सुख-दुःखोभयात्मक कहता है। रस की सुख-दुःखात्मक का इतिहास यद्यपि अभूतपूर्व

नहीं है परन्तु भरत के पश्चात् अधुना पर्यन्त प्राप्त होने वाली साहित्यिक विचारधारा में रस को केवल सुखात्मक ही माना गया है

#### रसदोषस्वरूप

नाट्यदर्पणकार ने मम्मट, हेमचन्द्र आदि आचार्यों के समान रस-दोष स्वरूप को उद्घाटित नहीं किया है। उनके द्वारा प्रतिपादित रस-महत्त्व से उनकी दोषविषयक अवधारणा को समझा जा सकता है। वे रसदोषों को उद्वेगजनक सिद्ध करना चाहते हैं। नीरस-वाणी की निन्दा करते हुए उन्होंने श्लेषादि अलंकारों के होने पर भी रस रहित होने के कारण काव्य को सहृदय द्वारा अग्राह्य कहा है—

श्लेषालङ्कारभाजोऽपि रसानिस्सन्दर्कशाः।

दुर्भागा इव कामिन्यः प्रीणन्ति न मनो गिरः॥

नाट्यदर्पण रस को काव्य का प्राण मानता है और वही काव्य में श्लाघ्य है। रसहीनता या रस का अभाव उद्वेगजनक (विरसमुद्वेगम्) है और यही दोष है। जिस प्रकार पूर्ण परिपक्व आम्र रस के अभाव में अच्छा नहीं लगता, ठीक उसी प्रकार रस-रहित शब्दार्थ सन्निवेश-मात्र सामाजिक को आह्लादित नहीं करता। अतः कहा जा सकता है कि आचार्यद्वय के अनुसार रसानुपस्थिति ही दोष है।

#### रस-दोषप्रकार

आचार्यद्वय को मुख्यतः पाँच रस-दोष अभिमत हैं—दोषोऽनौचित्यमङ्गौर्ग्य अपोषोऽत्युक्तिरङ्गिभित्॥

##### (1) अनौचित्य

आचार्यद्वय के अनुसार सहृदयों में विचिकित्सा उत्पन्न करने वाला कर्म अनौचित्य है और वह अनौचित्य अनेक प्रकार का है। यथा-काव्य-नाट्य में कहीं प्रतिकूल विभावादि के वर्णन-रूप, कहीं रस का असामयिक विस्तार-वर्णनरूप, असमय में रस का विच्छेद-रूप, कहीं उत्तम, अधम तथा मध्यम प्रकृतियों के स्वभाव का विपरीत रूप में वर्णन, भाषा की अनुपयुक्तता जनित, अनुचित व्यवहार जनित अनौचित्य यथा-नायिका के पादप्रहारादि से नायक के कोप का वर्णन भी अनौचित्य, आयु, वेष, देश, काल, अवस्था तथा व्यवहारादि जनित क्रियाओं का अन्यथा-वर्णन, इसी प्रकार अनुचित रूप से प्रयुक्त यमक श्लेष, चित्र, ऋतु, समुद्रादि, सूर्य तथा चन्द्र के उदयवादि के जो कि रस के अंग नहीं हैं, उनके प्रकर्ष का वर्णन अनौचित्य समझना चाहिए। ये सभी अनौचित्यमूलक दोष हैं।

## (2) अङ्गौर्ग्य

अङ्ग अर्थात् मुख्य रस के पोषक होने से अवयव रूप की उग्रता अर्थात् अत्यन्त विस्तार के कारण उत्कट हो जाना भी दोष है **अङ्गस्य मुख्यरसपोषकतया अवयवभूतस्य और्ग्यं विस्तरेणेत्कटत्वं दोषः।** अर्थात् यदि एक अधीनस्थ रस जो वास्तव में मुख्य रस को विकसित करने के लिए है, का बार-बार वर्णन किया जाता है, तो यह एक दोष बन जाता है। जैसे-कृत्यारावण में जटायु के वध, लक्ष्मण के शक्ति लगने और सीता की विपत्ति को सुनने पर रामचन्द्र के बार-बार करुण विलापादि का आधिक्य।

## (3) अपोष

मुख्य रस का प्रवाह पर न आना अर्थात् रस जो विकास के योग्य है उसका विकसित न होना, अपोष नामक रसदोष है **धारानधिरोहणं अपोषो दोषः।** जैसे-

“बीभत्सा विषया, जुगुप्सिततमः कायो, वयो गत्वरं, प्रायो बन्धुभिरध्वनीव पथिकैर्योगो वियोगावहः। हातव्योऽयमसम्भवाय विरसः संसार इत्यादिकं, सर्वस्यापि हि वाचि चेतसि पुनः कस्यापि पुण्यात्मनः”॥

उपर्युक्त में ‘वाचि’ वाणी में ही होती है मन में नहीं ऐसा कहकर कवि ने विषयों की बीभत्सता आदि की शान्तरस की उत्पत्ति के प्रति मन्दता सूचित की है। अन्यथा यदि इनमें प्रबलता होती तो सबके मन में भी उनकी स्थिति होती इसलिए यहाँ रस का अपरिपोष रूप रसदोष है। जो (1) प्रधान रस का अथवा (2) मुक्तकों में स्वतन्त्र रूप से वर्णित होता है। अङ्गभूत का अपरिपोष दोष नहीं होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि विकास के योग्य प्रमुख रस का उच्च स्तर तक विकसित नहीं करना ही ग्रन्थकार की दृष्टि में अपोष है।

## (4) अत्युक्ति

‘अत्युक्ति’ अर्थात् बार-बार कथन करना। अपने चरम विकास पर पहुँच चुके प्रधान का बार-बार उद्दीपन रूप ‘अत्युक्ति’ नामक रसदोष है **धाराधिरूढस्यापि रसस्य नैरन्तर्येण पुनः पुनः उद्दीप्तिर्दोषो॥** जैसे-कुमारसम्भव में रति के विलाप प्रसङ्गों में बार-बार करुण रस को उद्दीप्त करने का यत्र किया गया है। इसलिए वह दोष है। क्योंकि रस का पूर्ण परिपोष हो जाने के बाद उसको बारम्बार स्पर्श करने से वह बार-बार छुई गई मालती की माला के समान

कान्तिहीन हो जाता है। इसलिए प्रकर्ष प्राप्त रसविशिष्ट कवियों का वाग्विलास थोड़ा ही होता है।

## (5) अङ्गिभित्

‘अङ्गिभित्’ अर्थात् अनेक रसों वाले प्रबन्ध में अवयवभूत अप्रधान रस की अपेक्षा से अग्नी अर्थात् प्रधान अवयवीभूत रस का भेदन अर्थात् विस्मरण अननुसंधान, अङ्गिभित् नामक रस दोष है **बहुरसे प्रबन्धे अवयवभूतरसापेक्षया अङ्गिनोऽवयवि भूतस्य रसस्य ‘भिद्’ अनुसन्धानं दोषः॥** क्योंकि हर समय मुख्य रस का ध्यान रखना ही उसके परिपोषण का प्राण है। उसको भुला देने पर तो उसका परिपोष ही नहीं बनता है। इसलिए प्रधान रस को भुला देना रस का अपरिपोष-जनक ‘अङ्गिभित्’ नामक दोष कहलाता है। जैसे-रत्नावली के चतुर्थ अङ्क में बाभ्रव्य के आ जाने पर नाटक की प्रधान नायिका सागरिका की विस्मृति होने से मुख्य रस की ही विस्मृति हो गई है। अतः उस में ‘अङ्गिभित्’ नामक रसदोष माना जाता है।

उपर्युक्त समस्त दोषों को वास्तव में, अनौचित्य के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है, लेकिन सहृदयों को अनौचित्य के विविध प्रकारों का परिचय कराने के लिए ही उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया है कि कितने प्रकार के अनौचित्य संभव हैं।

## रस दोष-विवेचन में नाट्यदर्पण पर पूर्ववर्ती प्रभाव

संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में ध्वन्यालोक युगान्तरकारी ग्रन्थ माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि रामचन्द्र और गुणचन्द्र रस दोषों की व्याख्या करने में आनन्दवर्धन के ऋणी रहे हैं, अतः उन्हीं के अनुसार अनौचित्य को रसभङ्ग का मुख्य कारण मानकर अनौचित्य का अनेक रूपों में व्याख्यान करते हैं। जिससे कवि और नाटककार को सावधानीपूर्वक बचना चाहिए। आचार्य आनन्दवर्धन ने अनौचित्यमूलक रसदोष का इतना स्पष्ट और ग्राह्य विवरण दिया है कि बाद के आचार्यों मम्मट और हेमचन्द्र को भी ध्वन्यालोक ने पर्याप्त रूप से आकर्षित किया है। इस प्रकार जहाँ तक प्रभाव का सम्बन्ध है इन तीनों कार्यों में उपचार से समानता है और इसलिए यह कहना कठिन है कि नाट्यदर्पण वास्तव में किस का अधिक अनुकरण करता है। परम्परया देखा जाये तो आनन्दवर्धन की अनौचित्यविषयक अवधारणा को मम्मट विस्तार देते हैं और चौदह रसदोषों की चर्चा करते हैं,

हेमचन्द्र मम्मट के दोषविवेचन को अपनी रसदोषविवेचना का आधार बनाते हैं। हेमचन्द्र रामचन्द्र-गुणचन्द्र के गुरु थे। दोनों आचार्य उनसे प्रभावित थे अतः अपनी पूर्ववर्ती विचारधारा से प्रेरणा लेकर अपनी विशिष्ट शैली में मौलिकता के साथ रसदोषों का प्रकाशन किया है।

### रसदोष-विवेचन में नाट्यदर्पण की मौलिकता

नाट्यदर्पण रस को काव्य-प्राण कहता है। रस प्रधान होने से उसका उचित सन्निवेश आचार्य को अभिप्रेत है। रस-दोषों के रूप में आचार्य अनौचित्य, अङ्गैर्ग्य, अपोष, अत्युक्ति और अङ्गिभित् इनका नामोल्लेख करते हैं। नाट्यदर्पण द्वारा कहे गए दोष यद्यपि पाँच हैं किन्तु ग्रन्थकार स्वयं ही इनका अन्तर्भाव अनौचित्य में कर देते हैं और शेष चार को सहृदयों के अनौचित्य व्युत्पादन का उदाहरण मात्र कहते हैं-**अङ्गैर्ग्यादयश्च दोषाः परमार्थतो अनौचित्यान्तःपातिनोऽपिसहृदयानामनौचित्यव्युत्पादनार्थमुदाहरणत्वेनोपात्ताः।** इस प्रकार कह सकते हैं कि नाट्यदर्पण रस दोषों को अनौचित्य का पर्याय मानता है।

औचित्य के इतिहास में आनन्दवर्धन का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। वह औचित्य को रस का रहस्य और अनौचित्य को रस का सबसे बड़ा दोष मानते हैं-

**अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।**

**प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥**

नाट्यदर्पण भी ध्वन्यालोक का अनुसरण करते हुए, अनौचित्य को रस दोष में सर्वप्रथम और प्रमुख रूप में स्वीकार करते हुए हुए कहते हैं और शेष सभी दोषों को इसी में सम्मिलित करते हैं। नाट्यदर्पण आनन्दवर्धन के समान ही औचित्य के विचार को सम्पूर्ण साहित्य-क्षेत्र में व्याप्त करता है। इस प्रकार ध्वन्यालोक का औचित्य सम्बन्धित प्रभाव भी नाट्यदर्पण में देखा जा सकता है। नाट्यदर्पण के रस दोष विवेचन का मूल्यांकन करने पर यह कहा जा सकता है कि आचार्यद्वय ने पूर्णरूपेण ध्वन्यालोक का अनुगमन किया है।

### रसदोष-स्वरूप में मौलिकता

नाट्यदर्पण रसनिबन्धन एवं महत्त्व तो प्रतिपादित करता है। किन्तु रसदोष को परिभाषित या उनके स्वरूप को उपलक्षणेन भी निरूपित नहीं करता। केवल रस को सुदृढ़ करते हुए उसकी निरसता को उद्देगजनक सिद्ध करते हैं-

**न तथार्थशब्दोत्प्रेक्षाः श्लाघ्याः काव्ये यथा रसः।**

### विपाकप्रमप्याग्रं उद्देजयति नीरसम्॥

जिस प्रकार पूर्णपक्व आम सुन्दर दिखता हुआ भी रसरहित होने पर उद्देग उत्पन्न करता है। उसी प्रकार रस रहित काव्य शब्दार्थ से सुशोभित होता हुआ भी उद्देग उत्पन्न करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि नाट्यदर्पण उद्देगजनक विरसता के कारणों को ही रस-दोष मानता है। इनका यह रसदोष स्वरूप व्यापक रूप भी धारण करता है। उद्देगजनकता के अन्तर्गत रस के अनुचित सन्निवेश, शब्दार्थजनित उद्देग सभी का ग्रहण है।

### रसदोष-प्रकार में मौलिकता

नाट्यदर्पण पूर्वप्रचलित समस्त रसदोष विचारों का अध्याहार करते हुए रस दोषों का कथन करता है। आचार्य यद्यपि मुख्यतः पाँच रस दोषों का सोदाहरण उल्लेख करते हैं। फिर स्वयं ही उन्हें अनौचित्यान्तःपातिनः कह दिया है। नाट्यदर्पण का रस दोष प्रकार अधोलिखित रूप से अन्य ग्रन्थों से प्रकारान्तर से भेदरखता है-

नाट्यदर्पण में प्राप्त रस-दोष प्रकार ध्वन्यालोक के अनुरूप हैं। निम्नलिखित समानता स्पष्ट रूप से दोनों ग्रन्थों में बोधगम्य हैं-

(1) प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण।

(2) असमय में रस का विच्छेद और प्रकाशन।

(3) अङ्ग रस का अति-विस्तार।

(4) पूर्ण विकास प्राप्त रस का अनावश्यक विस्तार या पुनः पुनः कथन।

(5) पात्रों का विपरीत रूप से चित्रण जो उनके स्वभाव के अनुरूप नहीं। आनन्दवर्धन के मतानुसार व्यवहार (वृत्ति) का अनौचित्य।

मम्मट संस्कृत के सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यशास्त्रीय विचारक रहे हैं। उनका काव्यप्रकाश संस्कृत काव्यशास्त्र के सबसे प्रामाणिक कार्यों में से एक माना जाता है और इसने बहुत व्यापक लोकप्रियता प्राप्त की है। नाट्यदर्पण के रसदोष विवेचन से ज्ञात होता है कि नाट्यदर्पण काव्यप्रकाश से भी प्रभावित है। यद्यपि नाट्यदर्पण काव्यप्रकाश का स्थान-स्थान पर खण्डन समुपस्थित करता हो, लेकिन यह इसके प्रभाव से मुक्त नहीं नाट्यदर्पण का रसदोष विवेचन काव्यप्रकाश से भी प्रभावित है। मम्मट द्वारा कहे गए व्यभिचारिभाव आदि का स्वशब्दवाच्यत्व रस दोष नाट्यदर्पण के मत में दोष नहीं है। और इसी प्रकार

विभावादि की कष्टकल्पना नामक दोष को भी नाट्यदर्पण सन्दिग्धत्वरूप वाक्यदोष मानता है। आचार्य हेमचन्द्र रामचन्द्र-गुणचन्द्र के गुरु और प्रसिद्ध शास्त्रकार हैं। उनका काव्यानुशासन रस दोषों के स्वरूप एवं प्रकार दोनों की विशद विवेचना करता है, यह पूर्णतः मम्मट से प्रभावित है, नाट्यदर्पण के कतिपय उदाहरण काव्यानुशासन से लिये गये हैं।

### रस दोष परिहार-विवेचन में मौलिकता

नाट्यदर्पण रसदोषों से भी पहले विरुद्ध रसों के विरोध परिहार की व्यवस्था का वर्णन करता है। नाट्य रचना विषयक विशेष बातों के प्रसंग में आचार्य रस के उचित सन्निवेश की चर्चा करते हैं। रस के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व होने से यह वर्णन किए जाने के लिए कवि के गम्भीर ध्यान की अपेक्षा रखता है अर्थात् रस की यथोचित प्रतीति के लिए उचित सन्निवेश आवश्यक है और उचित सन्निवेश के लिए रस के विरोध परिहार का ज्ञान। रसों का विरोध आलम्बनैक्य, आश्रयैक्य और नैरन्तर्य से प्राप्त होता है। नाट्यदर्पण रसों के विरोध, अविरोध अथवा विरोधी रस इनमें से किसी का भी निर्धारण नहीं करता पूर्व प्राप्त परम्परा से ही इनका ग्रहण आचार्यद्वय को अपेक्षित है। रसदोष परिहार को नाट्यदर्पण निम्न प्रकार से निर्धारित करता है-

एक ही आश्रय नायकादि में उसी प्रसङ्ग में सन्निविष्ट विरोधी रसों का विरोध होता है। भिन्न आश्रय एवं भिन्न प्रसङ्ग में नहीं- **एकस्मिन्नाश्रये नायकादौ तस्मिन्नेव प्रक्रमे परस्परविरुद्धयो रसयोर्विरुद्धता, न तु भिन्ने।** ध्वन्यालोक में भी यही विचार विरोधी रस के प्रतिपादनार्थ उपलब्ध होता है। आचार्य का मत है कि जो रस एकाश्रय रूप से विरोधी हो उसे विभिन्नाश्रय कर देना चाहिए, ऐसी स्थिति उसके परिपोष होने पर भी दोष नहीं रहता। यह विरोध दो प्रकार एकाश्रय सन्निविष्ट और एक प्रसंग अर्थात् नैरन्तर्य से सन्निविष्ट। प्रस्तुत का उदाहरण नाट्यदर्पण और ध्वन्यालोक दोनों में अर्जुनचरित से उद्धृत है। इसी प्रकार विरोधी रसों के स्वतंत्र रूप से वर्णित होने पर ही विरोध उपस्थित होता है। दोनों में से किसी एक के स्वतन्त्र और दूसरे के परतन्त्र अथवा दोनों के ही किसी मुख्य रस के अधीन होने पर यह विरोध समाप्त हो जाता है- तथा स्वैरिणोः स्वतन्त्रयोः सतोर्विरुद्धयो रसयोर्विरुद्धता, न तु परतन्त्र स्वतन्त्रयोः, मुख्यस्यायत्तयोर्वा। आनन्दवर्धन भी

प्रधानभूत एक वाक्यार्थ में परस्पर विरोधी दो रसों अथवा भावों का अङ्गभाव प्राप्त होना, दोष नहीं मानते। इसका भी उदाहरण 'क्षिप्तो हस्तवलग्नः' दोनों आचार्यों का समान है।

दोष परिहार वर्णन करते हुए नाट्यदर्पणकार कहते हैं कि एक आश्रय में तुल्यबल रसों का ही विरोध होता है, दुर्बल या प्रबल रस निबन्धन होने पर यह विरोध पर्यवसित हो जाता है। यह विचार भी आनन्दवर्धन द्वारा ध्वन्यालोक में स्पष्टतया प्रकाशित है। इसे भी एक ही उदाहरण से दोनों ग्रन्थ व्याख्यायित करते हैं।

रसों के अग्रिम परिहार नैरन्तर्य जनित विरोध से सम्बन्धित का प्रतिपादन नाट्यदर्पण अविरोधी अन्य रस के व्यवधान होने पर विरोधाभाव के रूप में करता है- एकाश्रययोः स्वैरिणोस्तुल्यशक्त्योर्विरुद्धयोर्योगे नैरन्तर्ये विरोधो न त्वविरुद्धेन रसान्तरेण व्यवधाने। ध्वन्यालोक इसी विचार को एकाश्रय होने में निर्दोष और नैरन्तर्य में विरोधी रस को कवि रसान्तर का व्यवधान करने से व्यञ्जित करता है। जिसे नागानन्द के उदाहरण के माध्यम से बोधगम्य बनाया है।

इस प्रकार नाट्यदर्पण द्वारा चर्चित विरोधाभासी रसों का परिहार भी ध्वन्यालोक पर ही पूर्णतः आश्रित प्रतीत होता है। स्पष्टतः भिन्न स्वरूप वर्णित होने के बाद भी नाट्यदर्पण पर आनन्दवर्धन का प्रभाव है। रस के विरोध परिहार का सम्पूर्ण पूर्वोक्त प्रक्रम उन्हीं पर निर्भर है। उपर्युक्त समस्त विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नाट्यदर्पण ने मूल स्रोतों आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त तथा मम्मट से ही प्रत्यक्ष विचार ग्रहण किए हैं। काव्यानुशासन के रसदोष सम्बन्धित जिन विचारों की नाट्यदर्पण ने आलोचना प्रस्तुत की है, वे विचार भी मूल रूप से आचार्य मम्मट के ही हैं। वे काव्यप्रकाश का ही स्थान-स्थान पर खण्डन समुपस्थित करते हैं। यथा-नाट्यदर्पण काव्यप्रकाश के रसदोष विषयक उस विचार का ग्रहण नहीं करते जिसमें वे हयग्रीव-वर्णन को अङ्ग रस का अति-विस्तार रूप रसदोष कहते हैं। नाट्यदर्पणकार की दृष्टि में वह रसदोष न होकर वृत्तदोष है। नाट्यदर्पण व्याभिचारियों आदि का शब्द से उल्लेख न किए जाने वाले विचार से भी काव्यप्रकाश से सहमत नहीं होता है। इसी प्रकार विभाव और अनुभाव की जिस कष्टप्रतीति को काव्यप्रकाश रसदोष कहता है। नाट्यदर्पण उसे वाक्यदोष दोष के रूप में स्वीकार करता है। लेखकद्वय निर्वेद को

शान्त का स्थायी भाव कहने के लिए स्पष्ट एवं विशेष रूप से मम्मट की आलोचना करते हैं-मम्मटस्तु व्यभिचारिकथनप्रस्तावे निर्वेदस्य शान्तरसं प्रति स्थायितां, 'प्रतिकूल विभावादिपरिग्रहः' इत्यत्र तु तमेव प्रति व्यभिचारितां च ब्रुवाणः स्ववचनविरोधेन प्रतिहत इति। उनके अनुसार मम्मट का आत्म-विरोधाभास है जो वह एक स्थान पर निर्वेद को स्थायीभाव और दूसरे स्थान पर व्याभिचारी के रूप में उल्लिखित करते हैं। उपर्युक्त विचारों की आलोचना से स्पष्टतया एवं सरलतया अनुमान लगाया जा सकता है कि नाट्यदर्पण काव्यप्रकाश को विशेष रूप से सन्दर्भित तो करता है किन्तु अपने मत की प्रकृष्ट स्थापना के लिए। और यदि कहा जाए कि रसदोष एवं परिहार विवेचन में दोनों ग्रन्थों में समानताएँ प्राप्त होती हैं तो वह इसलिए क्योंकि दोनों कार्यों का मूल स्रोत स्पष्ट रूप से ध्वन्यालोक है।

**निष्कर्ष-** नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ-परम्परा में नाट्यदर्पण विशिष्ट प्रकार का विलक्षण ग्रन्थ है। जो भरत के पश्चात् प्राप्त होने वाली नाट्य-परम्परा को भारतीय मूल्यों के अनुरूप नवीन दृष्टि प्रदान करता है। नाट्यदर्पण विविध नाट्य-संकल्पनाओं की मौलिकता के लिए तो विख्यात हैं किन्तु रसदोष सम्बन्धी विचार इसके धूमिल रहे हैं। रस-विघातक तत्त्वों के प्रति विशिष्ट अन्तर्दृष्टि रखते हुए

भी किसी भी नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ में उनके स्वरूप एवं प्रकार का विशिष्ट विवेचन प्राप्त नहीं होता। नाट्यविद्या का आदिम स्रोत नाट्यशास्त्र भी रसदोष-विषय में अधिक स्पष्ट सामग्री प्रदान नहीं करता है। तत्पश्चात् दशरूपक, नाटकलक्षणरत्नकोश, भावप्रकाशन, नाटकपरिभाषा नाटकचन्द्रिका, नाट्यप्रदीप आदि ग्रन्थ विशुद्ध नाट्य प्रतिपादक होने पर भी नाट्यरचना के दोष और विशेषतः रसदोषविषयक अवधारणा के सन्दर्भ में मौन ही साधे हुए हैं। धनिक भी स्थायी भाव के लक्षण में आये हुये "विरुद्धैरविरुद्धैर्भावैर्विच्छिद्यतेनयः" की व्याख्या के प्रसङ्ग में संक्षेप में विरोधी भावों के विरोधपरिहार का स्पर्शमात्र करते हैं। शारदातनय आदि अन्य आचार्य भी विरोधपरिहार का अतिसंक्षेप में ही निर्देश करते हैं, जो अपर्याप्त प्रतीत होता है। अतः नाट्यदर्पण नाट्यशास्त्रीय परम्परा का प्रथम ग्रन्थ कहा जा सकता है, जिसमें रस-दोषों की स्पष्ट अवधारणा के रूप में विस्तार से विवेचन प्राप्त होता है। नाट्यदर्पण के नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों का आधार तो नाट्यशास्त्र ही है। किन्तु नाट्यदर्पण पर रस-दोष विवेचन में प्रत्यक्ष प्रभाव ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश एवं काव्यानुशासन का ही दृष्टिगोचर होता है।

**शोध-छात्रा, संस्कृत-विभाग,  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. काव्यप्रकाश, मम्मट व्या. विश्वेश्वर, सं. नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, 1960.
2. काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सं. वासुदेवलक्ष्मण शास्त्री पनसीकर, मेहरचन्दलक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1986.
3. दशरूपक, धनञ्जय, व्या. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1969.
4. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन व्या. जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2014.
5. नाट्यदर्पण, स्वोपज्ञविवरणभूषित उप्रेति, थानेशचन्द्र (अनु.), परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2012.
6. भावप्रकाशन, शारदातनय व्या. मदनमोहन अग्रवाल, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 1983,
7. रसार्णवसुधाकर, शिङ्गभूपाल व्या. जमुना पाठक, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, 2004,
8. हिन्दी नाट्यदर्पण आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि

(अनु.), हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1990.

#### सहायक ग्रन्थ

1. काणे, पी.वी. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966.
2. चौधरी, सत्यदेव, काव्यशास्त्र के परिदृश्य (वैदिक युग से आधुनिक युग तक), परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली, 1994
3. झा, शम्भुदत्त, काव्यदोषों का उद्भव तथा विकास, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, 1976.
4. डे, एस. के., संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1976.
5. नगेन्द्र (सम्पा.), हिन्दी अभिनवभारती, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1960.
6. Trivedi, K.H., The Natyadarpana of Ramacandra and Gunacandra A Critical study, L.D. Institute of Indology, Ahamadabad, 1966.



दिवाकरः चक्रवर्ती

## उपनिषद्दिशा सृष्टिक्रमविचारः

### भूमिका

वेदान्तदृष्ट्या सृष्टिः किञ्च प्रलयः मानवस्य श्वास-निःश्वासवदस्ति। वस्तुतः सृष्टिः ब्रह्मणःलीलामात्रमस्ति। तत्र एवं जिज्ञासा स्यात् यत्कथम् आनन्दमयात् चेतनात् ब्रह्मणः दुःखमयम् अचेतनजगत् उत्पद्यते? इति चेत् यथा अचेतनात् गोमयात् चेतनाः वृश्चिकाः जायन्ते, यथा वा चेतनात् शरीरात् अचेतनाः केशादयः जायन्ते तद्वत् चेतनात् ब्रह्मणः अचेतनं जगत् उत्पद्यते।

सर्वेषां दर्शनानामिव अद्वैतवेदान्तिनां सृष्टिक्रमः ज्ञातव्यः। अद्वैतवेदान्तमते अज्ञानोपहितात् चैतन्यात् आकाशस्य, ततः वायोः, ततः अग्नेः, ततः आपः, ततश्च पृथिव्याः समुत्पत्तिरभूत्। एतानि सूक्ष्माणि भूतानि व्यवहारासमर्थानि अपञ्चीकृतभूतानि इत्युच्यन्ते। एतेभ्यः अपञ्चीकृतभूतेभ्यः पञ्च स्थूलभूतानि, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, पञ्च वायवः, बुद्धिः, मनश्चेति उत्पद्यन्ते।

अनेकासु उपनिषत्सु सृष्टिक्रमः प्रतिपादितः। तत्र विषयबाहुल्यात् मया तैत्तिरीयोपनिषद्दिशा किञ्च छान्दोग्योपनिषद्दिशा सृष्टिक्रमः प्रतिपादितः।

यद्यपि उपनिषत्सु सृष्टिक्रमप्रतिपादकानि बहूनि वाक्यानि सन्ति तथापि तेषां सृष्टिवाक्यानां सृष्टौ तात्पर्यं नास्ति अपि तु अद्वितीये ब्रह्मण्येव तात्पर्यम् अस्ति।

### मुख्यप्रतिपाद्यविषयः

अद्वैतवेदान्तवादिनां सृष्टिक्रमप्रसङ्गे प्रधानं तत्त्वं भवति अज्ञानतत्त्वम्। अज्ञानस्य नामान्तराणि भवन्ति अविद्या, माया, अव्यक्तम् अव्याकृतं चेत्यादीनि। तत्र अज्ञानं नाम किम्? इति चेत् वेदान्तसारे उच्यते - “अज्ञानं हि सदसद्भ्याम् अनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किञ्चित्

इति।” परमेश्वर एव अनिर्वचनीयामिमां त्रिगुणात्मिकां मायां स्वशक्तित्वेन आश्रित्य लीलया जगद्बिम्बरचनायै प्रवर्तते। परमात्मनः ईक्षणमात्रेण यद्यपि जगतः उत्पत्तिः भवति इति श्रुतिप्रसिद्धिः अस्ति तथापि सृष्टेः अद्वैतवेदान्तसम्मतः कश्चित् क्रमः अस्ति वा इति जिज्ञासूनां दार्शनिकानां ज्ञानाय सृष्टिक्रमः प्रतिपाद्यते वेदान्तिभिः। सृष्टितत्त्वविषये यथा न्यायवैशेषिकाणां द्वयणुकादिक्रमः, सांख्यानां प्रकृति-महत्तत्त्वादिक्रमः दृश्यते तथा अद्वैतवेदान्तिनां कः सृष्टिक्रमः, के च सृष्ट्याः पदार्थाः इति विषयः ज्ञातव्यः अस्माभिः।

ब्रह्मणः एव जगत्सृष्टिः जायते इति अद्वैतवेदान्तसिद्धान्तः। उपनिषत्सु भिन्नाः भिन्नाः सृष्टिक्रमाः दृश्यन्ते। यद्यपि उपनिषत्सु पृथक् पृथक् सृष्टिक्रमाः दृश्यन्ते वस्तुतः एक एव सृष्टिक्रमः भवति, तस्मात् तत्र विप्रतिपत्तिः न कर्तव्या।

### उपनिषत्परिचयः

उपनिषद्दिशा वयं सृष्टिक्रमं पश्यामः। तर्हि का नाम उपनिषदिति। वेदान्तस्य अन्तिमः भागः भवति उपनिषत्। उपनिषदां वैदिकर्षयः आध्यात्मिकविद्यायाः गूढतमरहस्यानां विस्तरेण विवेचनं कृतवन्तः। भारतीयतत्त्वज्ञानस्य यत् मूलस्रोतः तदेव उपनिषत्सु वर्तते। इमाः उपनिषदः आध्यात्मिकज्ञानस्य पारावरसदृशाः सन्ति। यतो हि अत्र सांसारिकाभ्युदयार्थं पारलौकिककल्याणार्थं च ज्ञानराशेः समावेशः अस्ति। अद्वैतवेदान्ते प्रसिद्धेषु प्रस्थानत्रयेषु अन्यतमं भवति उपनिषत्प्रस्थानम्। वेदस्य भागद्वयमस्ति कर्मकाण्डं ज्ञानकाण्डञ्चेति। तत्र ज्ञानकाण्डमेव उपनिषत् नाम्ना व्यवह्रियते। ब्राह्मणग्रन्थाः पुरुषं कर्मसु प्रेरयन्ति। परन्तु उपनिषदः पुरुषं ज्ञाने प्रेरयन्ति। वस्तुतः जीवब्रह्मणोः तथा जगतः विचारे उपनिषदः महत्त्वपूर्णा भूमिकामावहन्ति।

उपनिषदः गम्भीरानर्थान् आख्यायिकया बोधयन्ति। तत्र आख्यायिका विद्यास्तुत्यर्था, ब्रह्मज्ञानं तथा सुलभं नास्ति परन्तु आख्यायिकया बोध्यते चेत् झटिति अवगमो भवति।

### (1) तैत्तिरीयोपनिषद्दिशा सृष्टिक्रमः

परमेश्वरस्य ईक्षणमात्रेण सृष्टिः भवति तत्र क्रमः नानुसन्धेयः। किन्तु बह्विषु श्रुतिषु सृष्टेः कश्चित् क्रमः आश्रीयते, सा च क्रमसृष्टिः जनानाम् अवबोधाय उपयोगिनी भवति इति कारणात् अद्वैतवेदान्ते सृष्टेः क्रमः विचार्यते। तैत्तिरीयोपनिषदि आत्मस्वरूपं विचार्य “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इति ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणं प्रतिपाद्य तदेव ब्रह्म सृष्टिकारणत्वेन प्रतिपादयितुं सृष्टेः क्रमः आम्नायते -

“तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः।

आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः।

अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः।

ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः।”

(तैत्तिरीयोपनिषद् -2/1/1) इति।

तत्र, “तस्मात्” इति पदेन मूलवाक्यसूत्रितं ब्रह्म उच्यते। एतस्मादिति पदेन अपि ब्रह्म परामृश्यते। तत्रादौ यत् ब्रह्म ब्राह्मणवाक्येन सूत्रितं यच्च सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यनन्तरमेव लक्षितं तस्मादेतस्माद्ब्रह्मणः तथा आत्मनः आकाशः समुत्पन्नः।

अत्र शङ्का भवितुमर्हति यत् “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इत्यत्र ब्रह्मणः निर्देशः कृतः परन्तु ‘तस्माद्वा एतस्मादात्मनः’ इत्यत्र आत्मनः निर्देशः कृतः, तर्हि ब्रह्म किञ्च आत्मा भिन्नो वा अभिन्नो वा? इति चेत् तत्र उच्यते ब्रह्म एव आमशब्दवाच्यः भवति। तस्मात् श्रुतौ आम्नायते-

“तत्सत्यं स आत्मा” (छा. उ. 6/6-16) इति एवञ्च आकाशः नाम यः शब्दगुणः सर्वेषां मूर्तद्रव्याणाम् अवकाशकरः सः आकाशः। तस्मात् आकाशात् पूर्वेण कारणगुणेन शब्देन किञ्च स्वेन स्पर्शगुणेन द्विगुणः वायुः समुत्पन्नः। तस्मात् वायोः स्वेन रूपगुणेन, पूर्वाभ्यां च त्रिगुणः अग्निः सम्भूतः। तस्मात् अग्नेः स्वकीयेन रसगुणेन पूर्वैश्च त्रिभिः चतुर्गुणाः आपः सम्भूताः। ताभ्यः अद्भ्यः स्वेन गन्धगुणेन पूर्वैश्चतुर्भिः पञ्चगुणा पृथिवी सम्भूता। पृथिव्याः ओषधयः सम्भूताः। ओषधीभ्यः अन्नं सम्भूतम्। तस्मात् अन्नात् रतरूपेण शिरः पाण्याद्याकृतिमान् पुरुषः सम्भूतः।

एषः पुरुषः अन्नरसविकारः भवति। तस्य पुरुषस्य सर्वेभ्योऽङ्गोभ्यः तेजः नाम रेतः बीजं सम्भूतम्, तस्मान् यः जायते सोऽपि तथा पुरुषाकृतिरेवः स्यात् इति तैत्तिरीयोपनिषद्दिशा सृष्टिक्रमः।

### (2) छान्दोग्योपनिषद्दिशा सृष्टिक्रमः

न केवलं तैत्तिरीयोपनिषदि सृष्टिक्रमः प्रतिपादितः अपि तु छान्दोग्योपनिषदि अपि सृष्टिक्रमः दृश्यते। तत्रछान्दोग्योपनिषदः षष्ठाध्याये सृष्टिक्रमः दृश्यते। पिता आरुणिः पुत्रं श्वेतकेतुम् उपदिदेश - हे सौम्य इदं नामरूपाभिव्यक्तं जगत् उत्पत्तेः पूर्वम् एकम् अद्वितीयं सदेव आसीत्, तत्र एके वैनाशिकाः बौद्धाः कथयन्ति इदं जगत् उत्पत्तेः प्राक् अविद्यमानमभावरूपमेव आसीत् अस्मात् अभावात् सत् अर्थात् भावरूपं कार्यम् अजायत। तदनन्तरं पितावदिति

असत्कारणतापक्षं निरासितुं यत्, हे सोम्य अविद्यमानात् अवस्तुभूतान् कारणात् न सत् जायते अर्थात् असतः सदुत्पत्तौ प्रमाणम् अथवा दृष्टान्तः नास्ति। अतः सृष्टेः प्राक् एकमेवाद्वितीयं सदेव आसीत्।

सम्प्रति आरुणिः सृष्टिप्रक्रियां वर्णयति। आरुणिः वदति यत् सूक्ष्मं निर्विशेषं सर्वगतमेकं निरञ्जनं निरवयवं विज्ञानं यदवगम्यते सर्ववेदान्तेभ्यः तत् ब्रह्म दर्शनं कृतवत्। तस्मात् सांख्यपरिकल्पितं प्रधानं न जगत्कारणं भवितुमर्हति प्रधानस्य अचेतनस्य अचेतनत्वाभ्युपगमात्, ब्रह्म तु सच्चैतनमीक्षितृत्वात्।

तत् ब्रह्म कथमैक्षत? इति चेत् तत् ब्रह्म आलोचयामास यत् अहं नानाविधं भवेयं, प्रकृष्टेन जातो भवेयम् इति। यथा मृत् घटाद्याकारेण उत्पद्यते अथवा बुद्धिपरिकल्पितेन रज्ज्वादि सर्पाद्याकारेण उत्पद्यते तद्वत्। तत् ब्रह्म एवमीक्षित्वा तेजोऽसृजत। अत्र शङ्का भवितुमर्हति यत्, अस्माभिः दृष्टं यत् - “तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः” (तैत्तिरीयोपनिषत्) इति तैत्तिरीयश्रुत्या आदौ ब्रह्म आकाशम् असृजत। परन्तु अत्र “तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत (छान्दोग्योपनिषद्)” इति छान्दोग्यश्रुत्या ब्रह्म आदौ तेजः असृजत तर्हि श्रुतिविरोधः भवति खलु।

एयं शङ्का नैव कर्तव्या यतो हि तत्र एवं कल्पना क्रियते यत्, आकाशवायुसर्गानन्तरं तत् ब्रह्म तेजोऽसृजत।

अथवा अत्र सृष्टिक्रमः अविवक्षितः। इदं समग्रजगत् सदः कार्यमस्ति तस्मात् सदेकमेवाद्वितीयमित्येतद्विवक्षितम्। अथवा त्रिवृत्करणस्य विवक्षितत्वात् श्रुतिः तेजोऽब्रह्मनामेव सृष्टिं निरूपयति। तेजः लोके दग्धं पक्व प्रकाशकं रोहितञ्चेति प्रसिद्धमस्ति।

तदनन्तरं तत् ब्रह्म अपोऽसृजत। अत्र लोके आपः द्रव्याः स्निग्धाः स्यन्दिन्यः शुक्लाश्चेति प्रसिद्धाः सन्ति। ततः परं श्रुतिः कथयति -

“ता आप ऐक्षन्त बहव्यः स्याम प्रजायेमहीति ता

अन्नमसृजन्त।

तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते॥” (छान्दोग्योपनिषत्)

तेजः सृष्टाः आलोचयाञ्चक्रुः यत्, वयं प्रभूताः भवेम उत्पद्येमहीति। ताः आपः पृथिवीलक्षणम् अन्नम् असृजन्तः। अन्नं पृथिव्याः विकारः अस्ति तस्मात् यत्र कुत्रचित् वर्षति तत्र प्रभूतमन्नं भवति। अद्भ्यः एव तदध्यन्नाद्यं जायते।

अत्र शङ्का भवति यत् तेजः जलं पृथिवी चेति अचेतनाः जडपदार्थाः सन्ति तस्मात् तेजः प्रभृतिषु ईक्षणं न सम्भवति। तस्मात् तत्तेजा ऐक्षत इत्यादि वक्तुं न शक्यते।

परन्तु इयं शङ्का नैव कर्तव्या। कुतः? इति चेत् चैतन्यस्वरूपं ब्रह्मैव समग्रकार्यस्य प्रयोजकः अस्ति।

तस्मात् तस्य ब्रह्मणः प्रेरणावशात् तेजः प्रभृतयः नियमानुसारेण कार्यं कुर्वन्ति। तस्मात् तेजः प्रभृतीनामीक्षणं संभवति।

**स्थूलशरीरोत्पत्तिः-**

इदानीं स्थूलशरीरोत्पत्तिः प्रदर्शयते -

“तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि।

भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भैजमिति॥” (छान्दोग्योपनिषत्) इति।

यानि जीवाविष्टानि भूतानि सन्ति तेषां भूतानां जीवस्य आवेशः विद्यते। ते च के? इति चेत् पक्ष्यादयः, मनुष्यादयः। कथम् अर्थः गृहीतः। इति चेत् एषामिति प्रत्यक्षनिर्देशात्। अर्थात् एतच्छब्दः इदं शब्दश्च उभयमपि प्रत्यक्षवस्तुनः निर्देशात्। तेजः प्रभृतीनां न, केवलानां भूतानां न, कुतः? इति चेत् यावता त्रिवृत्करणं न भवति तावत् पर्यन्तं प्रत्यक्षनिर्देशोऽपि न उपपद्यते। पुनः देवताशब्दः तत्र प्रयुक्तः। कुत्र देवताशब्दस्य प्रयोगः अस्ति? तेजः प्रभृतिषु इमास्तिस्मो देवता इति। अतः देवताशब्दः तेजसि, अप्सु किञ्च अन्नसम्बभूते अपि विद्यते, अतः भूतानां पक्षिपशुस्थावरादीनां त्रीण्येव बीजानि कारणानि भवन्ति। कानि तानि, उच्यन्ते प्रथमं भवति अण्डजम्। अर्थात् अण्डात् जातम् अण्डजम्। अण्डमेव अण्डजं भवति यथा पक्ष्यादिः। पक्षिसर्पादीनां बीजं पक्षिसर्पादिषु एव अस्ति। तेन किम्? पक्षिभ्यः पक्षिणः

भवन्ति तथा पक्षिबीजात् भवन्ति। सर्पादयः सर्पबीजात् भवन्ति। अन्यत् यत् यत् अण्डात् जातं भवति तदेव तत् तज्जातीयानां बीजम्।

इदानीं शङ्का क्रियते यत् अण्डात् यत् उत्पद्यते तदण्डसमुच्यते किल? अतः अण्डमेव अण्डादुत्पन्नस्य बीजमिति गृह्यताम्।

तत्र समाधानमुच्यते इयं शङ्का सम्यक् नास्ति। कुतः? इति चेत् अण्डजमेव अण्डात् जातमित्युच्यते अतः अण्डमेव तत्र बीजं भवतु इति भवदुक्तप्रकारेण स्यादपि। यदि तव इच्छया श्रुतिः गच्छेत् तर्हि तथा भवितुं युक्तमासीत्। परन्तु श्रुतिः स्वतन्त्रा विद्यते, स्वधीना विद्यते। तस्मात् अण्डात् यत् जायते तदेव बीजं भवति न तु अण्डादिः। अर्थात् अण्डादिकं बीजं न भवति लोके अपि दृश्यते यत् अण्डजाद्यभावे तज्जातीयसन्तत्यभावः भवति न तु अण्डाद्यभावे। तस्मात् अण्डजादीन्येव बीजानि भवन्ति अण्डजादीनाम्। तथैव जीवेभ्यः यदुत्पद्यते तत् जीवमित्युच्यते। तत्र जीवजमेव जरायुजम्। स्त्रीगर्भात् यत् जातं तत् जरायुजमिति, उच्यते यथा पुरुषपश्वादि।

ततः उद्भिज्जम् अर्थात् उद्भिन्नतीति उद्भिन्त् स्थावरं ततः जातमुद्भिजम्। अथवा धानाः उद्भिन्त् शब्देन अभिधीयन्ते। ततः यत् जायते तत् उद्भिज्जमित्युच्यते, तेव स्थावराणां वृक्षादीनां बीजं भवन्ति। तत्र स्वेदजसंशोकजजीवयोः अण्डजोद्भिज्जयोरेव यथासम्भवमन्तर्भावः करणीयः अस्ति। एवं निश्चयेन त्रीण्येव बीजानि सन्ति।

**उपसंहारः**

तत्र तत्र उपनिषत्सु सृष्टिक्रमप्रतिपादकानि बहूनि प्रसिद्धानि वाक्यानि सन्ति। परमार्थतस्तु सृष्टिक्रमः नास्ति। तर्हि प्रश्नः भवति यत् सृष्टिक्रमप्रतिपादकानां वाक्यानां का गतिः? इति चेत् वेदान्तपरिभाषायामुच्यते - “न हि सृष्टिवाक्यानां सृष्टौ तात्पर्यं किन्तु अद्वितीये ब्रह्मण्येव” इति। एवं ज्ञातव्यम्।

**सहयकः अध्यापकः**

**श्री सत्य साइ मानव अभ्युदयः विश्वविद्यालयः**

**email : dibakarchakraborty2000@gmail.com**

**मार्गदर्शकः-पूजनीयाः अध्यापकाः सचीनद्विवेदीवर्याः**

**आश्रितग्रन्थसूची**

1. सदानन्दयोगीन्द्रसरस्वती। 1998। वेदान्तसारः। स्वामी अमृतत्वानन्दः। उद्बोधनकार्यालयः। कलकाता।

2. स्वामी विश्वरूपानन्दः। 2022। वेदान्तदर्शनम्। उद्बोधनकार्यालयः। कलकाता।
3. ईशादि नौ उपनिषद्। गीताप्रेस, गोरखपुरः
4. र. तड्गस्वामिशर्मा। 1980। अद्वैतवेदान्तसाहित्येतिहासः। माद्रास्



शिवम गंगानिया

## लौह युगीन संस्कृति सर्वप्रथम विकास भारत भूमि या विदेश : एक द्वंद्व

### शोध सार :

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं व संस्कृतियों का उत्पत्ति काल विवाद के घेरे में हमेशा रहा है। लौह युग संस्कृति भी इसी ऐतिहासिक विवाद रोग से ग्रस्त है। पश्चिमी इतिहासकार तकनीकी ज्ञान प्रसार में विकास का श्रेय स्वयं लेने में खुशी महसूस करते हैं जो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता पर प्रश्न खड़ा करता है तथा इसके जन्म को धूमिल बनाता है। लौह युग की वास्तविक उत्पत्ति का निर्धारण वर्तमान समय की मांग है।

इतिहासकारों में पैदा निजी स्वार्थ से प्रेरित इतिहास लेखन तथा हितों में संघर्ष को लेकर यह द्वंद्वत्मक स्थिति खड़ी हो चुकी है। आज निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर इतिहास लेखन की अति आवश्यकता है क्योंकि लौह युग विश्व विकास का ग्रोथ इंजन रहा है। इसकी तटस्थ वैचारिक खोज इतिहास के पन्नों में लिखे गए गलत स्पष्टीकरण की दिशा बदलकर भारत की लौह कालीन तकनीकी क्षमता का गुणगान करना वर्तमान युग की मांग है। साथ ही इतिहास की धुंधली छवि को साफ कर ऐतिहासिक संघर्ष को शांत करने में सफल साबित होगी इतिहास के पृष्ठों पर कुछ व्याख्यान ऐसा लिखित है जो वास्तविक अधिकारी (प्रथम लौहकालीन संस्कृति उत्पत्ति स्थल) की मन की पीड़ा को कई गुना बढ़ा देता है। हमें लौह युग विकास में ऐसे कई विवाद देखने को मिलते हैं जो झूठ की आड़ में किसी देश की वास्तविक क्षमता पर पर्दा डालते हैं। लौह युग विवाद की बड़ी समस्या प्राचीनता वास्तविक उत्पत्ति स्थान निर्धारण की है जिसके कारण ऐतिहासिक विवाद का लाभ उठाकर पश्चिमी इतिहासकार

सर्वप्रथम विकास का श्रेय लेने हेतु अग्रणी पंक्ति में खड़े मिलते हैं तथा अन्य क्षेत्रों की ताकत को परदे के पीछे रखने की भरपूर भूमिका निभाते हैं। उदा. उनका मानना है कि हैती वंश साम्राज्य जो एशिया माइनर क्षेत्र में (1800 से 1200 ईसा पूर्व) के बीच में बसता था तथा उनके पतन के पश्चात विश्व बिरादरी में लौहे का प्रसार हुआ तथा लोहा ज्ञान विश्व को मिला, पश्चिमी विद्वान इस तथ्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं परन्तु यदि भारतीय पुरातात्विक स्रोतों पर नजर डालें तो इस बात का ठोस रूप से खंडन होता है कार्बन डेटिंग द्वारा पीजीडब्ल्यू काल 1700 ईसा पूर्व के समय का माना जाता है तथा इस मृदभांड का करीबी रिश्ता लौह के साथ स्थापित किया गया है। भारत के अहिछत्र क्षेत्र से लौह तथा पीजीडब्ल्यू की प्राप्ति हुई है। इतिहासकार बी.बी. लाल के माध्यम से इस मृदभांड का लौहे के साथ मिलना यह भारत की प्राचीनता को सिद्ध करता है प्राचीनता सिद्ध होने के पश्चात भी कुछ विदेशी विद्वान तो उसको एक तरफा मानते हैं तथा इस बात से अपना किनारा करते हुए नजर आते हैं।

थाईलैंड बोनेची स्थल से (1600 से 1200 ईसा पूर्व) यहां से लौहे की प्राप्ति हुई है जो विदेशी एकाधिकार की बात के दावे को अब खंडित करता हुआ नजर आ रहा है। कई प्रामाणिक स्रोत की प्राप्ति हुई है। राजस्थान आहड़क्षेत्र से लौह धातु मल व निक्षेप प्राप्त हुआ है जो तकरीबन 1500 ईसा पूर्व के आसपास का है जो पश्चिमी इतिहासकारों की एकाधिकारी सोच का पूर्ण रूप से खंडन करती है। एन.आर. बनर्जी (आर्किऑलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया) 1965 इनका मानना है कि हस्तिनापुर तथा आलमगीरपुर से

बड़े पैमाने पर पीजीडब्ल्यू के साथ लौह अवशेष प्राप्त हुए हैं, विश्व विख्यात इतिहासकार व्हीलर एक नया तर्क प्रकट करते हैं कि ईरान हखामनी वंश जिनका समय (ईसा पूर्व 1600 से 1200) के बीच रहा, यहाँ से लौह की उत्पत्ति हुई और इनके पतन के पश्चात लौह का प्रसार भारत में हुआ परन्तु भारतीय विद्वान इस बात से सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि भारत में लौहे के अवशेष हजारों वर्ष पूर्व अपने अस्तित्व में थे, डॉक्टर आर मोहम्मद असनुल्लाह (राष्ट्रीय कार्यशाला 2015) “आयरन इन साउथ इंडिया” तमिलनाडु दक्षिण भारत में लौहे के समग्र विकास पर बल दिया गया है, लगभग 700 स्थलों से लौहे की प्राप्ति हुई है। जो चारों दिशाओं में विस्तृत थे तथा जिनकी तिथि 1700 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व के बीच निर्धारित की गई है भारतीय इतिहासकार डी.डी. कौशांबी का मानना है कि आर्यों का प्रसार भारत के पूर्ववर्ती क्षेत्रों में रहा है जो यहाँ के लौह अयस्क पर अपना नियंत्रण स्थापित करना था इनके द्वारा लिखित “द बिगिनिंग ऑफ द आयरन एज इन इंडिया” (जर्नल ऑफ द इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री ऑफ द ओरिएंट वॉल्यूम, 1963) तथा महोदया बी.बी.लाल दिए गए प्रमाण पहले ही प्रमाणित हो चुके हैं।

पूर्वी भारत क्षेत्र के सोनपुर चिरांद से लौह अवशेष बाण, भाले, कांटों, अन्य प्रकार के उपकरण की प्राप्ति हुई है। ये पुरातत्विक प्रमाण हैं जो व्हीलर के दावे को खण्डित तथा निराधार करते हैं। कुछ विद्वानों को भारतीय ज्ञान से संतुष्टि प्राप्त नहीं हुई तथा ये अब यूनानी दावे को भी अपने तर्क में सम्मिलित करने लगे हैं। इनको लौहे के प्रसार का श्रेय देते हुए नजर आते हैं जबकि यूनानी साहित्य स्वयं यह दावा करता है कि भारतीयों को सिकंदर से पूर्व ही लौह का ज्ञान प्राप्त था तत्कालीन खोज आई. आई.टी. खड़गपुर 2019 करीम शाही क्षेत्र गुजरात से लौह बस्ती के प्रमाण मिले हैं जो 3000 वर्ष पुराने हैं। एल्सेवियर जर्नल में छापे “एशिया में पुरातत्व अनुसंधान” अनेक ऐसे वैज्ञानिक प्रमाण हैं साथ ही ऋग्वेद (1500-1000 ईसा पूर्व) लिखित, इसमें एक कवच तथा लौहे के नुकीले भाले व हथियारों का जिक्र किया गया है वैदिक कालीन सुप्रसिद्ध दशरग युद्ध में गालव नामक व्यक्ति ने लौहे की तलवार देकर राजा का सहयोग किया यह भी भारत की प्राचीन ज्ञान की एक झलक है। विश्व विख्यात विद्वानों में

चली वैचारिक संघर्ष दौड़ सत्य की आहुति दे रही है। पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्रोत अतार्किक तर्कों का खंडन कर प्रमाण के आधार पर सत्य का मार्ग प्रशस्त करते हैं। भारतीय साहित्यिक स्रोत हजारों वर्षों के लौह युग ज्ञान को प्रतिबिंबित करते हैं। अथर्ववेद में जो कि (1000 से 600 ईसा पूर्व) के पास लिखा गया। इसमें श्याम अय्याश शब्द का उल्लेख मिलता है जिसका संबंध लौहे से है।

विख्यात इतिहासकार अन्य देशों में हुए लौह तकनीकी ज्ञान को अपने अधीनस्थ स्थापित करने का प्रयास करते हैं जो सही नहीं होता है। उदाहरण के लिए पीजीडब्ल्यू भारत में 1700 ईसा पूर्व तथा बी.आर.डब्ल्यू. 1400 ईसा पूर्व, के मध्य के समय निर्धारित किया है। इस कालखंड के बीच भारतीय भूगर्भ के सैकड़ों स्थलों से हजारों की संख्या में लौह उपकरण प्राप्ति हुई है। दक्षिण भारत से 36 प्रकार के लोहा उपकरण इसमें तलवार, त्रिशूल, वसूली, चाकू, फावड़े आदि की प्राप्ति हुई है। द हिंदू न्यूज पेपर मई 2022 छपे आलेख में 4200 वर्ष पुराने लौह युग अवशेष प्राप्ति तमिलनाडु से हुई है, व्हीलर जैसे महोदय अभी भी इस बात से सहमत नहीं हैं। यह भारतीय क्षमताओं से परिचित होने के पश्चात भी भारतीय ज्ञान को पिछड़ा दिखाने का प्रयास करते हैं परंतु देशी लौह तकनीकी ज्ञान विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ था उदा. हिमाचल प्रदेश तथा पंजाब के नारनौल से लौह की निधियां प्राप्त हुई हैं। भारतीय ज्ञान क्षेत्रीय स्तर पर काफी व्यापक था जो स्वतंत्र आधार पर विकसित हुआ। मध्य देश की अगरिया जाति क्षेत्रीय स्तर पर लौहे को गलाना तथा उससे बने बर्तनों का व्यापार करना यह परिचित कराता है कि भारत में लौहे का ज्ञान क्षेत्रीय स्तर पर भली भाँति विस्तृत था जो पश्चिमी इतिहासकार के स्वार्थ से प्रेरित विश्लेषण को निराधार करते हैं। हमारी पुरातात्विक तथा साहित्य उपलब्धियों के माध्यम से और मजबूती होती है, काठक संहिता में 24 बेलों द्वारा संचालित होने वाले हल का उल्लेख मिलता है, भारत के चारों दिशाओं में भूगर्भ में छिपे हुए लौहे के स्रोत आज वैज्ञानिक उत्तर देने में सर्वोपरि हैं।

विश्व इतिहास लेखन समुदाय के समक्ष अपना मत विश्वास के साथ रख रहे हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण भारत के हल्लूर (1000 ईसा पूर्व) तथा महापाषाण स्थलों से अस्त्र-शस्त्र तथा कृषि उपकरण की प्राप्ति हुई है

जिसका लौह उपकरण ज्ञान का विस्तृत दायरा रहा है। विदेशी लेखक अपने तर्कों को कई गुणा बढ़ा-चढ़ाकर बताने का प्रयास करते हैं। उंगुली पर गिने जाने वाले स्रोतों को लौह निर्धारक मानते हैं परंतु अभी भी भारत में मिले सैकड़ों अवशेष स्थल को संदेह की दृष्टि से देखना पसंद करते हैं। हमारे यहाँ ताम्र पाषाण काल तथा महापाषाण काल का सीधा संबंध लौह युग से है जो उसकी ऐतिहासिक प्रमाणिकता को और मजबूती देता है। आज अनेक ऐसे स्रोत प्राप्त हुए हैं जो ठोस उत्तर देने में अपनी बड़ी भूमिका निभाते हैं अंतरजिखेड़ा, हस्तिनापुर से प्राप्त लौह मल अवशेष व भट्टियां भारतीय के लौहे के ज्ञान को विश्व के समक्ष रखते हैं।

वैज्ञानिक ज्ञान का प्रमाण जगजाहिर है परंतु लौह युगीन संस्कृति का श्रेय विदेशी विद्वान अपने चश्मे से देखना पसंद करते हैं और अपनी ही परिभाषा के अनुसार उसको बताते भी हैं। दूसरे पक्षों को संदेह की दृष्टि से देखना तथा स्वीकार न करना उनकी विशेषता साबित हो चुकी है। पश्चिमी इतिहासकार अपरिपक्वता की दृष्टि से विश्व को देखते हैं। आज अनेक ऐसे उदाहरण हमारे पास हैं जो भारतीयों के लौह ज्ञान की तारीफ करते हैं। राजस्थान के नौह तथा पंजाब नरनौल क्षेत्रों से लौह प्राचीनतम उपकरण व औजार प्राप्त हुए हैं। यह प्रमाण तकनीक क्षेत्र में भारतीयों की सर्वोच्चता को सिद्ध करता है। अनेक स्थलों से प्राप्त अवशेष विभिन्न शैली के उपकरण भारतीय के ज्ञान को नई दिशा देते हैं। विदेशी भूमि (ईरान, यूनान, एशिया माइनर) के गिने-चुने क्षेत्र को पश्चिमी इतिहासकार एक नेतृत्वकर्ता के रूप में मानते हैं। अन्य क्षेत्रों की इनके साथ तुलना करना पसंद नहीं करते हैं। यदि भारतीय क्षेत्रों की व्यापकता देखें अब तक 700 से अधिक स्थल प्रकाश में आ चुके हैं जहाँ से बड़ी तादाद में पुरातात्विक लौह अवशेष की प्राप्त हुई है।

भारत में साहित्यिक व पुरातात्विक दोनों ही स्रोत लौह ज्ञान की अच्छी परिभाषा देते हैं। ऋग्वेद, अथर्ववेद, काठक संहिता में स्पष्ट रूप से लौहे के उपकरणों की ओर संकेत मिलता है। इतने वैज्ञानिक प्रमाण मिलने के पश्चात भी इतिहास के पन्नों को रचने वाले इतिहासकार निजी स्वार्थ से ग्रस्त मनोदशा से पीड़ित हैं। विदेशी इतिहासकार भारतीयों के ज्ञान कौशल को कमतर दिखाने का प्रयास करते हैं। ठोस प्रमाणिक पुरातात्विक स्रोत के

आधार पर डी.के. चक्रवर्ती का कहना है कि लौह युग देसी ज्ञान के माध्यम से भारत में फैला इस पर भारतीयों का पूर्ण एकाधिकार था। विदेशों की इसमें कोई भूमिका नहीं थी, कई घटकों का परीक्षण करने तथा ऐतिहासिक ग्रंथों व खोज के द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि भारत लौहे के ज्ञान कौशल में परिपूर्ण था। भारत लौह तकनीकी दृष्टिकोण से किसी देश पर निर्भर नहीं रहा। इसकी पुष्टि पुरातात्विक व साहित्यिक दोनों स्रोतों के माध्यम से होती है।

विभिन्न पहलुओं को उजागर करने के पश्चात इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारतीयों के पास लौहे का ज्ञान नहीं था। प्रोफेसर उपेंद्र सिंह की “पुस्तक प्राचीन व पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास” में लौहे के ज्ञान को भारतीय परिवेश को विकसित दिखाया गया है। साहित्य स्रोत के साथ भारतीय पुरातात्विक स्रोत भी भारतीय ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं। भूगर्भ में छुपे हुए लौहे के अवशेष, बी.आर. डब्ल्यू. पी.जी.डब्ल्यू. दोनों मृदभांड संस्कृतियों का संबंध लौह काल से स्थापित होता है। व्यापक क्षेत्रीय भूभाग से मिलने वाले हजारों की तादाद में प्रमाण आज किसी विदेशी एकाधिकार के अधीन नहीं हैं। बारीकी से किए गए विश्लेषण से भारत का संबंध लौहे की प्राचीनता से स्थापित होता है। यह भारतीय पक्ष को मजबूती प्रदान करता है। लौहे की प्राचीनता का पलड़ा भारत की ओर झुकता नजर आ रहा है। भारत लौहे के विकास में स्वाधीन था तथा विदेशी इतिहासकार भारत को पराधीन, ऋणी की श्रेणी में रखना पसंद करते हैं लेकिन भारतीय विश्व विख्यात इतिहासकार तथा पुरातात्विक ऐतिहासिक स्रोत इसके ठीक विपरीत है।

भारतीय खोज का दायरा व्यापक दिखता है। विभिन्न पहलुओं को विश्लेषित करने के पश्चात भारत का ज्ञान रूपी दायरा विस्तृत क्षेत्र तक फैला था वर्तमान में इतिहासकारों की कार्यशैली वास्तविकता से परिचय कराना उनका सार तत्व हो, यदि एक क्षण को विदेशी प्रमाण मान भी लिया जाए तो वह स्वयं खंडित हो जाएगा क्योंकि भारतीय क्षेत्र के उत्तर पश्चिमी क्षेत्र ही विदेशी प्रभाव से ग्रस्त हो सकते हैं बल्कि लौहे के प्रमाण तो भारत के दक्षिण से पूर्व क्षेत्र तक मिले हैं। भारतीय पक्ष को मजबूती प्रदान करते हैं। भारत प्राचीन ज्ञान रखता था खोज के माध्यम से ये सिद्ध हो चुका है कि भारत गिनी-चुनी संस्कृति में अग्रणी देश

रहा है। अब विश्व बिरादरी को भी भारत के ज्ञान से परहेज नहीं करना चाहिए क्योंकि सारे तथ्य लौहे की प्राचीनता को भारतीय पक्ष में दिखा रहे हैं। विदेशी दावे अब निराधार प्रतीत दिख रहे हैं। दो वर्गों के बीच पैदा हुए विवाद का अंत अब संभावतः सिद्ध हो चुका है। इतिहासकारों में पैदा हुआ वैचारिक संघर्ष कुछ सीमा तक स्पष्ट होता दिख रहा है तत्कालीन खोजों से मिले ऐसे प्रमाण स्रोत यह बात साबित कर चुके हैं कि लौहे के विकास में भारत अग्रणी रहा है। पश्चिम इतिहासकारों के द्वारा झूठ की चादर अब उतरती नजर आ रही है। लौह युग में पुरातात्विक विशेषज्ञ तथा इतिहासकार के तटस्थ प्राप्ति पर लेखन वास्तविकता को उजागर करने का प्रयास किया है। दो विचारधाराओं ने जो संदेह पैदा किया है वो कई चुनौतियों को न्योता दे चुका है परंतु भारतीय भूगर्भ से मिले स्रोत विदेशी इतिहासकार के अतार्किक बातों का खंडन करते हैं तथा इतिहास की वास्तविक छवि का प्रदर्शन करते हैं। देसी लौह ज्ञान की व्यापकता सिद्ध हो चुकी है। वर्तमान में निजी स्वार्थ कुछ भी हो आज इतिहास को इतिहास से मिलाने का समय है। प्रत्येक इतिहासकार का ये दायित्व है कि हमें वास्तविकता से परिचित कराएं तथा विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में भारत हमेशा अग्रणी रहा है। लौह युग के संदर्भ में मिले प्रमाण (पुरातात्विक व साहित्यिक स्रोत एक सिक्के के दो पहलू) भारतीय लौह व्यापकता तथा ज्ञान के प्रसार काफी विस्तृत क्षेत्र तक अपनी पहुँच रखते हैं। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम के सैकड़ों हजारों किलोमीटर क्षेत्र में लौहे के ज्ञान का प्रसार आबाद रूप से

हुआ परंतु विवादों के घेरे को तटस्थ इतिहास लेखन की आवश्यकता महसूस हो रही है यदि यह कार्य किया जाए तो वास्तविकता से परिचित होने में देरी नहीं लगेगी। वर्तमान में जो भ्रांति लौह युग पर कुंडली डाले हुए बैठा है वह भी शीघ्र हल हो जाएगा। पश्चिम पूरब की इतिहास लेखन की संघर्ष पद्धति जल्द खत्म करने की आवश्यकता है। आज इतिहास लेखन निजी हितों से ग्रस्त रहा है तथा एकाधिकार की मनोवृत्ति रखता है जिसके कारण संसार की वास्तविक विकास परिभाषा बदलती दिख रही है। निष्पक्ष रूप से इतिहास लेखन को प्रोत्साहन देकर हम ऐसे ही कितने ही प्रश्नों को हल कर सकते हैं। वह उनका एक बौद्धिक व वैज्ञानिक उत्तर विश्व बिरादरी के समक्ष रखने में सक्षम हो सकते हैं तथा लौह युगीन काल के समक्ष पैदा हुई भ्रांति से संबंधित प्राचीनता विवाद के मूलभूत पहलुओं को हल किया जा सकता है। एक निष्पक्ष इतिहास लेखन दृष्टिकोण हमें सत्य से परिचित कराएगा वो दिन दूर नहीं जब लौह युग की पृष्ठभूमि भी स्पष्ट रूप से भारतीय झोले में गिरती हुई नजर आएगी। आज इतिहास लेखन में विवादों से ऊपर उठकर वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन एक प्राथमिकता बन चुकी है जो निश्चित रूप से भविष्य में सैकड़ों हजारों वर्षों की ऐतिहासिक यात्रा पर लगे भ्रांति प्रश्नों को हल करने में भविष्य में सफल सिद्ध होगी।

स्नातकोत्तर छात्र  
इतिहास विभाग, इग्नू दिल्ली

### संदर्भ

1. इंडियन प्रीहिस्ट्री 1965, पृष्ठ 204
2. प्राचीन व पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, उपेंद्र सिंह, पृष्ठ संख्या 253
3. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति के.सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या 74



डॉ. रवि प्रभात\*



सुचेता\*\*

## कर्तृकारकविचार

**क्रि**या को निष्पन्न करने में जो जो भी सहायक होते हैं, उन सभी को कारक कहते हैं। जो क्रिया होती है, उसका साक्षात् जनक कर्ता ही होता है। फिर यही सारे कारक चक्र का प्रयोक्ता होता है। अन्य जितने भी कारक होते हैं, वे अपनी-अपनी अवान्तर क्रिया के द्वारा प्रधान क्रिया के निष्पादक होते हैं।

किसी भी वाक्य में कोई भी पद कर्ता बन सकता है। कर्ता शब्द कृ-धातु (डुकृञ्करणे, तनादि, उभयपदी) से कर्तृवाचक तृच् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है। इस प्रकार 'कर्ता' का व्युत्पत्तिलभ्यार्थ है 'करने वाला', 'क्रिया का संपादक'।

**कर्ता कारक :-** पाणिनि ने कर्ता कारक का लक्षण 'स्वतंत्रः कर्ता'<sup>2</sup> किया है। इस सूत्र के अनुसार जो किसी क्रिया की निष्पत्ति में स्वतंत्र होता है, उसे कर्ता कहते हैं। सूत्र में पठित स्वतंत्र पद का अर्थ पतंजलि ने 'प्रधान'<sup>3</sup> किया है, अर्थात् कर्ता प्रधान कारक होता है। क्योंकि वह अन्य सभी कारकों को क्रिया की सिद्धि के लिए प्रवृत्त करता है।<sup>4</sup> कर्ता के अभाव में अन्य कारक क्रिया में प्रवृत्त नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ - 'देवदत्त कुठारेण काष्ठं छिनत्ति' देवदत्त कुल्हाड़ी से लकड़ी काटता है वाक्य में देवदत्त ही कुल्हाड़ी को 'छेदन' क्रिया में प्रवृत्त करता है। अतः देवदत्त को ही कर्ता कारक माना जाएगा।

काशिकाकार ने पतंजलि का अनुसरण करते हुए पर पाणिनि के उक्त सूत्र की वृत्ति में कहा है कि क्रिया सिद्धि में जो अगुणभूत अर्थात् प्रधान अर्थ विवक्षित होता है, उसे 'कर्ता' कारक कहा जाएगा।<sup>5</sup> परवर्ति पुरुषोत्तमदेव<sup>6</sup> व भट्टोजिदीक्षित<sup>7</sup> आदि ने काशिकाकार द्वारा प्रस्तुत वृत्ति

की पुष्टि की है। जो कर्ता किसी अन्य कर्ता को 'क्रिया' में प्रवृत्त करता है, उसे पाणिनि के अनुसार 'प्रयोजक कर्ता'<sup>8</sup> कहा जाता है। यथा 'देवदत्तः चैत्रं ग्रामं गमयति' इस वाक्य में 'देवदत्त' चैत्र को गांव जाने के लिए प्रेरित करता है। अतः देवदत्त 'प्रयोजक कर्ता' है। न्यासकार 'अगुणभूत' पद को दो उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट करते हैं- देवदत्तःआस्ते, शेते देवदत्तः। केवल दूसरा उदाहरण ही न्यासकार को इष्ट है। अतः प्रस्तुत संदर्भ में अगुणभूत पद का अर्थ यही हो सकता है कि ऐसा कारक जो किसी अन्य कारक के अधीन नहीं है।<sup>9</sup>

पदमंजरीकार ने भी इसी मत की पुष्टि की है।<sup>10</sup> वाक्यपदीयकार भर्तृहरि कहते हैं कि अपादानादि कारक स्वव्यापार में स्वतंत्र रहते हुए भी प्रधान कर्ता के व्यापार में परतंत्र ही होते हैं। जैसे राजा के द्वारा युद्ध के लिए नियुक्त किए हुए योद्धाओं में युद्ध की कला तो नियुक्ति के पहले से ही विद्यमान है किन्तु वे नियोग परतंत्र हैं, राजाज्ञा के बिना युद्ध कर नहीं सकते। अतः उनके युद्ध में जय पराजय भी राजा के ही होते हैं। ठीक उसी प्रकार कर्ता के द्वारा नियुक्त होकर मिलकर फलानुकूलव्यापार करते हुए करणादि कारकों का जो कर्तृत्व, वह कर्ता के द्वारा नियुक्त किए जाने के बाद ही उत्पन्न होता है। अतः इस कर्तृत्व का करणादित्व से विरोध नहीं होता।<sup>11</sup>

वस्तुतः स्वातंत्र्य ही कर्ता का लक्षण है, व्यापार आश्रय नहीं।<sup>12</sup> 'देवदत्ताय रोचते मोदकः' इस वाक्य में अभिलाष व्यापार का आश्रय तो देवदत्त है, किन्तु उस अभिलाष को उत्पन्न मोदक कर रहा है। अतः क्रियाजनन में स्वातंत्र्येण विवक्षित होने से मोदक की कर्तृ संज्ञा होती है, देवदत्त की

नहीं। इसलिए जहां स्वतंत्रता की विवक्षा होगी वहां कर्तृ संज्ञा होगी और जहां परतंत्रता की विवक्षा होगी वहां करण, अधिकरण आदि संज्ञा हो जाएंगी।

**‘स्वातन्त्र्य’ पद का अर्थ :-** जिस कारक में क्रिया करने का स्वातन्त्र्य रहता है, उसे कर्ता कारक कहते हैं। कर्ता में रहने वाले ‘स्वातन्त्र्य’ की परिभाषाएं प्राचीन एवं अर्वाचीन वैयाकरणों ने परिष्कृत रूप में दी हैं। पतञ्जलि ने सर्वप्रथम ‘तन्तुवाय’ शब्द के प्रसंग से स्वतंत्र शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि क्या जिसका अपना ‘तन्त्र’ अर्थात् कपड़ों का फैलाया हुआ ताना-बाना या सूत है वह जुलाहा स्वतन्त्र कहलाता है।<sup>13</sup> किन्तु भाष्यकार के अनुसार ‘तन्त्र’ शब्द दूसरे अर्थों में भी प्रयुक्त होता है। यहां यह प्रधानता वाले अर्थ में है।<sup>14</sup> जब धातु के द्वारा किसी साधन के व्यापार को प्रधानरूप से प्रकट किया जाता है तब उसी को ‘स्वतन्त्र’ कहते हैं तथा वह कर्ता होता है। भट्टोजिदीक्षित भी इस मत पर स्वीकृत हैं।<sup>15</sup> जैसे ‘स्वतन्त्रोऽसौ ब्राह्मणः’ (यह ब्राह्मण स्वतंत्र है) ऐसा कहने पर ब्राह्मण अपनी आजादी में है किसी के अधीन नहीं है तथा क्रिया करने में वह किसी की अपेक्षा नहीं रखता।<sup>16</sup> भट्टोजिदीक्षित के अनुसार धातु के ‘प्रधान अर्थ’ का आश्रय बनना ही ‘स्वातन्त्र्य’ कहलाता है।<sup>17</sup> शब्दकौस्तुभ में प्रस्तुत ‘स्वातन्त्र्य’ के लक्षण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि धातु से उपस्थित होने वाले व्यापार का आश्रय बनना ही ‘स्वातन्त्र्य’ कहलाता है।<sup>18</sup> फलस्वरूप इस सूत्र का अर्थ होता है जो कारक क्रिया करने में स्वतन्त्र है, स्वाधीन है, उसकी कर्ता संज्ञा होती है। इस संदर्भ में एस. डी. जोशी भी पूर्णतः सहमत हैं।<sup>19</sup>

**कर्ता कारक के विषय में अन्य आचार्यों के मत :-** आचार्य पाणिनि के समान ही क्रिया की सिद्धि में मुख्यतया विवक्षित कारक की कर्तृ संज्ञा मानने वाले व्याकरण शास्त्र हैं जैनद्र व्याकरण<sup>20</sup>, सरस्वतीकंठाभरण<sup>21</sup> एवं श्री सिद्धहेमशब्दानुशासन<sup>22</sup>, मुग्धबोध व्याकरण में श्री राम तर्कवागीश के व्याख्यान से भी यही प्रतीत होता है कि मुग्धबोधकार को अन्वर्थक कर्ता शब्द क्रिया सिद्धि में प्रधान्येन विवक्षित हुआ साक्षात् क्रिया का आश्रय ‘कर्ता’ ही स्वतन्त्र्येण ईप्सित है।<sup>23</sup> कातन्त्र व्याकरण सामान्यतया ‘यः करोति स कर्ता’<sup>24</sup> इस प्रकार कर्तृत्व का स्वरूप निर्धारण करता है। इस प्रकार पाणिनि से उत्तरवर्ती जितने भी व्याकरण प्रकाश में आए सभी ने प्रायः तदवत् ही

कर्तृत्व को परिभाषित किया है। नव्यन्याय की शैली में स्वकीय ग्रंथों की रचना करने वाले आचार्य नागेश ने परमलघुमञ्जूषा में उच्चारित धातु के वाच्यर्थभूत व्यापार के आश्रय को कर्तृत्व संज्ञा प्रदान की है।<sup>25</sup>

**भर्तृहरि मत:-** महान वैयाकरण भर्तृहरि को भी आचार्य पाणिनि का ही कर्तृ लक्षण अभिमत है। इन्होंने ‘स्वातन्त्र्य’ का अतीव मार्मिक विश्लेषण किया है। कर्ता की उक्त प्रधानता की उपपत्ति भर्तृहरि ने वाक्यपदीय की दो कारिकाओं में की है।

**प्रागन्यतःशक्तिलाभान्यग्भावापादानादपि।**

**तदधीनप्रवृत्तित्वात्प्रवृत्तानां निवर्तनात्॥**

**अदृष्टत्वात्प्रतिनिधेः प्रविवेके च दर्शनात्।**

**आरादप्युकारित्वे स्वातन्त्र्यं कर्तृरुच्यते॥<sup>26</sup>**

इन कारिकाओं के माध्यम से भर्तृहरि ने स्वातन्त्र्य के छः हेतु प्रदर्शित किए हैं।

1. कर्ता करणादि शक्तियों की प्रवृत्ति से पूर्व ही शक्ति प्राप्त कर लेता है अर्थात् कर्तृशक्ति अन्य किसी कारक की अपेक्षा किए बिना ही क्रिया निष्पादक हुआ करती है, परन्तु करणादि कर्ता की सहायता से ही क्रियासिद्धि में प्रवृत्त होते हैं।

2. कर्ता के द्वारा अन्य कारकों को अपने से न्यून कर दिया जाता है और वह प्रधान बन जाता है।

3. सभी कारक कर्ता के अधीन कार्य का निष्पादन करते हैं।

4. प्रवृत्त हुए अन्य कारकों को कर्ता निवृत्त कर सकता है।

5. कर्ता का कोई भी प्रतिनिधि दिखाई नहीं देता, जबकि अन्य कारकों के प्रतिनिधि हो सकते हैं।

6. अन्य कारकों के अभाव में भी कर्ता की प्रवृत्ति देखी जाती है, परन्तु कर्ता के बिना करणादि किसी क्रिया के निष्पादक नहीं हो सकते। कर्ता तो वाक्य में दूर से भी उपकारकत्व को प्राप्त करता है।

इन युक्तियों से भर्तृहरि सिद्ध करते हैं कि कर्ता दूर रहकर भी क्रिया का उपकार करता है। कर्ता कारक के बिना अन्य कारकों का दर्शन नहीं हो सकता।

**नव्यन्याय में कर्तृ विचार :-** त्रिमुनि तथा भर्तृहरि ने कर्तृत्व का विवेचन इतना व्यापक रूप से किया है कि परवर्ति ग्रंथकारों के समक्ष कर्तृत्व दर्शन में कुछ नवीनता का प्रदर्शन करना कठिन हो गया था।

प्राचीन तथा नव्यन्याय के काल में निम्नलिखित लक्षण बहुत प्रचलित रहा है –

**‘कर्तृत्वं चेतकारकाप्रयोज्यत्वे सति सकलकारक-प्रयोक्तृत्व लक्षणों ज्ञानचिकीर्षाप्रयत्नाधारत्वम्’<sup>127</sup>**

प्रस्तुत लक्षण के अनुसार कर्ता वह है जो कर्म करणादि दूसरे कारकों से प्रयोजित नहीं हो अपितु सभी कारकों को स्वयं प्रयोजित करें। इसके साथ-साथ वह ज्ञान, इच्छा तथा प्रयत्न का आधार भी होता है अर्थात् ये तीनों कर्ता में निहित होते हैं।

भवानंद ने कारक चक्र में कर्ता का लक्षण दिया है, **‘अनुकूलकृतिमत्त्वं कर्तृत्म्’<sup>128</sup>** अर्थात् क्रिया के अनुकूल कृति को धारण करने वाला कर्ता है, या यह कह सकते हैं कि जिस कारक में क्रिया के अनुकूल ‘कृति’ रहती है उसे कर्ता कहते हैं। उदाहरणार्थ:- ‘चैत्रः पचति’ (चैत्र पकाता है इस स्थल में ‘पच्’ धातु से ‘पाक’ क्रिया का बोध होता है। पाक क्रिया के अनुकूल प्रयत्न का आश्रय ‘चैत्र’ है। अतः इस वाक्य में चैत्र को केवल ‘पाक’ क्रिया का ही कर्ता माना जाएगा, किसी अन्य क्रिया का नहीं।

गदाधर भी व्युत्पत्तिवाद में चेतन पदार्थों का मुख्य कर्तृत्व तथा अचेतन का गौण कर्तृत्व मानते हैं।<sup>129</sup> स्वतंत्र शब्द का परिष्कार करते हुए गदाधर प्राचीन पद्धति को नवीन रूप से प्रस्तुत करते हैं – **‘स्वतंत्रत्वं च कारकान्तर व्यापारानधीन व्यापारवत्त्वे सति कारकत्वम्’<sup>130</sup>** स्वतंत्र उस प्रकार के व्यापार से युक्त कारक है जो दूसरे कारकों के व्यापार के अधीन न हो।<sup>131</sup>

इस प्रकार पाणिनि से उत्तरवर्ती जितने भी व्याकरण प्रकाश में आए सभी ने प्रायः तदवत् ही कर्तृत्व को परिभाषित किया है।

**कर्ता कारक के भेद :-** कर्ता कारक की सर्वत्र तीन भेद किए हैं शुद्ध कर्ता, हेतु कर्ता (प्रयोजक) तथा कर्म कर्ता। किंतु कर्तृ भेद विषयक अवधारणा के विषय में डॉ. रामशंकर भट्टाचार्य ने कर्ता के दो, तीन व पांच भेदों का उल्लेख किया है।<sup>132</sup>

इसे ही भूषणसार कौण्डभट्ट ने शुद्ध, प्रयोजक और कर्म कर्ता कहा है।<sup>133</sup> शृंगार प्रकाश में भी इन्हीं तीनों भेदों का उल्लेख है।<sup>134</sup>

**शुद्ध कर्ता :-** ‘स्वतन्त्रः कर्ता’ के द्वारा इसी का विधान होता है। अन्य कारकों का नियमन करने वाला यह

प्रधान कर्ता है। न्यायकोश में इसका लक्षण दिया गया है कि जो प्रेरणार्थक ‘णिच्’ से भिन्न प्रकृति वाले धातु के द्वारा गृहीत व्यापार का आश्रय हो। जैसे, देवदत्तः पचति।<sup>135</sup> इस कर्ता के छः भेदों<sup>136</sup> का राजा भोज ने शृंगार प्रकाश में वर्णन किया है।

**हेतु कर्ता :-** णिजर्थभूत प्रेरणा व्यापार का आश्रय हेतु कर्ता कहलाता है। जैसे ‘रामः पाचयति’। यहां पाकक्रिया तथा प्रेरणा क्रिया इस प्रकार दो क्रियाएं ‘पाचयति’ में अन्तर्भूत हैं। उनमें पाक क्रिया का आश्रय तो प्रयोज्य (शुद्ध) कर्ता है। किन्तु प्रेरणा व्यापार रामरूप हेतुकर्ता में निहित है।

जैन वैयाकरणों की परंपरा में हेतु कर्ता के तीन भेद किए गए हैं –

**प्रेषक :-** जब प्रयोजक वरीय तथा प्रयोज्य कनिय हो, जैसे-‘यज्ञदत्तः सूपकारणौदनं पाचयति’।

**अध्येषक :-** जब प्रयोजक कनीय तथा प्रयोज्य वरीय हो। इसमें आदर पूर्वक आग्रह का भाव रहता है जैसे – ‘देवदत्तः गुरुं भोजयति’ प्रेषण तथा अध्येषण की चर्चा भर्तृहरि ने भी की है।

**आनुकूल्यगामी :-** जब कोई प्रयोजक अपने प्रयोज्य में मानसिक या भौतिक अनुकूलता उत्पन्न करता है-जैसे ‘सुपुत्रो जनकं हर्षिता’, यहां सुपुत्र अपने पिता में हर्षोदय के द्वारा मानसिक अनुकूलता उत्पन्न करते हुए उन्हें नियुक्त करता है।

शृंगार प्रकाश में कर्ता के छः भेदों का उल्लेख किया है।<sup>137</sup>

**कर्म कर्ता :-** किया जाने वाला कर्म जब अपने आप सम्पन्न होता है तथा सहज होने के भाव के कारण कर्ता के गुणों को अपने में धारण करता हो, तब उसे कर्म कर्ता कहते हैं। जैसे – पच्यते ओदनंस्वयमेव।

भोज देव ने कर्म कर्ता के छः उपभेदों का वर्णन किया है।<sup>138</sup>

**प्रयोज्य-प्रयोजक कर्ता सम्बन्धि विश्लेषण :-** प्रयोज्य को कर्ता मानने का संकेत पाणिनि ने ‘तत्प्रयोजको हेतुश्च’ में दिया है अर्थात् स्वतन्त्र कर्ता को प्रयोजित करने वाले (व्यापार में लगाने वाले, प्रयोजक) की भी कर्तृ संज्ञा होती है, साथ ही उसे हेतु संज्ञा भी हो जाती है। इस सूत्र के आधार पर प्रयोजक को कर्ता तथा हेतु कह सकते हैं। प्रयोजक जिसे काम में लगाता है वही प्रयोज्य है।

किन्तु भाष्यकार उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखकर वार्तिक के द्वारा सर्वप्रथम प्रैष या प्रेरणा में प्रयोजक कर्ता के द्वारा अस्वतंत्र प्रयोज्य कर्ता का प्रयोजक होने से उसकी हेतु संज्ञा का प्राप्त न होना रूप दोष देते हैं, किन्तु स्वयं ही उक्त दोष का निराकरण करते हैं।

**दोष :-** भाष्यकारोक्त वार्तिक का अर्थ है कि प्रैष में अस्वतंत्र का प्रयोजक होने से उसकी हेतु संज्ञा की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि स्वतंत्र कर्ता का प्रयोजक ही हेतु संज्ञक होता है।<sup>39</sup>

भाव यह है कि प्रेरणा देने में जो प्रेरणा देने वाला व्यक्ति है, वह अस्वतंत्र अर्थात् पराधीन कर्ता का प्रयोजक होने से स्वतंत्र कर्ता का प्रयोजक नहीं बनता, क्योंकि जो उसके अधीन काम करने वाला कर्ता है, वह तो उसके अधीन होने से परतंत्र है। इस प्रकार जो प्रयोजक या प्रेरक है, वह स्वतंत्र कर्ता का तो प्रयोजक नहीं बना। फलस्वरूप वैसा स्वतंत्र प्रयोज्य कर्ता न होने से फिर उस के प्रयोजक की हेतु संज्ञा नहीं होती।

**समाधान :-** उपरोक्त वार्तिक में हेतु संज्ञा न प्राप्त होने रूपी दोष बताने के पश्चात् भाष्यवार्तिककार उसका समाधान देते हैं कि प्रयोज्य के स्वतंत्र होने से हेतु संज्ञा सिद्ध हो जाएगी। क्योंकि स्वतंत्र होने से अर्थात् दृष्टसामर्थ्य अथवा सम्भावित सामर्थ्य वाले प्रयोज्य कर्ता के द्वारा प्रयोजक के अधीन होने पर भी उसकी अपने व्यापार में स्वतंत्रता विवक्षित है। इसलिए प्रयोज्य होता हुआ भी वह अपने व्यापार में स्वतंत्र है। ऐसी स्थिति में उस स्वतंत्र प्रयोज्य कर्ता का जो प्रयोजक है, फिर उसकी हेतु संज्ञा हो जाएगी।<sup>40</sup>

**प्रयोज्य कर्ता की हेतु संज्ञा मानने पर स्वातंत्र्य और पारतन्त्र्य में विरोध :-** भाष्यवार्तिककार प्रयोज्य कर्ता के द्वारा अपने व्यापार में स्वतंत्र होने से फिर उस के प्रयोजक कर्ता की हेतु संज्ञा मानने पर स्वातन्त्र्य और पारतन्त्र्य में पारस्परिक विरोध बतलाते हुए कहते हैं कि स्वतंत्र होने से यहां हेतु संज्ञा सिद्ध हो जाएगी तो फिर स्वतन्त्रत्व परतन्त्रत्व में विप्रतिषेध आ जाएगा।<sup>41</sup> अर्थात् यदि प्रयोज्य कर्ता को भी अपने व्यापार में स्वतंत्र होने के कारण स्वतंत्र माना जाए तो फिर वह प्रयोज्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रयोज्य का अर्थ जो किसी दूसरे की प्रेरणा से काम करें। यदि वह प्रयोज्य है तो फिर वह स्वतंत्र नहीं रहता। इस प्रकार प्रयोजक की सन्निधि में पारतन्त्र्य के

द्वारा स्वातन्त्र्य के तिरस्कृत हो जाने से प्रयोज्य और स्वतंत्र ये दोनों प्रयोग एक साथ व्यवहृत नहीं हो सकते।<sup>42</sup>

अन्ततः भाष्यवार्तिककार स्वतन्त्र परतन्त्रत्व के उपर्युक्त विप्रतिषेध को अधिक महत्व न देकर अन्यत्र पठित वचनों के आधार पर हेतु संज्ञा प्रयोज्य कारक की कर्तृ संज्ञा को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि सभी कारणों में संशय को छोड़कर यह बात तुल्य है कि बिना प्रेरणा के कोई कार्य नहीं करता। सब प्राणी अपने स्वार्थ में लगे हुए हैं या अपने अपने स्वार्थ के लिए ही लोग किसी को प्रेरित करते हैं। यदि स्वार्थ नहीं होता तो वहां प्रेरणा भी नहीं होती। फलस्वरूप इस हेतु संज्ञा की भी कोई आवश्यकता नहीं है। इस तरह हेतुमति च सूत्र में 'हेतु' शब्द का सामान्य लौकिक अर्थ कारण या निमित्त कर लेंगे तो फिर उसमें धातु मात्र से णिच् सिद्ध हो जाएगा। इस प्रकार भाष्यकार ने स्वतन्त्रत्व परतन्त्रत्व के विप्रतिषेध से ऊपर उठकर हेतु संज्ञा प्रयोज्य कारक की कर्तृ संज्ञा को मानते हुए प्रयोजक कर्ता की हेतु संज्ञा तथा कर्तृ संज्ञा दोनों स्वीकार कर ली हैं।

**उपसंहार :-** उपर्युक्त कर्ता कारक के विवेचन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्ता ही सारे कारकचक्र का प्रयोक्ता अथवा प्रवर्तयिता होता है। यही सबको अपनी अपनी क्रियाओं में प्रवृत्त करता है। वाक्य में सारे कारकों का प्रयोजक कर्ता ही होता है। किन्तु कर्ता का कोई प्रयोजक नहीं होता है, अतः कर्ता स्वतंत्र है। कारक प्रकरण के 33 सूत्रों के संज्ञाधिकार में अपादान, संप्रदान, करण, अधिकरण, कर्म, कर्ता इस क्रम से छः कारक संज्ञाएं दी गई हैं। इनमें पहली संज्ञा अपादान इसलिए कही है कि सारी परसंज्ञाएं अपादान को बाध सकें। अपादानमुत्तराणी कारकाणि बाधन्ते। अतः सारे कारकों का प्रयोजक कर्ता ही होता है किन्तु कर्ता का कोई प्रयोजक नहीं होता। अतः कर्ता स्वतंत्र है।

\*सहायक प्रोफेसर  
संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग  
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

\*शोधार्थी  
संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग  
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

## संदर्भ सूची

1. पा.अ. 3.2.133
2. पा.अ. 1.4.54
3. तद्य प्राधान्ये वर्तते तन्त्रशब्दस्तस्येदं ग्रहणम् – महाभाष्य (भाग-2), पृ. 436
4. कथं पुनर्ज्ञायते – कर्ता प्राधानमिति? यत्सर्वेषु साधनेषु संनिहितेषु कर्ता प्रवर्तयिता भवति – महाभाष्य, पृ. 384
5. 'स्वतंत्रः' इति प्राधानभूत उच्यते। अगुणभूत यः क्रियासिद्धौ स्वातन्त्र्येण विवक्ष्यते तत्कारकं कर्तृसञ्ज्ञं भवति। – काशिका, (1.4.54) (भाग-1), पृ. – (583-84)।
6. अगुणभूतो योऽर्थः क्रियासिद्धौ प्राधान्येन विवक्षितस्तत् कारकं कर्तृसञ्ज्ञं भवति – कारकचक्र, पृ.-107
7. क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् – शब्दकौस्तुभ (भाग-2), 1.4.54, पृ.-139
8. पा.अ. (1.4.55)
9. यत्र तु तेषामविवक्षा – आस्ते देवदत्तः, शेते देवदत्तः इत्यादौ, तत्र न स्यादिति यो देशयेत् प्रत्याह 'अगुणभूत' इति। एवं मान्यताएं – प्रधानेनागुणभाव उपलक्ष्यते गुणभावो यत्र नास्ति से कर्तेति। कारकान्तर विवक्षायामाप्यगुण-भावोऽस्त्येवेति सर्वत्र भवति – न्यास (1.4.54)।
10. स्वं तन्त्रमस्य स्वतन्त्रः विततास्यतन्त्रस्वतन्त्रपित्युच्यते अस्ति च साधारण द्रव्ये पुरुषे वर्तते साधारणं भवेतन्त्रम् स्वं धनं तन्त्रं साधारणमस्य स्वतन्त्रः, अस्ति च प्रधानवचनः स्व आत्मा तन्त्रं प्रधानमस्य स्वतंत्र इति – पदमञ्जरी (1.4.54)।
11. यथा राजा नियुक्तेषु योद्धृत्वं स्थितम्। तेषु वृत्तौ तु लभते राजा जय-पराजयौ॥ तथा कर्त्रा नियुक्तेषु सर्वेष्वेकार्थकारिषु। कर्तृत्वं करणादित्वैरुत्तरं न विरुद्धयते – वाक्यपदीय, सा.समु. (22-23)।
12. अष्टाध्यायी सहज बोध, पृ. 57
13. किं यस्य स्वं तन्त्रं स स्वतंत्रः। महाभाष्य (1.4.55)।
14. तद्य प्राधान्ये वर्तते तन्त्रशब्दस्तस्येदं ग्रहणम् – महाभाष्य।
15. क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात् – सि. कौ. (भाग-1) सूत्र 559, पृ. 633 ।
16. अस्ति प्राधान्ये वर्तते तद्यथा स्वतन्त्रोऽसौ ब्राह्मण इत्युच्यते। – महाभाष्य।
17. प्रधानीभूतधात्वर्थं प्रति आश्रयत्वं स्वातन्त्र्यम् – प्रौढमनोरमा, (तृतीय भाग), पृ. 879
18. स्वातन्त्र्यं च धातूपात्तव्यापाराश्रयत्वमेव – शब्दकौस्तुभ (भाग-2), पृ. 139
19. To reject the meaning 'weaver' for svatantra the bhasya says that svatantra is also used in the sense of (being) oneself the chief one, i.e, independent, and that this is the sense we need here – S.D Joshi page no. 269. स्वतंत्रः कर्ता।
20. जै. व्या. 1.2.24
21. सरस्वतीकंठाभरण 1.1.33
22. हेमशब्दानुशासन 2.2.2
23. करोतीति कर्ता, स्वतंत्रः क्रियासिद्धावगुणत्वेन विवक्षितः साक्षात् क्रियाश्रय इति यावत् – मुग्धबोधव्याकरण 289, पृ. 297
24. कातन्त्र व्याकरण 2.4.14
25. तत्र प्रकृत धातु वाच्य व्यापाराश्रयत्वं कर्तृत्वं। – प.ल.म. पृ. 316
26. वाक्य. सा.समु. (3.7.101-102)
27. सर्वदर्शनसंग्रह, अक्षपाद – दर्शन, पृ. 506
28. कारक चक्र, पृ. 15
29. कर्तृत्वं च मुख्यं क्रियानुकूलकृतिरेव। एवं कर्तृपदमपि व्यापारादिमत्यचेतनादौ भाक्तमेव। अचेतनादौस्वरसतः कर्तृपदाप्रयोगात्। – व्युत्पत्तिवाद, पृ. 210, 214
30. व्युत्पत्तिवाद, पृ. 215
31. क्रिया क्वापि न कर्तृविनाकृतेति कारकान्तराणां कर्तृसापेक्षत्व नियमः। कर्तृश्चापादानादिविनाकृताया अपि सम्बन्ध इति न कारकान्तरापेक्षानियमः। – विभक्तियर्थविचार, पृ. 194
32. पाणिनीय व्याकरण का अनुशीलन, पृ. 141-142
33. अयञ्च त्रिविधः – शुद्ध, प्रयोजक हेतुः, कर्मकर्ता च – वै.भू.सा., पृ. 196
34. कर्त्रा च षण्णामपि प्रत्येक त्रिप्रकारत्वादष्टादश प्रभेदा भवन्ति। तत्र कर्ता स्वतंत्रः हेतुः कर्मकर्ता च – श्रृ.प्र. (भाग-1), पृ. 146
35. प्रेरणार्थकणिजप्रकृतिधातूपात्तव्यापाराश्रयत्वमिति यावत् – न्या. कोश, पृ. 2021
36. तच्च कर्तृभेदेषु स्वतंत्रः समर्थोऽसमर्थस्समर्थसमर्थः, सम्बन्धोऽसम्बन्धस्सम्बन्धासम्बन्धश्च। श्रृ. प्र. (भाग-1), पृ. 146

37. हेतुः कर्मप्रयोजकः कर्तृप्रयोजकः हेतु प्रयोजकः  
अहेतुप्रयोजकः हेत्वहेतुप्रयोजकश्च। श्रृ. प्र. (भाग-1)  
पृ. 146
38. कर्मकर्ता, विकर्मकर्ता प्रयोज्यकर्ता, कर्मप्रयोज्यकर्ता,  
प्रकृति कर्ता विकार कर्ता प्रकृति विकार कर्ता च।  
- श्रृ. प्र. (भाग-1), पृ. 146
39. प्रैषेऽस्वतन्त्रप्रयोजकत्वाद्धेतुसंज्ञाऽप्रसिद्धिः।  
- महाभाष्य (1.4.55)।
40. स्वतन्त्रत्वात्सिद्धम्। सिद्धमेतत् कथम्? स्वतन्त्रत्वात्।  
स्वतन्त्रमसौ प्रयोजयति। - महाभाष्य (1.4.55)
41. स्वतन्त्रत्वात्सिद्धमिति चेत्स्वतन्त्रपरतन्त्रत्वं विप्रतिषिद्धम्।  
- महाभाष्य (1.4.55)।
42. As far as the urging is concerned the cannot be  
independent- on the other hand, as far as the  
expectation of the action is concerned, he is  
independent. Thus one and the same person  
appears to be not independent and independent,  
which is contradictory - SD Joshi.



आसिफ अली

## विद्यालयी स्तर पर इतिहास की कक्षाओं में स्थानीय अतीत और उसका महत्त्व

**स**भी मनुष्यों और समाजों की जड़ें अतीत में होती हैं अर्थात् परिवारों, समुदायों, राष्ट्रों या अन्य सन्दर्भ समूहों तथा निजी स्मृति की भी जड़ें अतीत में ही पाई जाती हैं। सभी लोग और समाज इन्हीं के सकारात्मक या नकारात्मक संबंधों के जरिए अपनी स्थिति परिभाषित करते हैं। अतीत की किसी न किसी धारणा के आधार पर भविष्य के बारे में अनुमान लगाना मनुष्य की आदत है, वे इसे पीछा नहीं छोड़ सकते।

**हॉब्सबाम (2006)** इतिहास की महत्ता को इंगित करते हुए कहते हैं कि “जिन घटनाओं को आधिकारिक रूप से अतीत कहा जाता है वह याद और याद आने लायक अनंत घटनाओं में से चुनिंदा घटनाएँ ही होती हैं। यह सचेतन इतिहास उन गतिविधियों से बनता है, जिन्हें लोग अपने समाज के लिए येन केन प्रकारेण महत्वपूर्ण समझते हैं। इस औपचारिक सामाजिक अतीत का क्षेत्र किस समाज में कितना अधिक होगा यह स्वाभाविक रूप से परिस्थितियों पर निर्भर होता है। अतीत से वैद्यता मिलती है यह वर्तमान की गौरवशाली पृष्ठभूमि बनाने के काम आता है। किसी भी मानव समुदाय का सदस्य होने के लिए खुद अपने अतीत के संदर्भ में अवस्थित करना होता है, चाहे अतीत को खर्च करके ही इसलिए अतीत मानव चेतना का स्थायी पहलू है।”

तकरीबन सभी मामलों में भविष्य की शकल गढ़ने के सूत्र तलाशने के लिए अतीत के विकास की प्रक्रिया खंगाली गई है, इससे यह विरोधाभास पैदा हुआ कि हम जितना ही अधिक नवाचार की आशा करते हैं, उतना ही अधिक उसकी शकल तय करने के लिए इतिहास जरूरी

होता है। इस विषय में ई.एच. कार कहते हैं कि – “इतिहास, इतिहासकार और तथ्यों की क्रिया प्रतिक्रिया की अनवरत प्रक्रिया है अर्थात् अतीत और वर्तमान के बीच एक अंतहीन संवाद है।”

इतिहास मानव सभ्यता की जटिल और दीर्घ यात्रा का दस्तावेज है, जो तमाम बाधाओं के बावजूद मानव जाति की प्रगति को दर्शाता है। हम इतिहास से पलायन नहीं कर सकते। हमारा जीवन अतीत द्वारा संचालित होता है। हमारे निर्णय अतीत में क्या घटा होगा इससे संबंधी हमारी सोच से प्रभावित होते हैं। इतिहास भविष्य के उभरते प्रश्नों और अतीत की घटनाओं के बीच संवाद कायम करता है। इतिहास के ज्ञान के बिना मनुष्य और समाज समय से युक्त समुद्र में पतवार विहीन नाव की तरह भटकेंगे।

इतिहास अर्थ और निष्पक्षता तभी प्राप्त करता है, जब वह अतीत और भविष्य के बीच एक सुसंगत संबंध स्थापित करता है। इतिहास सदियों से मनुष्य द्वारा अपने स्वयं के अतीत का पुनर्निर्माण, वर्णन और व्याख्या करने का प्रयास है, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इतिहास मनुष्य का जीवित अतीत है। यह सामूहिक पहचान और भविष्य की संभावनाओं की भावना विकसित करता है। इतिहास का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें अपने अतीत को समझने की अनुमति देता है। अकसर कहा जाता है कि इतिहास खुद को दोहराता है, लेकिन अगर हम अतीत की सफलताओं और असफलताओं का अध्ययन करते हैं तो हम अपनी गलतियों से सबक ले कर आने वाले वक्त में उन्हें दोहराने से बच सकते हैं।

गहरे मायनों में इतिहास का वास्ता अतीत के उन क्रियाकलापों से है जिसके भीतर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को शामिल किया जाता है। इतिहास विषय की आवश्यकता पर रोशनी डालते हुए इतिहासकार **रोमिला थापर** कहती हैं कि “मानवीय एवं राष्ट्रीय विरासत को समझने के इतिहास का इल्म बेहद जरूरी है। इतिहास विषय के अध्ययन से स्थानीय स्तर के इतिहास को जानते हुए राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर के इतिहास को समझने में मदद मिलती है। इतिहास मानव जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालने वाला एक कथ्य है या यूँ कहें कि मानव जीवन की समस्त क्रियाओं के उत्थान और पतन की सूचना देने वाला स्रोत है।”

इतिहास को सार्वभौमिक रूप से विद्यालय पाठ्यक्रम का एक महत्वपूर्ण विषय माना गया है। यह समाज में मानव के विकास का अध्ययन है। इतिहास के अध्ययन के अभाव में न तो हम वर्तमान को समझ सकते हैं और न आने वाले वक्त का आकलन कर सकते हैं। यही वजह है कि पाठ्यक्रम में इतिहास को खास जगह दी गई है। इतिहास के शिक्षण से विद्यार्थियों में अपने देश के अतीत के प्रति प्रेम एवं गौरव की भावना उत्पन्न होती है, एवं इसके ज्ञान से जाति, धर्म, भाषा आदि के बन्धनों को तोड़कर भावनात्मक एकता का विकास किया जा सकता है।

इतिहास का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यक्ति को वर्तमान दुनिया की बेहतर समझ बनाने में मददगार है। हम इसमें पिछले आर्थिक और सांस्कृतिक रुझानों को देख सकते हैं और एक बेहतर समझ बनाने में सक्षम हो सकते हैं। ऐतिहासिक कटु अनुभवों पर गौर करें तो हम यह भी समझ सकते हैं कि आधुनिक दुनिया में कुछ नियम क्यों मौजूद हैं। शायद हमने पिछली गलतियों से सबक लिया और भविष्य में बेहतर और शांतिप्रिय जीवन के लिए इन नियम कायदे कानूनों की जरूरत समझी गई। उदाहरण के लिए, हम फ्रांसीसी क्रांति, रूसी क्रांति के कारणों को इसके भीतर देख सकते हैं। इसके अलावा 1919 और 1935 के अधिनियमों को भी देख और समझ सकते हैं कि भारतीय संविधान बनाने की प्रक्रिया हेतु इतना प्रयास क्यों किया गया। जहाँ कानून के समक्ष सभी समान हों और सार्वजनिक सुविधाओं तक सबकी समान पहुँच बने।

अतः स्पष्ट है कि इतिहास की पृष्ठभूमि के बिना, हम यह नहीं समझ सकते कि संविधान अपने समय के लिए क्रांतिकारी क्यों था और वर्तमान के लिए कितना आवश्यक है।

अधिक व्यापक रूप से, इतिहास हमें विभिन्न संस्कृतियों, समाजों आदि को समझने में सक्षम बनाता है। इतिहास का अध्ययन व्यक्ति को अपने महत्वपूर्ण सोच कौशल का प्रयोग करने की अनुमति देता है। ये महत्वपूर्ण सोच कौशल जीवन के सभी क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण है। ज्यों ज्यों मनुष्य के अनुभव बढ़ते हैं त्यों-त्यों उसके विश्लेषण से उसके चिंतन व चेतना का विकास होता है। इतिहास सम्पूर्ण मानव जाति के अनुभव का भण्डार है। इतिहास में अतीत के अध्ययन का उद्देश्य वर्तमान को प्रभावित करना होता है, अतः इतिहास के अभाव में वर्तमान को भलीभाँति नहीं समझा जा सकता। इस प्रकार इतिहास के अध्ययन के साथ हम वर्तमान और भविष्य को समझ सकते हैं। इसके लिए स्थानीय इतिहास का विशेष महत्व है।

ऐसा लगता है कि इतिहास पहले से कहीं अधिक लोकप्रिय है। जबकि हाल के दशकों में विद्यालयों में इतिहास के अध्ययन में रुचि कम हुई है, हालांकि इतिहास संबंधी गतिविधियों और क्रियाकलापों की भागीदारी में एक साथ उछाल आया है, जिसमें स्थानीय इतिहास, पारिवारिक इतिहास, संग्रहालयों और प्रदर्शनियों का दौरा, मीडिया में इतिहास खंड, विरासत की सराहना करना और इतिहास प्रकाशित करना शामिल है। (डॉयल, 2006) इतिहास अतीत और वर्तमान का दर्पण है। जब ‘स्थानीय’ शब्द ‘इतिहास’ शब्द से पहले लगा होता है तो कनेक्शन बदल जाता है। ‘स्थानीय’ एक ऐसा शब्द है जो एक संबंधपरक अवधारणा को व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए, एशिया एक महाद्वीप के रूप में दुनिया के लिए ‘स्थानीय’ है और उसी तरह बोराल एक गांव, चौबीस परगना के लिए ‘स्थानीय’ है, जो पश्चिम बंगाल राज्य या प्रांत का एक प्रशासनिक जिला है जो 15 अगस्त 1974 से पहले बंगाल था। यहाँ ‘स्थानीय’ शब्द ने किसी स्थान की भौगोलिक सीमा को संकुचित कर दिया है और उसमें भावना, देशभक्ति, पहचान आदि कई चीजें भी जोड़ दी हैं। (घोष, 2001)

‘स्थानीय इतिहास’ शब्द उतना सरल नहीं है जितना लगता है। परंपरागत रूप से, स्थानीय इतिहास को एक

शौकिया लेखकों द्वारा स्थानीय दर्शकों के लिए लिखे गए एक शहर, क्षेत्र या राज्य के बारे में लेखन के रूप में माना जाता है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के इतिहास के व्यावसायीकरण के बाद से, कई मान्यता प्राप्त इतिहासकारों ने शौकिया स्थानीय इतिहासकारों और उनके लेखन को तिरस्कृत रखा और उन्हें पेशे का हिस्सा नहीं माना इसके विपरीत, बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में, कुछ शिक्षाविदों ने 'स्थानीय इतिहास' शब्द को समुदाय के अध्ययन के लिए अत्यधिक अकादमिक मोनोग्राफ का उल्लेख करने के लिए विनियोजित किया जो एक विशेष समुदाय के बारे में प्रश्नों का पता लगाते हैं। (पास्टर्नक, 2009)

स्थानीय इतिहास को स्थानीय लोगों के दृष्टिकोण से लिखा जाना चाहिए। स्थानीय इतिहास ऐतिहासिक स्थलों और समाजों से संबंधित जानकारी प्रदान करके किसी विशेष स्थानीय के समुदाय के जीवन और समय को समृद्ध करता है। स्थानीय इतिहास उस क्षेत्र के भीतर कई अलग-अलग विषयों से संबंधित है, जैसे तथ्यात्मक घटनाएँ, सांस्कृतिक विरासत, वंशावली और लोककथाएँ। ऐसे सभी कार्य ऐतिहासिक स्थलों, घटनाओं, व्यक्तियों और संस्थानों, सांस्कृतिक प्रथाओं, पूजा पद्धतियों, लोक गीतों और कला रूपों पर सभी प्रकार की बहुमूल्य जानकारी प्रदान करते हैं।

अच्छा स्थानीय इतिहास सामाजिक विज्ञान में किए जा सकने वाले सबसे स्थायी योगदानों में से एक है। यह मेगा इतिहास के अनुत्तरित प्रश्नों को आगे बढ़ाने, उन्हें पूरक या पूरक करने, उनके अभिधारणाओं और सामान्यीकरणों का समर्थन या खंडन करने में आसानी पैदा करता है। साथ ही ये तथ्यों और मिथकों का भंडार है जिसे व्याख्यात्मक विश्लेषण और आगे की जांच के अधीन किया जा सकता है। (चेरियन, 2009)

वे आगे लिखते हैं कि स्थानीय इतिहास अतीत के क्षेत्रों का अध्ययन है। स्थानीय अध्ययन के तहत क्षेत्र आमतौर पर भौगोलिक रूप से छोटा शहर, कस्बा या गांव होता है। अधिकांश राष्ट्रों के मामले में स्थानीय इतिहास के लिखने के प्रयास 1840 में मिलने शुरू हुए। भारत में स्थानीय इतिहास 20वीं शताब्दी में राष्ट्रवादी आंदोलन के उदय से तेज हुआ। स्थानीय मुद्दों और पहलुओं के साथ बढ़ती चिंता ने भी स्थानीय इतिहास का अध्ययन किया है।

हाल के दिनों में स्थानीय इतिहास के अध्ययन और लेखन में और ज्यादा रुचि पैदा हुई। (चेरियन, 2009)

स्थानीय इतिहास हमें मानव की दशा के बारे में जानकारी देता है। स्थानीय संदर्भ में इतिहास का अध्ययन स्थानीय इतिहास (लोकल हिस्ट्री) कहलाता है। यह अकसर स्थानीय समुदाय जाति वर्ग एवं धर्म को प्रभावित करने वाली घटनाओं पर ध्यान केंद्रित करता है। इसमें कोई स्थान विशेष की घटनाएं उदाहरण के लिए आंदोलन, युद्ध, क्रांति, परिवर्तन, सामाजिक घटनाचक्र, जन्म, मृत्यु आदि कुछ भी हो सकता है। उदाहरण के लिए दिल्ली का वार मेमोरियल एवं इंडिया गेट देखकर हम स्थानीय समुदाय के उन लोगों के जीवन को याद करते हैं, जो युद्ध के दौरान मारे गए थे। उन लोगों ने अपने जीवन को त्याग दिया ताकि हम अपने आने वाले जीवन का आनंद उठा सकें। इस बात का कोई खास फर्क नहीं पड़ता कि हम कितने अलग हैं। हम जिस शहर, गांव या स्थान विशेष पर रहते हैं, उसका एक साझा इतिहास है। स्थानीय इतिहास हमारे समुदाय के लिए बेहद जरूरी और महत्वपूर्ण है। स्थानीय इतिहास साझा अनुभवों को दर्शाता है। उदाहरण के लिए पाकिस्तान से आए शरणार्थियों के विशेष प्रकार के अनुभव हैं, जिनसे हम भविष्य के लिए सीख ले सकते हैं। स्थानीय इतिहास हमें इतिहास के पुनर्निर्माण करने और समझ बनाने में मदद करता है और यह भी समझने में मदद करता है कि लोग पहले कैसे रहते थे, वर्तमान और भविष्य से यह कैसे संबंधित है।

हाल ही में टेरी बार्नहार्ट जैसे इतिहासकारों ने ऐतिहासिक भूगोलवेत्ताओं और मानवशास्त्रियों के काम के साथ-साथ राष्ट्रीय, क्षेत्रीय या सामुदायिक इतिहास के केस स्टडीज को शामिल करने के लिए स्थानीय इतिहास के मापदंडों को विस्तृत किया। वे लिखते हैं, “स्थानीय इतिहास एक बड़ा तम्बू है, विविध शौकिया और पेशेवरों दोनों के जनसांख्यिकीय प्रांत और स्थानीय इतिहासकार इसके नीचे जुड़े हुए हैं।” (पास्टर्नक, 2009)

स्थानीय इतिहास छात्रों को इतिहास के सच्चे अर्थों एवं स्मृतियों को छूने का अवसर देता है। इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में वास्तविक स्थानीय इतिहास खोजना कठिन है, और इन छिपे हुए, परतों में बंद इतिहास को सिखाने के लिए साहस की आवश्यकता होती है। लेकिन छात्रों को इस इतिहास को उजागर करने में मदद करना मुश्किल

नहीं है। वे अपने शहर में सड़कों, स्कूलों और सरकारी भवनों के नामों की उत्पत्ति से शुरू कर सकते हैं, या वे इस बात पर विचार कर सकते हैं कि हमारे राष्ट्र का कठिन इतिहास उनके समुदाय में कैसा रहा। दास व्यापार के बारे में जानने के बाद, वे अपने शहर में गुलामी जैसा जीवन जीने वाले लोगों के जीवन का पता लगा सकते हैं, या भारत छोड़ो आंदोलन को पढ़कर उसमें योगदान देने वाले लोगों के जीवन के बारे में पता लगा सकते हैं और स्थान विशेष के महत्व को भी देख सकते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में भी पाठ्यक्रम में इतिहास को विशेष महत्व दिया गया है। माध्यमिक स्तर पर इसे सामाजिक विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग मानते हुए छात्रों में आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए आवश्यक माना गया है। इतिहास के संबंध में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में कहा गया है कि इसे इस तरह से पढ़ाया जाना चाहिए कि उसके माध्यम से विद्यार्थियों में अपने विश्व की बेहतर समझ विकसित हो और वे अपनी उस पहचान को भी समझ सकें जो समृद्ध तथा विविध अतीत का हिस्सा रही है। साथ ही पाठ्य पुस्तकों तथा दूसरी सामग्री की बहुलता हो जिसमें स्थानीय ज्ञान तथा कौशल शामिल है।

स्थानीय इतिहास छात्रों को अपने समुदाय के साथ-साथ शिक्षा, गरीबी, स्वास्थ्य परिणामों और अन्य मुद्दों में असमानताओं को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है जो वे अपने आसपास देखते हैं। स्थानीय इतिहास का हमारे समुदायों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह शिक्षकों पर निर्भर है कि वे छात्रों को उनके अपने पिछले दौर में गुजरे कठिन इतिहास के बारे में पढ़ाते समय कौन सी रणनीतियाँ अपनाते हैं।

स्थानीय इतिहास एक नागरिक की अपनी मातृभूमि के प्रति देशभक्ति की भावना के विकास में सहायता करता है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपनी परंपराओं, प्राकृतिक स्मारकों, इतिहास और संस्कृति के साथ अपनी जन्मभूमि, शहर या गांव को जानता है और प्यार करता है, और क्षेत्र के विकास में सक्रिय भाग लेता है। इस प्रकार, स्कूली बच्चों के सामान्य ऐतिहासिक ज्ञान का विस्तार और गहरा होता है— स्थानीय इतिहास सामग्री के अध्ययन के माध्यम से, कलात्मक, ऐतिहासिक, लोकप्रिय विज्ञान साहित्य में काम करने की इच्छा विकसित होती है। हमारे चारों ओर

फैली वस्तुएं, स्थान और घटनाएं आदि चीजें पिछली पीढ़ियों की लंबी विरासत को प्रतिबिंबित कर सकती हैं। हम अपने समुदाय एवं जन्मस्थान के मूल या अतीत को थोड़ा बहुत जरूर जानते हैं, किसी क्षेत्र के अतीत की कहानियों को जानकार हमारा वर्तमान के बारे में सोचने का तरीका बदल सकता है।

स्थानीय इतिहास में विवरणों का खजाना है, जो यह प्रकट करने में मदद करता है कि सामाजिक परिवर्तनों ने आम लोगों के जीवन को कैसे प्रभावित किया जैसे दिल्ली में ट्रामगाड़ी से लेकर मेट्रो तक के सफर ने परिवहन और संचार को कैसे आसान बनाया। इसके संबंध में स्थानीय इतिहास की जांच करके पता लगाया जा सकता है कि उन्होंने लोगों के जीवन को कैसे बदल दिया।

स्थानीय इतिहास का अध्ययन आश्चर्य से भर सकता है कि इतिहास हमारे चारों ओर बिखरा हुआ है। स्थानीय इतिहास के बारे में जानने से हमें यह महसूस करने में मदद मिलती है कि ऐतिहासिक परिवर्तन की भव्य योजना हमारे आस-पास के अनगिनत व्यक्तियों से बनी है, जिन्होंने अपने तरीके से हमारे समुदाय की चल रही कहानी में योगदान दिया है और इस कहानी में संभावित रूप से आकर्षक जानकारी है जो खोजने और संरक्षित करने योग्य है।

इतिहास को आम तौर पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर ध्यान केंद्रित करके पढ़ाया जाता है, लेकिन उन जगहों की उपेक्षा हो जाती है जहां से छात्र सबसे अधिक जुड़ाव महसूस करता हैं जैसे आसपास और निवास क्षेत्र। स्थानीय इतिहास में छात्रों को शामिल करने से उन्हें बड़ी घटनाओं में अपने स्थान का विश्लेषण करने और सीखने में मदद मिलती है। इतिहास में अपने हिस्से को समझकर लोग सीधे अपने अतीत के अध्ययन में शामिल हो जाते हैं। स्थानीय इतिहास पर ध्यान केंद्रित करके, छात्र इतिहास पर सवाल करना सीखते हैं। अतः विद्यालय स्तर पर स्थानीय इतिहास का समावेश बेहद जरूरी है।

पीएच.डी. शोधार्थी

शिक्षा विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Mjas.asif@gmail.com

## संदर्भ सूची

- कार एच.ई. (1961), *द आइडिया ऑफ हिस्ट्री*, लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी
- कार एच.ई. (1976), *व्हाट इज हिस्ट्री?* लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी
- चेरीयन (2009), *लोकल हिस्ट्री ऑफ चौगन्नूर : स्टडी ऑफ इंस्टीट्यूशंस एंड सोशल रिलेशंस*, डॉक्टरल डिजर्टेशन महात्मा गांधी यूनिवर्सिटी, 2009
- डायल, एच एंड जॉनसन (2006), *पब्लिशिंग हिस्ट्री गाइड फॉर हिस्टोरिकल सोसायटी कैनबरा*, फेडरेशन ऑफ ऑस्ट्रेलियन हिस्टोरिकल सोसाइटी
- गीरो, हेनरी ए. (1994), *साक्षरता, विचारधारा और विद्यालयी शिक्षा*, परिप्रेक्ष्य वर्ष 1, अंक 2 अगस्त
- घोष (2001), *लोकल हिस्ट्री इट्स मीनिंग, सोर्स, कलेक्शन एंड लाइब्रेरी*. इन जर्नल ऑफ लाइब्रेरी एंड इंफॉर्मेशन साइंस. 6. 37-42. पश्चिम मेदिनीपुर: डिपार्टमेंट ऑफ लाइब्रेरी एंड इंफॉर्मेशन साइंस विद्यासागर यूनिवर्सिटी
- हॉब्सबाम एरिक (2006), *इतिहासकार की चिंता*, नई दिल्ली: ग्रंथशिल्पी प्रकाशन
- हे, डेविड (1996), *द ऑक्सफोर्ड कम्पैनिनन टू लोकल एंड फैमिली हिस्ट्री*, लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
- मोरिल, जॉन। *डायवर्सिटी अक्रफ लोकल हिस्ट्री: हिस्टोरिकल जर्नल* 24, 1 लंदन
- पचौरी. आर. (2007), *इतिहास शिक्षण*, जयपुर: गोयल पब्लिकेशन
- पार्कर, डोनाल्ड डीन एण्ड बर्था ई, जोसेफसन, (1944) *लोकल हिस्ट्री : हाऊ टू कलेक्ट ,राइट एंड पब्लिश*, न्यूयॉर्क, यूएसए: सोशल साइंस रिसर्च कॉन्सिल, हैथीट्रस्ट
- पास्टर्नक (2009), *ए न्यू विजन ऑफ लोकल हिस्ट्री नैरेटिव राइटिंग हिस्ट्री इन कमिंगटन*, मैसाचुसेट्स, मास्टर थीसिस, यूनाइटेड स्टेट: यूनिवर्सिटी आफ मैसाचुसेट्स
- प्रसाद, राजेन्द्र (2002), *इतिहास शिक्षा पर बहस का इतिहास*, नई दिल्ली: सहमत पब्लिकेशन
- राजपूत, जगमोहन (2005), *शैक्षिक परिवर्तन का यथार्थ*, नई दिल्ली : विद्या विहार।
- रिचर्डसन, जॉन (1974), *लोकल हिस्टोरियन्स इनसाइक्लोपीडिया*, न्यू बार्नेट: हिस्टोरिकल पब्लिकेशन
- सेलोरिया, फ्रांसिस (1958), *टीच योरसेल्फ लोकल हिस्ट्री*, लंदन: इंग्लिश यूनिवर्सिटी प्रेस



डॉ. राजेन्द्र कुमार

## न्यायामृत में वर्णित अखण्डार्थ विवेचन की समीक्षा

**बा** दरायण व्यास के ब्रह्मसूत्र से वेदान्त दर्शन का उद्भव स्वीकार किया जाता है, जिससे वेदान्त दर्शन के अनेक सम्प्रदायों का विकास हुआ। अद्वैतवेदान्त दर्शन उस विकास का प्रथम सोपान जिसके अनन्तर अनेकों वेदान्त सम्प्रदायों का सूत्रपात हुआ, जिनमें एक मध्वाचार्य का द्वैतवाद है। श्रीहर्ष ने खण्डनाखण्डनखाद्य नामक ग्रन्थ की रचना न्यायदर्शन के सिद्धान्तों के खण्डन के लिए की, तो न्यायदर्शन के आचार्य श्रीहर्ष के ग्रन्थ को वितण्डा कह उसे निरादर की दृष्टि से देखने लगे उस प्रतिघात का उत्तर देने के लिए चित्सुख ने चित्सुखी नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें उन्होंने भेदवाद का ही खण्डन कर दिया इस पर द्वैतवेदान्त सम्प्रदाय असन्तुष्ट हो गया और द्वैतवेदान्त के आचार्य व्यासतीर्थ ने अद्वैतवाद के सिद्धान्तों के खण्डन के लिए न्यायामृत की रचना की। इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में अभेदवाद को सुदृढ़ करने वाले अखण्डार्थ के सभी आचार्यों द्वारा दिए गए लक्षणों का खण्डन किया गया है, जो इस प्रकार है-

### 2.1 अखण्डार्थ से अभिप्राय

अखण्डार्थ पद दो शब्दों से मिलकर बना है, अखण्ड और अर्थ। प्रथम प्रयुक्त पद अखण्ड में नञ् तत्पुरुष समास है, जिससे अभिप्राय है, जिसे खण्डित न किया जा सके, वह अखण्ड है तथा द्वितीय पद अर्थ का समायोजन करने पर सम्पूर्ण पद का अर्थ यह बनता है, कि जिस अर्थ को खण्डित अथवा तोड़ा न जा सके, उसे ही अखण्डार्थ कहा जा सकता है। अतः जिस वाक्य में सभी पद मिलकर एक अर्थ को कहे, पृथक्-पृथक् अर्थ को न कहे वह अखण्डार्थ है।

अद्वैतवेदान्त दर्शन अभेदवादी दर्शन है, जो एक मात्र तत्त्व ब्रह्म की ही सत्ता को स्वीकार करता है, उसके अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण जगत् को मिथ्या मानता है, इसलिए उसके अनुसार उपनिषद् के सभी वाक्य एक ही अर्थ ब्रह्म का ही प्रतिपादन करते हैं<sup>1</sup> उसके अतिरिक्त किसी पृथक् अर्थ को नहीं कहते हैं। इसीलिए अद्वैतवेदान्त दर्शन उपनिषद् के वाक्यों में अखण्डार्थ को स्वीकार करता है, जिसकी सिद्धि के लिए विभिन्न परिभाषाओं एवं उदाहरणों को प्रस्तुत करता है, जिससे एकमात्र तत्त्व ब्रह्म की सिद्धि हो सके।

इस कारण अद्वैतवेदान्त दर्शन की दार्शनिक परम्परा में अखण्डार्थ का महत्वपूर्ण स्थान है, जिस पर उसका अभेदवादी दर्शन स्थिर है।

### 2.2 अखण्डार्थ लक्षण निराकरण

अद्वैतवेदान्त के अभेदवादी होने के कारण द्वैतवादी सम्प्रदाय का खण्डन स्वतः हो जाता है, जिससे द्वैतवेदान्त सम्प्रदाय कदापि सहन नहीं कर सकता, इसलिए अद्वैतवेदान्त का खण्डन द्वैतवेदान्त की दृष्टि से अनिवार्य हो जाता है, उसमें भी अखण्डार्थ तो वेदान्त का मूल है, इसीलिए उसका खण्डन किए बिना द्वैत की सिद्धि नहीं हो सकती। द्वैतमतावलम्बी व्यासतीर्थ ने न्यायामृत के द्वितीय अध्याय में सर्वप्रथम अखण्डार्थ को अपने खण्डन का आधार बनाया है, जिसमें अद्वैतवेदान्त के विभिन्न आचार्यों का खण्डन कालक्रम से किया गया है, जिसका वर्णन प्रस्तुत है-

#### 2.2.1 प्रथम लक्षण प्रस्तुतीकरण

प्रथम लक्षण के अनुसार अखण्डार्थ से अभिप्राय है<sup>2</sup>, “भेद रहित अर्थों की प्रतीति कराना”। अर्थात् जो वाक्य

भेद रहित अर्थ की प्रतीति कराते हैं, वे ही अखण्डार्थ के द्योतक हैं। इस लक्षण के अनुसार जो वाक्य भेद रहित अर्थ से युक्त होता है वही अखण्डार्थ है। यथा व्यवहारिक दृष्टान्त लेते हैं, जैसे परम बुद्धिमान व्यक्ति यहाँ परम और बुद्धिमान दोनों ही विशेषण एक अर्थनिष्ठ व्यक्ति को बताते हैं अर्थात् वह व्यक्ति ही अत्यन्तबुद्धिमान है। इसलिए 'अत्यन्त बुद्धिमान होना' उस व्यक्ति के ही अर्थ को प्रकट कर रहा है। अतः यहाँ अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति इस वाक्य में भेद रहित अर्थ प्राप्त हो रहा है और यह निर्भेदार्थनिष्ठ है। इसप्रकार इस लक्षण की सिद्धि हो जाती है। शास्त्रीय दृष्टान्त के अनुसार, जैसे उपनिषद् का वाक्य 'सत्यम् ज्ञानं अनन्तम् ब्रह्म' इसमें सत्य, ज्ञान और अनन्त तीनों पद विशेष्य ब्रह्म के विशेषण हैं तीनों पदों में भेद होने पर भी तीनों का एक ही अर्थ ब्रह्म को कह रहे हैं, कि वह ब्रह्म सम्य और ज्ञान की पराकाष्ठा है। अतः इसप्रकार से उपनिषद् के वाक्य एक ही अर्थ की प्रतिपादन करता है अतः उपनिषद् के सभी वाक्य एक ही अर्थ अर्थात् ब्रह्म को ही बताते हैं इसलिए वह अखण्डार्थ का प्रतिपादन करते हैं।

### लक्षण में दोष

व्यासतीर्थ ने प्रस्तुत लक्षण में अतिव्याप्ति और विकल्पाहसत्व दो दोष दिखाए हैं, जो इसप्रकार हैं-

**अतिव्याप्ति** व्यासतीर्थ ने इस लक्षण का अपनी अनुसार अर्थ किया है की **निर्भेदार्थनिष्ठत्व** से अभिप्राय है<sup>3</sup> "भेद के आभाव से युक्त होना" अर्थात् भेद रहित होने का अभिप्राय व्यासतीर्थ ने भेद का अभाव ग्रहण किया है। जो अर्थ भेद के आभाव को प्रकट करता हो वह अखण्डार्थ है, किन्तु भेद के आभाव को तभी दिखाया जा सकता है जब उसमें भेद का भाव हो तथा जैसे ही भेद का भाव की सिद्धि होती है वैसे ही वह अर्थ अखण्डार्थ न होकर खण्डार्थ हो जाता है अर्थात् भेदों की प्रतीति करने लगता है और वह अखण्डार्थ नहीं रह जाता है। इसलिए उसका खण्डन हो जाता है। **यथा निर्घटं भूतलम्** में घट का अभाव तभी दिखाया जा सकता है जब उसका भाव अर्थात् उसकी उपस्थिति रहती हो जैसे ही उसकी उपस्थिति को स्वीकार कर लिया जाता है वैसे ही उसका भूतल से भेद सिद्धि हो जाता है। इसलिए अखण्डार्थ में खण्डार्थ की आपत्ति होती है। अतः पूर्वपक्षी द्वारा दिया गया यह लक्षण ठीक नहीं है।

**विकल्पाहसत्व** यहाँ पर विकल्पाहसत्व से अभिप्राय है, कि **निर्भेदार्थनिष्ठत्व**<sup>4</sup> का निर्वचन नहीं हो सकता है, अर्थात् इसके अर्थ के सम्बन्ध में जितने ही विकल्प क्यों न मान लिए जाएं सभी असम्भव होंगे। व्यासतीर्थ का कहना है-निर्भेदार्थत्व का अर्थ यदि **भेदाभाव विशिष्टत्व** अर्थात् भेद के अभाव से विशिष्ट किया जाए, कि-जो रूप है या भेद के अभाव से उपलक्षित जो रूप हैं वह अखण्डार्थ है, तो उसे मानने से वह वैसे ही सखण्डार्थ हो जायेगा। जैसे **निर्घटम् भूतलंवाक्यों** में होता है। निर्घटम् भूतलम् का अर्थ है घटाभाव वाला भूतल। इसमें दो तत्व की प्राप्ति होती है, एक हो गया विशेषण और दूसरा हो गया विशेष्य। घट के आभाव से विशिष्ट जो भूतल है। इसमें दो अर्थ की प्राप्ति हुई। अतः यह सखण्डार्थ है। इसी प्रकार भेद के अभाव से विशिष्ट जो रूप है उसे यदि अखण्डार्थ कहा जाये, तो यह भी निर्घटं भूतलं के समान सखण्डार्थ हो जायेगा। तथा यदि अन्य विकल्प यह ग्रहण करें कि "जिन वाक्यों के पदों में भेद न हो" और उन पदों से विशिष्ट जो पद है वही अखण्डार्थ है तो यहाँ दो अर्थ की प्राप्ति होने लगेगी, एक हो गया जिन पदों में भेद न हो दूसरा इन पदों के भेद से विशिष्ट। दूसरा अथप्राय लें तो जैसे सत्य, ज्ञान, अनन्त, ब्रह्म इन पदों से वाक्यों में भेद रहित अर्थों का मतलब यदि भेद के आभाव से विशिष्ट रूप को मानेंगे, तो ये भी सखण्डार्थ कहे जाएंगे, यद्यपि इन तीनों पदों में भेद नहीं है क्योंकि तीनों ब्रह्म को बता रहे हैं फिर भी यहाँ इन तीनों से विशिष्ट ब्रह्म मानने से यहाँ सखण्डार्थ की प्राप्ति होगी। अतः निर्भेदार्थ निष्ठत्व के सभी विकल्प असम्भव होने के कारण इस लक्षण में विकल्पाहसत्व दोष है।

### 2.2.2 द्वितीय लक्षण प्रस्तुतीकरण

द्वितीय लक्षण के अनुसार<sup>5</sup>, "सभी वेदान्त वाक्यों का ब्रह्म के स्वरूप को कहना ही अखण्डार्थ है।" अर्थात् सभी वेदान्त वाक्यों के द्वारा एकमात्र ब्रह्म का प्रतिपादन करना अखण्डार्थ है। यथा- सत्यम् ज्ञानं अनन्तम् ब्रह्म इत्यादि उपनिषद् वाक्य ब्रह्म को ही बता रहा है, इसीलिए यह अखण्डार्थ का प्रतिपादन कर रहे हैं। अतः सभी वेदांत वाक्य ब्रह्म को बताने से एक ही अर्थ का प्रतिपादन करते हैं, ब्रह्म के अतिरिक्त किसी पृथक् अर्थ को नहीं बता रहा है। अतः अखण्डार्थ अर्थ है, जो वाक्य मात्र ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करे।

## लक्षण का दोष

व्यासतीर्थ के अनुसार यह लक्षण अव्याप्ति दोष से दूषित है, “वेदान्त वाक्यों के द्वारा एकमात्र ब्रह्म का प्रतिपादन करना” अखण्डार्थ का यह लक्षण ‘सर्वज्ञ सर्ववित्’ इस प्रकार के वेदान्त वाक्यों पर नहीं घटेगा, क्योंकि इन वाक्यों में ब्रह्म के अतिरिक्त उसके गुणों का भी प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार के अनेक वाक्य भी उपनिषद् में प्राप्त होते हैं। ‘सर्वज्ञ सर्ववित्’ का अर्थ है, ‘ब्रह्म सर्व ज्ञानी और सब कुछ जानने वाला है’ यह तो ब्रह्म का गुण है। इन वाक्यों में दो अर्थ की प्राप्ति होती है। एक पदार्थ दूसरा उसका गुण। यः सर्वज्ञः सर्ववित् इस वाक्य में यः से तात्पर्य है ब्रह्म, और सर्वज्ञ, सर्ववित् उसके गुण हैं, तो ये मात्र एक अर्थ को नहीं कहते हैं। यदि अखण्डार्थ का मतलब ब्रह्ममात्र को ही कहा जाये, तो सगुण वाक्य को अखण्डार्थ नहीं कह पायेंगे। सभी उपनिषद् वाक्य केवल एक ही ब्रह्म का ही प्रतिपादन नहीं करते, अपितु उसके गुणों का भी प्रतिपादन करते हैं। अतः इस प्रकार उपनिषद् वाक्य एक ही अर्थ ब्रह्म को बताते हैं, अखण्डार्थ का यह लक्षण ठीक नहीं है।

### 2.2.3 तीसरा लक्षण प्रस्तुतीकरण

तृतीय लक्षण के अनुसार<sup>6</sup>, “सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद से रहित ब्रह्म मात्र का प्रतिपादन करना ही अखण्डार्थ है”। द्वितीय लक्षण में अव्याप्ति दोष था, उस लक्षण को अव्याप्ति दोष से बचाने हेतु तृतीय लक्षण दिया गया है, जिसमें सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद पद को जोड़ा गया है। इससे अभिप्राय है सजातीय अर्थात् समान जाति वाचक, तथा विजातीय से अभिप्राय है, स्वयं से अन्य जाति का वाचक। इसके अतिरिक्त स्वगत भेद अर्थात् विशेषणादि से रहित जो वाक्य मात्र ब्रह्म का प्रतिपादन करें, वे अखण्डार्थ हैं।

### लक्षण का निराकरण

व्यासतीर्थ ने तृतीय लक्षण को भी अव्याप्ति दोष से दूषित बताया है। यह लक्षण ब्रह्म के अतिरिक्त<sup>7</sup> ‘प्रकृष्ट प्रकाश चन्द्र’ इस अखण्डार्थ वाक्य पर नहीं घटेगा। इस वाक्य में चन्द्र का प्रतिपादन किया गया है, ब्रह्म का नहीं। प्रत्यक्ष अर्थ जब सामने है, तो उसे छोड़कर परोक्ष अर्थ अर्थात् ब्रह्म का ग्रहण नहीं किया जा सकता। बिना किसी प्रतीति तथा बाधा के व्याकरणात्मक अर्थ को छोड़कर अन्य अर्थ लेना सही नहीं। अद्वैतवेदांत के अनुसार सभी लक्षण

वाक्य अखण्डार्थ को ही बताते हैं, क्योंकि लक्षण वाक्य लक्ष्य में ही रहता है। अतः यह एक ही अर्थ को बताते है।<sup>8</sup> असाधारण धर्म का प्रतिपादक होने से ‘प्रकृष्ट प्रकाश’ यह वाक्य चन्द्र का लक्षण वाक्य है। अतः यह वाक्य भी अखण्डार्थ वाक्य है। यह वेदान्त वाक्य भी है वेदान्त वाक्य दो प्रकार के हैं, एक तो महावाक्य है दूसरा अवान्तर वाक्य है। उस अवान्तर वाक्य का वैदिक उदाहरण है जैसे ‘विज्ञानमानन्दं ब्रह्म योज्यं विज्ञानमयः’। इसी अवान्तर वाक्य का लौकिक उदाहरण है ‘प्रकृष्ट प्रकाश चन्द्रः।’ अखण्डार्थ का अर्थ केवल ब्रह्म मानने से ‘प्रकृष्ट प्रकाश चन्द्र’ इस अवान्तर वाक्य में लक्षण नहीं घटेगा। फलतः अव्याप्ति दोष से दूषित होगा।

### 2.2.4 चतुर्थ लक्षण का प्रस्तुतीकरण

अखण्डार्थ लक्षण के खण्डन के प्रसंग में व्यासतीर्थ ने चतुर्थ लक्षण में आचार्य पद्मपाद के लक्षण को प्रस्तुत किया है कि<sup>9</sup> अपर्यायवाची शब्दों का प्रातिपदिकार्थ मात्र में पर्यवसित होना अखण्डार्थ है। इस लक्षण में अखण्डार्थ से अभिप्राय है जो शब्द पर्यायवाची न हो अर्थात् उदक, वारि, अम्बु, पय आदि शब्द प्रातिपदिकार्थ मात्र जल के ही बोधक है। इनको कहते ही जल की प्रतीति होती है अर्थात् ये शब्द जल का ही बोधक है, इसीलिए इसे पर्यायवाची कहा जाता है किन्तु ऐसे शब्द जिनको अलग अलग कहने पर एक प्रातिपदिकार्थ मात्र की प्रतीति न होती जैसे तपः, बल, आयु इत्यादि शब्द एक ही अर्थ के बोधक नहीं हैं इनको पर्यायवाची नहीं कहा जा सकता है किन्तु फिर भी ये शब्द यदि एक ही प्रातिपदिकार्थमात्र के बोधक होते हैं, तो इन्हें अखण्डार्थ कहा जाता है। जैसे सत्यम ज्ञानम अनन्तं ब्रह्म ये तीनों शब्द अलग अलग अर्थों के बोधक होने से पर्यायवाची नहीं हैं किन्तु फिर भी (पर्यायवाची न होते हुए भी) एक ही प्रातिपदिकार्थ मात्र ब्रह्म के बोधक है। अतः ये वाक्य अखण्डार्थ कहते हैं।

### लक्षण में दोष

व्यासतीर्थ ने पद्मपादा आचार्य के लक्षण का खण्डन करते हुए उसमें अतिव्याप्ति दोष दिखाया है, कि अपर्यायवाची शब्दों का प्रातिपदिकार्थ मात्र में पर्यवसित होना यह लक्षण<sup>10</sup> शीतोष्णस्पर्शवन्तौ पयपावकौपर भी घटता है। इस लक्षण वाक्य में शीतस्पर्शवन्त, उष्णस्पर्शवन्त, पयः और पावकः ये चारों अपर्यायवाची शब्द हैं, क्योंकि चारों ही शब्दों का अर्थ भिन्न-भिन्न है परन्तु चारों ही शब्द एक ही

प्रतिपदिकार्थमात्र जलाग्नि को ही बताते हैं। यहाँ जल और अग्नि पयः और पावक में इतरेतर द्वन्द समास है, इसमें समास होने से यहाँ कृततद्धितसमसश्च से प्रातिपदिक संज्ञा भी हुई है और प्रतिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा सूत्र से प्रथमा विभक्ति भी हुई है। अतः पयःपावकौ प्रातिपदिक है, इसमें एक प्रातिपदिक के अर्थ को समझाने वाले अनेक अपर्यायवाची शब्द हैं। इस प्रकार अखण्डार्थ का लक्षण इस वाक्य में भी अतिव्याप्त हो जायेगा।

### 2.2.5 पंचम लक्षण प्रस्तुतीकरण

अखण्डार्थ का पंचम लक्षण पूर्वपक्षी करता है, कि "अपर्यायवाची शब्दों के द्वारा एक से विशिष्ट दूसरे अर्थ की प्रतीति होना"<sup>11</sup> ही अखण्डार्थ है। अर्थात् जब अपर्यायवाची शब्दों के द्वारा विशेषण से पृथक् विशेष्य की प्रतीति होता है, तो वह अखण्डार्थ है। यथा तत्त्वमसि वाक्य में तत् और त्वम् अपर्यायवाची शब्द होते हुए भी एक ही विशेष्य ब्रह्म का बोध कराते हैं।

#### लक्षण में दोष

व्यासतीर्थ के अनुसार यह लक्षण ठीक नहीं है, दस लक्षण में अतिव्याप्ति और इष्टापत्ति दो दोष हैं-

अतिव्याप्ति अखण्डार्थ वाक्य का लक्षण "अपर्यायवाची शब्दों के द्वारा एक से विशिष्ट दूसरे अर्थ की प्रतीति होना"<sup>12</sup> करने पर यह लक्षण नीलोत्पलम् वाक्य पर भी घटता है। नीलोत्पलम् का अर्थ है, नीला कमल। यहाँ नील विशेषण है तथा उत्पल विशेष्य है, जिससे तात्पर्य है नील से विशिष्ट कमल। कमलविशिष्ट नील। यहाँ नील से रूपादि तथा कमल से पत्तादि का बोध होता है। नील गुण है और कमल द्रव्य है, तो उसमें गुण से विशिष्ट द्रव्य है; कमल से विशिष्ट दूसरा तो अर्थ नील होने पर यह वाक्य अखण्डार्थत्व के लक्षण पर घट जाने से अतिव्याप्ति दोष होता है।

**इष्टापत्ति** इष्टापत्ति का अर्थ जो सिद्धान्त पक्षी को अभिप्रेत है, उसी मत का समर्थन करना, जो प्रतिपक्षी के अनुकूल है। इस लक्षण में एक से विशिष्ट दूसरा पद प्रयुक्त करना द्वैतवादी के अनुकूल ही है, जिससे द्वैत की सिद्धि होती है। इसप्रकार इस लक्षण से द्वैत के ही सिद्धान्त की पुष्टि होने से इष्टापत्ति नामक दोष है।

### 2.2.6 षष्ठ लक्षण प्रस्तुतीकरण

पूर्वपक्ष में दिया गया यह लक्षण चित्सुख का प्रतीति होता है, जिसके अनुसार, "वाक्यों में जो संसर्गविषयक

सम्यक् ज्ञान की हेतुता है, वही अखण्डार्थता है, अथवा अपर्याय पदों की एकप्रातिपदिकार्थता का नाम अखण्डार्थता है।"<sup>13</sup> इस लक्षण को दो रूप में चित्सुख ने प्रस्तुत किया है, प्रथम वाक्यों में जो पद हैं, उसमें जो सम्बन्ध से है, उस सम्बन्ध से सम्यक् ज्ञान अर्थात् एकार्थ ज्ञान की प्राप्ति होना, अर्थात् वे सम्यक् ज्ञान को विषय बनाते हो या एक अर्थ को ही विषय बनाते हों, तो वह अखण्डार्थ है। यथा-तत्त्वमसि वाक्य में तीन पद हैं, तत् त्वम् और असि इन तीनों में असि प्रत्यक्ष में उपस्थित व्यक्ति की ओर कथन करता है, जो सामने है, तथा त्वम् भी समने स्थित को ही सम्बोधित करता है, किन्तु यहाँ तत् का प्रयोग भी उसी सामने स्थित व्यक्ति का कथन करता है। सामने स्थित व्यक्ति का संसर्ग अन्य से स्थापित कर एक ही अर्थ को विषय बना रहा है। अतः यही अखण्डार्थ है। द्वितीय लक्षण वाक्य में कहा गया है, कि जो पद पर्यायवाची नहीं है, फिर भी वे एक ही प्रातिपदिक अर्थ को कहते हैं, तो वह अखण्डार्थ है। यथा तत्त्वमसि वाक्य में तीन पद हैं, तत् त्वम् और असि तीनों एक ही प्रातिपदिक अर्थ ब्रह्म को कहते हैं। इसलिए यह वाक्य अखण्डार्थ है।

#### लक्षण में दोष

व्यासतीर्थ के अनुसार यह लक्षण ठीक नहीं है, इस लक्षण में प्रयुक्त सम्बन्ध पद पर आपत्ति जताते हुए, व्यासतीर्थ ने उस लक्षण में<sup>14</sup> अव्याप्ति दोष दिखाया है, क्योंकि इस लक्षण में प्रयुक्त सम्बन्ध का अर्थ यदि संयोग सम्बन्ध ग्रहण करें, तो लक्षण होगा, वाक्यों में जो 'अप्राप्त की प्राप्ति होना'<sup>15</sup> विषयक प्रमा की हेतुता ही अखण्डार्थ है, तो यह अखण्डार्थ ब्रह्म का प्रतिपादन नहीं कर पाएगा, क्योंकि ब्रह्म पहले ही प्राप्त है, उसमें अप्राप्त की प्राप्ति लक्षण व्याप्त नहीं होगा, इसलिए लक्षण में अव्याप्ति दोष है। इसके अतिरिक्त यदि समवाय अर्थ लें, तो वह सम्बन्ध नित्य हो जाएगा। पुनः लक्षण अखण्डार्थ को नहीं कह पाएगा, क्योंकि तत्त्वमसि में तत् का शब्द के अर्थ का सम्बन्ध नित्य नहीं हो सकता अतः अव्याप्ति दोष है।

### 2.2.7 सप्तमलक्षण प्रस्तुतीकरण

पूर्वपक्षी संसर्ग पद के अर्थ में परिष्कार करते हुए कहता है कि संसर्ग से अभिप्राय है, "पदस्मारितपदार्थ की अबोधकता"<sup>16</sup> अर्थात् लक्षण में प्रयुक्त संसर्ग का अर्थ है, पद के द्वारा एक ऐसे पदार्थ का बोध करना जो वाक्य में प्राप्त नहीं है। अभिप्राय यह है, कि वाक्य तत्त्वमसि में तत्

पद से ब्रह्म का बोध होता है, औरतत्त्वमसि वाक्य में ब्रह्म रूपी पदार्थ की अबोधकता है। इसी कारण यह लक्षण अव्याप्ति दोष से मुक्त होकर अखण्डार्थ का ज्ञान करता है।

### लक्षण मे दोष

व्यासतीर्थ ने इस परिष्कृत लक्षण में भी अतिव्याप्ति दोष दिखाया है, कि यह परिष्कृत लक्षण 'शत्रोरन् न भोक्तव्यम्'<sup>17</sup> इस वाक्य पर भी घटता है। यदि कोई अगर कहता है, कि शत्रु के घर भोजन नहीं करना चाहिए उसके इस वाक्य से स्वतः प्रतीति होती है, कि शत्रु उसमें विष मिलाया होगा। इस प्रकार इस वाक्य में भी अबोधक पदार्थ विष की प्राप्ति हो रही है। इस प्रकार यह वाक्य भी अखण्डार्थ कहलाने लगेगा, अतः यह भी अखण्डार्थ हो

जाएगा।

### उपसंहार

व्यासतीर्थ ने इस प्रकरण में अद्वैतवेदान्त के अभेदवादी सिद्धान्त का खण्डन कर द्वैतवादी सिद्धान्त का मण्डन किया है। अखण्डार्थ को सिद्ध करने वाले जितने भी लक्षण हो सकते थे, सभी को प्रस्तुत कर उसका खण्डन कर दिया गया है। अतः इस प्रकार इस ग्रन्थ के द्वारा व्यासतीर्थ ने खण्डन की परम्परा को अक्षुण्ण रखा है।

सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग  
जानकी देवी मेमोरियल महाविद्यालय  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

### संदर्भसूची

1. तत्वमसि। पृ.16 (छा.उ.), अयमात्मा ब्रह्म। (मा.उ.)।
2. यद्यप्यखण्डार्थनिष्ठत्वं न तावन्निर्भेदात्तिष्ठत्वम्। पृ. 386 न्यायमृत
3. निर्भेदत्वस्य शब्दबोध्यत्वे। पृ. 386 न्यायमृत
4. निर्भेदार्थनिष्ठत्व पृ. 386 न्यायमृत
5. सर्ववेदान्तवाक्यानां। पृ. 386 न्यायमृत
6. पृ. 386 न्यायमृत
7. पृ. 386 न्यायमृत
8. पृ. 386 न्यायमृत
9. प्रातिपत्तिकार्थमात्रेण। पृ. 386 न्यायमृत
10. पयपावकरूपानेक.....। पृ. 386 न्यायमृत
11. नाप्यर्प्यायवाची शब्दानां। पृ. 386 न्यायमृत
12. नीलोत्पलम् इत्यादौवतिव्याप्तिरिष्टापतिश्च। पृ. 386 न्यायमृत
13. संसर्गविषयहेतुता। पृ. 387 न्यायमृत
14. आद्यलक्षणे...अव्याप्ते। पृ. 388 न्यायमृत
15. न्यायमृत अप्राप्तयोः प्राप्तिः संयोगः। पृ. 388 न्यायमृत
16. पदस्मारितपदार्थसंसर्गोक्तौ। पृ. 388 न्यायमृत
17. न चेदमपि द्विषदन्तं न भोक्तव्यम्। इति। पृ. 388 न्यायमृत

### संदर्भग्रन्थसूची

- न्यायामृत – व्यासतीर्थ, प्रो. के. टी पाण्डुरंगी, द्वैतवेदान्त स्टडी सेन्टर, बैंगलोर, 1994.
- छान्दोग्योपनिषद् – गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, 1993.
- मण्डुकोपनिषद् – गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, 1993.
- वेदान्तसार – डॉ. यमुना राम त्रिपाठी, पब्लिशर, शारदा संस्कृत संस्थान. 2020.
- एस. एन. दासगुप्ता (2011) भारतीय दर्शन का इतिहास, प्रकाशक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
- एट्टर, क्रिस्टोफर (2006) गुणात्मक गैर-बहुलवाद का एक अध्ययन, आईयूनिवर्स
- फाउलर, जीनीन डी. (2002) वास्तविकता के परिप्रेक्ष्य : हिंदू धर्म के दर्शन का एक परिचय, ससेक्स अकादमिक प्रेस।
- शर्मा, बीएन कृष्णमूर्ति (1962)। श्री माधवाचार्य का दर्शन? मोतीलाल बनारसीदास (2014 पुनर्मुद्रण)।
- शर्मा, बीएन कृष्णमूर्ति (2000)। वेदांत के द्वैत स्कूल और उसके साहित्य का इतिहास, तीसरा संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास (2008 पुनर्मुद्रण)।



डॉ. दिलीप कुमार जायसवाल

## महाभारत की दृष्टि में दैव एवं पुरुषार्थ की समस्या

**दैव** एवं पुरुषार्थ का द्वन्द्व प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक समय तक दार्शनिकों एवम् चिन्तकों के मध्य विचार-विमर्श का एक प्रमुख क्षेत्र रहा है। महाभारत में जहां मानव-अस्तित्व के सभी पक्षों को अपने विचार का विषय बनाया गया है, वहीं दैव और पुरुषार्थ की समस्या पर समग्रता से विचार किया गया है। मानव-जीवन में दैव (भाग्य) की प्रधानता होती है या मनुष्य के संकल्प-स्वातन्त्र्य के साथ किए गए कर्म (पुरुषार्थ/ पुरुषकार) की प्रधानता होती है अथवा दोनों का समान महत्व होता है, इनमें से प्रत्येक पक्ष पर महाभारत में विस्तृत विचार किया गया है। हम महाभारत के आलोक में इन तीनों पक्षों पर एक-एक करके विचार करेंगे।

हमारा सामान्य अनुभव जीवन में भाग्य की प्रबलता की पुष्टि करता है, शान्तिपर्व के 331वें अध्याय में दैव की प्रधानता पर बल देते हुए कहा गया है कि सभी मानव ऊपर ही ऊपर चढ़ना चाहते हैं और आगे ही बढ़ना चाहते हैं और इसके लिए अपनी सारी ताकत लगा देते हैं, किन्तु सभी अपने वांछित लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पाते। इससे यही प्रमाणित होता है कि सफलता और असफलता के सम्बन्ध में मानवकृत उद्योग से इतर कोई अन्य कारक प्रभावी होता है।

यदि मनुष्य के प्रयासों का फल पूरी तरह उसी के हाथों में हो, तो न कोई वृद्धत्व को प्राप्त हो और न किसी की मृत्यु हो और उसकी सभी कामनाएं सदा पूरी हो जायें, किन्तु ऐसा नहीं देखने में आता है।<sup>1</sup> यदि सबकुछ मनुष्य के प्रयासों के अनुरूप हो तो ऐसा क्यों है कि संयमी,

बुद्धिमान और दक्ष व्यक्ति अपने सर्वोत्तम प्रयासों के बाद भी असफल हो जाता है? वहीं दूसरी ओर, हम पाते हैं कि जो मूर्ख, हैं, गुणहीन हैं, नीचप्रकृति के हैं, वे बिना विशेष प्रयास के ही अपने वांछित लक्ष्य को पा लेते हैं। जो लोग दूसरों को कष्ट देते हैं, दूसरों का स्वत्व छीन लेते हैं, उनका स्वयं का जीवन सुखमय होता है और जो गुणी, सदाचारी होते हैं उनका जीवन कष्टों से भरा होता है। धन और समृद्धि के अधिकारी वे होते हैं, जो इसके लिए प्रयास भी नहीं करते और वहीं सतत प्रयास करने वाले निर्धन बने रहते हैं। कभी गर्भ फलित होता है तो कभी गर्भ नष्ट भी हो जाता है, जैसे आम्रमञ्जरी फल होने से पहले ही नष्ट हो जाय।<sup>2</sup> मनुष्य संतानप्राप्ति के लिए देवोपासना करता है अन्यान्य यत्न करता है लेकिन संतानलाभ नहीं होता, यदि बहुत यत्न होने के बाद पुत्र पैदा भी जाये तो बहुत संभव है वह कुलनाशक हो जाये। रोगग्रस्त व्यक्ति वैद्य के पास जाते हैं, अत्यधिक धन व्यय करते हैं स्वस्थ होने के लिए, लेकिन रोगी का रोग ठीक होने का नाम नहीं लेता। पराक्रमी, गुणी और सदाचारी व्यक्ति नीच, गुणहीन व्यक्तियों की चाकरी करते देखे जाते हैं।

मानव-जीवन में विद्यमान ये विडम्बनाएं हर किसी को अचम्भित करती हैं। कर्म-सिद्धान्त से उपात्त यह व्याख्या हमें सन्तुष्ट नहीं कर पाती कि मनुष्य अपने शुभ और अशुभ कर्मों के अनुरूप सुख-दुःख का भागी होता है, क्योंकि यह समझ पाना कठिन हो जाता है कि किस प्रकार एक नैतिक दृष्टि से उत्कृष्ट व्यक्ति ने कैसे पूर्व जन्म में ऐसे गहिर्त कृत्य किए होंगे जिसके परिणामस्वरूप

उसे इस प्रकार दुःख भोगना पड़ रहा है। साथ ही, दुष्ट और क्रूर प्रकृति के व्यक्ति ने क्या पूर्वजीवन में ऐसे पुण्य अर्जित किए होंगे कि वह वर्तमान में ऐसा ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत कर रहा है। ये विसंगतियां ही एक अदृष्ट दैव की ओर इंगित करती हैं, जिसके चलते व्यक्ति को न तो अति उत्साहित होना चाहिए और न संतापग्रस्त। जो मनुष्य का प्राप्तव्य है वह वो पाकर रहेगा और जो भवितव्य है वह भी होकर रहेगा –

यथायथास्य प्राप्तव्यं प्राप्नोत्येव तथा तथा।

भवितव्यं यथा यच्च भवत्येव तथा तथा॥<sup>3</sup>

जो उसे मिलना नहीं है, वह बल, बुद्धि, शील, वृत्ति, अर्थ, संपदा किसी से भी पाया नहीं जा सकता।

नमुचि, जब राजपद से च्युत होकर दुरवस्था को प्राप्त हो गया, तो ऐश्वर्य खोने पर नमुचि इंद्र से कहता है कि अपने पूर्व वैभव का स्मरण करके किए जाने वाला सन्ताप केवल शरीर को सुखाता है और ऐसी स्थिति केवल शत्रुओं के लिए प्रीतिकर होती है। इसलिए सन्ताप करना व्यर्थ है, यह सन्ताप व्यक्ति के वर्तमान रूप और श्री का नाश कर देता है जो ऐसा समझकर मोहग्रस्त नहीं होता, वहीं वस्तुतः धनवान है।<sup>4</sup>

इस प्रकार दैव-तत्त्व की प्रधानता का पक्ष रखकर महाभारत में अनेक स्थलों पर पुरुषार्थ की प्रधानता का पक्ष भी स्पष्टता के साथ रखा गया है। मानवीय प्रयास के प्रति विश्वास प्रत्येक सफलता का एक अनिवार्य तत्व होता है और इसका अभाव असफलता के लिए उत्तरदायी होता है, ऐसा प्रत्यक्ष देखने में आता है।

यदि कर्म फलित न हो तो उसके लिए कृत श्रम व्यर्थ सिद्ध होगा और वह मनुष्य परिश्रम न करके भाग्य भरोसे बैठ जाएगा और ऐसा करने से प्रगति रुक जाएगी तथा सबकुछ नष्ट हो जाएगा।

जब युधिष्ठिर भीष्म से भाग्य और पुरुषार्थ में कौन प्रबल है, ऐसा पूछते हैं तो भीष्म बताते हैं कि यहीं प्रश्न जब ऋषि वशिष्ठ ने ब्रह्मा से पूछा तो ब्रह्मा ने पुरुषार्थ की प्रबलता बताते हुए कहा कि यह सर्वविदित है कि बिना बीज के कुछ अंकुरित न ही हो सकता है और न ही फल आ सकता है, बीज से ही बीज पनपता है और उसमें फल आता है। बीज के अंकुरित होने के लिए आवश्यक है कि उसे भूमि में उसका समुचित वपन हो, ठीक इसी प्रकार

बिना पुरुषार्थ के भाग्य भी फलित नहीं हो सकता। सतत परिश्रम से मनुष्य सौभाग्य, सम्पदा, बल, सब कुछ पा लेता है किन्तु भाग्य के सहारे बैठ कर वह कुछ नहीं पाता।<sup>5</sup>

जिस प्रकार सूक्ष्म अग्नि पवन द्वारा उद्वेलित होकर बड़ी बन जाती है, उसी प्रकार मानव प्रयत्न के बल से ही भाग्य प्रस्फुटित होता है। जिस प्रकार तेल के अभाव में दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार मनुष्य के प्रयत्न के बिना भाग्य भी नष्ट हो जाता है। इस जीवलोक में बिना पुरुषार्थ के कोई प्रगति करते दिखाई नहीं देता-किसी के द्वारा चयनित पथ को भाग्य भी नहीं बदल सकता। जिस प्रकार शिष्य गुरु का अनुसरण करता है उसी प्रकार भाग्य पुरुषार्थ का।<sup>6</sup>

पुरुषार्थ के बल पर मनुष्य जो चाहे प्राप्त कर सकता है किन्तु जो भाग्य के आश्रय होकर अकर्मण्य बना रहता है वह अपने प्राप्तव्य का भी भोग नहीं कर पाता है और स्वयं का विनाश कर लेता है। दैव एवं पुरुषकार के अन्योन्याश्रित होने पर भी उत्कृष्ट जन पुरुषकार का आश्रय लेते हैं और कायर भाग्य के सहारे रहते हैं।<sup>7</sup> उद्यमियों के विषय में पंचतंत्र में कहा गया है कि अधम-जन विघ्न-बाधाओं के भय से कार्य का आरम्भ नहीं करते। मध्यम-कोटि के व्यक्ति बाधाओं के आने पर कार्य को बीच में छोड़ देते हैं। उत्तम जन हजारों विघ्न-बाधाओं के पड़ने पर भी प्रारंभ किए कार्य को नहीं छोड़ते।<sup>8</sup>

वनवास के दौरान द्रौपदी युधिष्ठिर से बड़े स्पष्ट एवं तर्कसंगत स्वरो में पुरुषार्थ के समर्थन में कहती है, जिसके अनुसार अपने प्रयत्न के बल पर मनुष्य जो चाहे प्राप्त कर सकता है। इस क्रम में द्रौपदी यह प्रश्न करती है कि क्या मनुष्य जो है, वह होने के लिए स्वतंत्र है अथवा दैव, काल, नियति या ईश्वर के पराधीन है? द्रौपदी के पूरे कथन का सार यह है कि सम्प्रति वे सब महान संकट की अवस्था में थे और ऐसे समय में पुरुषार्थ के सामर्थ्य या सफलता-असफलता के सम्बन्ध में अन्तहीन तर्क करने की बजाय अगर पूरी तरह उद्योगरत हो जाए तो जो खो दिया है वह पुनः प्राप्त किया जा सकता है। द्रौपदी का निष्कर्षस्वरूप कहना है-

देशकालावुपायांश्च मंगलं स्वस्तिवृद्धये।

युनक्ति मेधया धीरो यथाशक्ति यथाबलम्॥

देश और काल को ध्यान में रखते हुए, अपनी क्षमताओं और बल का प्रज्ञापूर्वक आकलन करके धीरे व्यक्ति उद्योगरत होकर अपने कल्याण-साधन के लिए तत्पर होता है।<sup>9</sup>

अब तक यहाँ महाभारत की दृष्टि में पुरुषार्थ अथवा दैव की प्रधानता के प्रश्न को एक-दूसरे से पृथक्ता में समझने का प्रयास किया गया और ये पाया गया कि व्यक्ति को अपने अनुभव-लोक में प्रत्येक के पक्ष और विपक्ष में तर्क मिल जाते हैं और दोनों में से कोई भी मनुष्य की जीवन-स्थितियों में निहित भिन्नताओं की व्याख्या करने में समर्थ नहीं है। दो विरोधी ध्रुवों के मध्य समन्वय की प्राचीन परंपरा का अनुवर्तन करते हुए कृष्ण ने दैव और पुरुषार्थ के सम्बन्ध में समन्वयकारी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। जब कृष्ण पांडवों का शांतिदूत बनकर कौरवों के यहाँ जाते हैं ताकि संभावित युद्ध को रोका जा सके और पांडवों को उनका न्यायसंगत भाग मिल सके तो प्रस्थान की बेला में कृष्ण कहते हैं कि वे दोनों पक्षों के हित-साधन के लिए प्रयासरत हैं। मानवीय प्रयत्नों से भूमि को कितना ही उपयुक्त और कृषि-योग्य क्यों न बना लिया जाय, उचित समय पर वर्षा होने पर ही उपज होगी। भूमि की जुताई और सिंचाई में मानवीय यत्न निहित होता है परन्तु दैववश सूखा भी पड़ सकता है, इसलिए सज्जनों ने उचित कहा है कि लोकस्थिति दैव और पुरुषार्थ की सहकारिता में है।<sup>10</sup> कृष्ण कहते हैं कि वे सब करने के लिए स्वतन्त्र हैं जो उनकी सामर्थ्य की सीमा में है, किन्तु दैव को अन्यथा कर देना सामर्थ्य से परे है।<sup>11</sup>

एक अन्य प्रसंग में पार्वती शिव के समक्ष शंका प्रकट करती हैं कि कुछ लोग यह मानते हैं कि दैव के अनुरूप ही मनुष्य कर्मों में प्रवृत्त होता है। दूसरे यह मानते हैं कि दैव नहीं वरन् पुरुषार्थ के अनुरूप प्रवृत्ति होती है। ये परस्पर विरोधी मत हैं। संशय और कौतूहल से युक्त होकर उमा शिव से शंका का समाधान चाहती हैं।<sup>12</sup>

शिव उत्तर देते हैं कि फलनिष्पत्ति की दृष्टि से दोनों पृथक्-पृथक् पर्याप्त नहीं हैं, प्रत्येक कर्म की सिद्धि में दोनों की पूर्वापेक्षा है। दोनों के संयोग से ही सफलता मिलती है। जिस प्रकार शीत और ताप एक साथ विद्यमान होते हैं, उसी प्रकार दैव और पुरुषार्थ भी संयुक्त होकर

कार्य करते हैं।<sup>13</sup>

बीज को बोना मनुष्य का कार्य है, किन्तु बीज का अंकुरित होना, उचित समय पर वर्षा होना और अच्छी उपज होना, ये सब दैव का कार्य है। ये तभी घटित होते हैं जब दैव अनुकूल होता है। जो मनुष्य की क्षमता के अन्दर है, वही पुरुषार्थ कहा जाता है और जो बुद्धिगम्य अथवा तर्कगम्य नहीं है वही दैव कहलाता है, चाहे यह लाभकारी हो या अलाभकारी हो, जो मनुष्य प्रयत्न नहीं कर सकता, दैव भी उसकी कोई सहायता नहीं करता, इसलिए सभी कार्य समान रूप से दैव और पुरुषार्थ पर आश्रित होते हैं।<sup>14</sup>

एक अन्य प्रसंग में कृपाचार्य अश्वत्थामा से कहते हैं— सभी मनुष्य दो ही कारकों से बंधे हैं— दैव और पुरुषार्थ — लक्ष्य की प्राप्ति न तो अकेले दैव से होती है और न अकेले पुरुषार्थ के बल से। दोनों के सहकार से ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है। मेघों के पर्वत पर वर्षा करने से क्या फल पाया जा सकता है और उन्हीं मेघों के जुती हुई भूमि पर वर्षा करने से क्या फल नहीं पाया जा सकता? इस प्रकार दैव और पुरुषकार के संयुक्त उपक्रम से ही कार्य की सिद्धि होती है। दैव के द्वारा अनुमोदित मनुष्य के प्रयास निष्फल हो जाते हैं और इसी प्रकार दैव के अपने पक्ष में होने पर भी उद्यम के अभाव में वही दैव निष्प्रभावी हो जाता है।<sup>15</sup>

पुरुषार्थ रहित दैव और दैव रहित पुरुषार्थ ये दो ही जगत में मनुष्य की विफलताओं के लिए उत्तरदायी हैं।<sup>16</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत में दैव और पुरुषार्थ की समस्या का सर्वतोमुखी विवेचन किया है तथा सभी संभावित आयामों का उद्घाटन अमूर्त सैद्धान्तिक आकाश में न करके वास्तविक जीवन-स्थितियों की भूमि पर किया गया है। महाभारत में दैव और पुरुषार्थ की समस्या को दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक सभी विचारभूमियों पर उतार कर व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखने का प्रयास किया गया है।

असिस्टेंट प्रोफेसर  
संस्कृत विभाग, विवेकानन्द कॉलेज  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## संदर्भ सूची

1. शान्तिपर्व, 331.37
2. शान्तिपर्व, 331.15
3. शान्तिपर्व, 226.10
4. शान्तिपर्व, 226.4-5
5. अनुशासन पर्व, 6.5-12
6. अनुशासन पर्व, 6.43-44
7. शान्ति पर्व, 139.82
8. पञ्चतन्त्र, iii. 254
9. वनपर्व, 32.53
10. उद्योगपर्व, 79.3-4
11. उद्योगपर्व, 79.5
12. अनुशासनपर्व, 120.1
13. अनुशासनपर्व, 120.3-7
14. अनुशासनपर्व, 120.12-15
15. सौप्तिक पर्व, 2.6-12
16. सौप्तिक पर्व, 2.19



नेहा गांधी

## भारत की वैज्ञानिक प्रगति

**आ**ज के आधुनिक युग में विज्ञान मनुष्य जाति के लिए एक बहुत बड़ा वरदान है। विज्ञान के माध्यम से मानव ने कठिन से कठिन कार्यों को सरल बना लिया है। आज देश की तरक्की के पैमाने का निर्धारण विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर निर्भर करता है। जो देश विज्ञान के क्षेत्र में जितनी उन्नति करेगा उसकी अर्थव्यवस्था उतनी ही मजबूत होगी। विज्ञान को पृथक् कर किसी समाज या, राष्ट्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। दुनिया भर के अन्य देशों की तरह भारत ने भी मेक इंडिया के माध्यम से विज्ञान के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। वैज्ञानिक आविष्कारों ने हमारे राष्ट्र के मान को तो बढ़ाया ही है साथ ही कई मुश्किलों को भी सुलझाया हैं। जिन कार्यों को पूरा करने के लिए पहले बहुत समय और मेहनत की आवश्यकता होती थी वे काम अब सरलता से और बहुत कम समय में हो जाते हैं। किसी भी देश का बुनियादी ढांचा उसके विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उच्च वैज्ञानिक तकनीकों के कार्यान्वयन के कारण पिछले कुछ दशकों से भारत के बुनियादी ढांचे में वृद्धि हुई है।

आज दुनिया का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहां विज्ञान का प्रभाव नहीं पड़ा हो। औद्योगिक, चिकित्सा, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन, संचार, अंतरिक्ष, इलैक्ट्रिसिटी, पर्यटन समेत हर क्षेत्र में आज विज्ञान की चकाचौंध दिखाई देती है। विज्ञान की नई-नई टेक्नोलॉजी ने इन क्षेत्रों में अभूतपूर्व विकास किया गया है।

अगर कोई वैज्ञानिक आविष्कार है जिसका इस ग्रह पर हर कोई आभारी है तो वह है संचार का साधन।

मोबाइल फोन, इंटरनेट और संचार के अन्य लागत प्रभावी माध्यमों के आविष्कार के साथ दूर-दूर के देशों में रहने वाले लोगों के साथ विचारों का आदान-प्रदान करना काफी आसान हो गया है। इससे दुनिया भर में इस्तेमाल किए जानी वाली सर्वोत्तम प्रथाओं को लागू किया जा सकता है। अन्य देशों की तरह भारत को भी इस आविष्कार से लाभ पहुंचा है। संचार के माध्यम से हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दुनिया में नवीनतम तकनीकों के साथ अपडेट हो गए हैं और लगातार उन प्रथाओं को अपना रहे हैं जो देश की अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देने में सहायक हैं। भारत के वैज्ञानिकों ने संचार के क्षेत्र में कई कीर्तिमान स्थापित किए हैं। बात ऑप्टिकल फाइबर की हो, वाईफाई अथवा 5जी की या फिर सुपर कंप्यूटर, क्वांटम कंप्यूटिंग की; आज सूचना-संचार के विकास से भारत ई-प्रशासन, डिजिटल इकोनॉमी, ई-लर्निंग, मौसम पूर्वानुमान में अग्रणी है। संचार के विकास ने रोजगार सृजन के द्वार खोल दिए हैं। भारत का आईटी सेक्टर दुनिया को राह दिखा रहा है। सूचना संचार ने मनुष्य के जीवन को एक नया आयाम दिया है।

भारत ने विज्ञान की मदद से चिकित्सा के क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक प्रगति की है। भारत में अब गंभीर से गंभीर बीमारियों के इलाज संभव है जो पहले असंभव था। हमने चेचक, हैजा, येलो फीवर, कैंसर और पोलियो जैसी गंभीर बीमारी को जड़ से खत्म कर दिया है। कोरोना के समय में वैश्विक स्तर पर भारत के चिकित्सा वैज्ञानिकों ने दुनिया को राह दिखाने का काम किया है। कोरोना की वैक्सीन बनाने में भारत ने मुख्य भूमिका निभाई जिसके कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत का योगदान अहम् माना

गया। महामारी के दौरान दवा के क्षेत्र में व्यापक अनुभव एवं ज्ञान के कारण भारत को 'फार्मसी ऑफ द वर्ल्ड' कहा गया। भारत ने पूरी दुनिया खासकर गरीब देशों की मदद के लिए आगे आते हुए मुफ्त में कोविड वैक्सीन के करोड़ों डोज की सप्लाई की जो कि एक महान उपलब्धि है और इसकी प्रशंसा बड़े-बड़े विकसित देशों ने भी की है।

भारत का मेडिकल टूरिज्म सेक्टर 18 फीसद की वार्षिक वृद्धि कर रहा है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में इलाज 65 से 90 फीसद सस्ता और क्वालिटी ट्रीटमेंट दिया जाता है।

भारत के मूल मिशन चंद्रयान श्री की चंद्रमा की सतह पर सफलतापूर्वक लैंडिंग करते ही भारत चाँद के साउथ पोल पर पहुँचने वाला पहला देश बन गया जो कि हमारे देश की एक महान उपलब्धि है। चंद्रयान 3 लैंडर रोवर चाँद पर 1 दिन काम करेगा यानी पृथ्वी के 14 दिन के बराबर, चंद्रयान 3 के मिशन उद्देश्यों में चंद्रमा पर रोवर के घूमने का प्रदर्शन करना और यथास्थान वैज्ञानिक प्रयोग करना है। चंद्रयान 3 की सफल लैंडिंग भारत को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, शौर्य संघ और चीन के बाद चंद्रमा पर साफ्ट लैंडिंग करने वाला चौथा देश बनाते हैं।

वैज्ञानिक खोजों से लाभान्वित होने वाले विभिन्न क्षेत्रों में कृषि क्षेत्र भी है। विज्ञान में प्रगति के साथ पिछले कुछ दशकों में इस स्थिति में सुधार हुआ है। भारत के कृषि क्षेत्र ने फसलों को बढ़ने और बढ़ाने के लिए नई वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग किया जा रहा है। नए मिट्टी के स्वास्थ्य प्रबंधन के तरीकें, बेहतर सिंचाई सुविधाएं, उन्नत उर्वरक, कीटनाशक और जमीन को बोन और फसल को काटने के लिए नए उपकरण विज्ञान के सभी उपहार हैं। ये भारत में कृषि क्षेत्र के विकास में मदद कर रहे हैं। इन नई तकनीकों के उपयोग के कारण फसल उत्पादन काफी बढ़ गया है। कटाई का समय भी कम हो गया है और इस प्रक्रिया में कम श्रम की आवश्यकता है। देश में खेती के वैज्ञानिक तरीकों की शुरुआत के बाद से विभिन्न खाद्य पदार्थों के निर्यात में भी वृद्धि हुई है। इसने न केवल प्रक्रिया में शामिल किसानों, व्यापारियों और अन्य लोगों की वित्तीय स्थिति को मजबूत करने में मदद की है बल्कि पूरे देश की भी सहायता की है। इस प्रकार विज्ञान भारत में कृषि को मजबूत बनाने में अहम भूमिका निभाता है।

परिवहन की प्रक्रिया को सरल करने के लिए कई सड़कों, पुलों और फ्लाईओवरों का निर्माण किया गया है। अब विभिन्न स्थानों पर आने-जाने के लिए कम समय लगता है। देश में निर्यात बाजार को मजबूत करने में भी विज्ञान ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैज्ञानिक रूप से उन्नत तकनीकों और मशीनरी के कारण विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन भी बढ़ा है। ऐसे कई औद्योगिक उत्पादन हैं, जिन्हें हमारा देश प्रचुर मात्रा में बना रहा है। यहाँ रहने वालों की आवश्यकता को पूरा करने के अलावा अन्य देशों से भी निर्यात किया जाता है।

नए वैज्ञानिक सूत्रों और तकनीकों ने भारत में कृषि और साथ ही साथ औद्योगिक क्षेत्र का लाभ उठाया है। बेहतर उत्पादन ने विभिन्न खाद्य वस्तुओं के निर्यात को जन्म दिया है। इसी प्रकार उन्नत उपकरणों के उपयोग से विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में मदद मिलती है जिन्हें अन्य देशों में निर्यात किया जाता है। इस प्रकार विज्ञान ने देश में निर्यात बाजार की स्थिति में सुधार लाने में मदद की है जिससे कई व्यवसायों के साथ-साथ देश की आर्थिक स्थिति को भी फायदा हुआ है।

हमारे सभी दैनिक कार्यों में विज्ञान का उपयोग होता है। हमारी जीवन शैली में पिछले कुछ वर्षों से विकास हुआ है। यह सब विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों के उपयोग के कारण है। गैस स्टोव पर भोजन बनाने से लेकर रेफ्रिजरेटर में उसी भोजन को ताजा रखने तक – सब कुछ विज्ञान के आविष्कार हैं। हमारे नियमित जीवन में इस्तेमाल किए गए वैज्ञानिक आविष्कारों में से कुछ उदाहरणों में वाशिंग मशीन, कार, बाइक, माइक्रो वेव ओवन, ट्यूब लाइट, बल्ब, टेलीविजन, रेडियो, कंप्यूटर और मोबाइल फोन शामिल हैं।

विज्ञान का सदुपयोग एक वरदान है तो इसका दुरुपयोग एक अभिशाप भी है। विज्ञान का दुरुपयोग मानवता के लिए बहुत हानिकारक भी हो सकता है जैसे मोबाइल और टेक्नोलॉजी का गलत उपयोग, परमाणु बम और आधुनिक हथियार जो कि मानव जाति के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है। विज्ञान मानवता के लिए अनमोल उपहार है, इसे विकृत नहीं करना चाहिये।

**प्रधानाचार्य**  
**रिच हार्वेस्ट पब्लिक स्कूल**



डॉ. धनंजय कुमार

## आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का आलोचना साहित्य : एक अध्ययन

हिंदी आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी आलोचना साहित्य की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में मानी जाती है। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना के नवीन मानदण्डों की स्थापना की और समीक्षा पद्धति का सुनिश्चित पथ निर्मित किया। आचार्य शुक्ल ने युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही कृति की समीक्षा करने पर बल दिया। तथा उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने आलोचनात्मक लेखन या इतिहास में कहीं साहित्येतर मानदंड स्वीकार नहीं किये। उनकी आलोचना पद्धति विश्लेषणात्मक थी। परिणामतः उन्होंने अपनी आलोचना को रचना के गुण-दोषों के कथन तक ही सीमित न रहकर रचनाकारों की विशेषताओं और उनकी अन्तः प्रवृत्तियों की खोजबीन भी की। आचार्य शुक्ल भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन व विश्लेषण भी किये तथा उनका समन्वय करके एक नवीन आलोचना पद्धति का प्रतिपादन किया।

अतः डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि “आचार्य शुक्ल कोरे साहित्य-समालोचक नहीं थे। वे गम्भीर अर्थ में साहित्य के समालोचक थे, जहाँ साहित्य के अन्तर्गत जीवन की चिन्ता, समाज की चिन्ता और पूरी संस्कृति की चिन्ता रहती थी। यह हिंदी आलोचना का सौभाग्य है कि उसकी प्रतिष्ठा एक ऐसे आलोचक के द्वारा हुई, जो शुद्ध साहित्यिक आलोचक नहीं था। सिर्फ अलंकार, रस की मीमांसा करने वाला काव्य-विवेचक नहीं था, बल्कि साहित्य को व्यापक सामाजिक संदर्भों में देखने वाला और

साहित्य की सामाजिक सार्थकता की प्रतिष्ठा करने वाला आलोचक था।...उनका समूचा कृतित्व केवल सूर, तुलसी, जायसी का रसास्वादन नहीं है। सूर, तुलसी, जायसी ही नहीं, आधुनिक हिंदी साहित्य की आलोचना के द्वारा वे जनता को वह राजनीतिक शिक्षा दे रहे थे, जन-जागरण का संदेश दे रहे थे, जिस जनजागरण का संदेश प्रेमचंद अपने ढंग से, निराला अपने ढंग से और जयशंकर प्रसाद अपने ढंग से दे रहे थे।” अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के आलोचना व साहित्य संबंधी प्रमुख ग्रंथ हैं, यथा-रस-मीमांसा, चिन्तामणि भाग एक एवं भाग दो, गोस्वामी तुलसीदास, भ्रमरगीत सार की भूमिका, जायसी ग्रन्थावली, हिंदी साहित्य का इतिहास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, त्रिवेणी, सूरदास।

“हिंदी आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने एक युगान्तर प्रस्तुत किया। उनकी शैली में भारत की शास्त्रीय पद्धति के साथ-साथ अंग्रेजी की शैली भी मिली हुई थी। उनके आलोचनात्मक निबंध शास्त्रीयता के ठोस धरातल पर ज्ञान का चमत्कार देखते और दिखाते हैं। शुक्ल जी ने हिंदी आलोचना को वैज्ञानिक और आधुनिक रूप दिया। उनके मानदण्ड साहित्येतर नहीं थे, साथ ही उन्होंने अपने तरीके से रीतिवाद का भी जमकर विरोध किया। शुक्ल जी की आलोचना का शास्त्रीय आधार सुदृढ़ है, वह रसवाद का परम्परागत आधार कहीं छोड़ती नहीं तथापि वह जड़सूत्र वादी नहीं है, यांत्रिक नहीं है। शास्त्र के सुदृढ़ आधार पर शुक्ल जी ने लोकमंगल का लक्ष्य निर्धारित कर आलोचना में युग-बोध का समावेश किया।

खास बात यह है कि शुक्ल जी हिंदी आलोचना को पारिभाषिक महत्व के बहुत सारे शब्द दिये हैं। 'लोकमंगल' उन्हीं का दिया हुआ शब्द है।<sup>12</sup>

वस्तुतः "शुक्ल जी मनुष्य को 'लोकबद्ध प्राणी' कहते हैं। मनुष्य की निजी सत्ता का ज्ञान लोकबद्ध है। यह लोक ही है, जिसके भीतर कविता या किसी भी कला का प्रयोजन और विकास होता है।"<sup>13</sup> अंतः शुक्ल जी की समीक्षा का सैद्धान्तिक आधार भारतीय 'रसवाद' है। उन्होंने 'रसवाद' को आध्यात्मिक भूमि से उतार कर मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया। शुक्ल जी मानते हैं कि 'भावयोग' अर्थात् कविता के द्वारा मनुष्य हृदय की मुक्ति की साधना करता है। मुक्त हृदय मनुष्य अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष-सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है। यानि कविता का लक्ष्य मनुष्य को व्यष्टि से समष्टि में लीन कर देना है। जिसे रस-दशा कहा जाता है उसके विषय में शुक्ल जी का कहना है कि....लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है।<sup>14</sup> शुक्ल जी की दृष्टि में 'हृदय की मुक्तावस्था' हो या 'लोक हृदय में लीन होने की दशा' हो इसी मनोदशा तक पहुँचना ही काव्य का चरम लक्ष्य है। शुक्ल जी अपने सौंदर्य-बोध तथा रसानुभूति को शुद्ध आनंद की स्थिति से ऊपर उठाकर लोक-मंगल की उदात्त सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित किया। उनकी दृष्टि में साहित्य केवल आनंद देने की वस्तु नहीं है, बल्कि उसे लोक-मंगल के लिए प्रयत्न भी करना चाहिए। इसी दृष्टि से उन्होंने तुलसीदास के साहित्य को सूरदास की रचना से श्रेष्ठ ठहराया, क्योंकि उनके विचार से तुलसी में सूर की अपेक्षा लोकमंगल की भावना अधिक थी। शुद्ध आनंद वाले साहित्य को वे 'लोकमंगल की सिद्धावस्था' कहते थे और सामाजिक कल्याण वाले साहित्य को 'लोकमंगल की साधनावस्था'।

अतः हिंदी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखा गया उनका एक मौलिक अविष्कार ही है। यह एक ऐसा ऐतिहासिक गौरव-ग्रन्थ है जिसकी चमक दिन पर दिन बढ़ती जाती है। "शुक्ल जी ने पहली बार साहित्येतिहास का न केवल एक व्यवस्थित ढाँचा

तैयार किया, बल्कि उसमें जातीय चिन्ता से आकुल प्राण भी फूँक दिये।"<sup>15</sup> साहित्येतिहास की एक स्पष्ट अवधारणा शुक्ल जी ने प्रस्तुत की, "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्ति का स्थायी प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चितवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए, साहित्य-परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।"<sup>16</sup> शुक्ल जी की इतिहास-दृष्टि उनके समय को देखते हुए पर्याप्त ऐतिहासिक और वस्तुवादी है। आलोचनात्मक विवेक उनकी इतिहास-दृष्टि की केन्द्रीय विशेषता है, जिसमें रचनाओं के कलात्मक सौंदर्य के विश्लेषण और मूल्यांकन की प्रबल प्रवृत्ति है। शुक्ल जी की इतिहास-दृष्टि मूल्यपरक और जनपक्षधर है। वे सामन्ती और पूँजीवादी जीवन-मूल्यों, कला-मूल्यों आदि का विरोध करते हैं, उनके इस विरोध में ही जनवादी सांस्कृतिक परम्परा और कला-मूल्यों की पक्षधरता भी निहित है।<sup>17</sup> डॉ. रामविलास शर्मा आचार्य शुक्ल के महत्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि-"हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्व है जो कथा व उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद या कवि निराला का है।" आचार्य शुक्ल की दृष्टि वैज्ञानिक, प्रगतिशील और इहलौकिक है। उनकी आलोचना की भाषा तथ्य निरूपिणी एवं प्राणवती है कि उस पर अलग से विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता है। उन्होंने साहित्य को जीवन की संगति के रूप में बिठलाया। काव्य के संदर्भ में उन्होंने जिस उद्देश्य को लोक-सामान्य भावभूमि पर पहुँचा देना है यह कहना निश्चित ही साहित्य की जनतात्रिक परंपरा को सुदृढ़ करता है। तथा साहित्य में जीवन को और जीवन में साहित्य को प्रतिष्ठापित किया। और व्यक्ति धर्म के आधार पर 'लोक धर्म' को श्रेष्ठ बताया। आचार्य शुक्ल जी के महत्व को स्वीकार करते हुए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं कि "शुक्ल जी को अस्त हुए एक युग के लगभग हो चुका है। कवियों के संबंध में मनन, अनुसंधान एवं अध्ययन भी इधर बहुत हुआ है पर शुक्ल जी की आलोचनाएं जहाँ की तहाँ हैं। उन्हें अपदस्थ करने वाली या उनसे आगे निकल जाने वाली आलोचनाएँ अभी तक नहीं आयी। हिंदी में आलोचकों की संख्या बढ़ रही है। पर

आलोचना के क्षेत्र में वैसा प्रौढ़ आलोचक एक भी नहीं हुआ।” अतः शुक्ल जी पहले आलोचक थे जिन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य आलोचना का समन्वय किया। उन्होंने पाश्चात्य विद्वान् डारविन, हर्बर्टस्पेंसर, हीगेल आदि जैसे दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों के सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया साथ ही गीता, उपनिषद से लेकर पतंजलि, चार्वाक व वेदान्त आदि के विचारों का गहन अध्ययन किये जो अपने आप में मिसाल है। आगे उन्होंने साहित्य को प्राचीन परंपरा और नई सम्भावना को बड़े शानदार ढंग से जोड़ा तथा उनकी रचना का महत्व, काव्यभाषा का केन्द्रीय आधार और बिंब प्रक्रिया का विशिष्ट स्थान है। उनकी आलोचना में वस्तुपरक सर्वेक्षण, अनुसंधान, वैज्ञानिकता और मानव मन को जानने की उत्कट लालसा है।

निष्कर्ष : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपनी आलोचनात्मक कृतियों में भाव-पक्ष एवं कला पक्ष की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या समान रूप से किया है। उनकी आलोचना निर्णयात्मक आलोचना है जिसके आधार पर वे निर्णय देते हैं-“ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नए-नए आवरण चढ़ते जायेंगे त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जायेगी, दूसरी ओर कवि कर्म कठिन होता जायेगा।” आचार्य शुक्ल जी की आलोचना विचारों की दृष्टि से जितनी प्रौढ़ एवं महत्वपूर्ण है उतनी ही अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी सरस, रोचक एवं प्रभावशाली है। अपितु उनकी आलोचना, सैद्धांतिक, व्यावहारिक एवं निर्णयात्मक

आलोचना का सामंजस्य है। अतः आचार्य शुक्ल की आलोचना कोरी प्रशंसात्मक नहीं है, अपितु वे काव्य रचना से संबंधित सभी पक्षों पर विचार करते हुए कवि के दोषों का उद्घाटन भी करते नजर आते हैं, उन्होंने अपने प्रिय कवि तुलसी तक के दोषों को बताया है। उन्होंने आलोचना में हृदय एवं बुद्धि का समन्वय किया है। तथा विश्लेषण की जीवन्तता उनकी आलोचनात्मक कृतियों की मुख्य विशेषता है। अतः आचार्य शुक्ल जी की आलोचना पद्धति का अपना विशिष्ट सौंदर्य है। जिसमें रस, एवं लोकमंगल का सामंजस्य है। उनकी आलोचना भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य के गंभीर अध्ययन के बावजूद भी पूर्णतः मौलिक है। अतः आचार्य शुक्ल जी ने भावपक्ष, विचारपक्ष और शैली पक्ष पर समन्वित रूप से विचार करके हिंदी आलोचना को एक नई दिशा प्रदान की। तथा उन्होंने जहाँ सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में काव्य के सूक्ष्म सौंदर्य का उद्घाटन करके उसे एक व्यापक रूप प्रदान कि ये उन्होंने व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में युग, इतिहास परंपरा, नव सम्प्रदाय, विचार शैली आदि को स्थान देकर उन्होंने अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया। आलोचना के क्षेत्र में उनकी दृष्टि अपने समकालीन आलोचकों से बेजोड़ है।

एसोसिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग

डॉ. भीमराव अम्बेडकर कॉलेज, दिल्ली

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## संदर्भ सूची

1. डॉ. रेवती रमण, 'हिंदी आलोचना: बीसवीं शताब्दी' पृ. 33
2. डॉ. रेवती रमण, 'हिंदी आलोचना: बीसवीं शताब्दी' पृ. 12
3. वही, पृ. 12
4. विश्वनाथ त्रिपाठी, 'हिंदी आलोचना', पृ. 57
5. डॉ. रेवती रमण, 'हिंदी आलोचना: बीसवीं शताब्दी' पृ. 40
6. वही, पृ. 40
7. वही, पृ. 44

## सहायक ग्रंथ

1. विश्वनाथ त्रिपाठी (1992), 'हिंदी आलोचना', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. डॉ. रेवती रमण (2002), 'हिंदी आलोचना: बीसवीं शताब्दी', अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद
3. विश्वनाथ त्रिपाठी (2007), 'हिंदी साहित्य का सरल इतिहास', ओरियंट ब्लैक स्वाँन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
4. प्रो. गोपाल राय (2002), 'हिंदी उपन्यास का इतिहास', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक

- (2001), 'अस्मिता', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
6. डॉ. रामचन्द्र तिवारी (2015), 'हिंदी का गद्य साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
  7. डॉ. बच्चन सिंह (1986), 'आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
  8. डॉ. बच्चन सिंह (1983), 'आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
  9. डॉ. रामविलास शर्मा (1973), 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
  10. डॉ. नगेन्द्र (1966), 'आलोचक की आस्था', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
  11. डॉ. नन्दकिशोर नवल (1981), 'हिंदी आलोचना का विकास', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
  12. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी (1986), 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
  13. डॉ. नगेन्द्र (1973), संपा. 'हिंदी साहित्य का इतिहास', नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली



डॉ ज्योति सिंह

## मृदुला गर्ग की कृतियों में नारी मानवाधिकार

**हि**न्दी साहित्य में मानवाधिकारों में वर्तमान स्वरूप का उल्लेख भले ही प्राप्त न होता हो किन्तु मानवाधिकारों की अवधारणा प्राचीन समय से ही परिलक्षित होती है। मृदुला गर्ग हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण स्तम्भ है। इनके साहित्य में स्त्री के प्रत्येक पहलू पर चिन्तन प्राप्त होता है। मानवाधिकार का पक्ष मृदुला गर्ग से अछूता नहीं है।

### मानवाधिकार मृदुला गर्ग की दृष्टि में

मृदुला गर्ग का मानना है कि जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़े वह नारी मानवाधिकार है। इनके अनुसार फेमिनिज्म का सही अनुवाद नारी मानवाधिकार है। उनके इस संदर्भ में पुरुष या स्त्री नहीं, मानसिक सोच विचार अथवा मानवाधिकार प्रमुख है।

नारी मुक्ति के विषय में इनका कहना है “स्त्री का मानवाधिकार या प्रगति तभी हो सकती है, जब उसकी लड़ाई पुरुष से न होकर दोषपूर्ण व्यवस्था, रूढ़ धार्मिक मान्यता, दोहरी मूल्य पद्धति आदि से हो।”

### नारी मानवाधिकारों का चित्रण

हिन्दी साहित्य में मृदुला गर्ग ने स्त्रियों के प्रति उच्च सम्मान ही नहीं अपितु समान व्यवहार भी प्रदर्शित किया। जो प्रथाएं समाज में प्रचलित थी उनका तो विपरीत या अन्यथा चित्रण वह नहीं कर सकती थी। किन्तु उन्होंने यह प्रयास अवश्य किया है कि वे नारी के श्रेष्ठ रूप को वाणी दे सकें।

मृदुला गर्ग के साहित्य में अनेक स्थल प्राप्त होते हैं जहां नारी को अधिकार प्राप्त हुए हैं एवं अनेक स्थलों पर

नारी के अधिकारों का ह्रास भी दिखाई देता है।

### गृहस्थाश्रम का आधार

स्वतंत्रयोत्तर काल में नारी शिक्षा के अत्यधिक, प्रचार और प्रसार तथा संविधान द्वारा नारी को दिए जाने वाले समानता (पुरुष से) अधिकार के कारण आज नारी में ‘स्व’ की अनुभूति तथा व्यक्ति स्वतन्त्रता की भावना का उद्घाटन हुआ है। वह अब नियतिवादी नहीं बल्कि कर्मवादी बन गई है। न वह अपनी स्वतन्त्रता को किसी के हाथों सौंपना चाहती है न किसी के लिए अपनी भावनाओं का बलिदान करना चाहती हैं। किसी भी रूप में अपने आपको पुरुष से हीन मानने को वह तैयार नहीं हैं। यह नारी शिक्षित दीक्षित होकर समाज के विभिन्न क्षेत्रों में पुरुषों के समान अधिकारों और पदों को प्राप्त कर रही है। सभी नारियों में यह नारी-चेतना निर्माण हो चुकी है। उनका भी अस्तित्व पुरुषों के समकक्ष है।

‘मेरा’ कहानी का अस्सिस्टेंट इंजीनियर अपनी भावी उन्नति की कामना के संघर्ष में आने वाले बच्चे को बाधक मानता है। उसकी पत्नी मीता एबार्शन के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं है। किन्तु पति की इच्छा से विवश जब अस्पताल पहुंचती है और उसे पता चलता है कि यह उसका बिल्कुल निजी मामला है ‘मेरा’ मामला है तो वह एबार्शन नहीं कराती। इस प्रकार वह अपने मातृत्व के अधिकार की रक्षा करती हुई अपने व्यक्ति स्वातन्त्र्य का परिचय देती है।”

अस्पताल में जब डॉक्टर हस्ताक्षर करने के लिए एक फॉर्म मीता के हाथ में देते हुए कहती है कि “पति से पूछे बगैर गर्भ गिराया जा सकता है तो रखा भी जा सकता है।

इस तरह स्त्री आज के समय में पुरुष के समकक्ष अपने समानता का परिचय देती है।

### सफल वैवाहिक जीवन

मृदुला गर्ग की कहानी 'रेवा' एक समझदार आदर्श गृहिणी है वह अपने पति संदीप के साथ सांसारिक जीवन बिताते हुए सुख और आनन्द प्राप्त करती है। संदीप और रेवा एक आदर्श दम्पति के रूप में एक दूसरे की इच्छाओं को महत्व देते हैं। रेवा द्वारा माफी मांगने पर संदीप स्नेहिल स्वर में रेवा से कहता है—“ठीक है रेवा, सुधीर तुम्हारा भाई है। तुम्हारी खातिर जो कुछ मुझसे हो सकेगा करूंगा। तुम फिक्क न करो।”

इस प्रकार रेवा और संदीप एक दूसरे की भावनाओं को समझते हैं इसलिए उनका दाम्पत्य जीवन सहज और खुशहाल है।

### शिक्षा के समान अवसर

‘बर्फ बनी बारिश’ यह कहानी बिन्नी की अस्तित्वगत चेतना को जीवित रखने की कहानी है। शिक्षित स्त्री की अस्मिता ने उसे उसके स्वाभिमान के प्रति जागरूक किया है। बिन्नी इसी प्रकार की स्त्री है। इस कहानी का अमर शिक्षित है, अमेरिका में रहता है पर अमेरिका जाते समय एक बार भी अपने अपनी पत्नी की राय लेनी नहीं चाही। यह बात कहीं न कहीं बिन्नी के मन को सालती रही—“क्यों गये तुम वहां उसने चिल्लाकर अमर से पूछना चाहा। आपने अपने आप निर्णय ले लिया और सोचा मैं चुपचाप तुम्हारे पीछे चली आऊंगी। मेरा अपना कोई अस्तित्व नहीं, चुनाव नहीं, निर्णय नहीं।”

“एक आम हिन्दुस्तानी औरत का अपने विचार के लिए अमरीका में रहने वाले पति को छोड़कर अकेली भारत में रहना ही आश्चर्य का विषय था। बिन्नी ने इतना बड़ा निर्णय ले लिया अपनी अस्तित्वगत चेतना को जिंदा रखने के लिए। उसने अमर को यह दिखा दिया कि अब वह ‘निगलेट’ नहीं की जा सकती।

मानव जीवन को सुसंस्कृत व सभ्य बनाने के लिए शिक्षा की अहम् भूमिका है। ‘एक और विवाह’ की कोमल ने राजनीतिशास्त्र में पी.एचडी. किया है। दिल्ली कॉलेज में लेक्चरर है। उच्च शिक्षित सुंदर, स्पष्टवादी, स्वतन्त्र विचारों को महत्व देने वाली और तर्क करने में माहिर हैं।

विवाह सम्बन्धी कुछ खास मान्यताएं रखती हैं। योग्य

पुरुष की चाह में छब्बीस साल तक अविवाहित रहती है। अमेरिका से आए मदन को अपने अनुरूप पाकर विवाह करती है।

इस सम्बन्ध में वह कहती है—“विवाह तब करना चाहिए जब पुरुष को उसके बिना सब अर्थहीन मालूम पड़े और स्त्री उसके बिना भी पूर्ण समर्पण करने को व्यग्र हो; तभी वास्तविक ऐक्य हो सकता है।”

‘हरी बिंदी’ महानगरीय बौद्धिक युवती के सन्दर्भ में अस्तित्वगत चेतना को महसूसती युवती की कहानी है। जब उसका पति दिल्ली चला गया जाता है। उसकी अनुपस्थिति में वह अपने को बेहद स्वतन्त्र महसूस करती है। “सुबह देर से उठती है, ठंडे पानी से नहाती है, नीले कुर्ते और पाजामे के साथ हरी बिंदी लगाती है और बिना कहीं जाने का निर्णय किए घर से बाहर चल पड़ती है। सबसे पहले जहाँगीर आर्ट गैलरी में प्रदर्शनी देखती है, रेंस्तरां में ठंडा गरम एक साथ खाती है, पिकचर देखती है, पिकचर देखते समय यूँ ही जोर-जोर से हंसती है, हंसते समय पास बैठे व्यक्ति से नजरें टकराती है तो दोनों भी मुक्त रूप से फिल्म का आनन्द लेने लगते हैं। फिल्म देखने के बाद दोनों रेंस्तरां जाते हैं। आज उसने बेटुका जीना चाहा है— उसने दर्पण में दिख रही अपनी छाया को चिढ़ा दिया, कहा—“तुम की क्या तुम है? और खिलखिलाकर हँस पड़ी” ये सारी बातें उसकी परम्परागत रूप से जीने के प्रति विद्रोह का प्रतीक है। स्त्री ने अस्तित्वगत चेतना को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

### आत्मनिर्भरता का अवसर

‘खरीददार’ कहानी की ‘नीना’ एक शिक्षित, प्रबुद्ध और निर्णय की पक्की युवती है। विवाह योग्य आयु में माता-पिता ने बड़ी दौड़ धूप करते हुए उसके लिए दूल्हे का संशोधन किया था दूल्हा दिखने में कैसा भी हो पर उसे सुन्दर दुल्हन ही चाहिए और ऊपर से माल। क्योंकि “यह तो दुनिया का कायदा है” नीना के माता-पिता के पास न अधिक माल था और न ही नीना उर्वशी का अवतार थी। बड़ी भाग दौड़ करके उन्होंने ‘बीस हजार’ में सौदा पटा लिया था; लेकिन नीना ने विवाह करने से इंकार कर दिया। उसने सोचा—“पूरी दुनिया दो गुटों में बंटी है—दुकानदार और खरीददार। ठीक है, मैं भी खरीददार बनूंगी उसने तय किया। विक्रेता नहीं खरीददार।”

“आज उसके पास सब कुछ है। गाड़ी है, बंगला है,

नौकर-चाकर है, क्लब की सदस्यता है, सभी समारोह के निमन्त्रण है। सफलता का अपना एक रूप होता है वह भी उसके पास है। उसकी चाल में आत्मनिर्भरता है, आवाज में रौब है, चेहरे पर प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप है। सबसे बड़ी बात यह कि वह जानती है कि उसके कुछ कहने पर लोगों को झुकना होगा। चाहे दतर हो चाहे बैठक। औरतें क्या जाने यह जंजाल कहकर बात को उड़ा नहीं सकेंगे। उसके पास सब कुछ है। और जो नहीं है। कभी भी ले सकती है।”

यद्यपि मृदुला गर्ग के साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नारी को समानता तथा स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त है तथापि सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर यह भी ज्ञात होता है कि अनेक जगह मानवाधिकारों का हनन भी हुआ है। चाहे वह ‘दो एक फूल’ की ‘शातम्मा’ हो या ‘उसकी कराह’ की ‘सुधा’ वे अनेक स्थलों पर अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत दिखलायी देती है।

#### पारिवारिक बन्धन में जकड़ी नारी की समस्या

इस पितृसत्तात्मक समाज में नारी अपने परिवार पर निर्भर है। पुरुष पर निर्भर होने के कारण उसकी स्थिति कमजोर हो गयी है। पुरुष ने कब स्त्री को अपना गुलाम बना लिया पता ही नहीं चला।

“स्त्री बचपन यौवन बुढ़ापे तक कहीं भी स्वाधिन नहीं है। इसी बात को हजारों साल पहले मनस्मृति में इस तरह लोह अक्षरों में लिखा गया-

बाल्या बा युवत्या बा वृद्धया वापि योषिता।

न स्वातन्त्र्येण कर्तव्य किञ्चित् कार्यं गृहेष्वपि॥

बाल्ये पितवशे तिष्ठेत पाणि ग्राहस्य यौवने।

पुत्राणा भर्तरि प्रेते भजेत स्त्री स्वातन्त्र्याम्॥

-मनुस्मृति (5/147-148)

वैदिक साहित्य में स्त्री की स्वतन्त्रता के चाहे हम कितने ही उदाहरण व दृष्टान्त ढूँढ ले। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि वैदिक संस्कृति चाहे जितनी उदार रही हो पर अपने दृष्टिकोण में वह थी और है तो पितृसत्तात्मक ही। इस तरह आज भी नारी, अपने बन्धनों से मुक्त नहीं हो पायी है। और पारिवारिक बन्धनों में जकड़ी हुई है।”

‘रेशम’ कहानी की ‘हेमवती’ अपने पति द्वारा अंकुश लगाए और उनके कठोर नियन्त्रण और अनुशासनपूर्ण व्यवहार से न अपने मर्जी से अच्छे वस्त्र पहन पाती है।

हेमवती का पति अपने फिजूलखर्ची के कारण हेमवती के हाथ में एक भी पैसा नहीं देता है। हेमवती की बहू उससे कहती है-“सारा कसूर आपका है माता जी। पायदान बनेगी तो पायदान बनायेगा आदमी साफ-साफ कह क्यों नहीं देती, इतनी कंजूसी करनी है तो खुद चलाओ गृहस्थी।”

आज भी नारी उच्च शिक्षा होने के बावजूद भी घर परिवार, समाज और यहां तक की स्वयं अपने मामलों में निर्णय लेने में असमर्थ है। उसकी मानसिक क्षमता आज भी संदिग्ध बनी हुई है। निर्णय केवल पुरुष लेता है और नारी उस पर अमल करती है, भले ही वह मानसिक रूप से उसके उत्पीड़न को सहती रहती हो।

#### अकेलेपन की समस्या

‘अदृश्य’ कहानी की ‘वीना’ प्यार के लिए तड़पने वाली नारी है। वीना के पति डॉ. देवेन दिलों के स्पेशलिस्ट हैं। वह इंसानों को जिन्दगी देनेवाला परम ब्रह्मा है। “जैसे क्लिनिक उसका सृजित संसार है, जहां अपनी अंतर्दृष्टि के चमत्कार से वह जीव को जीवन प्रदान करता है।

घर पहुंचते ही डॉ. देवेन मशीन में तबदील हो जाते हैं। उन्हें अपनी पत्नी दिखती ही नहीं। “वीना के पास पैसा, शोहरत, पद, प्रतिष्ठा सब है, नहीं है तो उसका पति देवेन। वह भटकती रहती है, बेचैन है-

“आजकल अक्सर वह यह भूल जाया करता है कि उनके घर में एक स्त्री रहती है जिनका नाम ‘वीना’ है और जो उसकी पत्नी है।”

इस कहानी में ‘वीना’ अकेलापन महसूस करती है क्योंकि उसका पति उसे बिल्कुल समय नहीं दे पाता है। पूरा जीवन वीना के हिस्से तड़पने के सिवाय उसके हिस्से में कुछ नहीं आता। वह घुटन तिलमिलाहट, छटपटाहट, बैचेनी के साथ जीती रहती है।

#### लड़की होने के कारण पक्षपात की समस्या

हमारे समाज में लड़की होना भी एक समस्या है। उसकी पढ़ाई उसका विवाह मां-बाप के लिए भी समस्या बन जाता है। लड़के का विवाह न होना कुछ हद तक भारतीय समाज में स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु लड़की का अविवाहित रहना समाज व परिवार का कलंक माना जाता है। मध्यमवर्गीय परिवार में तो विवाह एक अत्यन्त अनिवार्य रस्म है।

‘मीरा चाची’ कहानी की मीरा किशोरवयीन लड़की है

मीरा के पिता ने दूसरी औरत के लिये उसे और उसकी मां को घर से निकाल दिया है। इन सारी स्थितियों को देखते हुए वो सोचती है। “अभी मैं पतंग उड़ाना चाहती हूँ; उड़ा सकती हूँ क्या?”

उसका क्या है लड़का है; चाहे कुर्सी पर बैठकर पढ़े, चाहे छत पर नाच-नाच कर पतंग लहराये। अपनी मर्जी का मालिक है वह न डांट, न फटकार, न ताने कोसने, न अच्छे लड़के की तलाश की प्रतीक्षा में जेल में कैद। उससे कोई नहीं कहता होगा, पैदा होते ही क्यों न मर गयी, डायन।”

मीरा की ये सोच इस बात को स्पष्ट करती है कि लड़की के प्रति हमारे समाज में कितना भेदभाव रखा जाता है। जब अपने मां के मुँह से सुनती है कि पढ़ाई कर अच्छा लड़का मिलेगा तो उसका मन पढ़ाई से उचट जाता है। “लड़कों से कोई नहीं कहता। कहते हैं पढ़ लिख ले वरना कोई ढंग का लड़का नहीं मिलेगा। सारी उम्र छाती पर मूंग दलोगी। पढ़-पढ़कर थक जाओ और जरा सुस्ताने के लिए बिस्तर पर अधलेटे हो जाओ तो कहेंगे अहदन हो जाओगी तो कौन पूछेगा ससुराल में। आजकल के लड़के पतली छरहरी लड़की चाहते हैं, मुटा गयी तो ढंग का

लड़का... ” इस कहानी में मीरा का यह दर्द है कि वो अपनी मर्जी से कुछ नहीं कर सकती है, उसे यह हमेशा पछतावा रहता है कि काश मैं लड़का होती तो मुझे इन सारी बातों को सुनना न पड़ता और मुझे ये एहसास न कराया जाता कि तुम एक लड़की हो। इस प्रकार मृदुला गर्ग का साहित्य भी नारी मानवाधिकार हनन से अच्छा नहीं है। जिसमें कई स्त्री अपने आत्मविश्वास को कई बार तोड़ती है, तो हर पल स्थितियों से समझौता करती है। इनमें बेचारगी है, लाचारी है। कई स्त्रियाँ दाम्पत्य तनाव को झेल रही हैं। उनका व्यक्तित्व अपने ही घर में इतना गिर गया है कि वो झुकती ही चली जा रही है। अपराध बोध से ग्रस्त हो चुकी है।

“भारत अब भी पुरानी बारूद है, जल्दी वह भड़क सकती है। स्त्री का लांछन उछले तो गहरे मन में उसे अब भी यह प्रिय है।”

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

नाथ चन्द्रावत महाविद्यालय

जगदीशपुर, गोरखपुर

Email : [rajputsinghjyotiparmar@gmail.com](mailto:rajputsinghjyotiparmar@gmail.com)

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मृदुला गर्ग, चुकते नहीं सवाल, पृ.सं. 65
2. डॉ. तारा अग्रवाल, मृदुला गर्ग का कथा साहित्य, पृ. सं. 110
3. डॉ. तारा अग्रवाल, मृदुला गर्ग का कथा साहित्य, पृ. सं. 110
4. डॉ. तारा अग्रवाल, मृदुला गर्ग का कथा साहित्य, पृ. सं. 171
5. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी, पृ.सं. 303
6. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी, पृ.सं. 304
7. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी, पृ.सं. 233
8. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी, पृ.सं. 239
9. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी, पृ.सं. 253
10. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी, पृ.सं. 257
11. मधुमति पत्रिका, पृ.सं. 54
12. मृदुला गर्ग, शहर के नाम, पृ.सं. 66
13. मृदुला गर्ग, समागम ‘मीरा चाची’ पृ.सं. 28
14. मृदुला गर्ग, समागम ‘मीरा चाची’ पृ.सं. 23



श्रीमती सीमा राठौर

## रामदरस मिश्र के उपन्यासों में ग्राम्यजीवन

### प्रस्तावना :

प्रस्तुत लेख में रामदरस मिश्र द्वारा लिखा हुआ कृषक जीवन पर आधारित दो प्रसिद्ध उपन्यास 'पानी के प्राचीर' तथा 'जल टूटता हुआ' का विस्तार पूर्वक विश्लेषण किया गया है। उपन्यासों में ग्राम्य जीवन के वर्णित हर एक आयाम को बड़े ही सहज और सरल भाषा में विश्लेषित करने का पूर्ण सफलतम प्रयास किया गया है।

### मूल शब्द :

आँचलिकता, जीवनदायनी, अमानवीय, संवेदनशीलता, परिलक्षित, संवेदनशीलता

### 1. पानी के प्राचीर

'पानी के प्राचीर' रामदरस मिश्र जी के द्वारा लिखा हुआ उपन्यास है जो कि सन् 1961 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास आँचलिकता को समेटे हुए हिंदी साहित्य में एक अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी हुई चेतना की अभिव्यक्ति तथा उत्तर-प्रदेश के जिला गोरखपुर में राप्ती और गोर्रा नदियों की प्राचीरों से घिरे क्षेत्र कछार आँचल को कथानांचल बनाकर प्रस्तुत किया है। 'पानी के प्राचीर' उपन्यास की कथा स्वाधीनता प्राप्ति की है। जिसमें विभिन्न प्रकार के चरित्रों को उनके आचार-विचार, रहन-सहन आदि बातों के द्वारा वर्तमान स्थिति और देशकाल को दर्शाने का प्रयास किया गया है। एक ग्रामीण जो कि दरिद्रता और गरीबी से जूझता हुआ तरह-तरह की यातनाओं को सहता हुआ गाँव के ही धनी लोगों के द्वारा शोषित है, उसका यथार्थ वर्णन इस उपन्यास में कथा के माध्यम से उपन्यासकार ने प्रस्तुत करने का

प्रयास किया है। इतना ही नहीं गाँव की भौगोलिक स्थिति जो कि कई नदियों से घिरी हुई है। राप्ती और गोर्रा नामक नदियों का पानी पूरे गाँव के भू-भाग के लिए जीवनदायनी तत्व बन सकता है, लेकिन यह पानी बाढ़ बन करके उनके खेतों और खड़ी फसलों तथा मकानों को कितना नुकसान पहुँचाता है और बेघर हो जाते हैं इसका बड़ा सजीव चित्रण उपन्यासकार द्वारा किया गया है। पाण्डेपुरवा गाँव के चारों ओर फैली हुई नदियाँ बरसात में बीसों मील तक उमड़ी हुई ऐसी लगती हैं जैसे गाँव के ऊपर हंस रही हों। दस-बारह मील तक कोई सवारी का रास्ता भी नहीं दिखाई पड़ता है स्थिति ऐसी है कि बाहर से न कोई इस गाँव में आता है और न ही इस गाँव से बाहर कोई जाता है। यदि हम देखें तो यह एक विशाल क्षेत्र पढ़ाई-लिखाई की दृष्टि से भी बहुत पिछड़ा हुआ है क्योंकि यहाँ दूर-दूर तक कोई अंग्रेजी माध्यम के स्कूल या अस्पताल नहीं है। यहाँ तक कि पुलिस चौकी भी नहीं है। इस गाँव से गोरखपुर तक कोई सड़क भी नहीं है। वहाँ के लोग ऐसे हालात में हैं जैसे कि पूरे देश से वो कटे हुए हों।

अगर हम कथानक की बात करें तो कथानक में निरंजन, जिसका नाम नीरू है। इसके अलावा अन्य महत्वपूर्ण पात्र संध्या, महेश, मुखिया, गेंदा बिन्दिया, बैजनाथ आदि हैं। जो इस उपन्यास के काल्पनिक पात्र होते हुए भी अपनी भूमिका में यथार्थकता को समेटे हुए दिखाई पड़ते हैं। नदियों के धाराओं से घिरा हुआ सभी सरकारी सुविधाओं से वंचित पूरा इलाका है। वहाँ की जनता के दुख, दर्द, राग-द्वेष, शक्ति, शिक्षा, महाजन एवं जमींदार या फिर गाँव के मुखिया जैसे शोषण शक्तियाँ हैं वहीं एक तरफ गरीबी

के तले दबे कुचले मुक्ति पाने की छटपटाहट लिए किसान को सशक्त वाणी इस उपन्यास में दी गई है। इस उपन्यास में आजादी के लिए संघर्ष करती हुई पीढ़ी की धड़कन है। उपन्यास में गाँव की दयनीय जीवन स्थितियों का चित्रण करते समय अनेक प्रसंगों को उपन्यासकार ने यहाँ पर दर्शाने का प्रयास किया है और स्वयं कहते हैं कि “यह उपन्यास आंचलिक विशेष का उपन्यास होते हुए भी पानी के प्राचीर यह संस्करण आंचलिकता की सीमा को लांघकर सब तक पहुँचने को आतुर है।”<sup>11</sup> उपन्यासकार ने कथा द्वारा गाँव का एक सजीव चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जैसे कि गाँवों में रहने वाले लोगों की देश भावना, झगड़े-लड़ाई, एक दूसरे की टांग खींचना, एक दूसरे को आगे न बढ़ने देने के लिए नाना प्रकार के रोड़े उनके जीवन में अटकाना इन सबके साथ-साथ उपन्यासों में शोषित, किसान, गरीब, मजदूर की पीड़ा का भी उपन्यासकार ने बखूबी चित्रण किया है। उनका उद्देश्य अधिक गहरा और उनकी व्यंजना भी सांकेतिक रूप से यहाँ पर दिखाई पड़ती है। जिसमें आंचलिकता बुरी तरीके से दिखाई पड़ती है जो कि इस उपन्यास में प्रभावी है। कथानक में नीरू लोगों में परिवर्तन करना चाहता है। अज्ञानी एवं अशिक्षित होने के कारण ये लोग उसे समझ नहीं पाते हैं। हमें क्या करना चाहिए? परंपरा के घेरे से हम कैसे बाहर आए? ये तरह-तरह की बातों को वह खुले रूप से उन लोगों को समझता है जो गाँव में हैं, लेकिन वे समझने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं होते हैं। नीरू जैसा युवक सत्य पर चलना चाहता है, लेकिन अनेक अमानवीय प्रभाव उसका जीवन बर्बाद कर देते हैं। उनके मन में सत्य और कल्पनाओं की एक भीड़ सी खड़ी हो गई है। उसके सभी खेत मुखिया ने हड़प कर लिए हैं, घर के सारे सामान कस्बे के बनिये ने ले लिया है। चारों ओर से कर्ज दहाड़ रहा है, फिर भी छुटकारा नहीं। गाँव के चोर बदमाशों को अपने लपेट में लेकर मुखिया राजा बना हुआ है। नीरू बचपन से ही अन्याय और अत्याचार को देखते आया है। वह जमींदार की नौकरी करता है उसके विचारों, आदर्शों को कुछ समय बाद अपने भाई केशव के सचेत करने से वह सही रास्ते पर चलने की कोशिश करता है। नीरू आत्मसंघर्ष करता है, अपना लक्ष्य सामने रखता है। वह लोगों को भी समझाने का प्रयास करता है, लेकिन उसकी बात कोई

समझने को तैयार नहीं होता। जैसा कि यह उपन्यास शोषित मजदूर किसानों की हालत का चित्रण करता हुआ दिखाई पड़ता है। उसमें नीरू जैसा युवक, घर, परिवार, गाँव की गरीबी, भूखमरी को देख करके चिंतित होता है। यहाँ पर उपन्यासकार ने उसे एक आदर्श पुरुष दिखाते हुए यह बतलाने का प्रयास किया है कि हर गाँव में इस तरीके का कोई न कोई देवात्मा होता है जो लोगों को उनकी उस दलदल भरी जिंदगी से बाहर निकालने का प्रयास करता है। लेकिन बाकी लोग उसे इतना चिढ़ने लगते हैं कि उसे कहीं न कहीं फंसाने का प्रयास करते हैं और आज भी गाँव में यह यथार्थ और प्रासंगिक है। आप किसी भी गाँव में इस तरीके की घटनाएं आज भी देख सकते हैं। दूसरी ओर उपन्यास में गाँव में रहने वाली संध्या शहर जाती है। शहर में उच्च शिक्षा पाकर संध्या नीरू को गाँव में न आने का कारण बताते हुए कहती हैं, गाँव में क्या रखा है? नीरू देखो नसखियों के नाम पर गेंदा, चमेली जैसी आवारा लड़कियाँ हैं। गाँव में लौटे हैं जो वे बिन्दिया चमारिन के पीछे पड़े रहते हैं। गाँव के लोग चोरी करते और दूसरों की खेती भी उखाड़ते रहते हैं, घर फूंकते हैं, चुगली करते हैं, ऐसे ही गाँव में क्या रखा है? सचमुच यहाँ के लोग न जीते हैं, न दूसरों को जीने देते हैं, किसी की खेती उखाड़ते हैं तो किसी के लड़की के पीछे पड़ना यह उनके लिए मामूली सी बात है। ऐसी स्थिति में वह अपने गाँव को ही भूल जाते हैं। उपन्यासकार ने संध्या के इस वाक्य से शहर में रहकर गाँव की ओर देखने की जो लोगों की दृष्टि है उसके ऊपर एक प्रहार किया है या यूँ कहें कि उसको दिखाने का प्रयास किया है। गाँव की प्रकृति एवं मानवीय संगठनों के घेरे में बसा गाँव अपने परंपरा तथा संस्कारों के लिए जाना जाता है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने गाँव की प्रकृति के साथ-साथ मानवीय संकटों से घिरे हुए गाँव, अंधविश्वास, भूत-प्रेत, चुड़ैल, बरमबाबा, जातिपात तथा अंधश्रद्धा, श्रद्धालुओं आदि को गाँव वालों के जीवन को दिखाने का प्रयास किया है जो कि उनके जीवन का एक अंग बन जाता है। गाँव के मंदिर में प्रवेश के लिए चमार जैसे अछूत को प्रवेश नहीं दिया जाता है। इन सब छोटी-छोटी मान्यताओं को भी दिखाने का यहाँ पर प्रयास किया है। इस उपन्यास में पात्रों के माध्यम से गाँव की तथा उन ग्रामीण किसानों के जीवन में आने वाली अनेक समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास किया है। जहाँ पर

एक तरफ अन्याय, अत्याचार विरोधी संघर्ष, तिरस्कार, शोषण आदि को मिश्र जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से यहाँ पर कैद करने का बहुत ही साहसपूर्ण प्रयास किया है। अगर हम भाषा की बात करें, तो भाषा में जहाँ एक ओर लोकभाषा के साथ-साथ हिंदी के कुछ खड़ी बोलियों के पुट इस उपन्यास में दर्शाए हैं वहीं दूसरी ओर पात्रों के माध्यम से उनके चरित्र-चित्रण को यथावत इस उपन्यास में स्थान प्रदान किया है, जो एक सफल सराहनीय प्रयास है।

## 2. जल टूटता हुआ

‘जल टूटता हुआ’ रामदरश मिश्र जी द्वारा लिखित किसानों के ऊपर आधारित उपन्यास है। यह उपन्यास पूरी तरह से आंचलिकता को समेटे हुए परिलक्षित होता है। जिसमें किसी व्यक्ति, जाति अथवा किसी गाँव या नगर की कथा न होकर स्वतंत्रता के बाद गाँव की आर्थिक एवं दयनीय दशा तथा बदलते हुए जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास के बारे में ऐसा कहा जाता है कि यह विचार और संवेदनात्मक कथानक को अपने आप में समेटे हुए है। स्वयं उपन्यासकार कहते हैं कि, “स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात भारतीय गाँव के संबंधों तथा मूल्यों के तनाव, विघटन और उसके जीवन संघर्ष की व्यथा की कथा है।”<sup>12</sup> मेरा मानना है कि समय की चेतना जीवन के संघर्षों को सबकी अलग-अलग हो सकती है। इस उपन्यास के पात्र एवं इनकी कथाएँ, इनकी चेतना और संरचना सभी अपने-अपने समय के फलक पर स्वतंत्र हैं।

इस उपन्यास में कथा का आरंभ 15 अगस्त को एक उत्सव से होता है, जहाँ मास्टर सुगन तिवारी प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर हैं। जो कष्टमय आर्थिक जीवन में संघर्ष करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें कई-कई महीनों तक का वेतन नहीं मिलता फिर भी वह आजादी की वर्षगाँठ के दिन भी भूखे पेट रहकर के स्कूल आते हैं। स्कूल की नकली सजावट और बच्चों के चेहरों पर बनावटी खुशियाँ देखते हैं। मास्टर सुगन की निगाह बच्चों के चेहरों पर जाती है और उनकी आँखों में न कही जाने वाली कहानियाँ भरी हुई दिखाई पड़ती हैं। बाबू महीपसिंह अपने ठाठ-बाट से वहाँ आते हैं। मास्टर सुगन अपने अरमानों का गला घोटकर अपनी मजबूरी की वजह

से उसकी प्रशंसा करते हैं। बाबू महीपसिंह आजादी की रक्षा और आपस में प्रेम का उपदेश देते हैं। उपन्यास का प्रारंभ अपने आप में आजादी की वर्षगाँठ के माध्यम से कई बातों की ओर एक साथ संकेत करता है। कथा के नायक सतीश को तिवारीपुर गाँव वालों की चिंता लगी रहती है। वह सोचता है-“इन इलाकों में हरिजन, मध्यवर्ग, निम्नवर्ग किसान, सभी भूख और गरीबी की चक्की में बुरी तरह पिस से रहे हैं।”<sup>13</sup> आजादी के बाद जो गाँव में बदलाव आया और गाँव के अच्छे और प्रतिष्ठित लोग अपना उल्लू सीधा करके धनवान बने हैं, किंतु किसानों के जीवन की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। मास्टर सुगन यह देखते हैं कि सरकार ने बहुत कुछ किया है, जहाँ एक ओर स्कूलों का प्रसार हो रहा है, जमींदारी टूट चुकी है। सबको बोलने की स्वतंत्रता और सबको समान अधिकार दिया गया है। मताधिकार तो सबसे बड़ा अधिकार है। उपन्यास में किसी एक विषय का चित्रण न होकर गाँव के लोगों और उनकी स्थिति के प्रत्येक भागों का चित्रण होता हुआ दिखाई पड़ता है। गोरा और राप्ती ये दोनों नदियाँ हैं, जिनका समावेश भी उस उपन्यास में किया गया है और इनके कारण आने वाली बाढ़ से गाँव की जो दशा तथा खेतों की जो बर्बादी है उसको भी यहाँ पर दिखाने का प्रयास किया गया है। साथ में उपन्यास के माध्यम से लोगों के मन में बसे अंधविश्वास, भूत-प्रेत, देवी-देवताओं में विश्वास, रिश्वतखोरी, दहेज-प्रथा, ऊँच-नीच का भेदभाव, होली, नागपंचमी जैसे त्यौहार के साथ-साथ राजनीतिक षड्यंत्र, पुलिस वालों के अत्याचार एवं किसानों के भोलेपन को भी यहाँ विशेष रूप से महत्त्व देते हुए दिखाया गया है। अगर हम पात्रों की चर्चा करें तो पात्रों के माध्यम से गाँव की व्यवस्था, आपसी लड़ाई-झगड़े में तरह-तरह की जो वार्ता है उसको भी यहाँ पर दर्शाते हुए उपन्यासकार ने यथार्थ को प्रकट करने का प्रयास किया है। उपन्यास गाँव के निम्न जाति हरिजन तथा कई अन्य जातियों की समस्याओं को लेकर भी भरा हुआ दिखाई पड़ता है। जाति-पाति भेदभाव, ऊँची जातियों के अहंकार, गाँव के लोगों की गरीबी व कमजोरी का लाभ उठाते हुए आदि तमाम बातों को भी उपन्यासकार ने दिखाने का प्रयास किया है, जो आज भी यथार्थ के रूप से गाँव में दिखाई पड़ता है। किसान अपने खेतों में मजदूरी करता है उसके सामने अपनी और अपने परिवार के पालन-पोषण

की चिंता लगी रहती है उनकी जरूरतों को भी पूरा नहीं कर पाता है। उसका जीवन जीना मुश्किल हो चुका है परिणामस्वरूप रखे आभूषण, गहने, मकान वो सब गिरवी रखकर अपना काम चलाते हैं और सही मायने में आज भी यह परंपरा चल रही है। आज भी किसानों और मजदूरों पर अत्याचार हो रहे हैं। मजदूरों को रोजी-रोटी के लिए मजदूरी करना पड़ता है तथा खाने को तब मिलता है जब उनका हाल बेहाल हो जाता है और निश्चित रूप से यही हाल आज भी गाँव में देखने को बड़ी आसानी के साथ मिल जाता है। उपन्यास के सभी पात्र पीड़ा और दर्द को महसूस करते हुए दिखाए गए हैं। उपन्यास ही दर्द की गाथा बना हुआ है जिसमें स्त्री की पराधीनता, गरीबी, लोगों की बेइज्जती तथा रिश्ते-नाते का आपस में बिगड़ जाना। इन सभी के साथ गाँव की गरीबी, किसान की मजबूरी, मजदूर की हालत का चित्रण प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार ने लोगों को एक बार सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। जहाँ तक भाषा की बात है, उपन्यास एक विशाल कलेवर लिए हुए अनेक रूपों में यथार्थवादी चित्रण के साथ एक अद्भुत शक्ति के रूप में उभरकर आया है जिसमें लोक शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ मुहावरों, गीतों तथा काव्यात्मक संवेदनशीलता से भी ओतप्रोत बातों को दर्शाते हुए शब्दों का विन्यास नजर आता है, जिसे बड़ी खूबसूरती के साथ रामदरस मिश्र जी ने प्रस्तुत किया है।

#### निष्कर्ष :

इस प्रकार गाँव में आज भी ग्रामीण व्यक्ति और किसान अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा हुआ है। वह किसी भी प्राणी को जीवित रखने के लिए आवश्यक अन्न का उत्पादन करता है उसका कोई और दूसरा विकल्प भी नहीं है। भारत की आजादी से पहले और उसके बाद एक लंबा समय बीत जाने के बाद भी भारतीय किसानों की दशा में सिर्फ 19-20 का ही अंतर दिखाई

देता है। जिन अच्छे किसानों की बात की जाती है, उनकी संख्या उंगलियों पर की जा सकती है। निरंतर बढ़ती हुई आबादी, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण के कारण कृषि योग्य भूमि में निरंतर गिरावट आई है। अन्न के बिना किसी भी मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक विकास हो पाना असंभव है, परंतु आज सभी लोग अपने-अपने निजी स्वार्थ में इस कदर डूबे हुए हैं कि कोई नहीं सोच रहा है कि यह अन्न कहाँ से आता है? कैसे आता है? जो किसान दिन रात मेहनत करके दूसरों का पेट भरता है, वह खुद के लिए या अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी का इंतजाम कर पाने में सक्षम नहीं हो पा रहा है। इसी कारण किसान सिर उठाकर जी नहीं पाता और आत्महत्या जैसे कदम उठाने के लिए मजबूर हो जाता है।

यदि हम देखें तो हर साल देश के अलग-अलग क्षेत्रों में सूखा, बाढ़, आगजनी की घटनाएँ, तूफान, चक्रवात, अतिवृष्टि, ओलावृष्टि आदि जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसलों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इन जोखिमों को कम करने के लिये किसानों के हित में फसल बीमा उपलब्ध कराया गया है। हालाँकि इसका उचित लाभ अब तक पूरी तरह से किसानों को नहीं मिल पाया है कुछ बीच के लोग ही किसान के नाम पर इसका लाभ ले रहे हैं। इसका लाभ ज्यादातर ग्रामीण तक पहुँचे इसके लिए सरकार की ओर से उपाय किये जाने चाहिए एवं विभिन्न योजनाओं के माध्यम से किसानों को जागरूक बनाकर उन्हें इन योजनाओं से लाभान्वित किया जाना चाहिए तभी भारत का किसान खुशहाल होगा और देश विकास के मार्ग पर निरंतर आगे बढ़ता रहेगा।

शोधार्थी

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा धारवाड़  
(कर्नाटक)

#### संदर्भ सूची

1. पानी के प्राचीर, रामदरस मिश्र, पृष्ठ संख्या-63
2. रामदरस मिश्र, जल टूटता हुआ, पृष्ठ संख्या-83
3. डॉ. पारुकांत देसाई, साठोत्तरी हिंदी उपन्यास, पृष्ठ संख्या-92

#### संदर्भ ग्रन्थ

1. पानी के प्राचीर, रामदरस मिश्र
2. जल टूटता हुआ, रामदरस मिश्र
3. साठोत्तरी हिंदी उपन्यास, डॉ. पारुकांत देसाई



डॉ. सुनीता मीना

## नाटकों में रस की स्थिति एवं आनंदमयता

**ना**ट्यशास्त्रीय परम्परा रस को नाट्य के केन्द्र में रखती है। इस समस्त नाट्य व्यापार का प्रयोजन और प्रेक्षक है। भरत के अनुसार रस के बिना किसी अर्थ का प्रवर्तन काव्य में नहीं होता है। दर्शकों में रसोद्भावन करना भारतीय नाट्य का मुख्य लक्ष्य है। प्रायः समस्त नाट्य साहित्यशास्त्री चिन्तकों ने इस स्वरूप के सम्बन्ध में अपना गहन चिन्तन-दर्शन प्रस्तुत किया, जिसके मूल में आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का रसमूल ही रहा है। अभिनवगुप्त के अनुसार नाट्य ही रस है तथा रस का समुदाय ही नाट्य है।<sup>1</sup> यद्यपि भरत के नाट्यशास्त्र में रस का निरूपण ही इस हेतु से किया गया है और भरत ने आठ रसों को 'अष्टौनाट्यरसाः' कहा है। भरत के समय तक काव्य नाटक का इस प्रकार विभाजन नहीं हुआ। परवर्ती आचार्यों ने रस सिद्धान्त को विकसित और पल्लवित किया और रस कोकाव्य का अनिवार्य तत्त्व माना। प्राचीन आचार्यों भामह, उद्भट, रूद्रट, दण्डी इत्यादि ने काव्य नाटकों में भेद किया। रस शब्द के विभिन्न अर्थ-संस्कृत साहित्य में रस शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में अति प्राचीन काल से किया जाता रहा है। वेद-वेदाङ्ग, ब्राह्मण, उपनिषद्, आयुर्वेद आदि साहित्य में रस शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया गया है। कोष ग्रन्थों के अनुसार रस शब्द के अनेक अर्थ हैं। स्वाद, जल, वीर्य, शृङ्गार आदिकाव्य रस विष, द्रव, पारद, राग, ग्रह, धातु आदि भोजन के रस परमात्मा आदि भी रस के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हैं।<sup>2</sup> वैदिक साहित्य में विशेष रूप से उपनिषदों में परमात्मा के लिए रस पद का व्यवहार हुआ है। 'तैत्तिरीय उपनिषद्' में रस को परम ब्रह्म कहा गया है,

क्योंकि उसको प्राप्तकर जीव आनन्द का अनुभव करता है।' इसकी व्याख्या में शंकराचार्य का कहना है कि जिस प्रकार मधु आदि लौकिक रसों से मनुष्य आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार परमात्मा रूपी रस को पाकर योगी जन परम आनन्द को प्राप्त करते हैं। वैदिक साहित्य में शृङ्गार आदि साहित्यिक रसों के लिए रस पद का प्रयोग हुआ है। शृङ्गार, हास्य आदि पदों का प्रयोग वैदिक साहित्य में मिलता है। भरत ने रूपकों की रचना में अथर्ववेद से विशेष रूप रस को ग्रहण किया है।<sup>3</sup> व्याकरण के अनुसार रस शब्द की व्युत्पत्ति चार प्रकार से की जाती है -

1. 'रस्यते आस्वाद्यत इति रसः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिन पदार्थों का आस्वादन किया जाता है वे रस हैं।
2. 'रसति रसयति वा रसः' जो व्याप्त हो जाता है या व्याप्त कर लेता है, उसको रस कहते हैं।
3. 'रस्येत अनेन इति रसः' जिन पदार्थों के द्वारा आस्वादन किया जाता है उनको भी रस कहते हैं।
4. 'रसनं रसः आस्वादः' जो आस्वाद है, उसको रस कहते हैं। रस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए तथा काव्यात्मक रसों के प्रतिपादन करने के लिए वाल्मीकि 'रामायण' का दृष्टान्त दिया जाता है। आनन्दवर्धन ने इसी को काव्य की आत्मा माना है और वे रस ध्वनि को ही श्रेष्ठ ध्वनि स्वीकार करते हैं। रामायण के करुण रस प्रधान काव्य होने पर भी इसमें शृङ्गार, वीर, हास्य, रौद्र, अद्भुत और शान्त सभी रसों का सन्निवेश हुआ है। काव्य में इन रसों के स्वरूप को आचार्यों ने अखण्ड, स्वप्रकाश, आनन्दमय, चिन्मय, वेदान्त स्पर्श, ब्रह्मानन्द सहोदर, लोकोत्तर प्राणरूप

बताया है। नाट्यकला के सिद्धान्त के रूप में रस का विवेचन सर्वप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र में ही मिलता है। नाट्यशास्त्र से भिन्न अन्य शास्त्रों में या दर्शन ग्रंथों में रस शब्द का प्रयोग तो मिलता है परन्तु साहित्य कला से सम्बद्ध तत्त्व के रूप में इसका विवेचन नहीं है।

| संख्या | रस       | वर्ण         | देवताविष्णु |
|--------|----------|--------------|-------------|
| 1.     | शूंगार   | श्याम        | विष्णु      |
| 2.     | हास्य    | श्वेत        | प्रथमा      |
| 3.     | करुण     | कपोत         | यम          |
| 4.     | रौद्र    | रक्त         | रूद्र       |
| 5.     | वीर      | गौर          | इन्द्र      |
| 6.     | भयानक    | कृष्ण        | काल         |
| 7.     | बीभत्य   | नील          | महाकाल      |
| 8.     | अद्भुत   | पीत          | ब्रह्मा     |
| 9.     | शान्त    | कुन्देवुशुभ  | श्री नारायण |
| 10.    | वात्सल्य | पद्मगर्भसदृश | लोकमातायें  |

नाट्य में प्रायः सभी रसों की योजना की जा सकती है आधिकारिक इतिवृत्त के अंगीरस के रूप में यद्यपि शृङ्गार और अंगीरस को ही शास्त्रीय मान्यता प्राप्त है फिर भी यह कोई सार्वकालिक नियम नहीं है। वस्तुतः नाट्य में अंगीरस की प्रतिष्ठा नाट्यकार की प्रतिभा पर निर्भर करती है। जहाँ तक गौण रसों का प्रश्न है नाट्य में सभी रस अंग रूप में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। उपसंहार में मुख्यतः अद्भुत रस की योजना आवश्यक मानी गई है। नाट्य में एक से अधिक रसों के स्वतंत्र विकास में रूप की एकान्विति खण्डित हो सकती है। नाटकीय व्यापार छिन्न-भिन्न हो सकते हैं। अतः अंगी रस के स्वाभाविक विकास को ध्यान में रखकर ही अंगभूत रसों की योजना की जानी चाहिए। आधुनिक नाट्यकारों के रूपकों की रचनाओं में जहाँ रसवादी नाट्य रचनाएँ दृष्टिगत होती हैं। वहीं कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जहाँ आनन्दानुभूति भरतसम्मत शृङ्गार आदि रसों के परिपाक से न होकर किसी समस्या आदि के चित्रण व उसके समाधान से हो रही है। 'शंकर' - शंकर का शान्त रस अंगी रस है, जैसे

न तातो न माता न बन्धुन भ्राता  
न पुत्रो न पुत्री न मृत्यो न भार्ता  
न जाणाभि भक्तिं व्रतं वापि मात

## गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥

रस की अलौकिकता नाटक एक अलौकिक अनुभव है। नाटक कला अनुभूति का महत्त्वपूर्ण साधन है। लोक में हम वस्तुओं में कारण भाव देखते हैं। जैसे दूध में दही बनना। दही बनने पर हमारे सामने दही ही बचता है वैसे ही नाटक में हमें रस का अनुभव होता है। नाटक के समाप्त हो जाने पर नाटक रस के रूप में हमारे पास रहता है। अतः नाटक भी हमारे पास रहता है। उससे पैदा होने वाला रस भी हमारे पास है। कारण के नष्ट हो जाने पर कार्य नहीं है। फिर भी वह भी विद्यमान रहता है। बल्कि नाटक हमारे व्यक्तित्व का एक हिस्सा बनकर बाद तक हमारे भीतर नए-नए अर्थों को जन्म देता रहता है। इस प्रकार यह रस अलौकिक प्रमाण से अलौकिक आनन्द है। नाट्य प्रस्तुति रम्य होती है। माघ रमणीयता की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि- “क्षणे क्षणे यन्ननवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया” यानि कि जो पल-पल में नया हो जाए वह रमणीय है। सहृदय (प्रेक्षक) नाटक का हिस्सा बन जाता है। नाट्य प्रस्तुति उसके जीवन का हिस्सा है। इस नाटक के साथ रहकर पल-पल नया होता रहता है और उससे जन्म लेने वाला रस भी। काव्य और नाटक के वर्णनों से विभावादि एवं रत्यादि भावों का साधारणीकरण के द्वारा सहृदय सामाजिक के अन्तःकरण में सत्त्व भाव के उद्रेक हो जाने से उसमें प्रतिफल से हमारी अन्तरात्मा का स्पष्ट साक्षात्कार हमारे मन में सम्पन्न होने लगता है। चूँकि आत्मा आनन्दमय है। इसलिए उसका आस्वाद आनन्दमय ही होता है। अभिनवगुप्त ने रस को न तो भोग्य न अनुकार्य न आत्मगत्वेन रूप माना जाता है। रस एक अलौकिक विषय है जो दृष्टान्त के बिना हृदयंगम नहीं हो सकता है। जैसे रसोई में उपयोग किये जाने वाले विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों के योग से विविध प्रकार के व्यञ्जन बनते हैं उसी तरह काव्य एवं नाट्य में नाना प्रकार के भावों के समुचित संयोजन से काव्य रस की निष्पत्ति होती है।

आचार्यों के मत में नाट्य रस उन्मेष का प्रधान और सर्वाधिक रम्य साधन है। इसलिए भरत नाट्यशास्त्र में उसे नाट्य रस की संज्ञा प्राप्त है। नाटक में यदि रस नहीं हो तो नाटक का उद्देश्य सफल नहीं हो सकता क्योंकि नाटक के माध्यम से सहृदय (सामाजिकगण) रसानुभूति या रसास्वादन करते हैं। अभिनवगुप्त के मत में तो नाट्य ही

रस है और रस समुदाय ही नाट्य है- 'नाट्यमेव रसः रससमुदायो हि नाट्यम्'।

नाटक को देखकर सहृदय को जो भावनाजन्य अलौकिक आनन्दानुभव होता है उसे ही रसिक प्रेक्षक का कार्यरूप 'रस' कहा जाता है। और इस भावनाजन्य आनन्द को उत्पन्न करने वाले काव्य या नटों का जो भावनात्मक सामर्थ्य है उसे काव्यगत या नटगत कारण रस कहते हैं। नाटककार नाटक की रचना करते हुए यथास्थिति को ध्यान में रखकर नाटक योजना करता है जिससे नाटक का उद्देश्य सफल हो जाये। नाटक और रस दोनों अन्योन्याश्रित हैं। नाटक के बिना रस और रस के बिना नाटक नहीं रहता है। अन्यत्र जहाँ रस की निष्पत्ति होती है। वहाँ भी रस नाट्य रूप बनकर ही निष्पन्न होता है। इसलिए काव्य में भी नाट्यमान होकर ही आस्वादित होता है। अभिनवगुप्त के मत में किसी नाटक के श्रवण या पाठ में हृदय-संवाद का तारतम्य होता है। श्रोता या नाट्य के प्रेक्षक को स्फुट प्रतीति हो सकती है या अस्फुट भी जो स्वभाव से निर्मल हृदय वाले हैं तथा संचारोचित क्रोध, मोह, अभिलाषा आदि पर वश हुए बिना काव्य का रसास्वाद कर सकते हैं। उन्हें दशरूपक या काव्य को सुनते हुए मंच पर उसका प्रयोग देखे बिना नाट्य लक्षण रस संचय की स्फुट ही प्रतीति होती है। अतः काव्य नाट्य रूप और नाट्य रस रूप है। प्रेक्षक जब रंगमंच पर अभिनेता के अभिनय को देखता है। तो उसके मन में स्वतः रस की स्थिति पैदा हो जाती है। भरत ने केवल नट में रस का निर्वाह माना है। इस तथ्य की ओर ध्यान देते हुए अभिनव ने लिखा है कि नाट्य में रस की जो साक्षात्कारात्मक प्रतीति होती है वह काव्य आदि से नहीं हो सकती है। सहृदय सामाजिक में रसानुभूति की प्रक्रिया, रस तत्त्व भारतीय नाटक का प्रमुख साध्य तत्त्व है। नाट्य विधि का प्राणरस को कहा गया है 'रस

प्राणो हि नाट्यविधि'। नाटक के सारे विधान सारे कार्य - व्यापार सारी पात्र सृष्टि और दृश्य - विधान रसानुभूति कराने के लिए ही अवतरित होती है। यह रसानुभूति सौन्दर्यजनित आनन्दमयी चेतना है। इसका स्वरूप आनन्दात्मक होता है। इसलिए भरत ने नाट्य के प्रभाव के विषय में लिखा है- 'विभावानुभावसंचारीसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः पुनः' रसोद्रेक भावना के लिए विभिन्न प्रकार के अभिनयों में सात्त्विक अभिनय को प्रधान माना है। क्योंकि वे सात्त्विक भावों से दर्शक का सीधा साक्षात्कार कराते हैं। यह सात्त्विक अभिनय भावानुभूति को उस गहराई तक ले जाता है। जब स्थायीभाव रसानुभूति में बदल जाता है। उसकी सामान्यीकृत - साधारणीकृत भूमिका में आस्वादन करते हुए दर्शक आनन्दित होता है। नाटक का मूल उद्देश्य सहृदय को रसानुभूति कराना है क्योंकि अभिनेता आदि नाटक का प्रदर्शन करे और दर्शक न हो तो नाटक का कोई प्रयोजन नहीं है।

#### सहृदय

सहृदय जन वे ही लोग हैं जो काव्य एवं शास्त्र (काव्यशास्त्र) के अध्ययन द्वारा अपने हृदय के साथ संवाद की शुद्ध सामर्थ्य प्राप्त कर चुके हैं और इस प्रकार जिनमें प्रस्तुत नाट्य प्रदर्शनी आदि के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करने का गुण है। नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय का काम है रसोत्पत्ति करना। कलाकार अपनी कला से दुःख या घृणा के भाव को ऐसे व्यक्त करें कि दर्शक को आनन्द का अनुभव हो। साथ ही यह भी कि हमारी परम्परा में अभिनेता या कलाकार केन्द्र में हैं - प्रस्तुति प्रजेन्टेशनल है, रीप्रेजेन्टेशनल नहीं।

सहायक आचार्य

रामजस कॉलेज,

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

#### संदर्भ सूची

1. जाग्राह पआट्यमऋग्वेदआत सामभ्यो गीतमेव च यजुर्वेदादभिनयान रसानार्थवर्गादपि । भरत ना. शा 1/17
2. नाट्यात समुदायस्याव रसाः। यदि वा नाट्यमेव रसाः। रससमुदायो हि नाट्यम्। न नाट्य एव च रसा काव्येऽपि।

- ना. शा. अ. 6

3. येषा काव्यानुशीलनाभ्याससाद् विशदीभूते मनो मुकुरे वर्णनीय तन्मयीभवन-भोग योग्यता ते सहृदय सम्वादभाजः सहृदयः। अभिनवगुप्त. ध्वन्यालोक का 1/11 पर लोचन



प्रियंका टोप्पो

## परंपरा की दूसरी खोज

‘परंपरा की दूसरी खोज’ वस्तुतः परंपरा और आधुनिकता के साथ-साथ चलने की गतिशील प्रक्रिया का अन्वेषण है। “ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं परस्पर पूरक हैं।”<sup>1</sup> की विवेचना है और दोनों के पारम्परिक संबंध को खोजना है, परंपरा और अतीत के द्वैत को समझना है। परंपरा अतीत का पर्यायवाची नहीं है। “परंपरा’ जीवन्त प्रक्रिया है”<sup>2</sup> और इसकी जीवन्तता में ही आधुनिकता के गुण छिपे हुए हैं।

परंपरा की यह दूसरी खोज भी लगभग तभी शुरू होती है जब भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अतीत को ही हमारी परंपरा के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था और हम उसी के गौरवपूर्ण वर्णन में अपने वर्तमान के सर्वस्व से मुँह मोड़े हुए थे। अतीत ही हमारे माथे का तिलक बना हुआ था, वही हमारे वर्तमान के लिये भी शक्तिपुंज का काम कर रहा था। हम वेदों की ओर वापस लौटने की बात कर रहे थे। हम पुनः रामराज्य की स्थापना की बात कर रहे थे। गाँधी इस युग के नायक थे और गांधीवाद अपने चरम पर था। (मुक्तिबोध गांधीवाद के विषय में लिखते हैं- “गांधीवाद ने भावुक कर्म की प्रवृत्ति पर कुछ इस ढंग से जोर दिया है कि सप्रश्न बौद्धिक प्रवृत्ति दबा दी गई है। असल में यह गांधीवादी प्रवृत्ति प्रश्न, विश्लेषण और निष्कर्ष की बौद्धिक क्रियाओं का अनादर करती है।”)<sup>3</sup> इस अतीतोन्मुखी समाज में जब राष्ट्रीयता का भाव पनपा तो उसके मूल में ही ‘हिन्दू राष्ट्र’ का भाव बोध छिपा था। जैसा कि उन्नीसवीं सदी में हुए लगभग सभी हिंदी भाषा-भाषी प्रदेशों के आंदोलनों के विषय में कहा जा सकता है कि इनके मूल में हिन्दू

परम्पराओं के राष्ट्रीयकरण की भावना अंतर्निहित थी। उसी प्रकार बीसवीं शताब्दी में हो रहे राष्ट्रीय आंदोलनों में राष्ट्र की परिकल्पना ‘हिन्दू राष्ट्र’ की कल्पना थी।

इन्हीं स्थितियों-परिस्थितियों के बीच सत्यधर्मा खोजकर्ता का आविर्भाव हिंदी समाज में होता है। वे सत्य के लिए आधुनिक प्रतिमान हमारे सामने रखते हैं। वे सत्य के लिए किसी से न डरने की बात करते हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा में अघोर भैरव का वक्तव्य द्विवेदी जी का अपना मंतव्य ही प्रतीत होता है कि “किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं।”<sup>4</sup> इस सत्य को हम ज्ञान का परिचायक कह सकते हैं। यह सत्य लोकोत्तर नहीं बल्कि लोक कल्याणकारी है-“सत्य वह है जिससे लोक का आत्यंतिक कल्याण होता है।”<sup>5</sup>

इस सत्यधर्मा, लोकोन्मुख और आधुनिकता के पक्षधर खोजकर्ता का नाम ‘आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी’ है। ‘परंपरा की दूसरी खोज’ भी इसी सत्यधर्मिता, लोकोन्मुखता और आधुनिकता की पक्षधरता पर टिकी हुई है। इसीलिए हिंदी साहित्य में परंपरा की दूसरी खोज का श्रेय द्विवेदी जी को ही जाता है। द्विवेदी जी परंपरा को परिभाषित करते हुए कहते हैं-“परंपरा से हमें समूचा अतीत नहीं प्राप्त होता। उसका निरंतर निखरता छँटता-बदलता रूप प्राप्त होता है। उसके आधार पर हम आगे की जीवन पद्धति को रूप देते हैं।”<sup>6</sup> आगे वे नीतिशास्त्र से एक पंक्ति ‘चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्’ को कोट करते हुए कहते हैं- “परंपरा का अर्थ विशुद्ध अतीत नहीं है, बल्कि एक निरंतर गतिशील जीवन्त प्रक्रिया है। उससे हमें जो कुछ मिलता है, उस पर खड़े होकर आगे के लिये कदम उठाते

हैं।<sup>17</sup>

द्विवेदी जी के यहाँ शास्त्र और लोक का द्वंद्व निरंतर चलता रहता है और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उन्होंने अंततः लोक का ही पक्ष लिया है। इसी लोकधर्मिता के कारण भक्ति साहित्य में उनकी रुचि अधिक है क्योंकि पूरा का पूरा भक्ति साहित्य लोक को समग्र रूप से अभिव्यंजित करता है। यही कारण है कि वे हिंदी समाज में भक्ति आंदोलन और भक्ति साहित्य की अपनी नवीन और आधुनिक व्याख्या के साथ उपस्थित होते हैं।

द्विवेदी जी ने पहली किताब सूरदास पर लिखी है जिसका नाम 'सूर-साहित्य' है। यहाँ उन्होंने सूर के साहित्य को शास्त्र की दृष्टि से नहीं बल्कि लोक की नजर से देखने का आग्रह किया है। तभी वे राधा-कृष्ण के प्रेम की स्वर्णीयता, निर्मलता और विशुद्धता को देख पाते हैं नहीं तो उनके पहले की परंपरा के शास्त्रज्ञों ने यहाँ तक कह दिया था कि कृष्ण ने भक्ति शाखा में "अश्लीलता की प्रवृत्ति जगाई।"<sup>18</sup>

'सूर-साहित्य' में द्विवेदी जी जोर देकर राधा-कृष्ण के प्रेम संबंध की विभिन्न प्रकार से विवेचना करते हैं। और यह वर्णन इतना अद्भुत है कि लगता है खुद सूरदास ने द्विवेदी जी को अपनी प्रेम-भूमि का परिचय दिया है जिस पर राधा और कृष्ण लीला कर रहे हैं। उन्होंने प्रेम की गहनता और गतिशीलता, सूक्ष्मता और विराटता को हमारे सामने रखा है।

द्विवेदी जी के प्रिय कवि कबीर हैं। कबीर संबंधी उनके मत 'परंपरा की दूसरी खोज' के लिये मील के पथर हैं। कबीर ही 'परंपरा की दूसरी खोज' के केंद्रीय बिंदु हैं। ऊपर यह चर्चा की जा चुकी है कि द्विवेदी जी का हिंदी साहित्य में आविर्भाव किस काल-खंड में हुआ था और उस काल-खंड की स्थिति-परिस्थिति किस प्रकार की थी। उस काल-खंड में कबीर की खोज करना और उन्हें हिंदी समाज में स्थापित करना दरअसल कबीर के 'जाति-धर्म निरपेक्ष समाज' की नींव रखना है। उस काल-खंड में जब हिन्दू और मुस्लिम दो बिल्कुल विपरीत धाराओं में बंट चुके थे, द्विवेदी जी का कबीर की ओर उन्मुख होना, परंपरा की दूसरी खोज ही है। एक ऐसी परंपरा की खोज जिसका लक्ष्य मानवता और मनुष्यता की खोज है, जो मानव जाति को बाँटने के लिए बनाये गये

तमाम जाति-धर्म-वर्ण-वर्ग के साँचों के खिलाफ कबीर की तरह खड़ा है, जो "साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती है।"<sup>19</sup>

यह परंपरा पोथियों (वेद, पुराण आदि ग्रंथ) की परिचायक नहीं है। कबीर कहते हैं-"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।"<sup>10</sup> द्विवेदी जी का लोक भी इसी भाव बोध से बना है। वे लोक शब्द का अर्थ बताते हुए लिखते हैं "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं।"<sup>11</sup> परंपरा की दूसरी खोज उसी ज्ञान को खोजना है जिसका आधार पोथियाँ नहीं हैं। यह सत्य की खोज है, ऐसे सत्य की, जिसके लिये द्विवेदी जी लिखते हैं, "सत्य के लिए ज्ञान की और ज्ञान के लिये कर्म की आवश्यकता है।"<sup>12</sup> कबीर का ज्ञान भी कर्म की आवश्यकता को स्वीकार करता है। दोनों कर्म के महत्व को स्वीकार करते हैं। द्विवेदी जी कहते हैं, "करने वाला इतिहास निर्माता होता है, सिर्फ सोचते रहने वाला इतिहास के भयंकर रथ चक्र के नीचे पिस जाता है। इतिहास का रथ वह हाँकता है, जो सोचता है और सोचे को करता भी है।"<sup>13</sup>

द्विवेदी जी और कबीर दूसरी परंपरा के मजबूत स्तंभ हैं। एक अन्वेषक है तो दूसरा अन्वेषण। लेकिन द्विवेदी जी के लिए कबीर ऐसा अन्वेषण है जिसके लिए खुद उन्हें भी अन्वेषित होना पड़ा। तभी यह सम्भव हो सका कि संस्कृत का महापंडित भाखा में अपनी बात कहने वाले कवि को "वाणी का डिक्टेटर" साबित कर सका।

द्विवेदी जी और कबीर दोनों ही आधुनिकता के पक्षधर हैं। दोनों के आधुनिकता को लेकर भाव भी समान हैं। कबीर अपने अनुभव सत्य "आँखन देखी" की बात करते हैं वहीं द्विवेदी जी दूसरे शब्दों में कहते हैं, "आधुनिकता अपने-आप में कोई मूल्य नहीं है। मनुष्यों ने अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है, उन्हें नए संदर्भों में देखने की दृष्टि आधुनिकता है।" जैसा की पहले ही कहा जा चुका है, 'परंपरा की दूसरी खोज' का एक प्रधान मूल्य आधुनिकता की पक्षधरता है। ऐसी आधुनिकता जो मनुष्य जाति के अपने अनुभवों से निर्मित हुई हो।

द्विवेदी जी तेईस वर्ष की आयु में ही अध्यापन कार्य के लिए शांतिनिकेतन चले गये थे। वहीं उन्हें गुरुदेव का भी सानिध्य मिला। द्विवेदी जी खुद इस बात को स्वीकार

करते हैं कि परंपरा की दूसरी धारा उन्हें गुरुदेव से ही मिली। “शांतिनिकेतन से उन्हें एक अखिल भारतीय व्यापक दृष्टि मिली थी-अखिल भारतीय भी और विश्व व्यापक भी।”<sup>14</sup> इसकी व्यापकता का आभास हमें उनकी भक्ति-आंदोलन संबंधी व्याख्या में ही मिल जाती है। द्विवेदी जी के लिए भक्ति आंदोलन न ही ‘मुस्लिम आक्रमण के प्रतिक्रिया’ स्वरूप था और न ही ‘बिजली की कौंध’ के समान। उनके लिए भक्ति-आंदोलन “भारतीय चिंतनधारा का स्वाभाविक विकास” था क्योंकि वह भक्ति के अखिल भारतीय स्वरूप को देख पा रहे थे। वे भक्ति आंदोलन की धारा को दक्षिण भारत से फूटता हुआ देखते हैं। भक्ति आंदोलन के अखिल भारतीय स्वरूप को देख पाना उनकी अखिल भारतीय दृष्टि के कारण ही संभव हो सका। यह अखिल भारतीय दृष्टि भी ‘परंपरा की दूसरी खोज’ की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है ‘परंपरा की दूसरी खोज’ तमाम साँचों, पहचानों के टूटने के क्षण को खोजना है। यह पहचान

भाषीय, जातीय, वर्गीय, राजीय या राष्ट्रीय ही क्यों न हो। यह खोज कबीर के अन-अस्मिता के क्षण को रेखांकित करना है। यह खोज विश्व बंधुत्व की ओर कदम बढ़ाना है। इस खोज का “अगला कदम सामूहिक मुक्ति का है-सब प्रकार के शोषणों से मुक्ति का।”<sup>15</sup> द्विवेदी जी कहते हैं-“अगली मानवीय संस्कृति मनुष्य की समता और सामूहिक मुक्ति की भूमिका पर खड़ी होगी।”<sup>16</sup>

आज के समय में जब अंधेरा घना और महाबलवान है, इस समय में ‘परंपरा की दूसरी खोज’ का अर्थ है अंधकार के सैकड़ों परतों के भीतर छिपे उस प्रकाश-पुंज को तलाशना जो “मनुष्य की समता और सामूहिक मुक्ति की भूमिका”<sup>17</sup> पर मानवीय संस्कृति का निर्माण करेगी। तभी यह अंधेरा छटेगा और सारा विश्व प्रकाशमान हो सकेगा।

स्नातकोत्तर, हिंदी विभाग  
दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय, गया  
ईमेल- priynkatoppo511@gmail.com

### संदर्भ सूची

1. परंपरा और आधुनिकता, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, पृष्ठ सं. 44, <https://gyankosh.ac.in/bitstream/123456789/24322/1/Unit-6.pdf>
2. वही, पृष्ठ सं. 42
3. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, सातवाँ संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ सं 9-10
4. बाणभट्ट की आत्मकथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, तेइसवाँ संस्करण, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. 82-83
5. वही
6. परंपरा और आधुनिकता-हजारीप्रसाद द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, पृष्ठ सं. 42, <https://gyankosh.ac.in/bitstream/123456789/24322/1/Unit-6.pdf>
7. वही
8. हिंदी सहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चौथा संस्करण, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ सं. 64
9. अशोक के फूल (निबंध संग्रह), हजारीप्रसाद द्विवेदी, अट्ठाइसवाँ संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ सं. 143
10. कबीर ग्रंथावली, कबीर, संस्करण 2013, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ सं. 214
11. जनपद लोक साहित्य का अध्ययन, हजारीप्रसाद द्विवेदी, अंक 1, सन् 1952, पृष्ठ सं. 65
12. अनामदास का पोथा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, अष्टवाँ संस्करण, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. 175
13. भीष्म को क्षमा नहीं किया गया, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी समय
14. दूसरी परंपरा की खोज, नामवर सिंह, चौथा संस्करण, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ सं. 15
15. परंपरा और आधुनिकता, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, पृष्ठ सं. 43, <https://gyankosh.ac.in/bitstream/123456789/24322/1/Unit-6.pdf>
16. वही
17. वही



बिकाश कुमार गुप्ता

## यशपाल की कहानियों में 'व्यंग्य-चेतना'

**प्रे**मचंद के बाद के रचनाकारों में सर्वाधिक लोकप्रिय रचनाकार के रूप में यशपाल महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचंद की कहानियों में जहां इतिवृत्तात्मकता के साथ सभी कुछ कह देने की प्रवृत्ति है वहीं यशपाल की कहानियों में कथावस्तु की कसावट के साथ व्यंग्य की तीक्ष्णता भी है। वर्ग संघर्ष मनोविश्लेषण एवं पैना तीक्ष्ण व्यंग्य कथाकार यशपाल की कहानियों की प्रमुख विशेषताएं हैं।

उनकी कहानियों में जो मुख्य विशेषता उभरकर सामने आती है वह है उनकी कहानियों में व्यंग्य। उनके लेखन में स्पष्टता वैज्ञानिकता एवं निश्चित उद्देश्यता है। सामाजिक यथार्थ के चित्रण में उन्होंने व्यंग्य को समर्थ रूप से इस्तेमाल किया है उनके व्यंग्य तेज और लक्ष्य पर चोट करने वाला है। कथा सम्राट प्रेमचंद के बाद किसी भी अन्य दूसरे रचनाकार ने हिंदी साहित्य में इतने बड़े पैमाने पर मानव समाज की विभिन्न श्रेणियां वर्गों और अन्य मान्यताएं रखने वाले पात्रों की रचना नहीं की जितनी की यशपाल ने की।

यशपाल ने अपनी कहानियों में व्यंग्य को तीक्ष्ण औजार की तरह प्रयोग किया है उनकी कहानियां व्यंग्य के माध्यम से समाज मानव और सत्ता आदि की विसंगतियों को उजागर करती है। यशपाल की कहानी सामाजिक विसंगतियों और अंतर्विरोधों की कहानियां हैं। उन्होंने अपने जीवन काल में प्रचुर मात्रा में कहानियाँ लिखीं। उनकी अधिकांश कहानियों में व्यंग्य की प्रधानता है। इनमें से सबसे अधिक व्यंग्य कहानियाँ धार्मिक विश्वासों से संबंधित है इसके अलावा यशपाल की अन्य व्यंग्य कहानियाँ आर्थिक-विषमता वर्ग-भेद, राजनीतिक-विसंगतियां एवं

नारी-चेतना से संबंधित है। प्रगतिशील चेतना से अनुप्राणित रचनाकार यशपाल कोरी आध्यात्मिकता, ब्रह्मचर्य आदि को पाखंड बताते हैं। काम के वेग को धर्म के नाम पर दबाने का दुष्परिणाम मन एवं तन के साथ समाज पर भी पड़ता है जिसे लेखक ने अपनी कुछ कहानियों में व्यंग्यात्मक रूप से चित्रित किया है। 'धर्मरक्षा' और 'उत्तमी की माँ' ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'धर्मरक्षा' कहानी है प्रोफेसर ब्रह्मव्रत की जिनकी शादी उनके माता-पिता ने उनकी मर्जी के बिना ही कर देते हैं, जबकि प्रोफेसर ब्रह्मव्रत ने आजीवन विवाह ना करने तथा ब्रह्मचर्य पालन करने का व्रत ले रखा था। पहले विवाह और अब संतान के रूप में पुत्री होने की खबर से ब्रह्मव्रत को अपने ब्रह्मचर्य खंडित होने की ग्लानि होती है और वो अपनी पत्नी से सहवास छोड़ने को कहते हुए अपना सारा जीवन वैदिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार करने हेतु प्रतिबद्ध होते हैं। एक स्कूल तथा एक बोर्डिंग की स्थापना की गई जिसमें प्रोफेसर ब्रह्मव्रत स्वयं भी कठिन संयम से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और अपने छात्रों से भी कराते हुए और संसार के कल्याण हेतु उनको उपदेश भी देते हैं। उनकी पत्नी का इसी बीच देहावसान हो चूका होता है और उनकी एकमात्र पुत्री भी गुरुकुल से अपनी शिक्षा पूरी कर अपने पिता के पास आ गयी है। पुत्री विवाह योग्य हो गयी जान वह उसका विवाह कर देने की सोचते हैं। एक दिन प्रोफेसर वेद प्रचार सभा में भाषण देने जाते हैं। वहां से लौटने पर देखते हैं कि उनकी पुत्री और नौकर आलिंगनबद्ध चारपाई पर लेटे हैं। प्रोफेसर को देखते ही नौकर भाग खड़ा होता है। प्रोफेसर से रहा नहीं गया। उन्होंने अपनी बेटी को मारना-पीटना शुरू कर दिया

मारते-मारते उनका हाथ शिथिल जाता है और अपनी ही बेटी को पीटने की अपेक्षा गुंथने, नोचने और पकड़ने लगते हैं। पुत्री अपने प्रोफेसर पिता के इस दुष्कृत्य पर उन्हें लताड़ती है। पिता अपने संयम, नियम तथा ब्रह्मचर्य के व्रत के इस तरह से टूटने पर वह भी अपनी पुत्री के सामने ही वह प्रायश्चित्त करने हेतु अपनी राह लेते हैं। यशपाल की यह कहानी व्यंग्य के माध्यम से ब्रह्मचर्य के दुष्परिणामों की ओर इंगित करती है। यह कहानी फ्रायडियन दृष्टिकोण को आधार बनाकर लेखक ने लिखा है कि संयम की भी एक सीमा होती है। मानवीय-कामवासना भी हमारे अन्य शारीरिक जरूरत की तरह ही होती है। कुरीतियों एवं पाखंड के आवरण में लिपटी हुई उनकी दूसरी कहानी का प्लॉट है - 'उत्तमी की माँ'।

इस कहानी 'उत्तमी की माँ' की उत्तमी की तड़प-तड़प कर इसलिए प्राण छूट जाती है कि उसकी शारीरिक भूख को दबाकर उस पर आध्यात्मिक प्रेम वाली ठंडी लिहाफ की चादर ओढ़ाई गयी। यह कहानी फ्रायडियन-दृष्टिकोण से मानव मन में काम चेतना की झांकती हुई कहानी है जिसमें एक युवा लड़की के काम-कुंठा और दमित वासनाओं को सुलझाने उसका निराकरण करने के बजाय उसकी मां-भाई और समाज के लोग उसके ऊपर देवी आया हुआ समझ कर उसे धर्म, संयम और ब्रह्मचर्य की प्रतिमा मान लेते हैं। एक महिला डॉक्टर उसकी मां को साफ-साफ शब्दों में कहती है "यह तुम्हारी लड़की को शादी मांगता उसको मर्द मांगता।" कहानी की नायिका उत्तमी काम तृप्ति की चाह लिए ही काम-कुंठा की शिकार हो, क्षयी-रोगी की तरह घुल-घुल के मर जाती है। भारतीय समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा पाखंडों के विरुद्ध यशपाल ने कबीर की तरह अपनी लेखनी में व्यंग्य का पुट देकर अपनी आवाज उठाई है।

**रूढ़ियों पर व्यंग्य के पैसेपन की कहानी है 'करवा का व्रत'**

'करवा का व्रत' कहानी की नायिका लाजो का पति कन्हैया लाल क्रूर और पत्थर दिल है फिर भी लाजो अपने पति को अगले जन्म में भी पाने के लिए करवा का व्रत रखती है। यह देखकर पति महोदय को आत्मग्लानि होती है और वह अपनी पत्नी के साथ सहृदय व्यवहार करने लगता है परंतु इस कहानी के द्वारा लेखक ने भारतीय समाज की कुप्रथाओं पर व्यंग्य किया है कि पति

चाहे तो अपनी पत्नी को मारे-पीटे, दासी बनाएं और बेचारी पत्नी ऐसे क्रूर पति को सातों जन्म पाने के लिए व्रत करे! लेखक के अनुसार यह विडंबना नहीं तो और क्या है?

'देवी की लीला' इस कहानी में देवीलाल नाम का एक गरीब अपना पेट काटकर एक साइकिल खरीदता है। नई साइकिल से वह पान खाने पान की दुकान पर जाता है परंतु साइकिल वहीं भूल आता है। घर जाकर उसे साइकिल याद आती है। साइकिल खोने के डर से डरा हुआ देवीलाल मन ही मन देवी मां को प्रसाद चढ़ाने का संकल्प करके पान की दुकान पर जाता है जहां उसे संयोग से उसे अपनी साइकिल मिल जाती है। वह खुश होकर पुनः उसी साइकिल से देवी के मंदिर प्रसाद चढ़ाने जाता है लेकिन जब वह प्रसाद चढ़ा कर सीढ़ी के समीप खड़ी की हुई अपनी साइकिल को देखता है तो साइकिल उसकी नदारद होती है। देवीलाल की पत्नी को पता चलता है कि देवी मंदिर-द्वार के सामने से उसके पति की साइकिल चोरी हुई है तो उसकी पत्नी देवी को कोसती हुई रोने-पीटने लगती है। देवी की निंदा सुनकर पड़ोस के लोग उसका विरोध करने लगते हैं तो सहसा उन्हें चुप रह जाना पड़ता है।

यशपाल की व्यंग्य कहानियों में खोखली प्रतिष्ठा, अस्तित्वहीन मर्यादा और दिखावेपन की प्रवृत्ति की कहानियाँ भी हैं। झूठी प्रतिष्ठा, शानो-शौकत एवं दिखावेपन की प्रवृत्ति पर लिखी गई उनकी कहानी 'परदा' कालजयी कहानी है। इस कहानी में चौधरी पीरबख्श की गरीबी और दयनीयता को दिखाया गया है। पीरबख्श के दादे-परदादे अपने जमाने में रसुख वाले थे। परन्तु पीरबख्श की हालत उनसे इतर है। चौधरी पीरबख्श नाम के चौधरी हैं। अपने बड़े परिवार को दो जून की रोटी भी ढंग से नहीं खिला पाते हैं। लेकिन महंगाई के दौर में भी निम्न तनख्वाह पर अपने बड़े से परिवार को पालते हुए भी अपनी पूर्वजों की शानो-शौकत और चौधराई बनाये रखने में यकीन करते हैं। खानदान की पुरानी प्रतिष्ठा और शानो-शौकत को बनाए रखने का झूठा मोह इन दो स्थितियों के बीच पीरबख्श की माली हालत सुधारने की वजह बिगड़ती जा रही है। सत्य तो यह था कि पुरखों से प्राप्त हुई घर की हर वस्तु, सामान को गिरवी रख-रखकर, जब सभी कुछ गिरवी रखा जा चुका होता है, बेचा जा चुका होता है फिर अंत में

भुखमरी की स्थिति आ जाती है। हालत तो यहां तक पहुंच जाती है कि पीरबख्श और घर के दूसरे सदस्यों के पास सिवाय तन के कपड़े, वह भी फटे-चीथड़े के अलावा कुछ भी नहीं बचता। इन स्थितियों में भी चौधरी पीरबख्श अपनी बेरोजगारी दूर ना करने का कोई उपाय करके, उसकी जगह सदा की भांति एक पठान से कर्जे लेकर, कर्जे के पैसे से अपना और परिवार का दो जून का पेट भर रहे होते हैं।

कहानी के अंत में अपने कर्ज के पैसे वसूलने आया हुआ पठान नियत समय पर ब्याज ना मिल पाने के कारण पिछले महीने से ही भनाया हुआ था और अब पीरबख्श भी क्या करते वो अपने महीने भर का तीन-चौथाई वेतन भी पेशगी के तौर पर अपने मिल-मालिक से उठा चूके थे। पीरबख्श के हाथ खाली थे, उन्हें मकान का किराया भी चुकाना है, पठान से लिए कर्जे के पैसे भी सूद के साथ वापिस करनी है। पठान पहले भी अपने सूद के रुपयों को लेकर पीरबख्श की गैर-मौजूदगी में आ चुका था और अपने हाथ में रखे डंडे से ड्योढ़ी पर लटके हुए परदे को डंडे से ठेलते हुए, परिवार को जलील कर घंटे भर गाली देने के बाद कुछ घंटों में आने की बात कहकर जा चुका था। चौधरी पीरबख्श के घर आते ही पठान भी आता है और आते ही ऊँचे स्वर में नंगी गालियों की बौछार कर धमकाने लगता है। उसके ऊँचे स्वर से वहां खासी भीड़ जमा हो जाती है। पठान कहता है-“अरामी अमारा पैसा मारेगा। अम तुम्हारा खाल खींच लेगा। पैसा नहीं है तो परदा लटका के शरीफजादा कैसे बनता?” चौधरी पीरबख्श अपने दोनों हाथ ऊपर कर क्रूर पठान को अल्लाह की दुहाई देते हैं, पठान के दोनों घुटने छू कर घर में पैसे, कपड़े, गहने, बर्तन नहीं होने की बात कहते हैं। इस पर पठान क्रोधित हो ड्योढ़ी पर टंगे परदे जो कि चौधरी साहब के परिवार की इज्जत की रक्षा में दरवाजा नहीं होने की स्थिति में भी दरवाजा बन के काम कर रहा था, पर झपट पड़ता है। पठान ने उसे ही झटक लिया। परदा के झटक लिए जाने से जैसे चौधरी के जीवन की डोर भी टूट गई वह जमीन पर गिर पड़े। आगे के दृश्य को देखने की हिम्मत अब चौधरी में नहीं थी परंतु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा सहसा परदा हटाये जाने से “औरतें ऐसी सिकुड़ गईं जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। उनके शरीर पर बचे चिथड़े उनके एक तिहाई

अंग ढकने में भी असमर्थ थे।...उस नग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिघल गई। ग्लानि से थूक परदे को आंगन में वापिस फेंक क्रुद्ध निराशा में उसने “लाहौल बिला...” कहा और असफल लौट गया। ...चौधरी बेसुध पड़े थे। जब उन्हें होश आया ड्योढ़ी का पर्दा आंगन में पड़ा था परंतु उसे उठाकर फिर से लटका देने का समर्थ उसमें शेष न था।”

यशपाल की एक अन्य कहानी ‘आतिथ्य’ है। उनकी यह कहानी रूढ़िवादी समाज में प्रचलित, परम्परागत मान्यता के विरुद्ध है। लेखक ने अपनी कहानी ‘आतिथ्य’ में पहाड़ी लोगों के आतिथ्य और अतिथि सेवा-भावना का जिक्र किया है लेकिन उनकी रूढ़िवादी अमर्यादित परम्परा का विरोध भी। इस कहानी में सर्दियों की रात एक यात्री जो कि पहाड़ी नैसर्गिक सुंदरता को देखने के लिए आया है। रास्ता भटक जाता है। रात हो जाती है। उसे बहुत ठंड लग रही होती है, जंगली जानवरों का भी उसे भय है। इस ठंड की रात में एक पहाड़ी परिवार उसे आश्रय देता है। बढ़िया भोजन कराता है। भोजन करने के बाद उसको परिवार की युवा और सुंदर स्त्री से हाथ पैर भी दबाती है। देर रात उस भीषण ठंड में उसे यात्री को घर की स्वामिनी, गृहस्वामी की मौन सहमति से उस यात्री को देवता मानते हुए तन भी अपना भी सौंप देती है। यशपाल की यह कहानी व्यंग्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करती है और यह ज्वलंत प्रश्न करती है कि क्या यह रूढ़िवादी परंपरा अमर्यादित अनैतिकता नहीं है!

पहाड़ी लोगों की रूढ़िवादिता और अंध-श्रद्धा की कहानी है ‘डायन’। पुंदना एक पहाड़ी लड़का है जो कि अपने गांव से भाग कर शहर आ जाता है। शहर में एक जगह वह नौकरी करता है और अपने मालिक की हम उम्र लड़की सुरजू के साथ उसका प्रेम-सम्बन्ध हो जाता है। एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो वह दोनों भाग जाते हैं। पुंदना उसे भगाकर अपने घर ले आता है। पुंदना की मां विधवा है। पुंदना की इस विधवा मां का इतिहास यह है कि उसने भी एक पहाड़ी से विवाह की थी और उसे अपने पति के अलावा पति के दो भाइयों के साथ भी रहना पड़ा था। उस गांव में चलन था कि एक औरत कई मर्दों के साथ रह सकती है। पुंदना की इस विधवा मां के तीन बेटे और भी हैं। उसकी मां चाहती है कि जैसे उसने अपने पति के दो भाइयों के साथ शारीरिक सम्बन्ध बना

कर साथ निभाया था वैसे ही पुंदना की पत्नी सुरजू उसके अन्य बेटों के साथ भी शारीरिक संबंध बनाए और एक तरह से उनकी पत्नी बनके रहे। पुंदना की पत्नी सुरजू यह बात नहीं मानती। तब उस पर अत्याचार किया जाता है। गांव के लोग भी उस पर अत्याचार करते हैं। पति पुंदना चुपचाप यह सब देखता रहता है। रात को भरे समाज में सबके सामने उसे डायन घोषित कर शराब जबरन पिलाई जाती है और रात को उसकी बेहोशी की हालत में उसके देवर उसके साथ बलात्कार करते हैं। सवेरे होते ही सुरजू झरने पर जाती है और फिर चट्टान से कूद कर अपनी जान दे देती है। पहाड़ी लोगों के इस कुप्रथा को लेखक ने इस कहानी में भली-भांति चित्रित किया है और उनकी सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया है।

यशपाल ने अपनी कहानियों में आर्थिक-विषमता और वर्ग-संघर्ष को लेकर कई कहानियों की रचना की। उनकी इन कहानियों में 'महादान' कहानी भी है जिसकी पृष्ठभूमि बंगाल के अकाल पर आधारित है। 'महादान' कहानी सेठ टिल्लूमल नाम के व्यापारी के इर्द-गिर्द घूमती है। वह अत्यधिक मुनाफाखोरी करता है। कम दाम में चावल खरीद कर काले बाजार में बेचा करता है। मुनाफे की भारी-भरकम राशि में से अंश मात्र राशि से भूख और दाने के अभाव में मरनेवाले वाले लोगों की अंत्येष्टि क्रिया के लिए लकड़ी का दान दे दिया करता है। टिल्लूमल जैसे मुनाफाखोर और मानवता को कलंकित करने वाले व्यापारियों की इस मुनाफाखोरी को लेखक ने 'महादान' कहकर खुलकर व्यंग्य किया है। क्योंकि टिल्लूमल जैसे ही बड़े सेठों ने बड़े स्तर पर अनाज और खाने-पीने की सारी वस्तुएं अधिक सस्ते दरों पर खरीदकर अपने गोदामों में भरना शुरू कर दिया था जब बंगाल का अकाल का फैलना आरम्भ कर चुका था। क्या बच्चे, क्या बूढ़े, क्या जवान सभी भूख से मर रहे थे और टिल्लूमल जैसे लोग बाजार से अनाज गायब कर रहे थे। लोगों को मरने के लिए छोड़ रहे थे। भूख से असंख्य लोग रोज मर रहे थे। गिद्ध, चील, कौए आदि भूख से मरे मृत बच्चों, औरतों, लोगों की लाशों को नोच के खा रहे थे। अंग्रेजी शासन इस घटना पर आँखें मुंदे इस घटना पर मौन थी। सेठ टिल्लूमल जैसे लोग पुण्य कमाने के नाम पर लुटे हुए पैसे से उन भूख से मरे हुए लोगों की अंत्येष्टि क्रिया करने के नाम पर लकड़ी का दान भी कर रहे थे। यशपाल की यह कहानी

टिल्लूमल जैसे सफेदपोश के चरित्र को उजागर करती है।

भारतीय समाज में कोढ़ की तरह फैले जातिवाद और वर्ग-विषमता पर आधारित कहानी 'न्याय और दंड' है। धक्कू एक हरिजन बालक है। वह बहुत मेहनत कर पिटारी, टोकरियाँ आदि बनाकर मेलों में ले जाकर बेचा करता है। वह और उसका परिवार से पत्तल पर भोजन करते आ रहे हैं। धक्कू के मन में बहुत दिनों से चाह थी कि वह भी औरों की तरह कांसे की थाली में खाए। धक्कू बहुत मेहनत से बचाए गए पैसों से मेले में अपने लिए एक कांसे की थाली खरीदता है। मेले में धक्कू के कांसे की बर्तन खरीदने की बात गांव के ठाकुरों और मुखिया को पता चलती है। ठाकुरों के राय-अनुसार इन डोमों के हाथ में इतना रुपया आ गया है कि आज थाली खरीदी है, कल घोड़ा खरीद इनकी सवारी करेंगे। ठाकुर लोग मुखिया की अगुवाई में धक्कू के मां-बाप को बहुत मारते हैं। घर जला देते हैं। कांसे की वो थाली तोड़ देते हैं जिसे धक्कू ने बड़े मेहनत के बात खरीदा था, सवणों की तरह खाने के लिए। ठाकुरों का प्रकोप तब जाकर शांत होता है जब डोम जाति के यह लोग धरती पर अपना सर टेक माफी मांगते हैं लेखक की यह कहानी तत्कालीन सामाजिक-व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करती है।

यशपाल की एक अन्य कहानी 'गुलाम की वीरता' शोषक-शोषित वर्ग पर आधारित है। शोषित वर्ग में चाहे कितना बड़ा बहादुर और साहसी क्यों न पैदा हो जाए शोषक वर्ग हमेशा उनको ईर्ष्यावश दबा के रखता है। उनको उभरने नहीं देता, उनको अपनी व्यवस्था के लिए खतरा समझता है। मुलुआ नीची जाति का एक व्यक्ति है जो वन में शिकार करता है। उस शिकार को मुलुआ ने अपने पौरुष के बल पर शिकार किया है। परंतु क्या मजाल कि उस शिकार को अपना शिकार भी कह सके क्योंकि वह रियाया है। मुलुआ का वक्तव्य है-“लोग कहीं नाहर मार सकते हैं क्या? वह तो सरकार राजा का शिकार है। वह वन के राजा वे जग के राजा हैं।” यहां लेखक ने स्पष्ट किया है कि शोषक अपने बल और साहस का प्रदर्शन अपने स्वामी के सम्मुख नहीं कर सकता। गुलाम का धर्म है निरंतर झुकना। “जो कमबख्त कमीन, गुलाम होकर जन्मा वह वीरता क्या करेगा करेगा? करेगा तो इसका दंड पाएगा।” लेखक ने अपने इन वाक्यों से सदियों से चलती आई कुव्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है।

यशपाल की राजनीतिक कहानियां भी तत्कालीन समय की भ्रष्टाचार, अवसरवादिता और प्रशासनिक प्रवृत्तियों की जीवंत दस्तावेज हैं। राजनीतिक अवसरवादिता को लेकर लिखी गयी उनकी व्यंग्य कहानी 'चन्दन महाशय' है। चन्दन महाशय एक ऐसे नेता हैं जो अपनी स्वार्थ-लिप्सा को पूरा करने के लिए दल-बदल करते रहते हैं कभी कांग्रेसी बन जाते हैं तो कभी कम्युनिस्ट। उनकी अवसरवादिता और प्रतिष्ठा-लोभ की इस प्रवृत्ति से चीज कर कम्युनिस्ट उन्हें एक दिन मंच पर चढ़ने नहीं देते हैं और पीट देते हैं, किंतु कांग्रेसी उनका पक्ष लेकर पुराने ही सही लेकिन अपने इस दल-बदलू नेता के सम्मान की आड़ में अपना मुहिम चलाते हैं और प्रदर्शन करते हैं। लेखक ने 'चन्दन महाशय' कहानी में राजनीतिक अवसरवादिता की पोल खोल दिया है। यशपाल की राजनीतिक विसंगति की दूसरी कहानी है-'प्रधानमंत्री से भेंट'। जनता की ही सरकार जनता को किस तरह से हाँकती है इस कहानी में भारतीय प्रशासन की विसंगतियों का चित्रण व्यंग्य के माध्यम से लेखक ने बखूबी दिखाया है। 'प्रधानमंत्री से भेंट' प्रधानमंत्री के दर्शनार्थ एवं अपने समस्याओं के समाधान हेतु आये जनता की कहानी है। स्वतंत्र भारत के छोटे-बड़े अफसर, मंत्री से लेकर प्रधानमंत्री तक को आम लोगों की समस्याएं सुनने का, मिलने का समय नहीं है, जबकि उनको अफसरों, मंत्रियों के कार्यालयों से मिलने का नियत समय दिया जाता तभी वे आते हैं। आम और खास लोगों की लगी कतारबद्ध पंक्ति से बिना मिले और दूसरे अन्य स्थानों पर भाषण करने जाते स्वतंत्र भारत के प्रधानमंत्री की व्यस्तता और जन-विमुखता इस कहानी में व्यंग्यात्मक तेवर के साथ अभिव्यक्त हुई है।

एक अन्य कहानी 'जन गण मन अधिनायक जय हे' के द्वारा लेखक ने इसमें यह दिखाया है कि महात्मा गांधी की ही मानवतावादी विचारधारा आदर्शों को उन्हीं के अनुयायियों ने किस तरह पैरों के तले रौंद दिया। इस कहानी में यथार्थवादी-दृष्टिकोण से गांधीवादी आदर्शों की पड़ताल की गई है। कहानी में व्यंग्य के छींटे भी

जहाँ-तहाँ उड़े हैं।

#### निष्कर्ष :

प्रेमचंदोत्तर युग के सर्वाधिक प्रतिभाशाली रचनाकार यशपाल का हिंदी साहित्य की लगभग सभी विधाओं में साहित्यिक हस्तक्षेप रहा है। भारत की परतंत्रता और स्वतंत्रता दोनों ही उन्होंने देखी थी। दोनों ही युग की परिस्थिति-जन्य घटनाएं, सामाजिक-राजनीतिक स्वार्थ, सत्ता परिवर्तन, राजनीतिक अवसरवादिता, मूल्यहीन नई पीढ़ी, व्यक्तिक-स्वच्छंदता आदि विसंगतियों को यशपाल ने द्रुत गति से पनपते देखा था। जिन्हें अपनी कहानियों में उन्होंने व्यंग्यात्मक तेवर के साथ उभारा है। यद्यपि यशपाल प्रतिबद्ध मार्क्सवादी थे परंतु मार्क्स के बाद अगर उन पर किन्हीं और का प्रभाव रहा है तो वह है मनोविश्लेषक फ्रायड का। यशपाल की लगभग समस्त कहानियों पर मार्क्सवादी-चेतना का प्रभाव है। वहीं उनकी बहुत सारी कहानियों पर फ्रायड के मनोविश्लेषण दृष्टिकोण का प्रभाव भी साफ परिलक्षित होता है।

यशपाल को आधुनिक कबीर की संज्ञा दी जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा। यशपाल गद्य विधा के कबीर ही हैं ऐसा मेरा मानना है। यशपाल ने कबीर की ही तरह लगभग सभी वर्गों, सभी धर्मों में व्याप्त कुरीतियों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया। परिवार, समाज, धर्म, राजनीति आदि के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से लेकर समसामयिक-दौर के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की विद्रूपताओं को उन्होंने अपने व्यंग्य-कहानियों के माध्यम से चित्रित किया है। जैसे कबीर दास ने अपने दोहों के द्वारा तत्कालीन समाज की विसंगतियों को धो डालने की कोशिश की थी, वैसे ही क्रांतिकारी मार्क्सवादी और प्रगतिशील चेतना के चितरे कथाकार यशपाल ने अपने उपन्यासों, निबंधों खासकर अपनी कहानियों में व्यंग्य के माध्यम से समाज में व्याप्त जीवन के सभी क्षेत्रों की विसंगतियों पर करारा प्रहार किया है।

शोधार्थी

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

Email : guptabikashkumar261@gmail.com

#### संदर्भ सूची

1. यशपाल, उत्तमी की माँ, पृष्ठ-23, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2010
2. यशपाल, तर्क का तूफान, पृष्ठ-143, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2010
3. वही, पृष्ठ-144, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2010
4. यशपाल, भस्मावृत चिंगारी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-30, इलाहाबाद प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2010



विजय यादव

## हिन्दी साहित्य पर विचारधाराओं का प्रभाव

हिन्दी साहित्य का आरंभ किसी विचारधारा से प्रभावित होकर नहीं बल्कि सामाजिक सुधार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के उद्देश्य से हुआ होगा। आदिकाल की रचनाएं हिन्दी साहित्य के बनने की प्रक्रिया मात्र है जिसमें किसी विचारधारा को आरोपित करना या उसकी खोज करना निरर्थक ही होगा। आदिकाल की रचनाएं भारतीय इतिहास के उन पन्नों को खोलती हैं जहां समाज में सबसे पहले आधारभूत समस्याओं में सुधार की आवश्यकता है। जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लंबा संघर्ष करने वाले समाज के लिए साहित्य की उपयोगिता क्या रही होगी, कहना मुश्किल है, परंतु जहां तक विचारधारा का सवाल है तो आदिकाल के नामकरण से थोड़ा बहुत उसे समझा जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीरगाथा काल' कहकर तत्कालीन रचनाओं की प्रामाणिकता पर सवाल भी उठाया। अगर हम आदिकालीन साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन करें तो स्पष्ट पता चल जाएगा कि इन रचनाओं का सामाजिक अवदान कुछ भी नहीं है, हाँ ये अवश्य है कि उन रचनाओं से तत्कालीन सामाजिक ऊहापोह को समझा जा सकता है और उस पर अपनी राय व्यक्त की जा सकती है। आदिकालीन साहित्य हिन्दी साहित्य की धरोहर है उसकी उपयोगिता को कम करके नहीं देखा जा सकता है।

मध्यकालीन कविता सही मायने में भारतीय समाज को समझने के लिए निर्णायक भूमिका निभाती है। मध्यकालीन साहित्य भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन है जिसमें पूरे समाज का चेहरा मौजूद है। पूर्व-मध्यकाल में जहां सांझी-संस्कृति की झलक मिलती

है वहीं उत्तर-मध्यकाल में भारतीय इतिहास को समझने की दृष्टि भी मिलती है।

अगर हम भक्तिकालीन कवियों और चिंतकों के समग्र साहित्य को समझने का प्रयास करें तो स्पष्ट हो जाता है कि तमाम तरह की विसंगतियों और भावनाओं के आपसी टकराव के बावजूद भी उत्सवधर्मिता का साहित्य है। भक्त कवियों की विचारधारा किसी व्यक्ति या संस्था की विचारधारा नहीं थी बल्कि भारतीय संस्कृति में प्राचीन समय से चली आ रही सांस्कृतिक चेतना को विकसित करने का प्रयास थी। मध्यकालीन साहित्य के चिंतक प्रो. कैलाश नारायण तिवारी ने इस संबंध में लिखा है- “मध्यकालीन संतों की मूल विचारधारा आध्यात्मिक-चेतना की जागृति पैदा करना है। ईश्वर के साकार और निराकार रूप की उपासना करना इनकी विचारधारा का प्रस्थान बिन्दु है।”

मध्यकालीन कवि भारत को एक शक्ति से जोड़ना चाहते थे जो उनके अंदर ही व्याप्त थी। बाह्याडंबर कभी भी उनका उद्देश्य नहीं रहा। कबीर और तुलसी भक्तिकालीन कविता के दो ऐसे चेहरे हैं जिनके साहित्य में निर्गुण और सगुण रूप में राम की आराधना की गई है। दोनों के राम में जमीन-आसमान का फर्क है लेकिन दोनों का उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों को दूर करना है। दोनों की सत्ता भी अलग और आकार भी लेकिन सामाजिक समरसता की बात आते ही दोनों एक हो जाते हैं। दोनों की साधना पद्धति अलग है लेकिन उद्देश्य एक ही है-‘समाज का विकास और पूर्वाग्रहों से मुक्ति’ किसी कविता का मूल तत्व मनुष्यता की रक्षा है और जीवन को उत्सवधर्मी बनाना है।

भक्तिकालीन कविता किसी विशेष विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए नहीं थी बल्कि मनुष्यता का प्रचार करना था। अपने इसी उद्देश्य के कारण कई बार उन्हें अपनी समकालीन सत्ता से टकराना भी पड़ा। लेकिन इन कवियों ने हार नहीं मानी और न ही अपनी कविता को बिकने दिया। सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज बुलंद कर सामान्य जनता को अच्छे कर्म के लिए प्रेरित करना ही इन कवियों का मूल उद्देश्य रहा-“मध्यकालीन विचारधारा से हमें आत्मविश्वास और अच्छे कर्म करने की प्रेरणा मिलती है। संत लोग जिस तरह सामंतों, राजाओं, पुरोहितों और मुल्लाओं को फटकारते हैं उसी तरह की फटकार की जरूरत आज भी है, पर दुर्भाग्य की बात है कि आज का बुद्धिजीवी सही बात कहने से कतराता है, फटकारने की तो बात ही अलग है।”<sup>12</sup>

भक्त कवि किसी व्यक्ति के लिए कार्य नहीं करते थे बल्कि समूची मानव जाति को मानवीय सरोकारों से जोड़ना ही कवियों का धर्म था। मध्यकाल की कविताओं का मूल्यांकन हमेशा गलत हुआ। आधुनिक आलोचना से उपजे अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद जैसी विचारधाराओं ने भक्ति कविता की कटु आलोचनाएं की हैं जबकि इन कवियों ने स्वयं उसी का विरोध किया जिसके लिए आज उनकी आलोचना की जाती है। आलोचकों को समझना बहुत जरूरी है कि भक्ति कविता धार्मिक प्रचार की कविता नहीं है, बल्कि धार्मिक आडंबर के विरोध की कविता है। इस संबंध में यह वाक्य देखने योग्य है-“मध्यकालीन समाज में जिस असहिष्णुता और धार्मिक बाह्याचार की तीव्र आलोचना की जाती है उसके जिम्मेदार सामंत, पुरोहित, मुल्ले और बड़े-बड़े व्यवसायी थे। उस झगड़े को बढ़ावा देने वाले मुल्ले और जजमनिया ब्राह्मण थे। इधर बाहर से आए तुर्क भी थे। पठान भी थे और मुगल भी थे। जिनमें आपस में गहरा मतभेद था।”<sup>13</sup>

भक्त कवियों की कविता में केवल भक्ति का मूल्यांकन कर उनकी कविता के साथ न्याय नहीं किया जा सकता है। उनके यहां जो जीवन दर्शन और समाज के लिए जो दृष्टि है वह किसी भी काल में देखने को नहीं मिलती है। हिन्दी आलोचना ने सिर्फ इन्हें कवि और भक्त की तरह देखने का प्रयास किया है जबकि इस काल के रचनाकार महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए रचना करते हैं। उनके लिए साहित्य एक जिम्मेदारी है न कि सिर्फ अभिव्यक्ति- “इस

काल के भक्त कवि केवल (आध्यात्मिक) मात्र ही नहीं थे। अपितु वे एक सफल साहित्य द्रष्टा, संस्कृति विवेचन और सूक्ष्म इतिहास दृष्टि-सम्पन्न रचनाकार भी थे। सामाजिक जीवन का कोई ऐसा कोना नहीं जहां इनकी नजर न गयी हो।” हिन्दी साहित्य में सगुण विचारधारा आकस्मिक नहीं थी बल्कि परंपरा से चले आ रहे रामायण और महाभारत की मूल्यवत्ता को एक बार पुनः प्रतिष्ठित करने की जनाकांक्षा की परिणाम थी जो सूर और तुलसी की वाणी से प्रस्फुटित होकर अग्रदास (रामानन्द के शिष्य परंपरा में) अष्टछाप के साथ अन्य कवियों और रसखान से प्रवाहित होती हुई केशव तक को स्पर्श करती है।”<sup>14</sup>

रीतिकालीन कविता एक तरह से आधुनिक काल की पूर्वपीठिका ही है। इस काल की रचनाओं के संबंध में कुछ-कुछ आदिकालीन साहित्य जैसी धारणा बनती है। सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर रीतिकालीन कविता की स्थिति आदिकाल की तरह प्रतीत होती है। इस काल की रचनाओं में भी दरबारी प्रवृत्ति और श्रृंगार का वर्णन देखने को मिलता है। राजाओं की प्रशंसा और अपने समाज की समस्याओं से विमुख साहित्य की रचनाओं के कारण इस काल के साहित्य की घोर आलोचनाएं हुईं और इस काल को ‘अंधकार काल’ तक कहा गया। साहित्य के सैद्धान्तिक पक्ष से देखें तो रीतिकाल सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य की उपलब्धि है परंतु रचनाओं की संवेदना के स्तर पर देखें तो रचनाकार का अपने समाज की समस्याओं से दूर होकर भोग-विलास में डूबे लोगों का अभिनंदन ग्रंथ है। इस काल की रचनाओं की विचारधारा न तो साहित्य को प्रभावित कर सकी और न ही आलोचकों को। अतिश्रृंगारिकता और झूठे वीरत्व के दर्जनों महाकाव्य इस काल में लिखे गए लेकिन सामाजिक स्तर पर किसी बड़े मूल्य को स्थापित नहीं कर पाने के कारण रीतिकालीन कविता हमेशा आलोचकों का शिकार बनी।

विचारधाराओं का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव आधुनिक काल के साथ व्यापक स्तर पर हुआ क्योंकि अभिव्यक्ति के लिए कई विधाओं का जन्म हुआ जो अपनी बात को आसानी से कहने का मौका देता है। हिन्दी गद्य का विकास आधुनिक काल की सबसे बड़ी उपलब्धि है। गद्य के प्रादुर्भाव ने साहित्य को कई ऐसी विधाओं से परिचित कराया जो उपज और सरल तो है ही प्रभावशाली भी है। निबंध, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र जैसी विधाओं ने साहित्य

को आम जनता तक पहुँचाया जिससे अधिक-से-अधिक लोगों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

आधुनिक काल का पहला चरण 'भारतेन्दु युग' है। इस काल की सबसे लोकप्रिय विधा है-'निबंध'। इस काल के निबंधों में साहित्यकारों ने खुलकर अपने समाज की उपलब्धियों और चुनौतियों पर चर्चाएं की हैं। प्रसिद्ध निबंधकार बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबंधों में भारतीय समाज की समस्याओं और चुनौतियों पर बेबाक टिप्पणी की है। उनका मानना है कि साहित्य अपने देश की जाति की व्याख्या भी करता है। किसी भी देश का साहित्य पढ़कर समझा जा सकता है कि वह किस जाति का साहित्य है। यहां जाति का अर्थ समाज से है। वे किसी जाति विशेष की बात नहीं करते, बल्कि उस पूरे समाज की बात करते हैं जिसका वह साहित्य है। वे लिखते हैं-"प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है, जो जाति जिस समय जिस भाव से परिपूर्ण या परिलुप्त रहती है, वे सब भाव उस समय के साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं।"<sup>15</sup> इस तरह से देखें तो साहित्य सबसे पहले मनुष्य के विकास की बात करता है विचारधारा का सवाल बहुत बाद में आता है।

समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार समाज से विभिन्न तरह के अनुभव पाता है, उन्हीं अनुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है तो वह साहित्य बन जाता है। शब्दों की सही अभिव्यक्ति ही मनुष्य को एक दिन प्रसिद्ध साहित्यकार बना देती है। साहित्य का पहला उद्देश्य राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति को जीवित रखना है। साहित्यकार का कर्म ही है कि वह ऐसे साहित्य का सृजन करे जो राष्ट्रीय एकता, मानवीय समानता, विश्व-बन्धुत्व तथा हाशिये पर खड़े लोगों को केंद्र में ला सके। सत्ता और प्रशासन को उनके विकास के लिए प्रेरित कर सके।

विचारधारा शब्द का प्रभाव प्रगतिशील साहित्य के साथ ही आरंभ होता है। इस समय की रचनाओं में पारंपरिक साहित्यिक संवेदना का विरोध किया गया और यह कहा गया कि साहित्य अब आदर्श की स्थापना की वस्तु नहीं रह गया है। मार्क्सवादी विचारधारा के लेखकों ने साहित्य में विचारधारा शब्द को व्यापक अर्थों में विस्तार दिया।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि मार्क्सवादी विचारधारा

ने हिन्दी साहित्य को बहुत प्रभावित किया। आज भी उसका प्रभाव साहित्य पर व्यापक स्तर पर देखा जा सकता है। हाशिये के समाज के प्रति अपनी सहानुभूति और लोकतान्त्रिक दृष्टि के कारण मार्क्सवादी आलोचकों का साहित्य पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा जिसके परिणामस्वरूप प्रगतिशील रचनाओं का जन्म हुआ। मार्क्सवाद ने साहित्य को नई तरह से देखने की दृष्टि प्रदान की। साहित्य और विचारधारा का सवाल बहुत जटिल नहीं है, जटिलता तब उत्पन्न होती है जब साहित्य में कोई विचारधारा स्वाभाविक रूप से न आकर योजनाबद्ध तरीके से आने लगती है। मार्क्सवाद विरोधी आलोचक यह मानते हैं कि विचारधारा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति संकुचित हो जाता है और वह अपने साहित्य में उन मूल्यों को नहीं ला पाता जो उसका खुद का विजन है, बल्कि विचारधाराओं के सैद्धान्तिक दबाव में वह साहित्य में आने वाली स्वाभाविक संवेदना में अवरोध उत्पन्न करता है। रचना के मूल स्वरूप से वह इतर लिखने लगता है। अपनी कृति का कलात्मक सौन्दर्य स्वयं नष्ट कर लेता है।

मार्क्सवादी चिंतक और रचनाकार साहित्य में विचारधारा को आवश्यक मानते हैं, उनके अपने मत हैं जो प्रभावित भी करते हैं। डॉ. जगदीश शर्मा का मत है कि-"जब रचनाकार किसी विचारधारा को आत्मसात कर लेता है तो वह उसकी कल्पना में रम कर उसे दिशा देती है। विचारधारा प्रेरित कल्पना विषयवस्तु के प्रत्यक्षीकरण में योग देकर रचना के रूपाकारों में भी ढलती है, रचना का अभिव्यक्ति पक्ष भी उसकी विचारधारा से निर्दिष्ट होता है, लेकिन मात्र विचारधारा से वह निर्धारित नहीं होता, और भी कितने ही तत्त्वों की भूमिका उसके स्वरूप-निर्धारण में रहती है। विचारधारा उनमें से एक है।"<sup>16</sup>

साहित्य समाज के यथार्थ को व्यक्त करने की कलात्मक अभिव्यक्ति भी है। साहित्य की पृष्ठभूमि में विचारधारा और कल्पना का अनिवार्य समावेश होता है। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी ख्यातिप्राप्त पुस्तक 'कविता के नए प्रतिमान' में इस बहस को स्पष्ट करते हुए लिखा है-"कविता (साहित्य) में विचारों को सजीव चित्रों और प्रतिमाओं के रूप में व्यक्त होना चाहिए। लेकिन यह शक्ति कैसे आती है? विचार जिस प्रकार प्राप्त होता है, उसी प्रकार अभिव्यक्त भी होता है। यदि वह पुस्तकों से प्राप्त होता है, पुस्तकीय ढंग से प्रकट होता है। यदि वह जनारण्य से दूर एकान्त

कमरे में आराम कुर्सी के चिन्तन से प्राप्त होता है तो रचना में भी एकान्त और वैयक्तिक चिन्तन का रूप लेता है, और यदि वह जीवन के संघर्षों में कुछ न्योछावर करने से प्राप्त होता है तो उसी गर्मी, उसी ताजगी, उसी सजीवता, उसी सक्रियता तथा उसी मूर्तिमत्ता के साथ रूपायित होता है। साहित्य में इसी रूपायन का महत्व है।”

इस तरह हिन्दी में आज भी मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव देखा जा सकता है। इस विचारधारा ने पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद कर समाज के हाशिये पर रख दिये गए लोगों के हक में साहित्य रचकर समाज में ख्याति प्राप्त की। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मार्क्सवादी साहित्यकार और चिंतक आज भी हिन्दी साहित्य में अपने लेखन से अपनी सामाजिक छवि को बनाए हुए हैं।

21वीं सदी सूचनाओं का युग है। यहां कोई विचारधारा वर्षों तक व्याप्त नहीं रह सकती। सोशल मीडिया और सूचना क्रांति के तमाम साधनों ने अभिव्यक्ति के इतने माध्यम विकसित कर दिये हैं कि किसी एक विचारधारा को जीवित रख पाना मुश्किल है। समाज का वह वर्ग जो न साहित्य समझता है और न ही विचारधारा, आज अपनी अस्मिता और अधिकार के लिए जागरूक हो चुका है। इस समय को अगर ठीक-ठीक नाम दिया जाए तो यह युग ‘अस्मितावादी विमर्श’ का युग है। जहां प्रत्येक चीज विमर्श है। दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श, समलैंगिकता जैसे विमर्श आज के बहस के केंद्र में हैं। साहित्य और सिनेमा में आज यही विमर्श चर्चा के केंद्र में है। यह हमेशा स्वीकार किया जाता रहा है कि साहित्य समाज के लोगों का पक्षधर है। बहिष्कार की वजह उनका मुख्यधारा के समाज में न होना ही है।

मार्क्स की यह मान्यता है कि आर्थिक समानता ही सामाजिक समानता का आधार बन सकती है। आज यह सच साबित हो रहा है।

समग्रता में देखें तो हिन्दी साहित्य समय-समय पर विचारधाराओं के प्रभाव में रहा है। दरअसल विचारधारा का सवाल आते ही बौद्धिकता का भी प्रश्न खड़ा हो जाता है और जैसे ही बौद्धिकता का प्रश्न खड़ा होता है, साहित्य सामान्य लोगों के लिए नहीं रह जाता है। हिन्दी साहित्य इस अर्थ में धनी है कि यहां विचारों और विमर्शों के लिए स्पेस अधिक है। एक तरफ जहां घोर विचारधारा में डूब कर साहित्य रचा गया वहीं सामाजिक समरसता बनाए रखने के लिए आम जनता की भाषा में आम विषय पर साहित्य रचा गया जो बिना किसी विचारधारा से प्रभावित हुए है। विचारधारा साहित्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा तो है ही परंतु वह तभी तक सार्थक है जब तक उसका उद्देश्य सामाजिक उत्थान और विकास हो, जिस दिन विचारधारा किसी व्यक्ति, संस्था-संस्थान या राजनीतिक पार्टी की गुलाम हो जाती है उसी दिन वह अपना अस्तित्व खो देती है। हिन्दी साहित्य में अतिशयता नहीं है क्योंकि भारतीय समाज विभिन्न धर्मों और विचारधाराओं का समाज है। यहां जितनी बहसे राम को लेकर होती हैं, उतनी ही रहीम को लेकर भी होती है और उतनी ही चर्चा के केंद्र में यीशु भी होते हैं। हिन्दी साहित्य कभी भी लंबे समय तक किसी एक विचारधारा का गुलाम नहीं रहा। इसलिए उसका फलक व्यापक और चर्चित भी है।

शोधार्थी

हिंदी विभाग

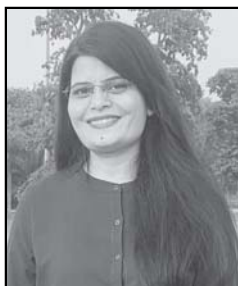
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

ई-मेल : vijayyadav81287@gmail.com

### संदर्भ सूची

1. तिवारी, कैलाश नारायण, राष्ट्रीय एकता : वर्तमान समस्याएँ और भक्ति साहित्य, पृष्ठ 13
2. वही, पृष्ठ 167
3. वही, पृष्ठ 181
4. वही, पृष्ठ 181

5. वाजपेयी, नंददुलारे, हिंदी साहित्य: रचना और विचार, पृष्ठ 20
6. आर्य, नरेंद्र कुमार, अस्मिताएं, यथास्थितिवाद और वैचारिक अपेक्षाओं का द्वंद्व, समसामयिक सृजन, जुलाई-दिसंबर 2014, पृष्ठ 32



नेहा शर्मा

## ‘गिलिगडु’ में अभिव्यक्त सेवानिवृत्त बुजुर्ग का जीवन

### शोध सार:-

‘गिलिगडु’ चित्रा जी का आकार में छोटा, किन्तु संवेदनशीलता में कहीं गहरा उपन्यास है। इस उपन्यास में सेवानिवृत्त बुजुर्गों की एक रेखीय कहानी नहीं, जीवन के रंग बहुआयामी प्रयोगों में उभरकर आए हैं। यह उपन्यास तेरह दिन की कहानी में चलते दो बुजुर्गों के जीवन का पूरा खाका ही नहीं बताता अपितु समाज में आज के बदलते जीवन मूल्यों को भी परिभाषित करता है कि कैसे नौजवान पीढ़ी अपने बुजुर्गों को घर में सम्मान न देते हुए अकेला छोड़ देती है।

यह कृति इस विश्वास को और भी गहरा करती है कि साहित्यिक मूल्यों में सामाजिक सार्थकता का महत्व हमेशा बना रहेगा जीवन में छोटे-छोटे महायुद्धों में सहज विजय पाने के लिए रचनात्मक रास्ते की अनूठी तलाश है चित्रा मुद्गल का यह नया उपन्यास।

पठनीयता ऐसी ही शुरू करते ही बँधे चले जाएं। जीवन ऐसा कि पूरी धड़कन के साथ सामने आए और कला ऐसी की अनायास खिल खिल जाए। उपन्यास में रचनात्मक विश्वास ऐसा है कि रचनाकार के अन्य उपन्यास भी पाठक पढ़ने को प्रेरित हो जाएं।

### परिचय

समाज की महत्वपूर्ण संस्था परिवार होता है। हर व्यक्ति अपने जीवन की शुरुआत परिवार से ही करता है। अपने समाजीकरण की शुरुआत परिवार से करता है। अपने गुणों एवं संस्कारों की शुरुआत परिवार से करता है। वह कहीं भी चला जाए उसमें अपने परिवार के गुण हमेशा दिखाई देते हैं, क्योंकि परिवार समाज की महत्वपूर्ण

संस्था है। परिवार के मुखिया बड़े बुजुर्ग होते हैं। लेकिन आधुनिक जीवन तकनीकी आधारित है। तकनीकी जीवन जीने के कारण घर में बुजुर्गों का स्थान गौण हो गया है और इस वजह से उन्हें मान-सम्मान में कमी महसूस होती है। उनकी भूमिका न के बराबर हो चुकी है।

हर दूसरी बात में उन्हें बच्चों से ये सुनने को मिलता है कि रहने दीजिए आपकी समझ में नहीं आएगा।

आधुनिक जीवन की होड़ में हमने अपने जीवन को सहज न रखकर यन्त्रों से जीवन को जोड़ दिया है। जोकि कम पढ़े-लिखे होने के कारण बड़े बुजुर्गों से अनजान हैं। इसलिए वह इसे न तो सीख पाते हैं और न ही उन्हें इन सब कामों में रुचि जान पड़ती है। इस प्रकार दोनों पीढ़ियाँ आपस में असहज और तनावपूर्ण माहौल में रहती हैं।

जिससे कि पूरे परिवार का माहौल तनावपूर्ण हो जाता है एवं इससे निपटने का कोई रास्ता भी नजर नहीं आता। बच्चों के हिसाब से बच्चे सही हैं, क्योंकि उन्हें आगे बढ़ना है और समय के साथ चलना है।

तो बुजुर्गों के स्थान पर वो सही है कि उनके पास अब कम समय हैं तो उन्हें बच्चों के साथ अपना जीवन बिताना है। परंतु दोनों ही अपने-अपने स्थान पर मजबूर हैं। आजकल की भागदौड़ भरी जिंदगी में किसी के पास किसी के लिए समय नहीं है। क्योंकि परिवार के सदस्य कम हैं और जिम्मेदारियाँ ज्यादा हैं। छोटा परिवार होना इस समस्या का बड़ा कारण है। पहले के जमाने में बड़े परिवार होते थे बहुत सारे बच्चे होते थे तो इस वजह से परिवार में कभी ना कभी, कोई न कोई मौजूद होता था। तो एकाकीपन बुजुर्गों को अखरता नहीं था। परंतु परिवार

का छोटा होना भी इसका मुख्य कारण है इस कारण को हम नजरअंदाज नहीं कर सकते।

‘गिलिगडु’ उपन्यास में दो बुजुर्गों के जीवन की कहानी है। एक का नाम है ‘बाबू जसवंत सिंह’। दूसरे का नाम है ‘विष्णु नारायण स्वामी’ दोनों ही सेवानिवृत्त बुजुर्ग हैं।

‘कुरकुरी कलफ’ प्रसंग के अंतर्गत टॉमी और बाबू जसवंत सिंह की कहानी है। कानपुर से आते ही उन्हें इस बात की प्रसन्नता हुई थी की चलो बेटे-बहू ने टॉमी की जिम्मेदारी सौंप कर उन्हें अपनी गृहस्थी की किसी जिम्मेदारी के काबिल तो समझा। अब तो उन्हें ये भी लगने लगा है कि इस घर में वह सही अर्थों में किसी के लिए बुजुर्ग है तो वह केवल टॉमी है। पोते मलय-निलय के नाज-नखरे उठाने का सुख उनकी थाली का कौर नहीं। पहले टॉमी को फारिग कराने के बाद बाबू जसवंत सिंह सैर में भी उसे अपने साथ ही रखते थे। पर कर्नल स्वामी की सलाह पर उन्होंने यह तय किया और उनका कहना गलत भी नहीं है कि सैर के समय व्यक्ति को जैसी मानसिक आराम की दरकार होती है... टॉमी के साथ संभव नहीं।<sup>1</sup>

‘जूते’ प्रसंग के अंतर्गत बाबू जसवंत सिंह टॉमी को लेकर सैर करने के लिए निकल पड़े एवं कर्नल स्वामी का इंतजार करने लगे। जोकि उनसे करते नहीं बन रहा था क्योंकि कर्नल स्वामी का व्यक्तित्व उन्हें बहुत अच्छा लगा और उन्हें बहुत ही प्रिय मित्र मिल चुके थे और अब वो अकेले नहीं थे।

कर्नल स्वामी ने कहा कि ‘बिना जूतों की सैर शुरू हो सकती है? पुलिया पर टिकिए और उतारिए ये हवाई चप्पल है।’ पीछे पीछे लटकाए रकसैक में से उन्होंने फीनिक्स के जूतों का डिब्बा निकाल कर उनकी ओर बढ़ाया-‘पहनिए। मैं तो भूल ही गया था।’

‘दरअसल मैं...’

‘मालूम था, जूते की दुकान खोजने नहीं जा सकेंगे। मैं ले आया, दैट्स ऑल।’

‘और यह भी मालूम था दोस्त! अर्निका भी नहीं मंगा पाए होंगे।’ पैंट की जेब में कर्नल स्वामी ने एक पतली-सी शीशी निकाली और उनके कुर्ते की जेब में सरका दी। फिर वापस कुर्ते की जेब से शीशी निकालकर बोले, ‘मुँह खोलिए।’ चार-पाँच गोलियां उनके मुँह में टपकाकर, शीशी पूर्ववत् उनके कुर्ते की जेब के हवाले करते हुए

आदेशात्मक स्वर में बोले कि दिन में चार-चार घंटे के अंतर पर वे गोलियां खाना न भूलें।

डिब्बे सिर्फ जूते निकालते हुए और पांवों में जूतों के सल्लू करते हुए बाबू जसवंत सिंह का मन अनायास भावुक हो आया।

‘फिट?’ बाबू जसवंत सिंह की जूते पहनकर उठ खड़े होते ही कर्नल स्वामी के चेहरे पर बाल सुलभ उल्लास फूटा।<sup>2</sup>

‘रामवती-सोमवती’ प्रसंग के अंतर्गत मुलाकात की चौथी सुबह कर्नल स्वामी चलते-चलते ठिठककर बाबू जसवंत सिंह की ओर मुड़े थे। “सैर के लिए कुर्ता-पायजामा मुनासिब पोशाक नहीं। ढीले-ढाले कपड़े चाल सुस्त कर देते हैं। दो जोड़ी ‘लक्स कॉट्सवूल’ खरीद लीजिए। आगे जाड़ा भी बढ़ेगा।”

सर्दी ज्यादा लगे तो ऊपर से जैकेट या कोट डाला जा सकता है।’

‘आप न खरीद पाएँ तो बताइए...- अट्टा मार्केट से हम खरीद लाएंगे।’

संकोच से दोहरे होते ही बाबू जसवंत सिंह ने उन्हें फौरन मना किया। जूते के दाम उन्होंने लिए नहीं, ऊपर से सिर पर एक और कर्ज। उस रोज चोट से डरे हुए थे। निकट के आचार्य निकेतन मार्केट के विषय में उन्हें विशेष जानकारी भी नहीं थी। इस बार कोताही नहीं होगी। स्वयं बाजार जाकर मनपसंद खरीद लाएँगे। बल्कि कल कर्नल स्वामी को ‘लक्स कॉट्सवूल’ में ही दिखाई पड़ेंगे।

हालाँकि मन को अच्छा लगा-कोई तो है जो उन्हें सर्दी से नहीं बचाना चाह रहा, उन्हें चुस्त-दुरुस्त भी देखना चाह रहा है। जिस रूप में वे स्वयं को देखने के आकांक्षी रहे हैं। आग पर पानी का पड़ गया, उन्हें नहीं पता। पानी पड़ा भी नहीं या नहीं यह उन्होंने स्वयं उम्र के तेवरों से भिड़ने की बजाए जीने के उल्लास को अपने भीतर ही चुन लिया... जी लिए।

एकाएक अपने शहर कानपुर की हुड़क हो आयी थी। कहीं अगरबत्ती सुलग उठी!

लोगों को कानपुर चाहे जितना गंदा, बेतरतीब, पिछड़ा, दंगे-फसादों वाला हिकाता शहर लगे। उनके लिए तो आदमी है सुख-सुविधाओं का पर्याय ही रहा है।

देश का मैन्चेस्टर यूँ ही नहीं कहा जाता रहा उसे।<sup>3</sup>

‘गठरी में लागा चोर’ प्रसंग के अन्तर्गतसुहावने मौसम

का एक सुहावना-सा दिन था। पाँच सौ रुपये, आठ घंटे, अस्सी किलोमीटर के हिसाब वाली डी.एल.वाय. टैक्सी किराये पर लेकर कर्नल स्वामी बाबू जसवंत सिंह को दिल्ली के ऐतिहासिक स्थल दिखाने निकले थे। और उस समय दोनों कुतुबमीनार के निकट खंडहरों में बैठे हुए कर्नल स्वामी द्वारा थरमस में घर से बनवाकर लाए स्वादिष्ट रसम के घूँट भर रहे थे।

अपनी पसंद के बारे में बताते हुए बाबू जसवंत सिंह ने लगभग भावुक हो आए थे। दरअसल दिल्ली आकर भी भूल ही गए कि भोजन में उनकी पसंद का कोई महत्व शेष है। अक्सर उन्हें वह खाना पड़ता है ये खिलाया जाता है जो उनके ढीले और खोखले हो आए दांतों और बिगड़े हाजमे को मंजूर नहीं होता। पसंद की बात दरकिनार भी कर दें तो अखरने वाली बात है उनके नाश्ते पानी का कोई समय नियत न होना।<sup>4</sup>

‘दूसरी गैरमौजूदगी’ प्रसंग ‘बदबू’ के अन्तर्गत इतवार का दिन था शायद। शायद नहीं इतवार ही था। कर्नल स्वामी उन्हें नोएडा की यमुना बैराज से लगे कालिंदी कुंज घुमाने ले गए थे। तरतीब से संवारी हरियाली देख मंत्र मुग्ध हो गए थे बाबू जसवंत सिंह। ऐसा सघन विशाल उद्यान, वह भी उनके घर से कोई विशेष दूरी पर नहीं। अनुमान ही नहीं था। नरेंद्र ने भी कभी जिक्र नहीं किया। घूमा नहीं जा सकता है तो सुनकर तो आनंद लिया जा सकता है। कर्नल स्वामी ने कैसे पूछा था। मथुरा वृन्दावन गए हो दोस्त? नहीं गए तो कोई बात नहीं। किसी रोज वहाँ का कार्यक्रम बना लिया जाएगा। दूर है यहाँ से। फरीदाबाद पहुँच वल्लभगढ़ पार किया नहीं कि मथुरा पहुँचे नहीं। फिलहाल कालिंदी कुंज ले चलते हैं उन्हें। वृन्दावन ही पहुँची जाएंगे। वहाँ जमुना भी है, कुंज भी है। नहीं है वह तो केवल कृष्ण! फिर ठहाका भरते हुए कहा था। कैसी मूर्खों-सी बात कर रहे हैं वे दो-दो कृष्णों के होते हुए?

‘ये क्या जगह है दोस्तों’ प्रसंग के अंतर्गत हम देखते हैं, कि बाबू जसवंत सिंह को उनके बेटे नरेंद्र ने रहने के लिए एक कमरा देने की बात कही थी। परन्तु अपने घर आते ही वह इस बात से मुकर गया और उन्हें एक बालकनी में निवास स्थान बनाने को कह दिया। ये सब देख जसवंत बाबू बहुत पीड़ा हुई। परन्तु उन्होंने अपने बेटे को कुछ भी कहना ठीक नहीं समझा। आस-पास में जब उन्होंने देखा तो अन्य लोगों की बालकनी में भी कूड़ा

करकट ही दिखाई पड़ रहा था। उन्हें मन ही मन लगा कि वह भी एक बिना काम की वस्तु ही है, जिसका वहाँ कोई उपयोग नहीं है। पर जैसे-तैसे उन्होंने अपना मन वहाँ लगा लिया और जैसे ही सुबह हुई, तो सामने वाले फ्लैट की महिला उनके फ्लैट में आयी और सुनयना बहू को जसवंत बाबू की शिकायत लगायी कि वह उनकी बेटी को बालकनी में देखकर पायजामा उतार रहे थे। इस बात से सुनयना बहू और उनका बेटा नरेंद्र बहुत नाराज हुए। किसी ने भी उनकी बात नहीं सुनी और पड़ोसी की बात को ही सही मान लिया। इस बात से जसवंत बाबू बहुत आहत हुए और बहुत शर्मिंदगी का सामना किया। किसी ने भी उन्हें अपनी बात कहने का मौका नहीं दिया और सच्चाई जानने का प्रयास भी नहीं किया। उन्हें बहुत शर्मिंदगी का सामना करना पड़ा और वो भी उस गलती के लिए जो उन्होंने की ही नहीं। उन्होंने मिस्टर कर्नल स्वामी जो कि उनके बहुत अच्छे दोस्त थे, उनसे यह सब बात कही और अपना दिल हल्का किया।

**निष्कर्ष:-**चित्रा जी के ‘गिलिगडु’ उपन्यास के माध्यम से हमने देखा कि समाज में किस प्रकार से अपने ही घर में बुजुर्ग लोगों का अपमान हो रहा है। साथ ही हमने यह भी देखा कि जो बुजुर्ग अच्छे परिवार से हैं। अच्छी आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि होते हुए भी उन्हें वृद्धावस्था में दूसरों के अधीन होना पड़ता है। हमने देखा किस प्रकार से उन्हें विविध प्रकार की पीड़ा का सामना करना पड़ता है। साथ ही हमने यह भी जाना कि वृद्धावस्था में व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकता पूर्ण होने तक की व्यवस्था करना भी मुश्किल हो जाता है। वो भी उनके बच्चों के द्वारा बहुत ही एहसान करके, दया करके पूरी की जाती है। सब कुछ होते हुए भी परिवार में वो अकेले ही रहते हैं। क्योंकि दोनों के बीच में एक पीढ़ी का नर्क होता है। ऐसे में हमारे बुजुर्ग अपने आस-पास ऐसे व्यक्ति को ढूँढते रहते हैं या कहा जाए कि वह हर रिश्ते में वे उस व्यक्ति को ढूँढते हैं। जो की उनका दुख-दर्द सुन पाए और उनकी पीड़ा जान पाए। जैसे कि यहाँ पर ‘गिलिगडु’ उपन्यास में बाबू जसवंत सिंह को कर्नल स्वामी जैसे दोस्त मिल गए। बुजुर्गों को भी अपना अकेलापन दूर करने के लिए परिवार की और दोस्तों की जरूरत होती है। परंतु आजकल की पीढ़ी ने वृद्धावस्था में सेवा करने का मतलब सिर्फ उनकी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना समझ

लिया है। जबकि एक वृद्ध व्यक्ति को भावनात्मक सहारे की ज्यादा जरूरत होती है। भावनात्मक रूप से कमजोर होने के कारण से एक अच्छा खासा व्यक्ति जो कि सिर्फ शरीर से बूढ़ा है, मानसिक रूप से नहीं! वह धीरे-धीरे मुरझाता रहता है और एक दिन अपने आप को समाप्त कर देता है। अपनी जिजीविषा को खत्म कर देता है। दिन-दिन वृद्ध लोगों की स्थिति दयनीय होती जा रही है और हमारे देश में वृद्धाश्रम की संख्या बढ़ती जा रही है।

हमें इस पर रोक लगानी चाहिए और हमारे घर के बुजुर्गों का सम्मान करना चाहिए। अपनी आने वाली पीढ़ी को भी यही सिखाना चाहिए क्योंकि बुजुर्ग हमारे घर का वटवृक्ष होते हैं। जिनसे हमें छाया मिलती है और जो अपने अनुभवों से हमें हर प्रकार से लाभान्वित करते रहते हैं।

शोधार्थी  
भारती विश्वविद्यालय  
दुर्ग (छत्तीसगढ़)

### संदर्भ सूची

1. 'गिलिगडु', चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ.सं.11
2. वही, पृ.सं. 18
3. वही, पृ.सं. 26
4. वही, पृ.सं. 38
5. वृद्धावस्था का सच, विमलालाल, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ.सं. 40
6. साहित्येतिहास में वृद्ध विमर्श, शिव चंद्र सिंह, दिशा इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, ग्रेटर नोएडा, पृ.सं. 4



मधु बाला

## हिंदी कहानी की विकास यात्रा-मनोरंजन से उत्तर यथार्थ तक

**क**हानी कथात्मक गद्य की एक प्रमुख विधा है। जिस रचना में कथा का ढाँचा हो, कुछ घटनाएँ तथा चरित्र हों, सामान्यतः उसे ही कहानी कह दिया जाता है। नामवर सिंह के अनुसार, “कहानी छोटे मुँह बड़ी बात करती है।” प्रेमचन्द के अनुसार, “मोपासों, अनातोले, चेखव और टॉलस्टॉय की कहानियों को पढ़कर हमने फ्रांस और रूस से आत्मिक संबंध स्थापित कर लिया है। हमारे परिचय का क्षेत्र, सागरों, द्वीपों और पहाड़ों को लाँघता हुआ फ्रांस और रूस तक विस्तृत हो गया है।”

“कहानी ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास सभी उसी एक भाव को पुष्ट करते हैं। उपन्यास की भांति उसमें मानव जीवन का सम्पूर्ण वृहद रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता।”

कहानी विश्व साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है जो दुनिया के हर समाज में सभ्यता के आरंभिक काल से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान है। मानवीय संस्कृति को निर्मित व संरक्षित करने में जिन साहित्यिक विधाओं ने सर्वाधिक योगदान दिया है, उनमें गीतों के अतिरिक्त कहानियों को भी महत्वपूर्ण माना जाता है।

“कहानी कहना और सुनना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अपनी भावना और अपने संवेग को सम्प्रेषित कर सकने की क्षमता जब से मनुष्य में आयी, वह कहानियाँ कहता व सुनता रहा। इस प्रकार कहानी एक ऐसे माध्यम या सूत्र के रूप में रही है जो एक व्यक्ति को दूसरे से जोड़ता है, सम्बद्ध करता है।”<sup>2</sup>

ई. एम. फोर्स्टर का कहना है कि “कहानी मनुष्य की आदिम अवस्था से सम्बद्ध है। यह तब उत्पन्न हुई थी जब मनुष्य पढ़ना भी नहीं सीखा था, साहित्य के मूल रूप उत्पन्न हो रहे थे। इसलिए कहानी हमारी आदिम प्रवृत्तियों को अपील करती है।” इसलिए प्रत्येक मानव जाति का कथा साहित्य लिखित अलिखित रूप में उसकी सभ्यता के आदिम चरण से ही मिलता है। लेकिन लिखित रूप में कथा साहित्य की जितनी दीर्घ, विविधतापूर्ण एवं सम्पन्न परम्परा भारत में विद्यमान है उतनी अन्यत्र कहीं नहीं।

“लघु आकार की कहानियों से लेकर वृहदाकार कहानियों तक सरलतम संरचना वाली कहानियों से लेकर जटिलतम संरचना वाली कहानियों तक, पशु-पक्षियों – परियों-भूतप्रेतों की कहानियों से लेकर मनुष्य के जीवन का यथार्थ चित्रण करने वाली कहानियों तक की जो परंपरा हमारे साहित्य में मिलती है वह अप्रतिम है। कहानियों की मौखिक परंपरा का लेखा-जोखा दुस्साध्य कार्य है।”<sup>3</sup>

कहानियों की लिखित परंपरा भारत वर्ष में वैदिक काल से ही मिलती है। उपनिषदों की रूपक कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों, रामायण की कहानियों, बौद्धों की जातक कथाओं और फिर पौराणिक देवी देवताओं के चतुर्दिक बनी हुई रोचक कथाओं का अपूर्व भण्डार हमारे यहाँ विद्यमान है। बाद में इसी कथा परंपरा का विकास ‘वासवदत्ता’, ‘कादम्बरी’, ‘दशकुमारचरित्’ आदि की लंबी कहानियों और ‘पंचतंत्र’, ‘हितोपदेश’, ‘वैतालपच्चीसी’, ‘सिंहासन बत्तीसी’, ‘शुक-सप्तति’, ‘कथा-सरित्सागर’ और ‘भोज-प्रबन्ध’ आदि की छोटी-छोटी कहानियों में

हुआ। किन्तु पारंपरिक कथाओं का मूल उद्देश्य नैतिक शिक्षा प्रदान करना होता था। उस शिक्षा को ध्यान में रखते हुए ही कथाकार घटनाओं व पात्रों का जाल बुनता था। इस प्रकार की कथाओं में देश-काल की प्रामाणिकता का दबाव कम होता था और अविश्वसनीय तथा काल्पनिक घटनाओं को भी पर्याप्त महत्व मिलता था। वर्तमान साहित्य में जब कहानी की चर्चा की जाती है तो उसका संदर्भ अंग्रेजी के 'Short Story Movement' आधारित कहानी परंपरा से है। आधुनिक शॉर्ट स्टोरी (कहानी) का आरंभ एडगर एलेन पो (अमेरिका) से माना जा सकता है। शॉर्ट स्टोरी के संदर्भ में वे कहते हैं-“कहानी एक ऐसा व्याख्यान है, जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढ़ा जा सके और जो पाठक पर एक ही प्रभाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से लिखा गया हो।”

### हिन्दी की पहली कहानी

यदि कालक्रम की दृष्टि से देखें तो सबसे प्रथम कहानी इशाल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' है, किन्तु यह पारसी-थियेटर के लटक-झटकों से भरी किस्सागोई मात्र है। इसमें न तो व्यवस्थित भाषा है, न वातावरण या चरित्र-चित्रण की सूक्ष्मता। “गद्य रूपों के अभिनत, त्वरित और चमत्कृत कर देने वाले विकास के कारण ही 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी कहानी के रूप निर्धारण की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखती।”<sup>4</sup> काल की दृष्टि से दूसरा दावा रैवरण्ड जेन न्यूटन द्वारा 1871 ई. में रचित 'एक जमींदार का दृष्टांत' का है। किन्तु आंतरिक संरचना की दृष्टि से यह भी कमजोर है। इसके बाद 19वीं शताब्दी के अंत में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्दू द्वारा रचित 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' है, किन्तु इन दोनों में भी किस्सागोई का तत्व ज्यादा है।

“इनकी दृष्टि की वैज्ञानिकता संदिग्ध है, क्योंकि उक्त रचनाएँ या तो मध्यकालीन भारत-ईरानी शैली के मनोरंजक किस्से हैं या निबंध।”<sup>5</sup>

'एक टोकरी भर मिट्टी' माधवराव सप्रे की कहानी, जो 1901 में 'छत्तीसगढ़ मित्र' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। सामान्यतः यही हिन्दी की पहली कहानी मानी जाती है।

### हिन्दी कहानी की विकास यात्रा के पाँच चरण-

- पहला चरण- प्रेमचंद पूर्व युग (1900-1915)
- दूसरा चरण प्रेमचंद - प्रसाद युग (1915-1936)

- तीसरा चरण - उत्तर प्रेमचंद युग (1936-1955 ई.)
- चौथा चरण - नयी कहानी (1956-1960 ई.)
- पांचवां चरण- नयी कहानी के परवर्ती आंदोलन (1960 से .....)

### प्रेमचंद-पूर्व युग (1900-1915)

इस युग में कहानी परंपरा जन्म ले रही थी इसलिए उसमें पश्चिमी कहानी परंपरा के तत्वों के साथ-साथ भारतीय कथा परम्परा में निहित आदर्शवाद और नैतिकता की झलक साथ दिखायी देती है। चूँकि इस समय देश नवजागरण के दौर से गुजर रहा था, इसलिए राष्ट्रवादी और सुधारवादी मानसिकता भी यहाँ दिखती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'सरस्वती' में प्रकाशित कुछ मौलिक कहानियों के नाम बताए हैं-

इंदुमती (किशोरीलाल गोस्वामी) - 1900 ई.

गुलबहार (किशोरीलाल गोस्वामी) - 1902 ई.

प्लेग की चुड़ैल (मास्टर भगवानदास) - 1902 ई.

ग्यारह वर्ष का समय (रामचंद्र शुक्ल) 1903 ई.

पंडित और पंडितानी (गिरिजादन्त वाजपेयी) - 1903 ई.

दुलाईवाली (बंग महिला) - 1907 ई.

“इसी समय वृंदावन लाल वर्मा की भी दो कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित होती हैं। 'राखीबन्द भाई तातर' और 'एक वीर राजपूत'। यह वस्तुतः वह दौर है; जब स्वतंत्र विधा के रूप में कहानी को एक दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ती है। यह लड़ाई एक ओर उसके अस्तित्व की है तो दूसरी ओर उसकी प्रतिष्ठा की।”<sup>6</sup>

इस काल की कहानियों में केशव प्रसाद सिंह की 'आपत्तियों का पहाड़', 'चन्द्रलोक की यात्रा', लाला पार्वतीनंदन की 'बिजली', 'मेरी-चंपा', राधिका रमण प्रसाद सिंह की 'कानों में कंगना', 'कुसुमांजलि', विश्वम्भर नाथ कौशिक की 'रक्षाबंधन', 'गल्प मंदिर' तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'सुखमय जीवन', 'बुद्ध का कांटा' तथा 'उसने कहा था' आदि उल्लेखनीय हैं।

इस काल की एकमात्र उपलब्धि 'उसने कहा था' कहानी है, जिसमें पहली बार पूर्वदीप्ति पद्धति का प्रयोग किया गया था। इसके अतिरिक्त इसमें शिल्प की प्रयोगशीलता तथा परिवेश की जीवन्तता भी प्रशंसनीय है। इस दौर की कहानी पर समग्रतापूर्वक विचार करने पर कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं -

“इस दौर में लिखी जाने वाली कहानियों में उस

रचनात्मक प्रौढ़ता के दर्शन भले ही न हो, लेकिन आदर्श और बलिदान की चाशनी में पगी होने पर भी अपने समय की आहट इनमें आसानी से सुनी जा सकती है।<sup>7</sup>

“कहा जा सकता है कि परिस्थितियों का यथातथ्य अंकन करने वाली है कहानी, जो रचना के रचनात्मक अर्थ की सम्भावना की पुष्टि करती है, पूर्व-प्रेमचंद युग में विकसित नहीं हो सकी।”<sup>8</sup>

### प्रेमचंद-प्रसाद युग (1915-1936)

मोटे तौर पर हिंदी साहित्य में काव्य का छायावाद और भारतीय राजनीति में गांधीवाद का उत्कर्ष काल हिंदी कहानी की विकास यात्रा में ‘प्रेमचंद प्रसाद युग’ के नाम से जाना जाता है। प्रेमचंद ने ‘सामाजिक यथार्थ’ की परंपरा को विस्तार दिया जबकि प्रसाद ने व्यक्ति की अनुभूतियों और उसके मनोवैज्ञानिक सत्यों को कहानी का विषय बनाया।

प्रेमचंद ने अपने 30 वर्षों के रचनाकाल (1907-1936) में लगभग 300 कहानियाँ लिखीं, जिन्हें बाद में मानसरोवर के 18 खण्डों में संकलित किया गया। प्रेमचंद की कहानी यात्रा को दो चरणों बाँटा जा सकता है—मोटे तौर पर पहला 1907 से 1925 तक दिखाई पड़ता है जबकि 1925 से 1936 के दौर की कहानियों को दूसरे चरण में शामिल किया जाता है। पहले चरण को ‘आदर्शोन्मुख यथार्थवाद’ का चरण कहा जाता है। इस चरण में उन पर आदर्शवाद, भारतीय परंपरा, हृदय-परिवर्तन तथा अन्य गांधीवादी मान्यताओं का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस चरण को ‘आदर्शोन्मुख यथार्थवाद’ इसलिए कहते हैं क्योंकि ये कहानियाँ यथार्थ समस्याओं पर तो लिखी गई हैं किंतु अंततः हृदय परिवर्तन जैसी प्रक्रियाओं के माध्यम से आदर्श के बिंदु पर पहुँचकर समाप्त होती है। ‘पंच परमेश्वर’, ‘बड़े घर की बेटी’, ‘मंत्र’, ‘बूढ़ी काकी’, ‘मुक्तिपथ’ जैसी कहानियाँ इसी दौर की हैं।

दूसरे चरण को ‘यथार्थवाद’ का चरण कहा जाता है। 1925 ई. के आस-पास से प्रेमचंद पर यथार्थ का प्रभाव बढ़ने लगता है। उनकी कहानियाँ यथार्थ के सघन और नंगे रूप को देखने का साहस जुटाने लगती हैं। यहाँ कहानियाँ यथार्थ से आरंभ होकर यथार्थ में ही खत्म होती है। ‘अलग्गोझा’, ‘सद्गति’, ‘पूँस की रात’, ‘कफन’ जैसी कहानियाँ इस दौर की प्रतिनिधि कहानियाँ हैं।

जयशंकर प्रसाद का दृष्टिकोण प्रेमचंद से काफी

अलग है। उनकी चेतना राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक आदर्शवाद जैसे तत्वों से निर्मित है। वे रोमांटिक / स्वछंदतावादी दृष्टिकोण के रचनाकार हैं। प्रसाद का महत्व यह है कि उन्होंने पहली बार ‘सामाजिक यथार्थ’ पर केंद्रित परंपरा के भीतर ‘मानसिक यथार्थ’ को उभारा। उन्होंने कुल 69 कहानियाँ लिखी जो ‘छाया’, प्रतिध्वनि, ‘आकाशादीप’ ‘आंधी’, ‘इन्द्रजाल’ कहानी संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं। उनकी पहली कहानी 1911 ई. में लिखित ‘ग्राम’ कहानी मानी जाती है। ‘आकाशादीप’, ‘पुरस्कार’, ‘मधुआ’, ‘गुण्डा’ आदि प्रसाद की बहुचर्चित कहानियाँ हैं।

प्रसाद की कहानी कला में कुछ मौलिक विशेषताएँ स्पष्ट हैं। उनके नारी चरित्र प्रभावशाली तथा आकर्षक हैं, जो अपने समर्पण तथा त्याग से पाठक के मन में अमिट प्रभाव छोड़ते हैं। प्रसाद की परंपरा में आगे चलकर जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय जैसे समर्थ कहानीकार शामिल हैं।

“आकस्मिक नहीं है कि प्रेमचंद-प्रसाद युग की कहानी भी ‘रानी केतकी के स्थान पर हल्कू’ और ‘मधुआ’ के साधारण मनोभावों और आकांक्षाओं को चित्रित करती है। यह समानता आधुनिक छायावादी काव्य और प्रेमचंद-युग की आधुनिक कहानी के बीच की एक सार्थक समानता है, जो समान जीवन-परिस्थितियों के उदय का परिणाम है।”<sup>9</sup>

### उत्तर प्रेमचंद युग (1936-1955)

हिन्दी कहानी के विकास में 1936 से 1955 ई. का समय उत्तर प्रेमचंद युग कहलाता है। यह युग दो विचारधाराओं के प्रभाव का युग है—मार्क्सवाद तथा मनोविश्लेषणवाद। मार्क्सवाद से प्रभावित धारा को प्रगतिवादी या समाजवादी कहानी कहते हैं जबकि फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित धारा को मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणवादी कहानी कहा जाता है।

### प्रगतिवादी कहानी

प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है। इस धारा के रचनाकार ‘समाजवादी यथार्थवाद’ के समर्थक हैं, जिनके अनुसार जीवन-यथार्थ की खोज आर्थिक परिस्थितियों में की जानी चाहिए। प्रगतिशील लेखक शिल्प को गौण मानते हैं और मजदूर, किसान तथा अन्य वैचित वर्गों के शोषण व दमन का विरोध करने वाली संवेदना को साहित्य का प्राणतत्व मानते हैं। इस धारा के सबसे समर्थ लेखक

यशपाल है। इनकी अधिकांश कहानियों के मूल में प्रगतिवादी चेतना देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए 'भूख के तीन दिन' की कहानियों में बेरोजगारी तथा वर्गभेद की समस्याएँ लगातार मुखर हुई हैं। 'वो दुनिया', 'पराया सुख', 'फूलों का कुर्ता' आदि में उन्होंने आर्थिक शोषण, नारी शोष, तथा धार्मिक आडम्बर जैसी समस्याओं पर चोट की है। यशपाल के अलावा इस धारा के अन्य लेखकों में राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन तथा रांगेय राघव प्रसिद्ध हैं।

## (2) मनोवैज्ञानिक / मनोविश्लेषणावादी कहानी

मनोवैज्ञानिक कहानी धारा फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से वैचारिक प्रभाव ग्रहण करती है। फ्रायड का दावा है कि मनुष्य का जीवन जिन मूल प्रवृत्तियों से संचालित होता है, उनमें 'लिविडो' या 'काम चेतना' सबसे महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार, किसी व्यक्ति के मन का अध्ययन चेतन के स्तर पर करना भ्रामक व अपर्याप्त है क्योंकि मन का बड़ा हिस्सा अवचेतन और अचेतन से मिलकर बनता है। इन कहानियों की कथावस्तु भी बाहरी जीवन से न होकर व्यक्ति के आंतरिक जीवन से संबंधित होती है।

इसमें मुख्यतः तीन कहानीकार शामिल हैं—जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय। जैनेन्द्र, यह मानते थे कि समस्याएँ बाहर ही नहीं, मनुष्य के भीतर भी होती हैं, इसलिए उन्होंने अपनी कहानियों में मानव मन की सूक्ष्म परतों का उद्घाटन किया है। इनकी कहानियाँ 'पाजेब', 'खेल' काफी प्रसिद्ध हैं। 'पाजेब' बच्चों पर बड़ों के वर्चस्व की कथा है, 'खेल' में पुरुषों की विध्वंसक प्रकृति तथा नारी की सर्जक प्रकृति का द्वंद्व दिखाया गया है। कहानी 'पत्नी' और 'जाहनवी' में पारिवारिक जीवन के भीतर स्त्री की नियति को उद्घाटित किया गया है। 'नीलम देश की राजकन्या' में कथावस्तु के रूप में विचार और दर्शन उपस्थित हुआ है।

“जैनेन्द्र मानव जीवन दर्शन के सबसे बड़े कहानीकार है।”- डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

“जैनेन्द्र ने प्रेमचन्द से भिन्न, स्त्री-पुरुष संबंध का जो क्षेत्र अपने लिए चुना उसके कारण वे शुरू से ही एक विवादास्पद लेखक माने जाते हैं। जैनेन्द्र ने प्रेम में उत्सर्ग की भावना को किसी कदर कम करके, प्रसाद और गुलेरी से भिन्न, कहानी को सामान्य जीवन के निकट लाने की कोशिश की है।”<sup>10</sup>

अज्ञेय की कहानियों पर मुख्यतः दो विचारधाराओं का

प्रभाव नजर आता है फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद तथा सार्त्र के अस्तित्ववाद का। इन दोनों विचारधाराओं से प्रभावित होने के कारण इनकी कहानियों में व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा उसके मानसिक पक्षों को केंद्रीय महत्व प्राप्त हुआ है। अज्ञेय की कहानियों में पर्याप्त वैविध्य भी दिखता है। उदाहरणार्थ - 'जयदोल' तथा 'पठार का धीरज' जैसी कहानियों में फ्रायड से प्रभावित रोमांस और यौन चेतना के चित्र दिखते हैं तो 'मेजर चौधरी की वापसी' जैसी कहानियों में व्यक्ति के अंतर्मन का सूक्ष्म विश्लेषण है। 'परंपरा' संग्रह की कहानियों में मध्यवर्ग के सामाजिक पक्षों का चित्रण है।

“अपनी प्रत्येक कहानी में वह विद्यमान है एक ऐसे युवक के रूप में जिसमें उत्साह है, दृढ़ता है, आदर्श के लिए मर-मिटने की चाह है, जो हथेली पर जान रखकर उस पर प्रयोग करने में आनंद लेता है, पर जिसमें विवेक का अभाव है, जो बेजान बुद्धे आदमियों को मयस्सर होता है, उस हिसाबीपन की कमी है...”<sup>11</sup>

इलाचन्द्र जोशी, ने अपनी कहानियों में जीवन के उपेक्षित, कुंठित, मनोग्रन्थि पीड़ित और परिस्थितियों के चंगुल में विवश और असहाय पात्रों को लेकर उनके चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'अनाश्रित', 'दीवाली और होली', 'पतिव्रता या पिशाची' आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं।

“इलाचंद्र जोशी, जैनेन्द्र और अज्ञेय की अपेक्षा 'जीवन की फाँक' को समतल फैलाव की दिशा में नहीं, ऊपर से नीचे की ओर लम्बवत तराशा है, वह भीतर से भीतर की ओर उतरे हैं और चेतन-अवचेतन-उपचेतन के अनेक अप्रतीतिकर स्तरों का उद्घाटन किया है।”

## कहानी : स्वरूप और संवेदना

### नई कहानी

माना जाता है कि 'नयी कहानी' का सर्वप्रथम प्रयोग दुष्यंत कुमार ने किया। 1956 ई. में भैरव प्रसाद गुप्त के संपादन में 'नई कहानी' में कहानियों को शामिल किया गया, इस आधार पर इन कहानियों को नई कहानी कहा गया। नई कहानी के प्रस्तावकों में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव तथा कमलेश्वर शामिल हैं।

राजकमल प्रकाशन ने 1960 ई. से 'नई कहानियाँ' नामक पत्रिका निकालना प्रारंभ किया। मई, 1961 ई. में इस पत्रिका के वर्षगांठ विशेषांक में 'आज की कहानी :

परिभाषा के नये सूत्र' शीर्षक से लिखे लेख में राजेन्द्र यादव ने लिखा-“कथाकार व्यक्ति को उसके समाजिक परिवेश, मानसिक अंतर्द्वंद्वों तथा व्यावहारिक जीवन के तकाजों और आवश्यकताओं की संश्लिष्ट प्रक्रिया के रूप में पाना उसका लक्ष्य है।”

डॉ. नामवर सिंह ने 'दादी माँ' (शिव प्रसाद सिंह) को हिंदी की पहली नयी कहानी और निर्मल वर्मा के प्रथम कहानी संग्रह 'परिन्दे' को नयी कहानी की पहली कृति माना है।

नई कहानी की सबसे महत्वपूर्ण घोषणा है-‘अनुभूति की प्रामाणिकता’ या ‘भोगे हुए यथार्थ’ पर बल। ये कहानीकार मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद या किसी भी अन्य विचारधारा को जीवन का अंतिम सत्य मानने को तैयार नहीं है। इनकी स्पष्ट मान्यता है कि कहानी जीवन के वास्तविक अनुभवों के प्रति जवाबदेह होनी चाहिए।

‘मांस का दरिया’ कहानी की भूमिका में कमलेश्वर ने लिखा “नयी कहानी आग्रहों की कहानी है, प्रवृत्तियों की हो सकती है और उसका मूल स्रोत है-जीवन का यथार्थ बोध।”

‘नयी कहानी’ आंदोलन के विकास में राजेन्द्र यादव द्वारा संपादित ‘एक दुनिया : सहमानांतर’ का विशेष योगदान है, जिसमें 22 कहानियों का संकलन है। इन 22 कहानियों के लेखक अमरकांत, उषा प्रियंवदा, कृष्ण बलदेव वैद्य, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, प्रयाग शुक्ल, रेणु, भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, मार्कण्डेय, मोहन राकेश, रघुवीर सहाय, रमेश बक्षी, राजेन्द्र यादव, रामकुमार, शानी, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, हरिशंकर परसाई हैं। इनकी कहानियों में भीगे हुए यथार्थ की छटपटाहट दिखती है। इनको शामिल करने के बाद भी कुछ महत्वपूर्ण व प्रभावशाली लेखक रह गए थे। इन्हीं लेखकों ने आस-पास के कुछ लेखकों को लेकर नई कहानी के विरोध और प्रतिक्रिया में सचेतन-कहानी और अकहानी जैसे कथा-आंदोलनों की अगुआई की।<sup>12</sup>

#### नई कहानी के परवर्ती आंदोलन ( 1960 के बाद )

नई कहानी के बाद की हिन्दी कहानी को सामान्यतः समकालीन कहानी या साठोत्तरी कहानी कह दिया जाता है। इसके अंतर्गत कई कहानी आंदोलन सीमित या व्यापक रूप में दिखते हैं, जिनमें प्रमुख हैं-

| कहानी आंदोलन | वर्ष | पत्रिका      | प्रवर्तक          |
|--------------|------|--------------|-------------------|
| अकहानी       | 1960 |              | गंगा प्रसाद विमल  |
| सचेतन        | 1964 | आधार         | महीप सिंह         |
| सहज          | 1968 | नयी कहानियाँ | अमृतराय           |
| समांतर       | 1972 | सारिका       | कमलेश्वर          |
| सक्रिय       | 1979 | मंच          | राकेश वत्स        |
| जनवादी       | 1982 |              | जनवादी लेख के संघ |

(1) अकहानी : “अकहानी कथा के स्वीकृत आधारों का विशेष तथा किसी भी तरह के मूल्य स्थापना का अस्वीकार है”।-गंगा प्रसाद विमल

सभी मूल्यों में गहरी अनास्था प्रकट करती हुई यह कहानी-धारा अजनबीपन एवं निरर्थकता बोध को प्रश्रय देती है।

मधुरेश ने अकहानी के अंतर्गत निम्न कहानीकारों को शामिल किया है-गंगा प्रसाद विमल, राजकमल चौधरी, रवीन्द्र कालिया, जगदीश चतुर्वेदी, दूधनाथ सिंह।

अकहानी पुरानी व्यवस्था से कोई संबंध नहीं रखती, बल्कि उसके प्रति नफरत और गुस्से की आग से जल रही मालूम पड़ती है। अतिशय आधुनिकता पर बल देती है और इसी कारण समाज से कट जाती है।

(2) सचेतन कहानी : “सचेतन एक दृष्टि है। वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है।” महीप सिंह

महीप सिंह का दावा है कि ‘नई कहानी’ तथा ‘अकहानी’ के दौर की कहानियाँ संत्रास और निरर्थकता बोध को इतना ज्यादा दिखाती हैं कि जीवन जीने की इच्छा खत्म होने लगती है। सचेतन कहानी संघर्ष और जागरूकता का समर्थन करती है। इसके प्रमुख उदाहरण हैं- महीप सिंह की ‘कील’ तथा शैलेश मटियानी की ‘उसने नहीं कहा था’। मधुरेश ने सचेतन कहानी के अंतर्गत निम्न कहानीकारों को शामिल किया है-महीप सिंह, मनहर चौहान, योगेश गुप्त, कुल भूषण ।

सहज कहानी-“कहानी का लक्ष्य अपने कहानीपन को न खोकर जीवन की प्रस्तुति सहज रूप में करते हुए जीवन के कटु सत्यों और व्यवस्था की भ्रष्टता को उजागर करना है।”-अमृतराय

इस आंदोलन के प्रवर्तक अमृतराय थे, हालांकि उन्होंने

कहा है कि यह कोई आंदोलन नहीं है। सहज कहानी का दावा है कि इतने सारे आंदोलनों द्वारा कहानी पर विचारधाराएँ थोपे जाने के कारण वह मूल 'कथा-रस' खत्म हो गया जो कहानियों का प्राण माना जाता है। अतः सहज विषयों तथा सहज भाषा में कहानी लिखना ही सहज कहानी की मांग है।

#### समान्तर कहानी :

इस आंदोलन के कहानीकार वामपंथ के इस विचार से सहमत थे कि साहित्य के केंद्र में आम आदमी होना चाहिए किंतु वे समाजवादियों के 'सर्वहारा' चिंतन से सहमत नहीं थे। समान्तर कथाकारों ने देश में आम आदमी के आर्थिक अभाव, संघर्ष और समस्याओं को पहचाना और इसी चेतना में उन्हें आम आदमी को साहित्य में लाने की प्रेरणा दी। आम आदमी का संघर्ष उस शोषण प्रधान व्यवस्था से है, जिसमें सामन्तवादी, और सम्प्रदायवादी शक्तियों की साजिश शामिल है। समान्तर कहानी संस्थाओं और व्यवस्थाओं के वर्ग-चरित्र की पहचान करती है और उन्हें बेनकाब करती है।

“मध्यकालीन कवियों की तरह कमलेश्वर का यह आम आदमी भी एक निर्गुण, अमूर्त, निराकार और रूपहीन तत्व है जिसे आसानी से देख और पहचान पाना असंभव है।”<sup>13</sup>

मधुरेश ने समान्तर कहानी के अंतर्गत निम्न कहानीकारों को शामिल किया है-कमलेश्वर, इवाहिम शरीक, से.रा. यात्री, मेहरुनिसा परवेज, जितेन्द्र भाटिया, सुधा अरोड़ा, दामोदर सदन, आलम शाह खान।

#### सक्रिय कहानी :

“सक्रिय कहानी का सीधा मतलब है, चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समझ और एहसास की कहानी जो आदमी को बेबसी, निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर स्वयं अपने अन्दर की कमजोरियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सर लेती है।”-राकेश वत्स

#### जनवादी कहानी :

यह आदीलन स्वयं को प्रेमचंद की कहानी-परंपरा के विकास के रूप में देखता है। यह कहानी सर्वहारा पर किए जा रहे शोषण के विरुद्ध संघर्ष पर सर्वाधिक बल देती है और किसान मजदूर आदि के संघर्ष को सूक्ष्मता एवं सजगता से उभारती है।

‘कफन’ और ‘पूस की रात’ से जनवादी लेखन परंपरा का प्रारम्भ माना जाता है। इनके बाद रामचंद्र तिवारी ने जनवादी कहानी की परंपरा के विकास में इन कहानियों को माना है-परदा (यशपाल), गदल (रांगेय राघव), हड़ताल (भैरव प्रसाद गुप्त), हंसा जाई अकेला (मार्कण्डेय), चीफ की दावत (भीम साहनी), दोपहर का भोजन (अमरकांत), बोझ (शेखर जोशी)।

मधुरेश ने जनवादी कहानी के अंतर्गत निम्न कहानीकारों को शामिल किया है-भीष्म साहनी, अमरकान्त, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, इसराइल, मधुकर सिंह, रमेश उपाध्याय, काशीनाथ सिंह, विजयकांत, सतीश जमाली।

#### हिंदी कहानी में जादुई यथार्थवाद

जादुई यथार्थवाद रचना में यथार्थ की अभिव्यक्ति करने की एक पद्धति है। इसके अंतर्गत रचनाकार मिथकों, विश्वासों, मान्यताओं आदि का सहारा लेकर यथार्थ को प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न करता है। वह इसके माध्यम से यथार्थ की जटिलता को भी पकड़ने की कोशिश करता है। जादुई यथार्थवाद का सबसे सशक्त एवं सकल प्रयोग उदयप्रकाश ने किया है। अपनी कई कहानियों में इस पद्धति का प्रयोग करते हुए उन्होंने यथार्थ को गहरी संवेदनशीलता के साथ उजागर किया है। उदयप्रकाश की कहानी ‘तिरिछ’ जादुई यथार्थवाद के प्रयोग का सबसे सशक्त उदाहरण है। उदयप्रकाश की कुछ अन्य कहानियों ‘दरियाई घोड़ा’, ‘मूंगा’, ‘धागा और आम का बौर’ आदि में भी जादुई यथार्थवाद का सशक्त प्रयोग दिखाई देता है।

वर्तमान में कुछ युवा कहानीकार भी अपनी कहानियों में ‘जादुई यथार्थवाद’ की पद्धति का सफल प्रयोग कर रहे हैं। संजय खाती ने ‘बापू की घड़ी’ और चंदन पांडेय ने ‘भूलना’ में ‘जादुई यथार्थवाद’ का सफल प्रयोग किया है।

इस प्रकार, हम देख सकते हैं कि कहानी अपनी पहली सीढ़ी ‘मनोरंजन’ से लगातार आगे बढ़ते हुए यथार्थवाद और फिर क्रमशः जादुई यथार्थवाद (जिसे उत्तर यथार्थ भी कहते हैं) की ओर अग्रसर हो रही है और लगातार स्वयं को समृद्ध बनाने के लिए उन्मुख होती हुई दिखाई देती है।

ईमेल : [madhucmnegi@gmail.com](mailto:madhucmnegi@gmail.com)

### संदर्भ सूची

1. कहानी : नयी कहानी, पृ.सं.-16
2. कहानी की रचना प्रक्रिया, पृ.सं.-23,
3. हिंदी कहानी : परंपरा और प्रगति, पृ.सं.-18
4. हिंदी कहानी का विकास, पृ.सं.-12
5. हिंदी कहानी : परम्परा और प्रगति, पृ.सं.-19
6. हिंदी कहानी का विकास, पृ.सं.-12
7. हिंदी कहानी का विकास, पृ.सं.-12
8. कहानी की रचना प्रक्रिया, पृ.सं.-31
9. कहानी की रचना-प्रक्रिया, पृ.सं.-90
10. हिंदी कहानी का विकास, पृ.सं.-41
11. अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियाँ, पृ.सं.-415
12. हिंदी कहानी का विकास, पृ.सं.-111
13. हिंदी कहानी का विकासय पृ.सं.-137,

### संदर्भ ग्रन्थ :

- नामवर सिंह; संस्करण : 2014 कहानी : नयी कहानी, प्रकाशन : लोकभारती प्रकाशन
- परमानन्द श्रीवास्तव; कहानी की रचना प्रक्रिया, प्रकाशन: लोकभारती प्रकाशन, संस्करण : 2012
- डॉ. हरदयाल हिन्दी कहानी: परम्परा और प्रगति
- मधुरेश; हिंदी कहानी का विकास, प्रकाशन: लोकभारती प्रकाशन, संस्करण, 2018 (1वां)
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल; हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन, श्यामा प्रकाशन संस्थान, संस्करण, 2017
- राजेन्द्र यादव; कहानी: स्वरूप और संवेदना, प्रकाशन : वाणी प्रकाशन, संस्करण : 2020
- <https://en.wikipedia.org>



डॉ. राम किशोर यादव

## ‘एक इंच मुस्कान’ में नये प्रयोग

**शोध सार :** साहित्य में जीवन का वर्णन किया जाता है। जीवन विविधता से भरा है। उसके समक्ष अनेक चुनौतियां हैं। इन चुनौतियों को समग्रता में देखना लेखन के लिए आवश्यक है। इस दौरान लेखक को कई पड़ावों से गुजरना पड़ता है। उसे प्रयोग के नये-नये धरातल पर उतरना पड़ता है। प्रयोग तो सत्यता की ओर ले जाता है। जीवन के भीतर विद्यमान भावों को एक रूप प्रदान करता है। इसमें व्यापकता का सत्यता का गुण आ जाता है। कथा साहित्य में अनेक प्रयोग किये गये हैं। कथ्य के धरातल पर एवं शिल्प के धरातल पर इसमें विविधता के दर्शन होते हैं। कई बार चमत्कारिक रूप में पेश किया जाता है और कई कलात्मक रूप में। जीवन की अनुभूति, जीवन के भीतर के संघर्ष, कल्पनाशीलता, संवेदनशीलता, मार्मिकता एवं भावात्मकता को कई स्तरों चित्रित किया जाता है। लेखक के रचना विधान में इन सभी बिंदुओं को समेटा जाता है। वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, विवरणात्मक शैली, प्रश्न शैली, चेतना प्रवाह शैली, मनोवैज्ञानिक शैली में जीवन के भीतर चल रहे संघर्षों को, समाज के यथार्थ को, व्यक्ति के द्वंद्व को, समाज के भीतर व्याप्त संघर्ष को रेखांकित किया जाता है। बदलते समय और समाज में यह अत्यन्त कठिन कार्य है। इसमें कलात्मकता एवं अनुभूति की प्रामाणिकता मिलती है। चेतना के बिम्ब, चेतना के स्तर, चेतना के फलक को विस्तृत आयाम प्रदान कर जीवन को सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया जाता है। यह मार्ग नवीन है। प्रयोग का मार्ग का चुनौतियों से भरा होता है। इसमें नवीन संभावनाएं भी निहित होती हैं।

किसी भी समाज के भीतर के यथार्थ, सामाजिक,

सांस्कृतिक, राजनैतिक विकृतियों को सही परिप्रेक्ष्य में सामने लाना कठिन कार्य है। रचनाकार को इस संघर्ष से गुजरना पड़ता है। कल्पना और यथार्थ को मिलाकर एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया जाता है जो मनुष्य के चिंतन को प्रभावित करता है।

हिन्दी के ही नहीं विश्व के अन्य भाषाओं के उपन्यासों में भी नवीन प्रयोग हुए हैं। इन प्रयोगों के कारण ही नये-नये संवेदना के द्वार खुलते गये हैं। नवीन समस्याएं सामने आती गई हैं और उनका समाधान भी प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। मन्नू भंडारी द्वारा रचित ‘एक इंच मुस्कान’ में नये प्रयोग मिलते हैं। सर्वप्रथम इसकी रचना विधान में नये प्रयोग किये गये हैं। मन्नू भंडारी और राजेन्द्र यादव ने संयुक्त रूप में इसकी रचना की है। सम अध्याय मन्नू भंडारी के हैं तो विषम अध्याय राजेन्द्र यादव के हैं। यह सहयोगी लेखन का सार्थक प्रयास है। इसमें प्रयोगशीलता है, नवीनता है, भावात्मकता है, कलात्मकता है एवं संवेदनशीलता का उत्कृष्ट रूप है।

‘एक इंच मुस्कान’ में मूलतः सामाजिक समस्या को चित्रित किया गया है। समाज के इकाई के रूप में पुरुष और स्त्री के माध्यम से प्रेम की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। प्रेम एक अविभाज्य सत्य है। बदलती परिस्थितियों के कारण कई बार प्रेम प्रभावित होता है। कई बार प्रेम उसे प्रभावित करता है। जीवन को समग्रता में समझने की कोशिश की गयी है। इस रचना में दाम्पत्य प्रेम और कलाकार के द्वंद्व को उजागर किया गया है। कलाकार का अपनी कला के प्रति पूर्णतः समर्पण को दिखाया गया है। एक पक्ष तो सुदृढ़ है दूसरा पक्ष उपेक्षित है। दमित

वासनाओं के कारण होने वाले घात-प्रतिघात का चित्रण किया गया है। यह सहज नहीं है। किसी भी अवांछित स्थिति के लिए तैयार रहने की संकल्पना है। लेखक के भीतर मौजूद आंतरिक समस्याएं बाहर आकर जीवन और जगत के भीतर हलचल पैदा करती हैं। इस हलचल को कौन-सी दिशा प्रदान की जाये। उसे कैसे संभाला जाये यह चुनौती है। वैज्ञानिक प्रगति, तकनीक का बढ़ता दायरा मानव को निरन्तर नयी चुनौती पेश कर रहा है। हमें अपने जीवन को समग्रता में विश्लेषित करने की जरूरत है। रचना के भीतर मौजूद तत्वों की पहचान कर उसका मूल्यांकन करना है। 'एक इंच मुस्कान' में इस तरह के नये प्रयोगों की भरमार है। उसमें विविधता है, मौलिकता है। इसमें प्रयोगशीलता, कल्पनाशीलता एवं सृजनशीलता महत्वपूर्ण है।

साहित्य में जीवन का वर्णन किया जाता है। जीवन विविधता से भरा है। उसके समक्ष अनेक चुनौतियां हैं। इन चुनौतियों को समग्रता में देखना लेखन के लिए आवश्यक है। इस दौरान लेखक को कई पड़ावों से गुजरना पड़ता है। उसे प्रयोग के नये-नये धरातल पर उतरना पड़ता है। प्रयोग तो सत्यता की ओर ले जाता है। जीवन के भीतर विद्यमान भावों को एक रूप प्रदान करता है। इसमें व्यापकता का सत्यता का गुण आ जाता है। कथा साहित्य में अनेक प्रयोग किये गये हैं। कथ्य के धरातल पर एवं शिल्प के धरातल पर इसमें विविधता के दर्शन होते हैं। कई बार चमत्कारिक रूप में पेश किया जाता है और कई कलात्मक रूप में। जीवन की अनुभूति, जीवन के भीतर के संघर्ष, कल्पनाशीलता, संवेदनशीलता, मार्मिकता एवं भावात्मकता को कई स्तरों चित्रित किया जाता है। लेखक के रचना विधान में इन सभी बिंदुओं को समेटा जाता है। वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, विवरणात्मक शैली, प्रश्न शैली, चेतना प्रवाह शैली, मनोवैज्ञानिक शैली में जीवन के भीतर चल रहे संघर्षों को, समाज के यथार्थ को, व्यक्ति के द्वंद्व को, समाज के भीतर व्याप्त संघर्ष को रेखांकित किया जाता है। बदलते समय और समाज में यह अत्यन्त कठिन कार्य है। इसमें कलात्मकता एवं अनुभूति की प्रामाणिकता मिलती है। चेतना के बिम्ब, चेतना के स्तर, चेतना के फलक को विस्तृत आयाम प्रदान कर जीवन को सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया जाता है। यह मार्ग नवीन है।

प्रयोग का मार्ग का चुनौतियों से भरा होता है। इसमें नवीन संभावनाएं भी निहित होती हैं।

किसी भी समाज के भीतर के यथार्थ, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक विकृतियों को सही परिप्रेक्ष्य में सामने लाना कठिन कार्य है। रचनाकार को इस संघर्ष से गुजरना पड़ता है। कल्पना और यथार्थ को मिलाकर एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया जाता है जो मनुष्य के चिंतन को प्रभावित करता है।

हिन्दी के ही नहीं विश्व के अन्य भाषाओं के उपन्यासों में भी नवीन प्रयोग हुए हैं। इन प्रयोगों के कारण ही नये-नये संवेदना के द्वार खुलते गये हैं। नवीन समस्याएं सामने आती गई हैं और उनका समाधान भी प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। मन्नू भंडारी द्वारा रचित 'एक इंच मुस्कान' में नये प्रयोग मिलते हैं। सर्वप्रथम इसकी रचना विधान में नये प्रयोग किये गये हैं। मन्नू भंडारी और राजेन्द्र यादव ने संयुक्त रूप में इसकी रचना की है। सम अध्याय मन्नू भंडारी के हैं तो विषम अध्याय राजेन्द्र यादव के हैं। यह सहयोगी लेखन का सार्थक प्रयास है। इसमें प्रयोगशीलता है, नवीनता है, भावात्मकता है, कलात्मकता है एवं संवेदनशीलता का उत्कृष्ट रूप है। इसे पढ़ते हुए बिम्बात्मकता, प्रतीकात्मकता एवं सृजनात्मकता का आभास मिलता है। इसमें प्रयोग की नवीनता है। ऐसा प्रतीत होता है कि फिल्म की रील के तरह उपन्यास के दृश्य बदल रहे हैं। इसमें सूत्रबद्धता है। राजेन्द्र यादव के कथन से स्पष्ट है कि इसमें भावात्मकता एवं प्रयोगशीलता है। उनके शब्दों में, "उपन्यास की भावात्मकता और वैचारिक अन्विति की दृष्टि से देखता हूं तो मुझे लगता है कि इन तालियों की गड़गड़ाहट ने मन्नू को भटका भी दिया है।"<sup>1</sup>

इस उपन्यास की रचना के केन्द्र में लेखकीय संघर्ष है। मन्नू भंडारी के अनुसार, "अमला को मेरी लेखनी ने नहीं चला है वरन् मेरी लेखनी को अमला ने चलाया है।"<sup>2</sup>

कथ्य और शिल्प के विवेचन में भी नवीन प्रयोग किया गया है। राजेन्द्र यादव ने शिल्प को संभाला है तो मन्नू भंडारी ने कथ्य को। इसमें विश्लेषण की प्रामाणिकता है एवं सृजनात्मक विवेक दृष्टव्य है। लेखिका के शब्दों में, "इसकी कलात्मकता में अनुभूतिशीलता का प्रवेश हो गया है। जिससे उपन्यास में रचनात्मक संदर्भ, कलात्मक और सृजनात्मक सत्ता की समर्थ संभावनाओं में उभार आया है।"<sup>3</sup>

‘एक इंच मुस्कान’ प्रयोग की नवीनता के लिए प्रसिद्ध है। इसमें शैलीगत भिन्नता है। राजेन्द्र यादव में चिंतन शैली मिलती है तो मन्नू भंडारी में भावात्मक शैली के दर्शन होते हैं। ‘एक इंच मुस्कान’ के शीर्षक में ही प्रयोगशीलता विद्यमान है। यह डायरी शैली में लिखा गया है। कहीं-कहीं प्रश्न शैली के दर्शन होते हैं। इसमें स्पष्ट व्यक्तित्व के उच्चतर मुक्ति कामना है। इसमें कलाकार के व्यक्तित्व की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। कलाकार अपनी कला के प्रति सचेत एवं समर्पित है। उसकी कला का परिष्कार तभी संभव है जब वहां इसे साधना के बल पर आगे बढ़ाएं। हर प्रकार का समझौता कला को भ्रष्ट करता है, कमजोर करता है, उसकी दिशा को बदलता है।

‘एक इंच मुस्कान’ मानवीय अनुभूति की तीव्रता है। पात्रों के सृजन से लेकर कथ्य के उद्घाटन तक में नये प्रयोग किये गये हैं। अमर, अमला और रंजना के माध्यम से जीवन की शून्यता और एकाकीपन को उजागर किया गया है। इसमें मानवीय संबंधों की अर्थहीनता का संकेत मिलता है। मन्नू भंडारी ने लिखा है, “वह हमेशा अमला और रंजना के बीच में रही है। रंजना के प्रति अमर का व्यवहार उसे बेहद पीड़ा देता था।”<sup>4</sup>

उपन्यास के भीतर प्रवेश करने पर पाते हैं कि लेखकीय संघर्ष की गाथा है। इसमें पात्रों की मनःस्थिति को चित्रित किया गया है। मन में कई बार घृणा और अवसाद का प्रवेश होता है। इसमें कई बार एकाकीपन का अनुभव होता है। इसमें अनुभव का नयापन भी है। मन्नू भंडारी के शब्दों में, “वह उनकी इच्छानुरूप कदापि नहीं बन सकी, सर्वथा भिन्न थी। विशिष्ट वर्ग में पली, बुद्धिवादिनी, अहम्वादिनी अमला जब सबको ही झूठलाती, अस्वीकार करती चली गई तो भला मेरे बस में क्यों आती?”<sup>5</sup>

इसमें पात्रों को उनके अनुरूप पकड़ने की कोशिश है। इसमें लेखकीय व्यक्तित्व की ईमानदारी जरूरी है। पात्रों के जीवन संघर्ष को क्रमबद्ध रूप से चित्रित करना रचनाकार का दायित्व है। इसमें मन्नू भंडारी ने सफलता प्राप्त की है। पाठकीय अनुभूति के तीव्र मनोवेगों को सटीक रूप में वर्णित किया गया है। इसमें आत्मान्वेषण एवं कलात्मकता विद्यमान है। परंपरा से अलग हटकर घटना को पिरोया गया है। इसमें कई बार अस्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। व्यक्तित्व के निर्माण में तटस्थ एवं निष्पक्षता की आवश्यकता है।

‘एक इंच मुस्कान’ में अनुभूति प्रवणता है। व्यक्तित्व का परिवेश के साथ सामंजस्य स्थापित करने का संघर्ष है। यहां यथार्थ का अतिक्रमण मिलता है। संभावनाओं के द्वार खुल जायेंगे। जीवन की सबलताओं और दुर्बलताओं का संकेत मिलता है। बुद्धि का, चेतन का, विवेचन का मार्ग बढ़ता जाता है। मानव के भीतर विद्यमान सभी भावों का प्रकटीकरण होने लगता है। जीवन में आने वाली समस्याओं का वृहद् रूप देखने को मिलता है। स्त्री के जीवन में पीड़ा की व्याप्ति हो जाती है। लेखकीय आकांक्षा अवरुद्ध हो जाती है। भावना और विवेक में किसे स्वीकार किया जाये। इसमें सामंजस्य स्थापित न हो पाने की त्रासदी है। “भावना और विवेक का उचित सामंजस्य न स्थापित करने की चिन्तन शक्ति, प्रणय और परिणय में कोई निश्चित तालमेल न बैठा पाने की विचार शक्ति के कारण ही अमर रंजना को जीवन की विक्षुब्ध स्थिति का सामना करने के लिए विवश करता है।”<sup>6</sup>

रंजना का अपने पति से लगाव न हो पाने की विडंबना है। उनकी उदासी भी उनमें बेचैनी ला देता है। वह सोचती है कि मैंने अच्छा नहीं किया। “तुम हमेशा उदास-उदास, खोये-खोये रहते हो और अक्सर बैठे-बैठे सोचते रहते हो तो मुझे लगता है मैंने तुम्हारे साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है। और तब मन में अपराधबोध की भावना जगती है।”<sup>7</sup>

इस रचना में प्रयोग के नये-नये रूप मिलते हैं। इनमें चिन्तन प्रणाली से लेकर व्यक्तित्व की आंतरिक स्थिति तक आ जाता है। वह निर्णय लेती है कि मैंने अब कुछ नहीं कहूंगी। वह कुछ नहीं चाहने की प्रतिज्ञा भी करती है। “मैं तुमसे कुछ नहीं चाहूंगी। मैं तो सिर्फ एक ऐसा घर, एक ऐसा वातावरण देना चाहती हूँ जहां तुम सब ओर से निश्चित होकर लिख सको।”<sup>8</sup>

विभिन्न समीक्षकों इस बिन्दु के आधार पर मन्नू भंडारी और राजेन्द्र यादव के वयैक्तिक जीवन पर प्रहार किया है। उनके जीवन के भीतर विद्यमान वैचारिक संघर्ष को टटोला है। यहां भी प्रयोग की नवीनता है। चिंतन की नवीनता है। समीक्षकों ने रचना से हटकर वयैक्तिक जीवन को पकड़ा है। यह रचनात्मक उद्देश्य में बाधक प्रतीत होता है। रचना को रचना के भीतर विद्यमान तत्वों के आधार पर समीक्षा करनी चाहिए ना कि किसी लेखक की निजी जिंदगी पर। किसी भी रचना के पक्ष को देखने का यह तरीका उचित नहीं है।

इस रचना में अमर की प्रतिभा को प्रभावित होते दिखाया गया है। उसकी कुंठित मानसिक स्थिति को दर्शाया गया है। जिसकी मानसिक स्थिति कुंठित हो तो उसमें सफलता की संभावना कम नजर आती है। “जिसके जीवन का हर पल अनिश्चित और अस्थिर हो जो केवल मूड्स पर पले जिसके लिए जीवन और यथार्थ से कल्पना अधिक महत्वपूर्ण हो, उसके साथ जीवन बिताने की कल्पना भला कैसे मधुर हो सकती है?”<sup>9</sup>

‘एक इंच मुस्कान’ में स्त्री की पीड़ा को देखा जा सकता है। रंजना, अमला दोनों पात्रों की मनःस्थिति से यह स्पष्ट हो जाता है। रंजना अपनी मनःस्थिति को प्रकट करती है, “तुम्हारे हर व्यवहार की प्रक्रिया ने तुम्हारी उपेक्षा, अवहेलना, तुम्हारे झूठ, छल और विश्वासघात की प्रतिक्रिया पर प्रहार किया है, हर बार मेरा मन बुरी तरह घुटा है, तड़पा है, सिसका है।”<sup>10</sup>

स्त्री की पीड़ा, घुटन, तड़पन को नये रूप में लेखिका ने उजागर किया है। इसमें प्रस्तुति की नवीनता है, सृजन की नवीनता है। वैचारिक द्वंद्व को इसमें शामिल किया गया है। इसमें स्त्री पति के शारीरिक सुख का भी अनुभव नहीं कर पाती है। उसमें भी पूर्णता का अभाव नजर आता है। निकटतम क्षणों में भी शरीर का दबाव ही महसूस करती है। दोनों के भीतर प्रेम की शून्यता को देखा जा सकता है।

इस रचना में प्रयोग के कई धरातल हैं। इसमें नैतिकता, आत्मीयता, भावात्मकता में भी नवीनता है। एक सहज, संवेदनशील, मानवीय धरातल पर इन प्रयोगों को समझने की कोशिश है। इसमें प्रेम की तलाश भी नये तरह की है। डॉ. विजय मोहन सिंह का कथन है, “इस उपन्यास में प्रेम की तलाश की मुख्य समस्या यह है कि प्रेम दो व्यक्तियों को सभी बिन्दुओं पर नहीं मिलता बल्कि वे किसी एक बिन्दु पर तो मिलते हैं लेकिन काफी बिन्दुओं पर अलग रहते हैं। प्रेम संपूर्ण एकात्मकता नहीं है।”<sup>11</sup>

इसमें प्रेम की संघर्षात्मक स्थिति का बेबाकी से वर्णन किया गया है। प्रेम का मार्ग सरल नहीं है। वह अत्यन्त जटिल मार्ग है। कई पड़ावों से गुजरता है। कुछ को छोड़ता है तो कुछ को ग्रहण करता है। इसमें अनुभूति की सहजता एवं सम्प्रेषणीयता मौजूद है। इसमें मनुष्य की भावनाओं का महत्व है। भावना को भावना के रूप में वर्णन किया जाता है। पूर्णता पाने की लालसा बनी रहती है। अमर को पूर्णता में पाने की छटपटाहट है। उसके भीतर असुरक्षा और तनाव

विद्यमान है। “मेरी समझ में नहीं आता, आपका मन कैसे लगता है? आपको घर आने की इच्छा ही नहीं होती, मुझे तो कहीं अच्छा नहीं लगता। हमेशा मन करता है आपके साथ रहूं, हम लोग साथ घूमें, साथ सिनेमा जायें।”<sup>12</sup>

अमला के माध्यम से नारी जीवन को प्रस्तुत किया गया है। पति से अलग होने पर भी उसके भीतर बंधनों को तोड़ने की आकांक्षा है। एक प्रकार का नारी विद्रोह है। अपनी पहचान, अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष है। वह स्वयं को पहचानना चाहती है। जीवन को जीना चाहती है, विपरीत परिस्थितियों में भी वह अपने को संभालती है। वह सड़ना नहीं चाहती, वह किसी भी रुकावट की पक्षधर नहीं है। लेखक के शब्दों में, “वह सड़ना नहीं चाहती, सूखना नहीं चाहती, बहना चाहती है, निरंतर बहना चाहती है। अनजानी, अनदेखी दिशाओं में बहना चाहती है, दूर-दूर निरुद्देश्य-सी, लक्ष्यहीन-सी पर निर्बन्ध और उन्मुक्त।”<sup>13</sup>

स्वतंत्रता के बाद लेखन के क्षेत्र में नवीनता, गंभीरता आयी है। इसका सफल प्रयोग इस उपन्यास में मिलता है। मन के भावों से लेकर महानगर की संपूर्ण स्थितियों को इसमें पिरोया गया है। प्रेम की उन्मुक्त भावना का भी समर्पण मिलता है। इसमें पात्रों के माध्यम से परिवेशगत यथार्थ को मुखरित किया गया है। इसमें सामाजिक समस्या पर नग्न यथार्थ चित्रित है। पारिवारिक समस्या, सामाजिक समस्या के रूप में चित्रित है। इसमें व्यक्ति के आत्मसम्मान को भी शामिल किया गया है। इसमें स्वतंत्रता के लिए तड़प विद्यमान है। पात्रों की जीवन शैली उनके भीतर विद्यमान दर्द को सटीक रूप में चित्रित किया गया है।

इसमें पात्रों के माध्यम से महानगरीय जीवन, वैवाहिक जीवन, वैयक्तिक जीवन, एकाकी जीवन में मौजूद जटिलताओं को उजागर किया गया है। विवाह संबंधी मान्यताओं पर भी प्रहार किया गया है। कलाकारों के बीच के प्रेम को वाणी देने का काम किया गया है। साथ ही स्वीकार करने की कोशिश है कि “हम पेशा आर्टिस्ट कभी सफल गृहस्थ हो ही नहीं सकते। दोनों चूंकि कला सृजन की एक जैसी प्रक्रिया से परिचित हैं इसलिए उनमें एक को दूसरे के प्रति न तो आस्था होती है न श्रद्धा।”<sup>14</sup>

‘एक इंच मुस्कान’ में मूलतः सामाजिक समस्या को चित्रित किया गया है। समाज के इकाई के रूप में पुरुष और स्त्री के माध्यम से प्रेम की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। प्रेम एक अविभाज्य सत्य है। बदलती परिस्थितियों

के कारण कई बार प्रेम प्रभावित होता है। कई बार प्रेम उसे प्रभावित करता है। जीवन को समग्रता में समझने की कोशिश की गयी है। इस रचना में दाम्पत्य प्रेम और कलाकार के द्वंद्व को उजागर किया गया है। कलाकार का अपनी कला के प्रति पूर्णतः समर्पण को दिखाया गया है। एक पक्ष तो सुदृढ़ है दूसरा पक्ष उपेक्षित है। दमित वासनाओं के कारण होने वाले घात-प्रतिघात का चित्रण किया गया है। यह सहज नहीं है। किसी भी अवांछित स्थिति के लिए तैयार रहने की संकल्पना है। लेखक के भीतर मौजूद आंतरिक समस्याएं बाहर आकर जीवन और जगत के भीतर हलचल पैदा करती हैं। इस हलचल को कौन-सी दिशा प्रदान की जाये। उसे कैसे संभाला जाये यह

चुनौती है। वैज्ञानिक प्रगति, तकनीक का बढ़ता दायरा मानव को निरन्तर नयी चुनौती पेश कर रहा है। हमें अपने जीवन को समग्रता में विश्लेषित करने की जरूरत है। रचना के भीतर मौजूद तत्वों की पहचान कर उसका मूल्यांकन करना है। 'एक इंच मुस्कान' में इस तरह के नये प्रयोगों की भरमार है। उसमें विविधता है, मौलिकता है। इसमें प्रयोगशीलता, कल्पनाशीलता एवं सृजनशीलता महत्वपूर्ण है।

**एसोसिएट प्रोफेसर  
श्री वेंकटेश्वर कॉलेज  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

### संदर्भ सूची

1. भंडारी, मन्नू एवं यादव, राजेन्द्र, एक इंच मुस्कान, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली प्रथम संस्करण, पृ. 317
2. वही, पृ. 325
3. अरोड़ा, अतुलवीर, आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1972, पृ. 127
4. भंडारी, मन्नू एवं यादव, राजेन्द्र, एक इंच मुस्कान, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली प्रथम संस्करण, पृ. 268
5. वही, पृ. 270
6. वही, पृ. 177
7. वही, पृ. 63
8. वही, पृ. 63
9. वही, पृ. 96
10. वही, पृ. 198
11. सिंह, डॉ. विजय मोहन, आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम की परिकल्पना, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1972, पृ. 699
12. भंडारी, मन्नू एवं यादव, राजेन्द्र, एक इंच मुस्कान, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली प्रथम संस्करण, पृ. 40
13. वही, पृ. 112
14. वही, पृ. 6



डॉ. साक्षी

## लोककथा में लोकमन

(सन्दर्भ : भोजपुरी लोक कथाएँ)

**सा**हित्य समाज के मनोविज्ञान को अभिव्यक्ति देने का एक एक भावनात्मक व तार्किक माध्यम माना जा सकता है। इसके साथ ही समाज के मनोविज्ञान को अकृत्रिम अभिव्यक्ति देने वाला मनोरंजक प्रकल्प लोक साहित्य-लोकमनोविज्ञान है। दोनों ही एक दूसरे के समानांतर चलती धाराएँ हैं। साथ ही यह देखा भी गया है कि ये दोनों ही एक-दूसरे से प्रेरणाएँ भी लेने का कार्य करती हैं। संभवतः इसी कारण लोक साहित्य व शिष्ट साहित्य की चर्चा में लगभग समान भावनात्मक प्रेरणाएँ काम करती दिखती या प्रतीत होती हैं। राम कथा इसका परिपुष्ट उदाहरण है। इसमें लौकिक और आध्यात्मिक जीवन ऐसा रच बस गया है कि लोक और शिष्ट साहित्य दोनों ही परम्पराओं में इनको अलगाना बेहद मुश्किल है। वास्तव ने 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से 'ध' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है, जिसका लट् लकार में अन्य पुरुष एक वचन का रूप 'लोकते' है। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ 'देखने वाला'। इस प्रकार वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को (देखने का कार्य) करता है 'लोक' कहलायेगा। 'लोक' शब्द अत्यंत प्राचीन है साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है ऋग्वेद में 'लोक' के लिए 'जन' शब्द का भी प्रयोग उपलब्ध होता है।<sup>1</sup>

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' के सम्बन्ध में अपन विचार को प्रकट करते हुए लिखा है कि 'लोक' शब्द का अर्थ 'जन-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके

व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर के परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।<sup>2</sup>

डा. कृष्णदेव उपाध्याय के मत के अनुसार 'लोक' की परिभाषा निम्नलिखित है—

“आधुनिक सभ्यता से दूर, अपनी सहज प्राकृतिक अवस्था में वर्तमान, तथाकथित असभ्य अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को 'लोक' कहते हैं जिनका जीवन-दर्शन और रहन-सहन प्राचीन परम्पराओं, विश्वासों तथा आस्थाओं द्वारा परिचालित एवं नियंत्रित होता है।”<sup>3</sup>

इससे ज्ञात होता है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से मुक्त रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं उन्हें 'लोक' की संज्ञा प्राप्त होती है। वस्तुतः अहंकार-भाव (साहित्य को निजी रचना न समझना) से रहित इन्हीं लोगों के साहित्य को लोक साहित्य कहा जाता है। यह साहित्य प्रायः मौखिक होता है तथा परम्परागत रूप से चला आता है। यह साहित्य जब तक मौखिक रहता है तभी तक इसमें नित नूतनता, प्रवाहमान जलधारा के समान ऊर्जा वर्तमान रहती है जो कि इसे कालजयी बनाती है। लिपिबद्ध होने के उपरान्त इसकी लोकोन्मुख स्वभाव समाप्त हो जाती है। वस्तुतः “लोक संस्कृति का सृजनधर्मी संस्कार शिष्ट संस्कृति में अंतरगमन करता है, उसे प्रभावित करता है।”<sup>4</sup>

इस अर्थ में बहुतेरे लोक संस्कृति और नागर संस्कृति

पूरक एवं अन्योनाश्रित होते हैं। ये एक दूसरे से शक्ति ग्रहण करते रहते हैं। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों, तथा क्रिया-कलापों, के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है और उसके लोक को समझना अत्यंत आवश्यक है। इसका बीज भाव हमें 'वेद' में दृष्टिगोचर होता है तथा इसका सर्वोत्तम उदाहरण महाभारत है। जहाँ एक साथ लोक और अभिजात्य दोनों ही संस्कृतियों का समुच्चय मिलता है। इसके कारण महाभारत में लोक कथाओं की बहुलता है। आप तत्कालीन (महाभारत कालीन) जीवन के किसी भी प्रसंग का उदाहरण महाभारत में खोज सकते हैं। इसके साथ ही लोक और अभिजात्य के पृथकता के स्थिति का भी परिचय आप यहाँ पा सकते हैं। इसे महाभारत के नायक योगपुरुष श्री कृष्ण ने, वेद से पृथक लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ, इसलिये लोक में और वेद में 'पुरुषोत्तम' नाम से प्रसिद्ध हूँ।

“यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥15.18॥”<sup>5</sup>

लोक साहित्य का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। विभिन्न विद्वानों ने लोक साहित्य का वर्गीकरण लगभग थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ समान रूप से किया है।

लोक साहित्य को डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने प्रधानतया पांच भागों में विभक्त किया गया है:-

1. लोक-गीत (folk-lyrics),
2. लोक-गाथा (folk-ballads),
3. लोक-कथा (folk-tales),
4. लोक-नाट्य (folk-drama),
5. लोक-सुभाषित (folk-sayings)<sup>6</sup>

लोक साहित्य के इसी प्रकार का वर्गीकरण डॉ. सुरेश गौतम ने किया है। इन्होंने स्पष्ट रूप से लोक साहित्य का वर्गीकरण तो नहीं किया है किन्तु विभिन्न अध्यायों में लोकसाहित्य के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण किया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है -1. लोकगीत, 2. लोककथा, 3. लोकगाथा, 4. लोकनाटक, 5. प्रकीर्णक साहित्य या लोकोक्ति साहित्य।<sup>7</sup>

इस उपरोक्त वर्गीकरण से थोड़ा भिन्न स्वरूप डॉ. सत्येन्द्र के यहाँ मिलता है। डॉ. सत्येन्द्र ने सम्पूर्ण वार्ता को दो भागों में बांटा है- 1. लोकवाणी विलास, 2. लोक कला

विलास। यहाँ पर लोक साहित्य से तात्पर्य 'लोकवाणी विलास' से है। लोक वाणी विलास के तीन भेद हैं- 1-बात (सामान्य व्यवहार विषयक), 2-कथात्मक, 3-गेय। इसमें कथात्मक के इन्होंने छह भेद किये हैं-

- 1-धर्मगाथा (myth), 2-परीकथा (fairy tales), 3-अवदान (legend), 4-लोक कहानी (folk tale), 5-तंत्राख्यान (इसम), 6-लोककथा (ballad)<sup>8</sup>

“लोक कथाओं का जन्म कब-खान-कैसे हुआ और इसका आदि प्रणेता कौन था, यह बता पाना निश्चित रूप से बहुत मुश्किल है। लोक कथाओं की परंपरा तो दूँदी जा सकती है लेकिन उसका कोई निश्चित इतिहास निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह एक सबसे प्राचीन और घुमंतू विधा है लेकिन इसके यात्रा पथ को निश्चित कर पाना बहुत मुश्किल है। यह वेदों की तरह ही एक श्रुति विधा है। इसे लोक जीवन की स्मृति भी कह सकते हैं।” (पृष्ठ 168, लोकसाहित्य व्याप्ति और यथार्थ, डॉ. सुरेश गौतम)

प्राचीन समय में ज्ञान को सहेजने के लिए, ज्ञान को स्मृति आधार पर स्मरण रखने व चलायमान स्थिति हेतु अनायास ही ऐसे दृष्टान्तों-लोक अनुभवों को संरक्षित करने की मौखिक प्रक्रिया में लोक कथा का जन्म हुआ होगा। बजारों व घुमंतू वृत्ति ने इसे स्थान-स्थान तक पहुँचाया होगा। ऐसे जी लोक सम्मत ज्ञान के विनिमय द्वारा लोक ज्ञान सहित लोक कथा में भी श्रीवृद्धि हुई होगी। इसे सुरेश गौतम जी 'लोककथा' की 'अच्छत' परंपरा की 'गत्यात्मक और सातत्य परम्परा' पुकारते हैं। लोक साहित्य के वर्गीकरण में लोक कथाओं का प्रमुख स्थान है। ये अपनी सरसता और लोकप्रियता के कारण महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हमने बचपन में अपनी दादी, नानी, माँ या अन्यो से इस प्रकार की कई कहानियाँ सुनी हैं जैसे- 'चंदा मामा', 'राजकुमारी फूलकुमारी' आदि। वस्तुतः अपनी बोधगम्यता के कारण ये अचूक प्रभाव रखती है। ये बालकों के हेतु प्रथमतः शिक्षा एवं समाज से जोड़ने का माध्यम है। इनका भारत में एक लंबी परम्परा दिखती है जैसे-पंचतंत्र, हितोपदेश आदि।

लोक कथाओं के वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इन्हें छः वर्गों में विभाजित किया गया है:-

1. उपदेश-कथा,
2. व्रत-कथा,
3. प्रेम-कथा,

4. मनोरंजन-कथा,
5. सामाजिक-कथा,
6. पौराणिक-कथा।<sup>9</sup>

भारतवर्ष कहानियों का देश है। “ऐसा अनुमान किया जाता है कि यहाँ लगभग तीन सहस्र लोक-कथाएँ हैं। उनका विधिवत संकलन लोकवार्ता शास्त्र का महत्वपूर्ण अंग है।”<sup>10</sup> यहाँ हिंदी लोक कथाओं की प्रवृत्तियों के विश्लेषण हेतु राजस्थानी, हरयाणवी और भोजपुरी लोककथाओं का उपयोग किया है। इनमें दीर्घ और लघु-कथा दोनों ही हैं। अपने स्वरूप में सरल, सहज और मूल अर्थों में यह उपदेशात्मक है किन्तु हम इन्हें सामाजिक और मनोरंजन कथा के वर्ग में भी रख सकते हैं।

इसके कथा निष्कर्ष या उद्देश्य के आधार पर जो वर्ग श्रेणियाँ बनती हैं वो निम्नांकित हैं -

1. व्यवहारकुशलता या बुद्धि की कीमत,
2. लोभ और निजी स्वार्थ के परिणाम,
3. कर्तव्य की उपेक्षा एवं व्यसन का दुष्परिणाम,
4. जाति का प्रभाव,
5. कर्मठता का प्रभाव,
6. पारब्ध्य (भाग्य),
7. कपटी पर कभी विश्वास न करें या जैसे को तैसा
8. अविश्वास सम्बन्ध हेतु विष सामान
9. परोपकार का महत्व
10. राजनैतिक दांवपेंच
11. गुण कभी व्यर्थ नहीं जाते
12. दुष्टता का परिणाम बुरा
13. दुनिया पर नहीं अपने कार्य पर ध्यान दें।

**व्यवहारकुशलता या बुद्धि सर्वश्रेष्ठ है:** इस वर्ग में ‘राजा और घूसखोर’ (भोजपुरी)<sup>11</sup>, ‘बुद्धि की कमाई’ (भोजपुरी)<sup>12</sup>, ‘चतुर लड़की’ (भोजपुरी)<sup>13</sup>, ‘लेनी की देनी’ (भोजपुरी)<sup>14</sup> आदि रखे जा सकते हैं। इस वर्ग की कहानियों में लोक में प्रचलित संबंधों और व्यवहारों के माध्यम से व्यक्ति को व्यवहारकुशल होने कि सीख दी गई है। इनमें से कुछ लोककथा आज भी लोक गीत के तरह विभिन्न अंचलों में गाए जाते हैं।<sup>15</sup>

**लोभ और निजी स्वार्थ के दुष्परिणाम :** इस वर्ग की कथा में मुख्यतः ‘मणिवाला सांप’ (भोजपुरी)<sup>16</sup> कहानी है। इस कहानी में पाँव भर दूध के बदले गरीब किसान को एक मणि प्रत्येक दिन इल जाती थी। पर किसान की

अनुपस्थिति में किसान के बेटे ने अधिक लालच में सांप को मार दिया और सांप ने किसान के बेटे को डस लिया। इस लालच के कारण वरदान अभिशाप बन गया और सांप रूपी मित्र शत्रु हो गया। लोभ और निजी स्वार्थ किसी भी समाज या संगठन के पतन का कारण बनता है। इसी तरह ‘चार चोर’ (भोजपुरी)<sup>17</sup> कहानी सामाजिक जीवन या मनुष्य मात्र की इसी कमजोरी को दर्शाता है। ‘चार चोर’ जो एक साथ अपने कार्य में अत्यंत प्रवीण थे। स्वार्थग्रस्त बन सभी एक दूसरे की मृत्यु का कारण बनते हैं। हमें बचपन से सिखाया जाता है कि एकता में बल है और एक से एक मिलकर ग्यारह बनते हैं लेकिन जैसे-जैसे समाज आगे बढ़ रहा है, सभी असंगठित हो एकाकी जीवन जीने को अभिशप्त हैं। भारतीय समाज के असंगठित एवं क्षुद्र स्वार्थ युक्त जीवन चरित्र को यहाँ दर्शाया गया है। हमारी दासता के प्रमुख कारणों में से यह भी एक रहा है। हमारे आपसी संघर्ष ने ही विदेशी आक्रान्ताओं के आने की जगह बनाई। इसी मानसिक कमजोरी के प्रति हमारे पूर्वज व सद्पुरुष इंगित करते रहे हैं। मनुष्य मात्र के लिए लिए जिजीविषा एवं जुझारूपन एक सकारात्मक गुण थी। किन्तु यही गुण जब किसी के नुकसान पर अपने लाभ की बात करता है तो दुष्ट कर प्रवृत्ति वाला कहलाता है। ‘बटेर और कौवा’ (भोजपुरी)<sup>18</sup> इसी तरह की कहानी है। जिसमे कौवा स्वार्थ की पराकाष्ठा पर जाकर बटेर के बच्चों को मारकर खाना चाहता है। लेकिन जैसी करनी वैसी करनी कहावत अनुसार स्वयं उसी की मृत्यु हो जाती है।

**कर्तव्य की उपेक्षा एवं व्यसन का दुष्परिणाम :** इसमें व्यसन में लिप्तता का दुष्परिणाम गौ-पालन और कृषि कार्य या कर्तव्य का महत्व बताया गया है। मानव हेतु कर्तव्य का धार्मिक अनुष्ठान से ऊपर होने की बात कही गयी है।

**जाति का प्रभाव :** जैसे एक लोकोक्ति है- ‘आदत जात कभी ना छूटे कुत्ता टांग उठाके मूते’। लोक के अन्दर इस प्रकार की जातिवादी मानसिकता एक नकारात्मक और रूढ़िवादी स्वभाव के रूप में रहती है, भारतीय ग्राम इसका सबसे जीवंत उदाहरण है। वस्तुतः यह सामंतवादी जीवन मूल्य का प्रभाव है जिसके कारण शोषण आधारित जातिवादी व्यवस्था को बढ़ावा मिलता है। मनुष्य अपनी प्रवृत्ति एवं आदत के अनुरूप जीवन जीता है। इस तरह एक भिन्न कलेवर की कहानी है ‘राजा और लकड़हारा’ (भोजपुरी)<sup>19</sup>।

इसमें लकड़हारा अपने स्वभाव के अनुसार लकड़हारा ही रहता है। वतुतः मनुष्य अपनी मूल प्रवृत्ति के अनुसार ही व्यवहार करता है। 'सियार और सारस' (भोजपुरी)<sup>20</sup> कहानी इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है। सियार यदि अपने जातिगत स्वभाव हिंसा को नहीं छोड़ सकता तो सारस को भी अपने जातिगत स्वभाव व्यक्तिगत सुरक्षा को नहीं छोड़ना चाहिए।

**भारतीय जनजीवन की जिजीविषा या कर्मठता का प्रभाव :** 'जो अपनी सहायता करता है ईश्वर भी उसी की सहायता करते हैं।' इसी तरह जीवन में अथक परिश्रम या जिजीविषा की कथा है—'चिड़िया का संघर्ष' (भोजपुरी)<sup>21</sup>। यह कहानी भारतीय जन जीवन की जिजीविषा की कहानी है। एक छोटी सी चिड़िया बूँट (चना) के दाने के लिए या अपने अधिकार हेतु सम्पूर्ण दुनिया से लड़ गयी। उसके इस संघर्ष के सामने राजा से लेकर ऐरावत हाथी तक को भी झुकना पड़ा। अंततः चिड़िया ने अपना स्वत्व प्राप्त किया। इस कहानी में एक दृष्टिकोण और उभरता है—'बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति। बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।'<sup>22</sup> चिड़िया ने एक एक कर सभी को अपना पक्ष बताया किन्तु अंततः दबाव से ही व्यवस्था उसके पक्ष में आई। हम इस कहानी में देखते हैं कि लाठी, आग, समुन्दर, जैसे निर्जीव तत्वों का भी मानवीकरण किया गया है।

**पारब्ध्य (भाग्य) :** भारतीय जन समाज का भाग्य और कर्मफल पर अटूट विश्वास रहा है। ऐसी ही एक कहानी 'अभी कुछ बाकी है' (भोजपुरी)<sup>23</sup> है। इसी प्रकार एक कहानी 'संयोग' (भोजपुरी)<sup>24</sup> है। इसी तरह की अन्य एक कथा है जो कुछ लम्बी भी है—'अबूझ पंडिताई' (भोजपुरी)<sup>25</sup>। किन्तु 'अबूझ पंडिताई' भाग्य और ज्योतिष के कलेवर में मनुष्य मात्र के बुद्धिमान होने के कारक को विश्लेषित करती है। समझदार एवं नासमझ व्यक्ति के अंतर को बताया गया है—'जो कोई बात सुनकर मन की मन गुनता है, विचार करता है, बात को पचा कर रखता है, वह समझदार आदमी होता है, और जो इधर की बात उधर करता है, एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देता है, वह नासमझ होता है।'<sup>26</sup> इस तरह की कुछ कहानियों में पारब्ध्य की सर्वोच्चता स्वीकार किया गया है। वस्तुतः भाग्य का सम्बन्ध पूर्वजन्म के कर्म से जोड़ा गया है और इस अर्थ में यह अटल है इसमें कोई बदलाव नहीं

हो सकता। सामान्य भारतीय जनता भाग्यवादी है इन्हीं धारणा का परिचय यहाँ मिलता है। इस कर्म के विधान हेतु शकुन-अपशकुन की अवधारणा निर्मित हुई है। जिसके लिए हम ईश्वर से 'मनोती' (मान्यता) करते हैं। यदि निष्पक्ष रूप से देखें तो यह ईश्वर को घूस ही देना तो हुआ जिसमें ईश्वर को हमारे काम के पूरा करने पर उपहार स्वरूप देते हैं। इसी भाँति 'जंबूक बोला यह गति, तू क्या बोला काग' (भोजपुरी)<sup>27</sup> कहानी है। इसमें लड़की पशु-पक्षियों की भाषा समझ सकती है। किन्तु भाग्यवश वह अपने ससुराल में राक्षसी कहलाती है और बाद में सुमंगला हो जाती है।

कपटी पर कभी विश्वास न करें या जैसे को तैसा—'ऊँट, फुँट और सियार' (भोजपुरी)<sup>28</sup> कहानी में ऊँट एक कपटी सियार से मित्रता करता है फिर दिखा भी पाटा है। लेकिन ऊँट ने अपनी समझ बुझ से सही समय पाकर अपना बदला पूरा किया। इसी क्रम में 'बन्दर और मगरमच्छ' (भोजपुरी)<sup>29</sup> और 'जोड़ का तोड़' (भोजपुरी)<sup>30</sup> कहानी है।

**अविश्वास सम्बन्ध हेतु विष सामान—** 'निहोरा का नेवला' (भोजपुरी)<sup>31</sup> एक सुप्रसिद्ध लोक कथा है। इसमें एक दंपति ने विश्वास के अभाव में अपने भाई सामान नेवले की हत्या कर दी और बाद में पछताते रहे। इसी तरह एक 'माहूर फल' (भोजपुरी)<sup>32</sup> कहानी है। इन कहानियों से हमें यह सीख मिलती है जब किसी अपने पर अविश्वास उत्पन्न हो तो थोड़ा धैर्य रखकर जांच परख कर लेनी चाहिए फिर ही किसी निर्णय पर आना चाहिए।

**परोपकार का महत्व —** 'चिड़िया का उपकार' (भोजपुरी)<sup>33</sup> कथा में चिड़िया ने बाद में चूँटा की जान बचाई। बाद में उसने चिड़िया को बघेलिये से बचाया। यह एक अच्छे सम्बन्ध का परिणाम है।

**राजनैतिक दांवपेंच :** 'कौवा हंकनी' (भोजपुरी)<sup>34</sup> एक दिलचस्प कहानी है, कथातत्त्व से भरपूर। इसमें राजपरिवार के अंदर व्याप्त षड्यंत्र को बताया है। इसके साथ ही सामान्य व्यक्ति की स्वामी भक्ति और सहज बुद्धि के द्वार बिगड़े काम को ठीक करना दिखाया गया है।

**गुण कभी व्यर्थ नहीं जाते :** 'रोहिणी आई धरती नाही' (भोजपुरी)<sup>35</sup>, कहानी किसान के उचित ज्ञान और योग्यता के अनुसार पुरस्कार मिलने की कहानी है।

**स्त्री अस्मिता :** 'जैसे को तैसा' (भोजपुरी)<sup>36</sup> स्त्री

अस्मिता की कथा है। इसका अंतिम वाक्य अत्यंत चुटिल और कठोर है। राजकुमारी का जवाब “नांव चढ़ाई पांच-पांच लात, तब भी न गई चुम्मे की बात।”<sup>37</sup> स्त्री अस्मिता को लेकर ‘बुढ़िया की लड़की’ (भोजपुरी)<sup>38</sup> कहानी है। इसमें एक बुढ़िया और उसकी बेटी है। जब बेटी जवान हुई तो गलत मंशा रखकर तीन गुंडे उसके घर में रात में घुस आए। बुढ़िया की बेटी ने बड़ी समझदारी से उन तीनों गुंडों को मार डाला। यह लोक कथा स्त्री जाति की बहादुरी और उनकी बुद्धिमत्ता की ओर इंगित करता है। विपत्ति में कभी घबराना नहीं चाहिए बल्कि विपत्ति का सामना करना चाहिए, यही इस कहानी की सीख है।

**दुष्टता का परिणाम बुरा :** ‘बुढ़िया और पागल’ (भोजपुरी)<sup>39</sup> कथा में बुढ़िया पागल से परेशान होकर रोटी में जहर मिला देती है। प्रारम्भ उस बुढ़िया का बेटा शहर से आ रहा था, वह रोटी उसी के खाने को मिला और वह

मर गया। अतः दुष्टता कभी भी फलदायक नहीं हो सकती।

**दुनिया पर नहीं अपने कार्य पर ध्यान दें:**

हिंदी के इन लोककथाओं में जीवन के विविध प्रसंग आए हैं। इसी कारण प्रवृत्तिगत बहुलता दिखती है। यहाँ पर इनका एक सामान्य प्रवृत्तिगत व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। ये हमें जीवन को देखने-समझने का एक नजरिया देते हैं। यहाँ पर हमने विस्तृत हिंदी भाषी क्षेत्र के विभिन्न जनपदों से प्रसिद्ध लोक कथाओं को लेकर लोक कथाओं के स्वरूप एवं प्रभाव क्षेत्र को विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

**असिस्टेंट प्रोफेसर**

**हिंदू महाविद्यालय**

**दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

## संदर्भ सूची

1. लोक साहित्य की भूमिका : डा. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, 2003, पृष्ठ-9
2. लोक साहित्य की भूमिका : डा. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, 2003, जनपद, वर्ष 1, अंक-1, पृष्ठ-65, 11
3. लोक साहित्य की भूमिका : डा. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, 2003, पृष्ठ-22
4. लोक साहित्य अर्थ और व्याप्ति, डॉ. सुरेद गौतम, प्रथम संस्करण-2008, संजय प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- xi
5. श्लोक संख्या 18, अध्याय 15, श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ-667
6. लोक साहित्य की भूमिका : डा. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, 2003, पृष्ठ-53
7. अध्याय विभाजन, लोक साहित्य अर्थ और व्याप्ति, डॉ. सुरेद गौतम, प्रथम संस्करण-2008, संजय प्रकाशन, दिल्ली
8. लोकसाहित्य विज्ञान, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण-1962, द्वितीय संशोधित संस्करण-2006, पृष्ठ-99-106
9. लोक साहित्य की भूमिका : डा. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड, 2003, पृष्ठ-131
10. भूमिका, वासुदेव शरण अग्रवाल, राजस्थानी लोक कथाएँ (प्रथम खंड), श्री गोविन्द अग्रवाल, प्रथम संस्करण-विक्रम संवत् 2021, भारती भंडार लीडरप्रेस, इलाहबाद, पृष्ठ-5
11. भोजपुरी लोककथा-पुनर्रचना, मिथिलेश्वर, पहला संस्करण 2008, चौथी आवृत्ति 2014, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पृष्ठ-53
12. वही, पृष्ठ-58
13. वही, पृष्ठ-62
14. वही, पृष्ठ-64
15. राजस्थान की लोककथाएँ, <https://www.youtube.com/watch?v=4ZiIKfBX8jQ>
16. भोजपुरी लोककथा-पुनर्रचना, मिथिलेश्वर, पहला संस्करण 2008, चौथी आवृत्ति 2014, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पृष्ठ-15
17. वही, पृष्ठ-5
18. वही, पृष्ठ-33
19. वही, पृष्ठ-36
20. वही, पृष्ठ-89
21. वही, पृष्ठ-1
22. दोहा संख्या 57, सुन्दरकाण्ड, रामचरितमानस, तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर
23. भोजपुरी लोककथा-पुनर्रचना, मिथिलेश्वर, पहला संस्करण 2008, चौथी आवृत्ति 2014, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पृष्ठ-20
24. वही, पृष्ठ-23
25. वही, पृष्ठ-28
26. वही, पृष्ठ-32
27. वही, पृष्ठ-73
28. वही, पृष्ठ-10
29. वही, पृष्ठ-42
30. वही, पृष्ठ-47
31. वही, पृष्ठ-10
32. वही, पृष्ठ-39
33. वही, पृष्ठ-17
34. वही, पृष्ठ-69
35. वही, पृष्ठ-76
36. वही, पृष्ठ-87
37. वही, पृष्ठ-88
38. वही, पृष्ठ-105
39. वही, पृष्ठ-96



डॉ. अरविन्द कुमार सम्बल

## कथा 'नीम का पेड़' की और समकालीन परिदृश्य

'नीम का पेड़' राही मासूम रज़ा का आखिरी उपन्यास है। इसका प्रकाशन 2003 में होता है। रज़ा के मरणोपरान्त लगभग ग्यारह वर्ष बाद। इस उपन्यास का ड्राफ्ट पहले तैयार हो चुका था। आजादी से कुछेक वर्ष यानी कायदे से 1945-46 से लेकर 1980-81 का समय रहा है। इस बीच आजादी मिलती है, देश विभाजन होता है, जमींदारी टूटती है, जमींदारों का और बँधुआ दोनों की जिन्दगियाँ एक साथ बदलती हैं। इस उपन्यास के भीतर इन सबको ताना-बाना बुना हुआ है। मूलतः यह राजनीतिक त्रासदी महाआख्यान है। 'नीम का पेड़' इस बीच हर घटना का गवाह बनकर खड़ा है। 90 के बाद का बदला हुआ हिंदुस्तान सबके सामने है। राही मासूम रज़ा का निधन 92 में हो जाता है। संयोग से 92 के बाद हिंदुस्तान में बड़े-बड़े बदलाव होते हैं। समाज और राजनीति की चाल बदलने लगती है और लोगों के व्यवहार भी बदलते रहते हैं। राही मासूम रज़ा ने उनको बहुत पहले अनुमान कर लिया था जिसे 'नीम का पेड़' में दर्ज कर लिया था। 'नीम का पेड़' हमारे समय का उपन्यास है। लगभग आधे शतक से हिंदुस्तान को इस उपन्यास के माध्यम से समझा जा सकता है। 1947 के बाद का हिंदुस्तान गाँधी जी के जीवन मूल्यों और अम्बेडकर साहब की नीतियों और सपनों से बनता है। इस बीच नेहरू और लोहिया की उपस्थिति कुछ खास मायने रखती है। हमें इस उपन्यास पर विचार करते समय इन बातों को ध्यान में रखना चाहिए। 'नीम का पेड़' मूलतः राजनीतिक उपन्यास है। स्वप्न के बनते और स्वप्न भंग की कथा से बनता हुआ यह उपन्यास अपने अंत में धैर्यहीन हो जाता है और बुधीराम द्वारा लिया गया स्टेप कहीं-न-कहीं गांधी-अम्बेडकर से किनारे कर लेने जैसा है। राही को बहुत पहले लगने लगा था कि भारत का आम आदमी सत्याग्रह और संविधान

(न्याय व्यवस्था) की सीमा को समझने लगा है। यह विजय नहीं है बल्कि लोकतंत्र के लिए खतरा है। राही मासूम रज़ा ने बड़ा सवाल खड़ा किया है।

हमें जरूर सोचना चाहिए कि बुधई ने न केवल बेटे को कुल्हाड़ी मारी बल्कि इस देश के एक पूर्व एम.पी. को कुल्हाड़ी मारी और वह भी पूर्व एम.पी. पूर्व मिनिस्टर मुसलिम मियाँ के सामने। दिन के उजाले में। अपना पक्ष भी रखा कटघरे में न्यायमूर्ति के सामने एक बड़े सवाल के साथ—और यहीं उपन्यास का अंत किया।

'हम तो ई जानत हैं कि सुखीराम न हमारे बिटवा रहे न लोकसभा के मेम्बर, वह तो बस इ देस के बासिन्दा रहे, नागरिक रहे। आप सब भी नागरिक हैं। आप लोग भी अपने देश को प्यार करते हुइहे। मुदा हमका जितना प्यार अपने मुलुक से है उतना ही नीम के पेड़ से। अरे नीम का पेड़ हम लगावा रहा ओइकी छाँव में बइठे के लिए। छाँव मुसलिम मियाँ छिन लिहिन और सुखीराम पेड़ बेच डालिन, कहके हया। वही जिनके कारण नीम की छाँव बेगानी भई। आप जानत हैं, नाहीं आप नहीं जानते हैं। हमका नीम का पेड़ सुखीराम से ज्यादा प्यारा रहा। हम देखा कि हमारे पेड़ खूब गझिन हो गया। मुदा हम यह देखा कि नीम के पेड़ की छाँव में खड़ा होकर एक भाई दूसरे भाई पर गोली चला रहा है। कुत्तों की इज्जत अपने बुजुर्गों से ज्यादा हो गई। हराम के पैसे को रगड़ कर लोग चन्दन की तरह अपने माथे पर लगाए लगे और हमारे नीम के पेड़ की छाया में बच्चे पैदा होने से पहले ही मार दिए जाने लगे। एक माँ आँसुअन से हमारा पेड़ डूबा जा रहा है। पेड़ बिका जा रहा है। पेड़ बचाओ। नीम का पेड़ बचाओ। खून दे के बचे तो बचाओ।...बुधीराम हाँफने लगा और कठघरे में बैठ गया...अब आँखें बन्द किए ऊपरवाले से जल्दी फैसला

सुनाने की गुहार कर रहा था। निचली अदालत के फैसले में उसकी कोई दिलचस्पी बाकी ही नहीं रह गई थी...।<sup>11</sup>

कुछ भी नहीं रह गया कहने के लिए। बुधौराम नहीं बल्कि सपनों का सर्जक लोकतंत्र का आम आदमी बोल रहा है। वह गुहार लगा रहा है सबसे कि किसी भी कीमत पर नीम का पेड़ (आजादी) को बचाओ। भारत को बचाओ।

राही मासूम रजा में कोई उलझन नहीं है बल्कि उनका विजन बहुत साफ था। उन्होंने लेखकीय में अपना पक्ष भी रखा है—“मैं तो लेखकों की उस जमात का हूँ जो मानते हैं कि लेखक या अदीब का काम दुनिया में अमन फैलाना है। उसका काम मोहब्बत के अफसाने गढ़ना है, जिसे पढ़ते ही लोग आपसी दीवारों को भूल जाएं। लेखकों का काम तो सरहदें मिटाना होता है।”<sup>12</sup>

लेखकीय प्रतिबद्धता के हवाले से राही मासूम रजा का सपना भी महसूस होता है। ‘मोहब्बत का अफसाना’ गढ़ना लेखक का मूल उद्देश्य है। सचमुच लेखकों का काम सरहदें मिटाना होता है। यद्यपि यह काम आज के समय में आसान नहीं है। बिना वजह की दीवारें खड़ी होती जा रही हैं। आज का समय कुछ और ही जटिल हो गया है। विचलन हमारे स्वभाव में आ गया है। ‘नीम का पेड़’ व्यवहारवाद, अमानवीयता, असामाजिकता के विरुद्ध खड़ा एक प्रतीक है। जिसे काटने, छांटने और उखाड़ने के लिए विरोधी ताकतें सक्रिय हैं। यह उपन्यास आजादी को एक स्वप्न के रूप में देखता है बदलाव की सुगबुगाहट के साथ शुरू होता है और सुखीराम की हत्या के साथ खत्म हो जाता है। सुखीराम एक प्रतीक है उस सत्ताकामी, अवसरवादी वर्ग का जो लोकतंत्र के आकाश में लूट-खसोट के पंजों के माध्यम से उड़ता रहता है। यह अपने आप में दुःखद प्रसंग है कि हमारे समय में मुसलिम मियां, सुखीराम, रामखिलावन यादव, जामिन मियां विरासत में प्राप्त हुए प्रतीक हैं। बुधई, सामिन मियां, शहनाज और इशमत मियां दारोगा इनके खामियाजा भुगतते हुए छीजते रहते हैं। सत्ता और सामंती शक्तियों का गठजोड़ कैसे लोकतंत्र के लिए खतरनाक हो सकता है ‘नीम का पेड़’ उसका साक्ष्य है। यह उपन्यास कोरे भावुकता से मुक्त है। गांव की जटिलता और सत्ता और न्यायपालिका की कुटिलता के साथ होने वाले कुचक्रों को खोलकर रख देता है। इस उपन्यास ने अपने समय का विस्तार किया है। हार नहीं मानने की जिद पर राही मासूम रजा ने एक-से एक प्रयोग किए हैं और हर नए विकल्प की तलाश के लिए तत्पर हैं।

आजादी को लेकर बड़े-बड़े सपने थे आम लोगों के मन में। शायद यह शब्द जितना अंग्रेजों को नहीं डराता था

उससे अधिक इस देश के जमींदारों को डराता था। इसलिए उसे कुचलने में इन्होंने कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी। दो गांवों को दो तरह की सत्ता के केन्द्र और प्रतीक मानते हुए उपन्यास की कथा को बुन राही मासूम रजा ने दो गांव महज गांव नहीं हैं बल्कि सत्ता के ऐसे केन्द्र हैं जहाँ आकर न्यायपालिका, पुलिस और राजनीति न सिर्फ ठहर जाती है बल्कि दो मुखियाओं जमींदारों जामिन मियां और मुसलिम मियां के हाथों की कठपुतली बनकर रह जाती है। जामिन मियां और मुसलिम मियां दोनों खालाजाद भाई हैं किन्तु दोनों में ठन जाती है और पिस जाते हैं वहाँ के वे लोग जो इनकी छांव में रहते हैं। वे हैं मदरसा खुर्द के बाबूरमवा, बुधई, रामबहादुर यादव जैसे अनगिनत लोग। सबकी दशा दुर्दशा का गवाह है 8 जुलाई 1946 को बुधई द्वारा लगाया नीम का पौध जो नीम का बड़ा पेड़ बन जा चुका है और अपने अंतिम समय में एकाकी जीवन का दंश झेल रहा है। जामिन मियां उसी मदरसा खुर्द गांव का जमींदार हैं जिस गांव में नीम का पेड़ है, जिस गांव का उनका आसामी है बुधई। दूसरी ओर लछमनपुर कला गांव के जमींदार पहले के लीगी और बाद के कांग्रेसी मुसलिम मियां जो बदले हुए दौर में राजनीति में सक्रिय रहते हुए, डिप्टी मिनिस्टर और एम.पी. जैसे पदों पर विराजमान रहे हैं। दोनों सामन्त हैं बदले हुए दौर के लोग हैं। एक आजादी के समय को अपने पक्ष में कर चुका है और दूसरा ‘आजादी’ शब्द को नहीं पचा पाता है परिणाम होता है रामबहादुर यादव की हत्या। रामबहादुर यादव एक राजनीतिक कार्यकर्ता है जो गांधी जी की पार्टी ज्वाइन कर लिया है और दलितों की बस्ती में जाकर जमींदारी के दिन लदने की बात बताते फिर रहा है तथा उन्हें जागरूक बना रहा है। सामंती समाज अंग्रेजों से आजादी तो चाहता था किन्तु दूसरी ओर अपने अधीन के आसामियों को गुलाम बनाए रखना चाहत था। देखा जाए तो आजादी मिलने के 4-5 दशकों के भीतर ऐसी घटनाएं हर इलाके में होती रही हैं कि जो आजादी की बात करता था उसको खत्म कर दिया जाता था और एक तरह का भय और आतंक का वातावरण निर्मित किया जाता था।

ऐसी ही एक घटना इस उपन्यास के प्रारम्भ में दिखाई देती है। जामिन मियां के सलाहकार लालाजी रूपनारायण का कहना था, “खयाल और जमीन में बड़ा फरक होता है मियां। आपसे एक और बात कहनी रही मियां कि राम बहादुर यादव का भी कोई-न-कोई इलाज करना ही पड़ेगा। मियां मुसलिम की शह तो उन्हें है ही, ऊपर से अब वह जब से गांधी जी की पार्टी में भर्ती हुए हैं, दिमाग

एकदम से चला गया है उनका। चमटोली में बाबूरमवा के घर जमे दिन-भर तकरीर करते रहते हैं कि देश के आजाद होते ही जमींदारी ओमीदारी सब घुसर जाएगी।<sup>13</sup>

यहां खास बात है आजादी को लेकर बनती हुई चेतना। रामबहादुर यादव उसी चेतना का वाहक है। वह दलितों-पिछड़ों को जगाने का काम कर रहा है। उसे गांधी जी से मंत्र मिला है—वह चमटोली में भाषण देता फिरता है। रामबहादुर यादव के भीतर गांधी जी की आध्यात्मिकता और सात्विकता भी है। वह स्वतंत्र चेता व्यक्ति है।

“हम राम बहादुर यादव कौनो नेता ना हैं। मुदा गांधी जी हममें एक ठो गायत्री मन्त्र दिए हैं। तूहू लोग ऊ मन्तर सीखल्यो। सब ठीक हो जैयहे। और मन्तरो बहुत आसान है। खाली जोर-जोर से भारत माता की जय बोले जाओ.. जमींदार लोग बहुत जुलुम कर चुके हैं ... इ मन्तर की ताकत तू लोग को जमींदार के जुलुम से बचावेगी... तु लोगन को जमीन का मालिक बनावेगी।”<sup>14</sup>

यही बात थी। जिससे इस गांव के जमींदार जामिन मियां परेशान थे। और परेशान हों भी क्यों नहीं वह उनकी जमींदारी की भविष्यवाणी कर रहा था, उनके असामियों को जगा रहा था कि मियां साहब के बंधुआ बुधई को भी समझ आने लगा था कि अब बहुत बड़ा बदलाव होगा। उसे भी मुक्ति मिलेगी। उसके भी मन में आजादी का सपना आने लगा।

“उसे रामबहादुर यादव की बात याद आ रही थी कि आजादी मिलते ही जमींदारी खत्म हो जाएगी। जमीन उसी की होगी जो हल चलाएगा। इसीलिए तो उसने रखा है अपने बेटे का नाम सुखई-सुखीराम। जो उसकी तरह बेगारी नहीं करेगा...स्कूल जाएगा। वह मुस्कुराया। जब पैदा हुआ था तो उसके बाप की आंखों में तो वो सपना भी नहीं रहा होगा। कम-से-कम अपने बेटे लिए उसकी आंखों में ये सपना तो है... क्या पता सच ही हो जाए।”<sup>15</sup>

दरअसल आजादी के लिए असली संघर्ष तो भारतीयों के बीच था और है भी। पता नहीं आजादी आखिरी व्यक्ति तक पहुंचेगी? या आखिरी व्यक्ति को आजादी का ‘अर्थ’ बताने वाले को यहां कि वर्चस्वशाली सामंती शक्तियां समाप्त करने में सफल होती रहेंगी? सामंत किस तरह ऐसे स्वर को खत्म कर देते हैं। उसका उदाहरण इस उपन्यास में दर्ज है। इस उपन्यास में जामिन मियां लाला जी से कहते हैं—

“भाई मुसलिम की बात है तो अभी बुधई को बुलाकर खत भेज देते हैं। और रही बात रमबहदुरा की तो साले का टाट बाहर करवा कर किस्सा खतम कीजिए।

और बबूरमवा से कह दीजिए कि जो आज के बाद रमबहदुरा चमटोली में दिखाइयो भर गया तो बटाई पर जो खेत ऊ जोत रहा है ओपर से ओको बेदखल करै में मिनट भर भी नहीं लगेगा। तभी होश में रहे।”<sup>16</sup>

लेकिन बात यहीं नहीं रुकी। एक दिन यह अध्याय भी बंद हो गया और रामबहादुर यादव हमेशा के लिए शांत हो गया। रामबहादुर तो प्रतीक था उस सत्याग्राही का जो स्वाधीन हिंदुस्तान में एक रात एक वारदात में मार डाला गया और मारने वाला पकड़ में नहीं आ सका।

“और आखिर वही हुआ जिसका डर था। एक रात जब रामबहादुर यादव हमेशा की तरह चमटोली में तकरीर कर रहा था उसी रात चमटोली की एक झोपड़ी जल गयी। ऐसी आग वहां कभी नहीं लगी थी उसी रात रामबहादुर यादव भी नहीं बच पाया। एक ही लाठी में उसका काम तमाम हो गया है।”<sup>17</sup>

सोचने वाली बात यहां यह है कि आजादी के बाद हिंदुस्तान में क्या होने लगा? रामबहादुर की हत्या विचारों की हत्या थी और उसमें सब शामिल थे। जामिन मियां के गांव में कोई जुबान खोलने को तैयार नहीं जबकि पता सबको था।

“सारा गांव जानता था कि यह करतूत बजरंगी की है। जमींदार साहब के खास करिन्दे बजरंगी की। पर किसी ने आज तक जुबान खोली थी जो खोलता। राम बहादुर यादव ने जुबान खोली थी और सब देख चुके थे कि उनका क्या हश्र हुआ?”<sup>18</sup> यह संकेत था आजादी पर ग्रहण का। राही मासूम रज़ा ने उस हिंदुस्तान की कथा ‘नीम का पेड़’ के माध्यम से बयां की जिसमें भयग्रस्त स्वर विहिन भारत है। लोगों के भीतर से गुलामी नहीं गयी। अपने सिर बचा लेने की चिंता खत्म नहीं हुई। शायद इससे हम मुक्त हुए होते तो आजादी का ‘अर्थ’ कुछ और होता। रामबहादुर यादव की हत्या के बाद किस्सा नए सिरे से शुरू होता है। गवाह नहीं मिलना था नहीं मिला और जो मिला वह बेमिसाल रहा। उसकी अपनी परेशानी किंतु उसकी एक गवाही से रामबहादुर यादव की दूसरी बार हत्या हुई। और वह गवाह था बुधई। वही बुधई जो जामिन मियां का बंधुआ था। वही बुधई जिसके मन में रामबहादुर यादव की तकरीर के बाद सपने आने लगे थे और अपने बेटे का नाम सुखई...ना न सुखीराम रख दिया था। वह खुश था। लेकिन भयभीत भी था और परिणाम हुआ उसकी ऐतिहासिक गवाही जिसकी वजह से बजरंगी और जामिन मियां बच गए।

“भगवान के हाजिर नाजिर जान के कहत है कि ऊ घर का लैके बाबूराम और कोमिला में बहुत दिन से झगड़ा

चला आवत रहा। कल फिर उन्हें बात पर बात बढ़ गई और लाठी चल गई... रामबहादुर यादव त रहिबो ना किए केन ऊहां। इम ज सोर सुन के उधर दौड़े तो रामबहादुर हमको रास्ते में मिलेन। भाग जात रहेन। बोले कि कोमिला और बबुरमना में लाठी चलत है।”<sup>9</sup>

आजादी आई भारत में साथ में यहां कि राजनीति में अवसरवादिता और व्यवहारिकता साथ-साथ आयी और गयी नहीं बल्कि संक्रामक हो गयी। राही मासूम रजा ने इस प्रवृत्ति की नोटिस ली है। सत्ता में व्याप्त भ्रष्टाचार और हिंसा को भी सामने लाया है। सियासी बातों को खोलकर रख दिया है।

ऐसे लोगों की एक श्रेणी ही बना दी जिसमें मुसलिम मियां, सुखीराम राम खिलावन यादव साफ-साफ दिखायी देते हैं। जिन्होंने सत्ता काजबरदस्त इस्तेमाल किया अपने हित में। क्या दिलचस्प प्रसंग है आजादी से पहले के लीगी नेता मुसलिम मियां बाद में गांधी जी की पार्टी में शामिल होकर बाद में वजीर हो गए।

“मुसलिम मियां अपने कमरे में जिन्ना साहब की बड़ी तस्वीर लगाते थे, पाकिस्तान नहीं गए और तस्वीर उतारकर डिप्टी मिनिस्टर बन गए।”<sup>10</sup>

यह बात आज के समय की नहीं है नेहरू के जमाने की है और उस जमाने में यह बड़ी बात थी। किन्तु शुरुआत तो हो चुकी थी। अपनी सियासत बचाने के लिए जमींदार सियासत की राह पकड़कर एक नयी छवि (दिखावे) रचने लगे थे किन्तु उनके भीतर का सामंत दुबके बैठा था जो एक समय के बाद खूंखार और नृशंस रूप में प्रकट होता था। मुसलिम मियां और जामिन मियां इसके सबसे जीवंत उदाहरण थे। बुधई यानी बुधीराम इनकी ही वजह से अपने बयान बदलते जाता है और सपने में उसे रामबहादुर यादव की आत्मा पूछती रहती है—

“रोज रात सपना में आके बोलत रहे कि

भाई बुधई सच-सच बता दो

आखिर हमार ईमान जाग गया

हकीकत ई है साहब कि मियां हमरे सामने बजरंगी से कहिन

कि रामबहादुर यादव बहुत हरहराए लगा है... खत्म कर दो साले को... और उस रात जब हम सोर सुनके पहुंचे तो खुद अपनी आंख से देखा कि बजरंगी मियां के हुक्म की तालीम कर रहेन... हमरे सामने हुमन के लाठी मारिन और रामबहादुर यादव ढेर हो गए...”<sup>11</sup>

यानी “दूसरी बार इजलास में बुधई का बयान हुआ राम बहादुर मर्डर केस में अली जामिन मियां को उम्रकैद

ओर बजरंगी समेत बाकी मुलजिमों को सात-सात साल कैदे-सख्त की सजा दी जाती है...।”<sup>12</sup>

अब सवाल यह उठता है बुधई के बयान बदलने की मूल परिस्थितियां क्या थीं? उन परिस्थितियों को जाने समझे बिना किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुंचा जा सकता है। इसी बीच लोकतांत्रिक छवि बनाते जमींदार की खूंखार आत्मा से साक्षात्कार किया जा सकता है। थोड़ी-सी बात कहानी के उस हिस्से से करनी चाहिए जिसमें बुधई दुखतरी के विभाजन के बाद मुसलिम मियां के हिस्से में पड़ गया था। इसके पहले वह मदरसा खुर्द के जमींदार जामिन मियां के हिस्से में था।

उसकी वफादारी और निष्ठा जामिन मियां के प्रति थी। इस वजह से वह पहला बयान दिया था और उन्हें मुलजिम होने से बचा लिया। इनकी खुशी थी जामिन मियां में, परिणाम यह होता है कि जामिन मियां उसे अपने साथ सुस्वादु भोजन कराते हैं और उसके घर के लिए भेजते हैं। इसी क्रम में लखनऊ अपनी बेगम के साथ उसे मुसलिम मियां के यहां भेजते हैं। अब चीजें यहां पूरी तौर पर बदल जाती हैं। मुसलिम मियां मदरसा खुर्द में एक तकरीर में कहते हैं—“अब मैं जमींदार नहीं हूं। मैं आपका मंत्री हूं। आपका दोस्त हूं। साथी हूं... और मैं रामबहादुर यादव के कत्ल को भूला नहीं।”<sup>13</sup> यह है एक जमींदार सामंत का बाह्य रूप, लोकतांत्रिक रूप जो आजादी के बाद हिंदुस्तान में दिखायी देने लगा। किन्तु परेशानी तब शुरू होने लगती है जब इन सामंतों का असली रूप नहीं मिट पाता है, और लोकतांत्रिक मूल्यों को न सिर्फ प्रभावित करते हैं बल्कि लोकतंत्र विरोधी होकर अमानवीय व्यवहार करने लगते हैं। राही मासूम रजा के उपन्यासों में यह चिन्ता लगातार बनी रहती है। बुधई के जाने के बाद (लखनऊ) उनका असली रूप खुलकर आ जाता है। राही मासूम रजा ने मुसलिम मियां के कोठी में उस सब जज को भी दिखाया है जिन्होंने रामबहादुर मर्डर केस में फैसला सुनाया था। यहां पर सत्ता और न्यायपालिका के गठजोड़ को दिखाया और न्यायपालिका की निष्पक्षता पर सवाल भी खड़ा किया। दूसरी ओर बुधई को देखते ही मुसलिम मियां कहने लगे—

“तुझे तो मैं भूलता ही नहीं। तू तो एक तीर की तरह मेरी छाती में गड़ा हुआ है साले...मैं तूझे भूला नहीं हूं... तुझको यहां आते डर नहीं लगा बे। ऐसा गुमान हो गया है तुझे भाई जान के बूते पर।”<sup>14</sup> ...बात यहीं खत्म नहीं हुई जलसे की रात मुसलिम मियां बुधई के साथ जो बर्ताव किए उसे लोकतंत्र की रात में सदैव याद किया जाएगा। यह स्याह घटना थी—उन्होंने बुधई को बुलाया और लात-घूंसें

से उसकी पिटाई करते रहे और एक ही बात रटते रहे—

“आसामी मेरा और गवाही देता जामिन अली खां की तरफ से...बोल रामबहादुर का कत्ल कहाँ हुआ था। बोल..”<sup>15</sup>

राही मासूम रज़ा ने अंधेरे कमरे की कथा के माध्यम से सामंती चरित्र और परिवेश के सच को सामने लाया है। गवाह के बयान बदलने की असली परिस्थितियाँ क्या होती हैं इस प्रसंग से जाना जा सकता है। यह भी रेखांकित करने वाली चीज़ है कि आखिर कोई नौकर और मजदूर वह भी बंधुआ ही गवाह क्यों बनाया जाता है? क्या उससे न्याय और निर्णय बाधित नहीं होते? इस उपन्यास में भी बुधई का होना न्यास को प्रभावित करने का उपक्रम नहीं है? इस पर जरूर सोचा जाना चाहिए। बयान बदले जाने की पृष्ठभूमि को गढ़ती यह कथा उसकी सुरक्षा पर भी सवाल उठाती है। राही मासूम रज़ा लिखते हैं—

“क्या करता बुधई, वह तो बंधुआ था। जामिन मियाँ के घर का नमक इतना ज्यादा खाया था कि उनका रटाया बयान भूल नहीं पाया था पर अब मिनिस्टर साहब के लात-घूसों ने उसे यह समझा दिया कि बयान उसी का याद रखो जिसके गुलाम रहो। सलामती इसी में रहती है। बस अपने मुसलिम मियाँ से इतना जरूर मांगा कि मदरसा खुर्द से उसकी बीबी दुखिया और लड़के सुखीराम को भी बुला लिया जाय क्योंकि इधर वो बयान देगा तो उधर उनकी जान की हिफाजत कौन करेगा? वहाँ तो जमींदार जामिन मियाँ की चलती है—सुबह उनकी होती है शाम उनकी होती है।”<sup>16</sup>

अब नया बयान तैयार कर रहा था बुधई—

“भगवान का हाजिर-नाजिर जान के बोलत हैं कि हम त घरे मा बैयठे रहेन...दारोगा जी और मियाँ के हुकुम पर हम ऊ बयान दिहिन थे...”<sup>17</sup>

“हकीकत ई है साहब कि मियाँ हमरे सामने बजरंगी से कहिन कि रामबहादुर यादव बहुत हहराये लगा है... खत्म कर दो साले को...”<sup>18</sup> इसमें देखने की बात यह है कि इन पाटो (मुसलिम मियाँ और जामिन मियाँ) के बीच पीसकर रह गया बुधई। लेकिन बुधई भी इसी समय का आदमी था उसने भी अपनी व्यावहारिक बुद्धि लगायी और अपने लिए स्पेस बनाना शुरू किया। यह एक नया प्रयोग था। जामिन मियाँ को सजा हो गयी और इधर उसका बेटा सुखीराम स्कूल जाने लगा। हालात बदले, राजनीति बदली और सुखीराम मुसलिम मियाँ की जमानत जब्त कराकर स्वयं एम.पी. हो चुका था। बुधई बुधीराम हो गया था। जामिन मियाँ की जमींदारी खत्म हो चुकी थी। और उनका

बेटा सामिन मियाँ सुखीराम एम.पी. का नौकर था तथा बुधीराम को चाचा बोलने लगा था। यह परिवर्तन दर्ज किया राही मासूम रज़ा ने। 1946 से 1979 तक ही लोकतांत्रिक यात्रा की कथा। ऐसी कथा जिसमें बुधई के एक सपने के साकार होने की कहानी मौजूद है। और उस कहानी के मूल में था बयान बदलना। किसी के लिए यह सामान्य बात हो सकती है किन्तु इस तरह की गवाहियों से युगान्तकारी परिवर्तन होता है। इसी एक गवाही ने बुधई को बुधीराम और सुखई को सुखीराम एम.पी. बना दिया।

बुधई तो अपने ही सपने में खोया रहने लगा था। सोचता था सुखीराम के बड़ा होते ही आजादी पुख्ता हो जाएगी फिर कोई न तो उसे चमार कहेगा... न खेतिहर मजदूर...उसे अपनी नहीं सुखीराम के जीवन की पड़ी थी। उसका बयान बदलना न बदलना इससे तय होने वाला था कि सुखीराम फायदा किसमें है, बयान बदलने में या न बदलने में...”<sup>19</sup> बुधई ने यहाँ व्यावहारिक बुद्धि का प्रयोग किया। यह व्यावहारिक बुद्धि ही उसकी भविष्य दृष्टि थी। यही वो भविष्य दृष्टि थी जिसके माध्यम से दलित पिछड़ी जातियाँ अपने को मुख्यधारा की जिन्दगी में शामिल कर सकीं। गांधी से अम्बेडकर तक की यात्रा तय थी। अम्बेडकर का मूल मंत्र था शिक्षित बनो। राही मासूम रज़ा ने बुधई के चरित्र में इस अम्बेडकरी चेतना को पिरोया है। उन्होंने लिखा है—बुधई को अपने सपने के सच होने की कुछ उम्मीद दिखाई देने लगी थी। गांव में स्कूल खुल गया था— ‘अली मोहसिन मेमोरियल नेशनल स्कूल।’ बुधई स्कूल का तख्ता देखता था और सोचता था अगर उसके लड़कपन में स्कूल खुला होता तो वो भी थोड़ा पढ़-लिख गया होता।”<sup>20</sup>

“खैर उसका लड़का सुखीराम तो पढ़ सकेगा। आजाद मुल्क की खुली हवा में पढ़लिख कर बड़ा आदमी बनेगा।”<sup>21</sup> स्कूल से आजादी का ‘अरथ’ बदलेगा। एक बंधुआ का बेटा आजाद मुल्क का नागरिक बन सकेगा। राही मासूम रज़ा यहाँ अम्बेडकर के बहुत पास आ जाते हैं। हिंदी कथा आलोचना को रचनाओं की साहित्यिकता के साथ उसके भीतर के राजनीतिक और सामाजिक दर्शन को भी समझना होगा। गांधी, अम्बेडकर और लोहिया के बरबस हिंदुस्तान का पिछड़ा समाज तेजी से बदला। उसके भीतर की दासता की चेतना समाप्त होती है। यह बहुत ही क्रान्तिकारी परिवर्तन है। मदरसा खुर्द के भीतर बदलाव आता है सत्ता का केन्द्र अब हवेली का फाटक नहीं है बल्कि नीम का पेड़ है। राही मासूम रज़ा लिखते हैं—“गांव मदरसा खुर्द की ताकत अब जामिन मियाँ का फाटक नहीं नीम के पेड़ तले यानी मेरे तले हो गया है।”<sup>22</sup> राही मासूम

रजा ने इस बदलाव को पकड़ा है जिसमें वर्चस्वशाली शक्तियों के कमजोर होने की कहानी दर्ज है। यह पराजय की कथा है और जय की भी कथा है। लेकिन पूर्णतः नहीं आंशिक है। पहले आंशिक कथा को देखते हैं थोड़ा सुकुन मिलता है। जामिन मियां उम्र कैद की सजा पूरी करके आते हैं तो दो बातें देखते हैं—पहली बात कि रास्ते में एक जनाजा दिखायी पड़ता जो उनकी बेगम का है। राही मासूम रजा ने कुछ यूँ महसूस किया है—“बेगम मियां से इस उजाड़ में नहीं मिलना चाहती थी... किस मुंह से बताती मियां को कि अब जमींदारी चली गई है कि उनका लड़का सामिन बुधई के लड़के बुधीराम के यहां नौकरी करता है।”<sup>23</sup> दूसरी बात—“उनका लड़का सामिन बुधई को चाचा कहकर बुलाता था। वक्त की ही तो बात है। वे जमींदार थे और उसका लड़का बेगार। हां इतना जरूर था कि सुखीराम को सामने भैया कहता था और बदले में सुखीराम उसे सामिन मियां कहकर बुलाता था और साथ में बैठने की कुर्सी भी देता था।”<sup>24</sup>

उपरोक्त स्थितियों पर विचार करना जरूरी है। दो पक्ष हैं बेगम का गुजरना और गुजरने के कारणों में जिन बातों का प्रकटीकरण हुआ है यह दुःखद है। इस स्थिति के लिए वर्चस्वशाली जमींदार लोग तैयार नहीं थे। लेकिन उलटफेर तो हुआ था और यह लोकतंत्र और आजादी के कारण ही हुआ था। इस बात से इंकार नहीं किया जाता सकता। 90 के बाद तो और ही हुआ। जब विभिन्न प्रदेशों खास तौर से उत्तर प्रदेश और बिहार जहां 90 के बाद लगातार पिछड़ों-दलितों की राजनीति में दखल बढ़ती चली गयी और घुमा-फिराकर सीधे सत्ता में बने रहे। लेकिन बहुत कम लिखा गया है इस पर। इस पर शिवमूर्ति और अनिल यादव की कहानियां दिखायी देती हैं। इस विषय पर गंभीरता से सोचने की आवश्यकता है। इस परिवर्तन को नहीं पचा पाना कितना आत्मघाती हो सकता है उसे हम इस उपन्यास में देख सकते हैं। जामिन मियां भी अब पहले जैसे उत्साहित नहीं हैं। जेल से लौटने के बाद सारी चीजें बेगानी लगती हैं। राही मासूम रजा ने जो दूसरी चीज बताई वह जरूर आशावादी और नए तरह के सम्बन्ध को विकसित करने वाला है। इसमें पूर्व पीढ़ी की कठोरता और पशुता के बजाय नये किस्म का भाईचारा था। बुधई को बुधीराम और सुखई को बाबू सुखीराम कहा जाना एक ठहरे हुए जमींदार और सामंत के लिए आघात तो था ही किन्तु यह एक नया संकेत था। यह भी नयापन अपने आपमें सकारात्मक था कि सामिन सुखीराम को भैया कहकर बुलाता था और सुखीराम साथ में बैठने के लिए

कुर्सी भी देता था। बदले हुए हालात में हाशिए के वर्ग को जब सत्ता मिलती है तो सामने वाले के लिए या पुराने अभिजनों के लिए स्पेस बचा रहता है।

लेकिन एक दूसरी बात यह आयी कि शिक्षा और सत्ता के गलियारे में आते ही उनके भीतर अवसरवादिता, धनलोलुपता, सत्ता का अहंकार और भी बुराइयां उनके भीतर आने लगीं। यह सबसे बड़ी परेशानी बन गयी। गांधी जी के ‘रामराज्य’ का स्वप्न धरा का धरा रह गया और अम्बेडकर साहब का सारा संघर्ष किनारे हो गया। अम्बेडकर साहब ने यह नहीं सोचा था कि इधर (हाशिए) के लोग जब सत्ता में जाएंगे तो वही सब कुछ करने लगेंगे जो पहले से सत्ता में रहने वाले लोग करते आए हैं। थोड़ा विषयान्तरित होने के दोष के साथ बात कहना चाहूंगा कि सवर्ण और सामंतों में आत्मसातीकरण का गुण धर्म होता है जिसका प्रयोग अपने असमय में करते हैं और अपने अधीनस्थों के सत्तानर्शी होने पर उन्हें अपना तो लेते हैं लेकिन मौका पाकर उन्हें कमजोर भी बनाते हैं, विलेन भी बनाते हैं और अन्ततः अपदस्थ कर देते हैं। इतना ही नहीं उनके भीतर सवर्णों की आदतें भी विकसित करने लगते हैं। और वही आदतें उन्हें अपने वर्ग-समाज से अलग कर देती हैं तथा उन्हें खोखला भी बना देती हैं। उन्हें न सिर्फ कमजोर बनाती हैं बल्कि स्वप्नहीन और पलायनवादी भी बना देती हैं। थोड़े से लाभ के लिए उनके भीतर की चेतना मरने लगती है, ऊपर से पोशाक से ढंके होते हैं, आलीशान महल और बड़ी गाड़ी में रहते हैं किन्तु भीतर से बेचैन और कमजोर हो जाते हैं। दरअसल यह सबसे बड़ी चिन्ता है। आजकल यह प्रवृत्ति कुछ अधिक ही दिखायी देने लगती है। परिवर्तन की ओर बढ़ती हुई जमात पराजय और पराधीनता की ओर बढ़ने लगती है। राही मासूम रजा ने सुखीराम एम.पी. और रामखिलावन यादव एम.पी. के रूप में दो ऐसे चरित्रों को सामने लगाया है। एम.पी. सुखीराम अपने में ही उलझ कर रह जाता है तथा दूसरी ओर एम. पी. रामखिलावन यादव पलायनवादी हो जाता है और दिल्ली में सिमट कर रह जाता है। बुधीराम दुखी रहने लगता है। उसने क्या स्वप्न देखा था और क्या उसे प्राप्त हो रहा था—

“पर बुधीराम तो आहें भरते हुए बस यही कहते रहते थे—सब कुछ मिल गया, इज्जत अयसी कि न जाने कौन-कौन पांव छुअत है और चले जात है, बस नाही पाएन तौ नीम के पेड़ की ठंडक और बेटे का सुख...”<sup>25</sup> यह बड़ा दुःख था बुधई का। बुधीराम में बुधई की आत्मा जाग्रत भाव से रहने लगी। उसे अपने परिवार का ढंग बिल्कुल

नहीं रास आ रहा था। वह बेटे सुखीराम और पत्नी दुखिया की मनोदशा देखकर न सिर्फ दुखी रहने लगा बल्कि विरोध भी करने लगा।

राही मासूम रज़ा बड़े सधे ढंग से बुधीराम के घर के भीतर सत्ता को पांव पसारते हुए देख रहे थे। हां उसमें अगर कहीं से बाधा पहुंचती थी तो बुधई यानी बुधीराम से। बुधई से चाचा बुधीराम बना खादी का कुर्ता धोती और बंडी तो पहन लिया किन्तु उसके भीतर का बुधई नहीं मरा। काश! बुधई बुधीराम बन गया होता तो कुछ भी कहने लायक नहीं रह पाता। राही मासूम रज़ा में यही एक चीज है जो प्रतिपक्ष को खत्म नहीं होने देती। घोर अंधेरे में भी संभावना के सितारे दिखायी देते हैं। इस उपन्यास में भी दो-तीन ऐसे चरित्र हैं जैसे सामिन मियां, मुसलिम मियां की बहू शहनाज और बुधई। राही मासूम रज़ा लिखते हैं—“सत्ता का अपना एक नशा होता है और अपनी जात भी। जो भी उस तक पहुंचता है उसकी जात का ही हो जाता है। जो उसकी रंगत में रंगना नहीं जानता है वह उस तक कभी नहीं पहुंच सकता। कभी नहीं पहुंच पाता। उस तक पहुंचने के लिए उसकी ताकत को ही सलाम करना पड़ता है। अब सियासत मेहनत और ईमानदारी का खेल तो रह नहीं गया।”<sup>26</sup>

बुधीराम धीरे-धीरे मिसफिट होने लगा। बुधई ने सुखीराम बना दिया सुखई को किन्तु बुधीराम के रूप में घुटन महसूस करने लगा। राही मासूम रज़ा उसकी दशा का बड़ा ही भावुक और मार्मिक चित्रण करते हैं।

बुधई को भले ही जमाने का चलन समझ में न आता हो पर ऐसा न था कि उसे ये भी न समझ में आए कि उसकी बीबी दुखिया गहनों से लकड़क कैसे घूमती थी। सुखीराम अकूत सम्पत्ति जुटाता जा रहा था। इतना तो वह भी समझता था कि एम.पी. बनने से कोई कारु का खजाना हाथ नहीं लग जाता। एम.पी. तो जनता के सेवक होते हैं। ये अलग बात है कि वे सेवा के बदले मेवा खाने लगते हैं।<sup>27</sup> बुधई को देखकर मैलाआंचल के बावनदास और रागदरबारी के लंगड़ की याद आ जाती है। सुखीराम और सामिन मियां में लगभग तनाव बढ़ने लगा है। सुखीराम की महत्वाकांक्षाएं भी पैर पसार रही हैं। बुधीराम एक दिन बेसब्र होकर सुखीराम से विवाद विमर्श करने लगा। “वाह रे मोर एम.पी. जी; सरकार से कहिके प्यार और इज्जत के लिए एक राशन की दुकान काहे नहीं खुलाय देत हैं। सुखीराम तुमरा नाम जिन्दा रखै की खातिर हमका कितनी हजार बार मरै का पड़ा है। कितना जूता और लात खाया है कि तुम कहीं सुखई न बन जाओ। कितनी बार ईश्वर

के आगे माथा टेका है, कितनी बार ताजिया के सामने इमाम हुसैन से तुमका बड़ा आदमी बनावे के लिए दुआ मांगा है। मत भूलो सुखीराम अगर सामिन के बाबा जामिन मियां न चाहते तो गांव मा स्कूल नहीं खुल सकत रहा।”<sup>28</sup> ...बुधई फूट-फूटकर रो रहा था और अपने-आप से बातें कर रहा था—“हमका ईश्वर पैदा एही दिन के लिए किए हैं न कि हम डांट और गाली खाई...कबहुँ मिया लोगन की, कबहुँ अपने बेटवा की। हमारे नसीब में भुख नहीं, न अपने बेटवा का और न अपने हाथों से लगाए नीम के पेड़ का।”<sup>29</sup> यह बुधीराम की नहीं आम आदमी की पीड़ा थी। ये आंसू आजादी के बाद के उस आम आदमी के हैं जिसने आजादी के साथ एक स्वप्न देखा था और उस स्वप्न को साकार करने के लिए सब कुछ लगा दिया था किन्तु अन्त में उसे क्या मिला? यह बड़ा सवाल है। आजादी का उत्तरकाल है और उत्तरकाल की समस्याएं भी अलग तरह की हैं। यह उपन्यास भी राही मासूम रज़ा के जीवन के उत्तरकाल का उपन्यास है लेकिन कथा समय 1946 से 1979 ई. तक का है। कांग्रेस पार्टी और उसके कार्यकर्ताओं की तीखी आलोचना भी है। किन्तु एक चीज यदि राही मासूम रज़ा खुलकर लिख देते कि सामिन मियां और रामखिलावन यादव की पार्टी कांग्रेस की कौन सी धड़ा है, इंदिरा कांग्रेस या कांग्रेस (स) साथ ही सुखीराम की पार्टी के बारे में भी खुलकर लिखते तो चीजें और आसान हो जातीं। यह भी समझ पाना आसान हो जाता कि यह बुराई केवल एक पार्टी में है या सभी राजनीतिक पार्टियों के भीतर फैल रही है। साधारणीकरण नहीं हो पाता। बहरहाल एक बात तो साफ हो गयी है कि कुछ अपवादों को छोड़कर स्वातंत्र्योत्तर भारत के सत्ता की लगभग यही सबसे बड़ी सच्चाई है। राही मासूम रज़ा लिखते हैं—“मैं नीम का पेड़ देख रहा हूँ कि मैं तो तवारीख जीता जा रहा था, जिन्दा इतिहास हूँ मैं। यानी हमारे सुखीराम भाई ने तो मुसलिम मियां के भी कान कतर लिए हैं। यकीन मानिए उनसे दस जूते आगे हैं हमारे सुखीराम एम.पी.।”<sup>30</sup>

राही मासूम रज़ा ने एक चीज बहुत साफ पकड़ी है वह है भ्रष्टाचार की भूमि। कोई व्यक्ति अकेला भ्रष्टाचार नहीं करता है उसके साथ उसका कुनबा भी लगा रहता है। सुखीराम एम.पी. के साथ उसकी मां और पत्नी भी संलिप्त हैं। बुधई कभी-कभी उदास हो जाता है पुराने दिनों की याद करके—“बुधीराम अपनी पत्नी दुखिया से इसलिए परेशान रहता था कि वह इस बात को बिल्कुल ही भूल गई थी कि एक जमाना वो भी था जब एक जून शाम का

खाना भी नहीं जुटता था ठीक से। .... आज खाली गहना, कपड़ा जोड़ने में लगी रहती थी। बेटे की बेईमानी में बराबर की हिस्सेदारी थी उसकी भी।<sup>31</sup>

बुधीराम धीरे-धीरे अपने को इस कुनबे से अलग करने लगा था। वह सत्य और त्याग का रास्ता पकड़ चुका था। प्रतिरोध और विरोध का स्वर भी बोलने लगा था। उसने एक नई मिसाल पेश की। धीरे-धीरे इस तरह की प्रवृत्ति कम होने लगी है समाज और राजनीति में। मूल्यहीनता का दौर प्रबल होता गया। अब तो सच्चाई यह है कि किसी एक ही घोटाला में पूरा परिवार संलिप्त है। कौन बुधई बनना चाहता है? बुधई भारतीय मानस का ऐसा चरित्र है जो मूल्यों के साथ जुड़ा है। इसलिए उसे सामिन मियां प्रिय है। वह मूल्यों की स्थापना के लिए तत्पर भी है। वह सवाल भी उठाता है। उसका मानना है कि लोकसभा सदस्य बनना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना जनता का सुख-दुख का साथी। उसे इज्जतदार मनुष्य चाहिए। इसलिए वह मुसलिम मियां, जामिन मियां और सुखीराम पर सवाल भी खड़ा रकता है। एक जगह तो वह कहता भी है—“ई स्कूल हम अपन मियां ते कहके खुलवाया रहा, काहे त कि अपन गांव मा स्कूल नाहीं रहा। सोचे सुखीराम भी पढ़िहे और सुखिया ना बनिहें, एक इज्जतदार इंसान बन जहिए। अब इज्जतदार बने के नाही हा एम.पी. बनगे, कैसे?”<sup>32</sup> यह बड़ा सपना था। आजाद मुल्क के नयी पीढ़ियों को लेकर। राही मासूम रज़ा ने सुखीराम के माध्यम से विचलित युवा पीढ़ी को उपस्थित किया है। लेकिन क्या वह अपने आप में दिलचस्प नहीं है कि सुखीरामों की संख्या बढ़ती चली जा रही है और अपने बुजुर्गों की सोच को देखकर उन्हें ‘पागल’ तक कहने में गुरेज नहीं करते हैं। सुखीराम बुधीराम से कहता है, “आप जानत हैं हम चारो ओर से दुश्मन से घिर गए हैं। अब हम मदरसा मा

नाही रहा चाहित। ई घर बार बेच के आप सबका ले के दिल्ली चला जाब।....बुधीराम—मुदा हम ना जाब और न रे घर बेचे देब। तुमको जाय का है जाओ। सच्चाई, ईमानदारी, आमान, पेड़, छांह का कुछ बौरा गए हा। हम इ अहाता बेचब, देखत है तुम का करत हौ।<sup>33</sup>

सुखीराम ने एक और भावुक सवाल किया बुधीराम से—“बाबा! का तु यही बदे हमका पाले रहा।”<sup>34</sup>

लेकिन इस भावुकता को तर्क में बदल दिया बुधीराम ने। वह उलटकर पूछने लगा, “यही सवाल तो लाखन बार हम अपने से कर चुके हन। का यही बदे तुमको पाला रहा कि तुम जीवन का सारा अमृत ढरका देव! का यही बदे नीम का पेड़ लगाव रहे कि ओह का छांव का तरस जाइ? सोचा था कि तुम दोनों की छांव मा गर्मी की कड़ी दोपहर काट लेबै। जीवन की सच्चाइयां तुमरी डाली या ईमानदारी से झुलि हैं। मुदा हुआ का। काश, हम अपने अरमानों का पेड़ लगाया ही न होते।”<sup>35</sup>

यह सामान्य संवाद नहीं है। दो पीढ़ियों, दो मूल्यों, दो सपनों के बीच का युगान्तरकारी संवाद है। आज के समय में यह संवाद लगभग गायब सा हो चुका है। स्थितियां पहले से अधिक जटिल और भयावह हो गयी हैं। लोकतंत्र में आम नागरिक और लोकसेवकों के बीच इस तरह के सवालों की आवश्यकता है। यह निचोड़ भी है 77 साल के आजाद हिंदुस्तान का। क्यों नहीं पूछा जाना चाहिए क्यों नहीं आत्मालोचन होना चाहिए? राही मासूम रज़ा स्वप्न से लेकर स्वप्नभंग की कथा बुनते हुए नए विकल्प की ओर भी बढ़ते हैं। उस हिस्से की ओर भी रुख करते हैं जहां आवाम और इंसानियत की तलाश और चिंता भी है।

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग,  
हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

## संदर्भ सूची

1. रज़ा, राही मासूम, नीम का पेड़, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. 91
2. रज़ा, राही मासूम, नीम का पेड़, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2019, पृ. (V लेखकीय)
3. वही, पृ. 10
4. वही, पृ. 13
5. वही, पृ. 12
6. वही, पृ. 10
7. वही, पृ. 13
8. वही, पृ. 14
9. वही, पृ. 15
10. वही, पृ. 20
11. वही, पृ. 33

12. वही, पृ. 33
13. वही, पृ. 20
14. वही, पृ. 29
15. वही, पृ. 31
16. वही, पृ. 30
17. वही, पृ. 31
18. वही, पृ. 33
19. वही, पृ. 21
20. वही, पृ. 21
21. वही, पृ. 23
22. वही, पृ. 34
23. वही, पृ. 38
24. वही, पृ. 39
25. वही, पृ. 41
26. वही, पृ. 42
27. वही, पृ. 43
28. वही, पृ. 44
29. वही, पृ. 45
30. वही, पृ. 48
31. वही, पृ. 67
32. वही, पृ. 57
33. वही, पृ. 66
34. वही, पृ. 66
35. वही, पृ. 66



ओम प्रकाश

## आधे-अधूरे नाटक में स्त्री चेतना के विभिन्न आयाम

**शोध सारांश-** हिंदी साहित्य की तमाम विधाएं किसी न किसी धरातल पर समाज के यथार्थ को उद्घाटित करती चलती हैं। परंतु नाटकों में यथार्थ के उद्घाटन की क्षमता अधिक होती है। नाटक अपने दर्शकों और पाठकों से सीधा संवाद स्थापित करता है। इसी दिशा में मोहन राकेश के नाटक स्वतंत्रोत्तर परिवेश के यथार्थ को उद्घाटित करते नजर आते हैं। उनके अनेक नाटकों में से 'आधे-अधूरे' नाटक मध्यवर्गीय परिवार की सच्चाई का जीवंत दस्तावेज है। यह नाटक किसी न किसी रूप में हमारे जीवन से जुड़ा हुआ नजर आता है। इसमें मध्यवर्गीय परिवार के विघटन, समकालीन जिंदगी की विडंबना और उसकी समस्याओं के अनेक पहलुओं को चित्रित किया गया है। इस नाटक का प्रत्येक पात्र किसी न किसी स्तर पर अपने आप में अधूरा है। यही अधूरापन आज प्रत्येक मनुष्य की जिंदगी में घर करता जा रहा है। जिसकी पूर्णता की तलाश में मनुष्य भटकाव का शिकार होकर गलत कार्यों में प्रवृत्त हो अपनी संस्कृति से दूर होता जा रहा है। इस नाटक में पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों को केंद्र में रखा गया है। इस नाटक की प्रमुख तीन स्त्री पात्र मां सावित्री, बड़ी बेटी बिन्नी और छोटी किन्नी स्त्री चेतना के तीन विभिन्न आयामों के रूप में नजर आती हैं। जो अलग-अलग स्तर पर जीवन में संघर्ष करती हुई और अपनी अस्मिता को बनाए रखने की कोशिश करती हुई दिखाई देती हैं।

**बीज शब्द-**हिंदी नाटक, स्त्री चेतना, यथार्थ, समकालीनता, वर्तमान, स्वतंत्रोत्तर, मध्यवर्ग, पारिवारिक विघटन, बिखराव, कड़वाहट, अपेक्षा, अस्मिता, अधूरापन आदि।

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक में समाज में प्रचलित सत् असत् प्रवृत्तियों के उद्घाटन की क्षमता अधिक होती है। नाटक के माध्यम से दर्शक यह देखने में समर्थ होता है कि उसका समाज किस दिशा की ओर बढ़ रहा है। इसके माध्यम से वह उन सभी प्रवृत्तियों से परिचय पा लेता है जो जातीय विकास में बाधक होती हैं। सही मायने में नाटक में यथार्थ का पुट अधिक होता है। "नाटक सामाजिक कला है। दृश्य कला के रूप में यह समाज के बीच जो प्रभाव उत्पन्न करता है वह अन्य विधाओं की अपेक्षा विशिष्ट है। नाटक में सामाजिकता के सर्वाधिक तत्व होते हैं इसलिए हिंदी नाटक ने काल्पनिक भाव जगत की अपेक्षा सामाजिक यथार्थ की ठोस भूमि को सहज रूप से ग्रहण किया।"<sup>1</sup>

मोहन राकेश ने स्वतंत्रोत्तर बदलते परिवेश को गहराई से महसूस किया। उन्होंने अपने समय और समाज का बारीकी से अवलोकन करते हुए उसके अनेक रूपों की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की है। मोहन राकेश हिंदी नाटक के सशक्त हस्ताक्षर हैं एवं हिंदी साहित्य में उनका स्थान अग्रिम पंक्ति के नाटककारों में शुमार है। वह ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा पर लेखनी चलाई है। उन्होंने जो कुछ भोगा उसे ही अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। जयदेव तनेजा इस संदर्भ में लिखते हैं कि-"दुनिया के व्याकरण के खिलाफ जिंदगी को जिंदगी की तरह जीने वाले नितांत असंभव और बेहद ईमानदार आदमी है - मोहन राकेश।"<sup>2</sup> जिसकी छाप इनके नाटक साहित्य में सर्वत्र दिखाई देती है। राकेश जी अपने जीवन काल में मानवीय और सामाजिक समस्याओं

से जुड़े रहे इसलिए उनकी रचनाओं में विभिन्न पारिवारिक समस्याओं का चित्रण मिलता है। उनकी रचना में जीवन और समाज की सच्चाई का सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में यथार्थवादी चित्रण दिखाई देता है। उनकी लेखनी में व्यंग्यात्मकता का पुट अधिक मिलता है। वह समाज के खोखलेपन को सच्चाई के साथ उजाकर करते हुए चलते हैं। इसलिए उनके नाटक जीवन की वास्तविकता को व्यक्त करते हैं। उनके प्रमुख नाटकों में आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे-अधूरे, अंडे के छिलके रात बिताने तक, पैर तले जमीन आदि नाटक शामिल हैं। इनमें से आधे-अधूरे नाटक स्वतंत्रता के पश्चात समाज में जो बदलाव आ रहे थे उस यथार्थ का उद्घाटित करता है। यह नाटक समकालीन जीवन स्थितियों पर आधारित है। इसमें नाटककार ने जिंदगी की विडंबना और उसकी समस्याओं के अनेक पहलुओं को उकेरा है।

“हिंदी रंगमंच के लिए मोहन राकेश का नाटक ‘आधे-अधूरे’ मील का पत्थर माना जाता है।”<sup>13</sup> यह नाटक स्वाधीनता पश्चात् भारत के एक ऐसे परिवार के सिलसिलेवार विघटित होने की प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है जिसका ढांचा आर्थिक दबाव के कारण चरमरा रहा है। “आधे अधूरे में एक मध्यवर्गीय परिवार को लिया गया है। इसमें मध्यवर्गीय वित्तीय स्तर से निम्न वित्तीय स्तर पर आए हुए शहरी या सही कहें तो महानगरीय परिवार का कड़वाहट भरा चित्रण हुआ है।”<sup>14</sup> इस परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने आप में अधूरा है, जिनके अधूरेपन को राकेश जी ने अपने इस नाटक में प्रस्तुत किया है। इस नाटक के संबंध में जयदेव तनेजा कहते हैं कि-“आधे-अधूरे हमारे आज के समाज के ऐसे तमाम लोगों की अभिशप्त जिंदगी का प्रमाणिक दस्तावेज है जिन्होंने जीवन की तमाम इच्छाओं, आकांक्षाओं और उपलब्धियां को भौतिक सुख-सुविधाओं से जोड़ लिया। इस मृग मरीचिका में फंसकर पारिवारिक संबंधों की सहज प्राप्य आत्मीयता, ऊष्मा और भावात्मक सुरक्षा तथा आत्मिक शांति को पूरी तरह खो दिया।”<sup>15</sup>

वर्तमान समय में देखने में आता है कि आज परिवारों में पति-पत्नी के रिश्तों में तनाव बढ़ता जा रहा है। यही तनाव बाद में परिवार के बिखराव का कारण बनता है। “आधे अधूरे की रचना के पीछे राकेश जी का स्पष्ट उद्देश्य पति-पत्नी के रूप में स्त्री पुरुष के आपसी संबंधों

की कड़वाहट से उपजी पारिवारिक विघटन की स्थिति के फलस्वरूप घर में बच्चों की मानसिकता एवं उनके भविष्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव तथा उनके खंडित होते व्यक्तित्व का यथार्थ चित्रण करना है।”<sup>16</sup>

इस नाटक में गहनता से स्त्री-पुरुष के संबंधों को प्रस्तुत किया गया है। नाटक के निदेशक ने अपने वक्तव्य में कहा है-“आधे अधूरे आज के जीवन के एक गहन अनुभव खंड को मूर्त करता है। यह आलेख एक स्तर पर स्त्री-पुरुष के बीच के लगाव और तनाव का दस्तावेज है।”<sup>17</sup> नाटक में पति महेन्द्रनाथ व्यापार में अपनी सारी पूँजी गंवाकर बेकार है और पत्नी सावित्री नौकरी कर घर चलाती है। आर्थिक दबाव और कई तरह की परिस्थितियों के कारण अब दोनों एक दूसरे के प्रति अत्यंत कटु हो गए हैं, एक दूसरे से बेजार हैं और हर वक्त एक दूसरे को छीलते-उधेड़ते रहते हैं। दोनों अपने आधे-अधूरे जीवन से असंतुष्ट हैं और अपनी-अपनी तरह संपूर्णता की खोज में रत हैं। दोनों को ही सारे का सारा जीवन चाहिए। विडम्बना यह है कि दूसरा व्यक्ति इस अधूरेपन को कम नहीं करता बल्कि उस अहसास को और भी बढ़ा देता है। न केवल पति और पत्नी बल्कि इस परिवार का हर सदस्य एक दूसरे से उदासीन और कटा हुआ है। घर की त्रासदायक हवा से सभी मुक्ति पाना चाहते हैं जबकि घर की जरूरत सभी को है। बड़ी लड़की मनोज का सहारा मिलते ही बाहर निकल भागती है। लड़का अशोक सावित्री का प्रभावशाली व्यक्तियों से संबंध बनाने एवं उन्हें खुश करने की उसकी हर कोशिश का विरोधी है क्योंकि ऐसे लोग उन्हें अपनी नजरों में और छोटा कर देते हैं, असहाय बना देते हैं। अपने पिता के लिए उसके मन में सहानुभूति है एवं माँ के लिए आक्रोश। छोटी लड़की के विकास को ‘घर’ नहीं मिला, स्नेह नहीं मिला अतः वह माँ, पिता, भाई, बहन घर के किसी भी सदस्य के प्रति लगाव महसूस नहीं करती। इस प्रकार नाटक में पारिवारिक अन्तर्द्वन्द्व और बेगानेपन को रचनाकार ने घर के सभी सदस्यों के माध्यम से कुशलता पूर्वक प्रस्तुत किया है। यह सिर्फ एक घर की कहानी नहीं है अपितु स्वाधीन भारत में आर्थिक दबाव और उपभोक्तावादी संस्कृति के शिकंजे में चरमराते हुए अनेक घरों की दास्तान है। आर्थिक विपन्नता और बाजार संस्कृति ने भारतीय परिवार की बुनियाद और पारस्परिक संबंधों को किस कदर हिलाकर रख दिया है,

आधे-अधूरे इसका जीवंत उदाहरण है।

एक स्तर पर यह नाटक घर की तलाश का भी नाटक है। स्वयं राकेश के मन में घर बसाने की इच्छा अत्यंत तीव्रता घर उनके जीवन और रचना कर्म दोनों का केंद्र बिंदु रहा है इसलिए यह स्वाभाविक है कि उनके पात्रों में भी घर की लालसा नजर आए। दरअसल 'घर' राकेश के नाटकों का केन्द्रबिन्दु है जहाँ से नाटक का आरंभ भी होता है और अंत भी। यद्यपि इस घर का ढाँचा बिखर रहा है फिर भी इसमें एक ऐसा आकर्षण है कि हर किसी को वापस खींचता है। एक मजबूरी और निर्भरता घर के सभी सदस्यों को एक दूसरे से जोड़ती है, चाहे यह बंधन कितना ही क्षीण क्यों न हो, यही कारण है कि घर से बाहर निकलने के बावजूद प्रत्येक सदस्य यहीं वापस लौटता है।

आधे-अधूरे हमारी अपनी जिंदगी का नाटक है जिसमें कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में हम अपने परिवार का प्रतिबिंब देखते हैं। जो आज के मध्यवर्गीय जीवन के बिखराव को उजागर करता है। स्त्री का अपने अस्तित्व व अपनी सत्ता के लिए सचेत होना। यह सचेत होने की प्रक्रिया या भावना 'स्त्री चेतना' है। यह नाटक स्त्री जीवन की सभी संभावनाओं को खोलता हुआ दिखाई पड़ता है जिसमें स्त्री चेतना के कई विभिन्न स्तर हमारे सामने उजागर होते हैं। इस नाटक के विश्लेषण के पश्चात इसमें स्त्री चेतना के मुख्यतः तीन विभिन्न आयाम देखने को मिलते हैं। जिन्हें इस नाटक की तीन स्त्री पात्रों में सावित्री, बड़ी बेटा बिन्नी और छोटी बेटा किन्नी के माध्यम से समझा जा सकता है।

### स्त्री चेतना के तीन विभिन्न आयाम

#### स्त्री चेतना का प्रथम आयाम

स्त्री चेतना के प्रथम आयाम को इस नाटक की प्रमुख नायिका मां सावित्री के जीवन के आधार पर समझ सकते हैं। सावित्री कामकाजी महिला है। वह नौकरी करके अपने परिवार की जीविकापार्जन करती है एवं उसका पति जीवन में असफल रहने के कारण खंडित व्यक्तित्व का है इसलिए वह पत्नी की दृष्टि में आकर्षण है। पति महेंद्रनाथ का आकर्षण होना और पत्नी के इस अभाव की पूर्ति के कारण ही दोनों के बीच तनाव का कारण बन जाता है। यही तनाव आगे चलकर संतान पर नकारात्मक

छाप छोड़ता है।

सावित्री अपनी भावनाओं, संवेदनाओं तथा इच्छाओं का दमन कर केवल और केवल अपने घर की आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहती है। वह अपने परिवार के प्रति पूरी तरह से समर्पित है किंतु उसके समर्पण का महत्व उसके परिवार के किसी भी सदस्य को प्रभावित नहीं करता। इसके विपरीत वह कटाक्ष का पात्र ही बनती है और परिवार की उपेक्षा सहने के लिए विवश है। इसको हम इस उदाहरण से समझ सकते हैं। जब सावित्री अशोक की नौकरी के लिए सिंघानिया को अपने घर बात करने के लिए बुलाती है तो अशोक मना कर देता है और अपनी मां के चरित्र पर सवाल उठने लगता है एवं अपनी मां की उपेक्षा करता है-

“स्त्री : क्या तू समझता है किस वजह से बुलाया है?

लड़का : उसकी किसी बड़ी चीज की वजह से। एक तो वह कि वह इंटेलिक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरों को कि उसकी तनखाह पांच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्तीचीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं उसकी तनखाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।”<sup>8</sup>

इस दृश्य से स्पष्ट होता है कि जहां बेटे को मां को सम्मान देना चाहिए था। वहीं वह अपनी मां पर सवाल उठाता है, अपमानित करता है। ऐसे ही कटाक्ष एवं ऐसे ही उपेक्षा से सावित्री को नाटक में परिवार के सदस्यों द्वारा कई बार उपेक्षित होना पड़ता है।

सावित्री एक आधुनिक नारी है वह अपने पति में संपूर्ण व्यक्तित्व को ढूंढती है जब उसे वह संपूर्णता महेंद्रनाथ में नजर नहीं आती तब वह उसे संपूर्ण बनाने की कोशिश करती है जिससे उसकी सारी सुख सुविधाओं की पूर्ति हो सके परंतु ऐसा नहीं हो पता। तो वह संपूर्णता की तलाश में जुनेजा, शिवजीत, जगमोहन, मनोज, सिंघानिया जैसे व्यक्तियों से अपना व्यवहार बारी-बारी स्थापित करती है परंतु जिस संपूर्णता की तलाश उसको होती है वह संपूर्णता उसको किसी पुरुष के व्यक्तित्व में नहीं मिल पाती जिसको लेखक ने नाटक में इस प्रकार सावित्री के मुख से कहलवाया है-

“वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए एक... पूरा... आदमी। गला फाड़कर बात कहती है। कभी इस आदमी (महेंद्रनाथ) को ही वह आदमी बन सकने की

कोशिश करती है।<sup>19</sup>

यही नारी जीवन में संपूर्णता की तलाश और परिवार एवं समाज में सम्मान का भाव ही स्त्री चेतना के प्रथम आयाम का आधार है। जहां एक स्त्री को समाज तथा परिवार में अपने अस्मिता को स्थापित करने के लिए नाना प्रकार के संघर्षों से दो-चार होना पड़ता है। घर में पत्नी और मां के रूप में एक नारी का संघर्ष, घर से बाहर जीविका के लिए संघर्ष, इन सबके साथ समाज में और परिवार में प्रेम, अपनेपन, सम्मान और अस्मिता के लिए स्त्री हर क्षण संघर्ष करती नजर आती है।

### स्त्री चेतना का द्वितीय आयाम

नाटक में स्त्री चेतना के दूसरे आयाम के रूप में दूसरी प्रमुख स्त्री पात्र बड़ी लड़की बिन्नी का जीवन चित्रण उभरकर नजर आता है। बड़ी लड़की बिन्नी परिवार के तनावमय वातावरण से ऊबकर सावित्री अर्थात् अपनी मां के पूर्व प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है एवं उससे विवाह कर लेती है। विवाह के उपरान्त मनोज एवं बिन्नी का कुछ समय तो अच्छी तरह से व्यतीत हो जाता है परंतु ज्यों-ज्यों समय बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उन दोनों के बीच एक दरार सी आ जाती है जो कि समय के अंतराल से और बढ़ती ही जाती है। बिन्नी यह मानती है कि कुछ चीज है जो कि उन दोनों के आपसी संबंधों को काटकर दरार उत्पन्न कर रही है। यह वस्तु उसकी अपने नहीं वरन् इसे उसने अपने ही घर से ग्रहण कर रखा है। इसी संघर्ष एवं विरोधाभास के कारण बड़ी लड़की बिन्नी एक दिन अपने पति को छोड़कर घर वापस आ जाती है। महेंद्रनाथ और मां सावित्री बिन्नी से आने का कारण पूछते हैं तो लड़की स्पष्ट कहती है-

“एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अंदर भरा रहता है और मैं इंतजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लूं। आखिर क्यों?

स्त्री : क्या?

बड़ी लड़की : मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गई हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।<sup>10</sup>

बड़ी लड़की के इस कथन से उसके भटकाव एवं अधूरेपन का बिम्ब दिखाई पड़ता है जिसके कारण वह अपने बसाए हुए घर में भी चैन से नहीं रह पाती। यहीं नारी जीवन में तनावमय वातावरण से उत्पन्न भटकाव

बिखराव एवं अधूरापन स्त्री चेतना के द्वितीय आयाम को प्रतिबिंबित करता है।

### स्त्री चेतना का तृतीय आयाम

स्वतंत्र भारत में महानगरों के विकास, जनसंख्या का अपने मूल निवासस्थान से स्थानांतरण और पश्चिम के अंधानुकरण के कारण एक ऐसी संस्कृति का विकास हुआ जिसमें लोग अपनी ही सामाजिक सांस्कृतिक परंपराओं से अनजान बनते चले गए। इस नाटक में मध्यवर्गीय लोगों के जीवन में व्याप्त सांस्कृतिक रिक्तता और इसके कारण उत्पन्न विकृत मूल्यों, भ्रांतियों एवं दोगली नैतिकता को भी पूरा प्रखरता से उद्घाटित किया है। नाटक में स्त्री चेतना के तृतीय आयाम को नाटक की स्त्री पात्र छोटी लड़की के जीवन से समझा जा सकता है। संस्कृतिक शून्यता एवं पारिवारिक विघटन छोटी लड़की किन्नी को गहराई से प्रभावित करता है। घर के सदस्यों के स्नेह से वंचित और उसकी छोटी-छोटी जरूरतों की अनापूर्ति ने उसका बचपन समय से पहले ही छीन लिया है। न केवल वह बेहद कटु और लापरवाह हो गई है बल्कि अपनी उम्र से पहले ही यौन विषयों में रुचि लेने लगी है। अपने घर में टूटते हुए संबंधों, रोज-रोज की चिक-चिक और किसी ने किसी बात पर क्लेश ने उसे आत्मकेन्द्रित बना दिया है। घर की कलह उसके लिए प्रतिदिन होनेवाला ऐसा ड्रामा है जिससे उसे कोई सरोकार नहीं। उसके विकास में ‘घर’ का कोई सहयोग नहीं, किसीने उसका ध्यान नहीं रखा अतः वह भी बेपरवाह हो गई है :

“छोटी लड़की : जब नहीं हो होना होता, तो सब लोग होते हैं सिर पर। और जब हो होना होता है तो कोई भी नहीं दि-दिखता कहीं।<sup>11</sup>

किन्नी अपने आप में उलझी रहती है न ही उसे खाने की सुविधा रहती है न ही पढ़ाई सामग्री की व्यवस्था।

“स्कूल में भूख लगे तो कोई पैसा नहीं होता पास में और घर आने पर घंटा घंटा दूध ही नहीं होता गरम।<sup>12</sup>

अपने साथ की अन्य सहेलियों के साथ किन्नी भी व्यवस्थित ढंग से रहना चाहती है पर उसको किसी न किसी बात की कमी ही बनी रहती है जिससे वह शांत नहीं रह पाती यद्यपि प्रत्येक कमी को मां से कह देती है-

“आज मुझे रीले लाकर न दी तो मैं स्कूल नहीं जाऊंगी कल से, मिस ने सारी क्लास के सामने मुझसे कहा कि...।<sup>13</sup>

किन्नी की यह जरूर समय पर पूरी हो जाएगी या समय के बाद भी पूरी हो जाएगी इसका कोई भरोसा नहीं है। किन्नी के पास जीवन में किसी न किसी चीज की कमी और अव्यवस्था उसे एकांगी बना देते हैं। जिससे वह छिप-छिपकर कर अश्लील पुस्तक पढ़ने लगती है एवं स्वभाव से विद्रोही हो जाती है। किन्नी के जीवन की यही अवस्था और अभाव से उत्पन्न विद्रोह स्त्री चेतना के तृतीय आयाम को उद्घाटित करता है।

### निष्कर्ष

“नाटक जीवन की अनुकृति, सामाजिक व्यवहारों का दर्पण एवं सत्य का प्रतिबिम्ब है।”<sup>14</sup> आधे अधूरे नाटक मध्यवर्गीय परिवार के जीवन का वास्तविक चित्र है जो मध्यवर्गीय परिवार की जीवन आकांक्षाओं की न होने वाली पूर्ति को समाज के समक्ष उद्घाटित करता है। जिससे किसी न किसी अंश में इनके जीवन में एक अधूरापन बना रहता है। कोई अपने आप में पूर्ण नहीं हो पता। ऐसा ही नाटक में सभी पात्रों की जिंदगियों के आकलन के पश्चात दिखाई देता है। नाटक में सावित्री, बिन्नी और किन्नी के माध्यम से स्त्री चेतना के तीन विभिन्न आयामों को उजागर किया गया है। सावित्री अपने जीवन में परिवार से सम्मान और विभिन्न व्यक्तियों में

संपूर्णता की तलाश, बिन्नी के जीवन में तनाव से उपजा बिखराव और भटकाव तथा किन्नी का जीवन अभावग्रस्त और एकांगीपन के कारण पूर्ण नहीं हो पाता। जिससे उनके जीवन में अधूरापन किसी न किसी रूप में रह ही जाता है अंततः सभी पात्र अधूरे बने रह जाते हैं। निष्कर्षतः लाजपत राय गुप्त जी के शब्दों में कहा जा सकता है – “इस परिवार के सारे पात्र कुण्ठा-संत्रास तथा मध्यवर्गीय परिवारों के विघटन और उससे उत्पन्न कड़वाहट की अभिव्यक्ति करते हैं। व्यक्ति स्वयं अधूरा रहते हुए भी दूसरे के अधूरेपन को सहन नहीं कर पता है और व्यवहारिक आदर्श की तलाश में भटकते हुए परिवार को तोड़ देता है।”<sup>15</sup> फिर भी एक ही घर में बने रहते हैं यही इन पात्रों की नियति भी है। आज समाज में मनुष्य की असीमित इच्छाएं, आकांक्षाएं और जीवन में कुछ न करते हुए भी दूसरे से कुछ न कुछ करने की अपेक्षा रखना भी प्रत्येक मनुष्य को अधूरेपन का एहसास करने के लिए काफी है।

शोधार्थी

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली  
ईमेल - opindian10@gmail.com

### संदर्भ सूची

1. नए प्रतीक नाटक-डॉ. सूरज प्रसाद पचौरी, जवाहर पुस्तकालय प्रकाशन, संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या 68
2. नए रंग चेतना और हिंदी नाटककार-जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1994, पृष्ठ संख्या 121
3. हिंदी नाटक आजकल-जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या 37
4. नए रंग चेतना और हिंदी नाटककार-जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1994, पृष्ठ संख्या 123
5. वही, पृष्ठ संख्या 124
6. हिंदी नाटक विमर्श के विविध आयाम-ममता धवन, स्वराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 78

7. आधे-अधूरे-मोहन राकेश, राधा कृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1969, आवृत्ति 2015, प्रश्न संख्या 9 (निर्देशक का वक्तव्य)
8. वही, पृष्ठ संख्या 58
9. वही, पृष्ठ संख्या 91
10. वही, पृष्ठ संख्या 33
11. वही, पृष्ठ संख्या 79
12. वही, पृष्ठ संख्या 36-37
13. वही, पृष्ठ संख्या 37
14. Drama is a copy of life, a mirror of custom, a reflection of truth Cicero's phrase as quoted by AEelius Donatus (The theory of drama A. Nicoll), Page 24
15. नए प्रतीक नाटक-डॉ. सूरज प्रसाद पचौरी, जवाहर पुस्तकालय प्रकाशन, संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या 74



डॉ. संजय गौतम

## हिन्दी आलोचना में जातीय साहित्य की अवधारणा

हिंदी आलोचना में 'जातीय साहित्य' की अवधारणा के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन अथवा इतिहास-लेखन करने का श्रेय मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा को दिया जाता है। उन्होंने साहित्य के जातीय स्वरूप और जातीय निर्माण की प्रक्रिया को जातीय भाषा के विकास से जोड़कर देखने की प्रक्रिया पर बल दिया है। जाति को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं – “जाति वह मानव समुदाय है जो व्यापार द्वारा पूँजीवादी संबंधों के प्रसार के साथ गठित होती है। सामाजिक विकास क्रम में मानव समाज पहले जन या 'गण' के रूप में गठित होता है.... और उसके सदस्य आपस में एक-दूसरे से रक्त-संबंध के आधार पर संबद्ध माने जाते हैं। इन गण-समाजों के टूटने पर लघु जातियाँ बनती हैं, जिनमें उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है और नए श्रम विभाजन के आधार पर भारतीय वर्ण-व्यवस्था जैसी समाज-व्यवस्था का चलन होता है। पूँजीवादी युग में इन्हीं लघु जातियों से आधुनिक जातियाँ बनती हैं, जिनमें उत्पादन छोटे पैमाने पर होता है और नए श्रम-विभाजन के आधार पर भारतीय वर्ण-व्यवस्था जैसी समाज-व्यवस्था का चलन होता है। पूँजीवादी युग में इन्हीं लघु जातियों से आधुनिक जातियों का निर्माण होता है।”<sup>1</sup> उनके अनुसार भाषा, जातीयता की सर्व-प्रमुख पहचान है। इसी आधार पर वे मानते हैं कि 'हिंदी', 'बंगला', 'मराठी', 'तमिल' आदि भाषाएँ बोलने वाले समुदायों को जाति कहते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य को जातीय साहित्य के रूप में देखने-समझने का आग्रह करते हैं। उन्होंने साहित्य के जातीय स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है – “साहित्य का जातीय स्वरूप भी होता है। जैसे किसी भाषा

के बोलने वालों के बिना उस भाषा के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती, वैसे ही उस भाषा के माध्यम से साहित्य रचने, उसे पढ़ने और सुनने वालों के बिना उस साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। बंगला, मराठी, तमिल आदि भाषाएँ बोलने वाले समुदाय आधुनिक जातियाँ हैं। इन भाषाओं में रचा हुआ साहित्य उनका जातीय साहित्य है।”<sup>2</sup> डॉ. रामविलास शर्मा का आलोचनात्मक लेखन 'जातीय साहित्य' की अवधारणा को अपना आधार बनाता है। डॉ. मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में कहा जा सकता है कि उन्होंने “हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का नया सैद्धांतिक आधार ही तैयार नहीं किया है, उन्होंने इसके व्यावहारिक रूप को विकसित करने का भी प्रयास किया है।”<sup>3</sup> उन्होंने भक्ति आंदोलन तथा उसके बाद भारतेंदु से लेकर प्रगतिशील आंदोलन तक के साहित्य का विश्लेषण उसके जातीय स्वरूप की पहचान को रेखांकित करते हुए किया है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने स्टालिन की जातीयता (nationality) संबंधी अवधारणा को अपने विवेचन का आधार बनाया है। उनका मानना है कि भाषा इसका मुख्य तत्व बन जाता है, जिसमें सामान्य आर्थिक जीवन भी अपना योग देता है। स्टालिन ने जाति को ऐतिहासिक रूप से विकसित मानव समुदाय बताया था। उन्होंने माना था कि जाति ऐतिहासिक रूप से विकसित एक विशेष दौर की उपज है और वह विशेष दौर है अभ्युदयशील पूँजीवाद।<sup>4</sup> स्टालिन लिखते हैं – “जाति वह है जिसका ऐतिहासिक विकास इस प्रकार हुआ हो कि उसमें भाषा, प्रदेश, आर्थिक-जीवन तथा सांस्कृतिक एकता के रूप में व्यक्त होने वाले मानसिक गठन की एकता हो।”<sup>5</sup> क्योंकि एंगेल्स

और मार्क्स ने पूँजीवाद की एक स्थिति व्यापारिक पूँजीवाद को माना है, इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा भी 'हिंदी जाति' के गठन की प्रक्रिया 12-13वीं सदी से शुरू होना मानते हैं। 1857 में उनकी दृष्टि में इसका दूसरा चरण ही शुरू होता है। इसके लिए डॉ. शर्मा स्टालिन से भिन्न तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने माना है कि दरअसल महाजाति (Nation) के गठन और उसकी भाषा के विकास में सामंती राजसत्ता का भी योगदान होता है। वे बारहवीं सदी से सामंतवाद के विघटन और सौदागरी-पूँजीवाद का आरंभ मानते हैं। किन्तु डॉ. शर्मा की इस अवधारणा पर डॉ. मैनेजर पाण्डेय की यह टिप्पणी सही प्रतीत होती है कि डॉ. शर्मा ने "हिंदी जाति, हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के विकास की जो व्याख्या की है, उससे रीतिकाल के अस्तित्व की पूरी व्याख्या नहीं होती है। रीतिकाल, बारहवीं सदी से आधुनिककाल का प्रारंभ मानने की धारणा के सामने प्रश्नचिह्न बना हुआ है।"<sup>6</sup>

डॉ. रामविलास शर्मा की 'जातीय साहित्य' संबंधी अवधारणा के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर ध्यान देना अपेक्षित होगा। प्रथम, यह कि डॉ. शर्मा ने भी आधुनिक जातियों के निर्माण के संदर्भ में चार विशेषताओं को निर्णायक माना है- 'सामान्य भाषा', 'सामान्य प्रदेश', 'सामान्य आर्थिक जीवन' और 'सामान्य संस्कृति'।<sup>7</sup> किन्तु इन सबमें भी वे सामान्य भाषा और सामान्य आर्थिक जीवन को प्राथमिकता प्रदान करते हैं। दूसरे, राष्ट्र और जाति के परस्पर संबंधों को व्याख्यायित करते हुए उन्होंने कहा है - "राष्ट्र और जाति परस्पर विरोधी नहीं हैं। राष्ट्र की संज्ञा अधिक व्यापक है। भारतीय संदर्भ में प्रादेशिक जातियाँ राष्ट्र की अंतर्वस्तु हैं। इनके बिना राष्ट्र की संज्ञा खोखली है। इसी तरह वर्ग-पूँजीपति, मजदूर आदि-जाति की अंतर्वस्तु है। विभिन्न जातियों के समान धर्म, वर्ग आपस में जुड़कर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करते हैं।"<sup>8</sup> डॉ. रामविलास शर्मा के उपर्युक्त उद्धरण में एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर इशारा है कि जाति की 'अंतर्वस्तु' होती है- 'वर्ग'। जाति की विशेषताओं के निर्धारक तत्वों में वे भाषा, प्रदेश, आर्थिक जीवन व संस्कृति को निर्णायक मानते हैं। तब यह कहना ज्यादा सही होगा कि जाति की अंतर्वस्तु की पहचान करते समय वर्ग आधारित मूल्य-दृष्टि के अतिरिक्त अन्य बातें भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं। 'जातीय अस्मिता' की पहचान करते समय केवल एक या दो तत्वों को 'प्राथमिक' मानकर चलना संभवतः सही नहीं

होगा। क्योंकि डॉ. शर्मा ने जैसे समान धर्म, वर्ग के आपस में जुड़ने की बात की है वैसे ही अन्यत्र उन्होंने भारतीय समाज में विद्यमान वर्ण-व्यवस्था के चलन की बात को स्पष्ट स्वीकार किया है। कहना न होगा कि यह स्वयं भारतीय संस्कृति के एक महत्वपूर्ण पक्ष की महत्ता की ओर ही इशारा करना है। किसी भी समाज की संस्कृति, वहाँ रहने वाले विशिष्ट भाषा से जुड़े समुदाय के आधार पर ही किसी विशिष्ट प्रदेश की अवधारणा से अभिन्न रूप से जुड़ती है। भाषा, प्रदेश व आर्थिक जीवन एक प्रकार से किसी क्षेत्र-विशेष की संस्कृति के तत्व भी कहे जा सकते हैं। समाजशास्त्री श्यामाचरण दूबे के अनुसार, "मानव-विज्ञान की शास्त्रीय दृष्टि से संस्कृति हम उन व्यवहार-प्रकारों की समग्रता को कहते हैं जिन्हें मानव अपने सामाजिक जीवन में सीखता है।...मनुष्य संस्कृति में जन्म लेता है, संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता। संस्कृति के अंतर्गत मानव के आविष्कार, निर्माण-कला, संस्थाएं, सामाजिक-संगठन, कला, साहित्य, धर्म, विचार आदि विषय आते हैं।"<sup>9</sup> कहने का अभिप्राय यह है कि 'जातीय अस्मिता' के स्वरूप का निर्माण करने वाले कई तत्व होते हैं। इसलिए किसी भी जाति के स्वरूप की पहचान करते समय उसकी अंतर्वस्तु की पहचान जरूरी हो जाती है। जाहिर है कि यह अंतर्वस्तु कोई एक तत्व नहीं होती। जातीय चेतना का निर्माण इसीलिए इतिहास वर्तमान और भविष्य तीनों से प्रभावित होता है, निर्मित होता है। उसमें इतिहास का बोध, वर्तमान दशा का ज्ञान और भविष्य के स्वप्न ही अपना योगदान नहीं करते बल्कि कई बार इतिहास की जड़ता, वर्तमान की दिशाहीनता और भविष्य की आशंका भी उसे गहरे रूप में प्रभावित करती हैं। 'जातीय चेतना' किसी काल-बिंदु पर ठहरी हुई कोई वस्तु नहीं है बल्कि उसका विकास निरंतर होता रहता है।

डॉ. रामविलास शर्मा जातीय निर्माण को राष्ट्रीय एकता के लिए भी महत्वपूर्ण मानते हैं और दूसरी ओर हिंदी जाति के निर्माण को हिंदू संस्कृति का विकल्प मानते हैं। इसीलिए उन्होंने लिखा- "हिंदी प्रदेश की जनता के सामने हिंदू संस्कृति का विकल्प हिंदी संस्कृति है। हिंदी प्रदेश और भारत देश में कोई अंतर्विरोध नहीं है। हिंदी संस्कृति और भारतीय संस्कृति में कोई अंतर्विरोध नहीं है।.....जब तक हम यह न समझेंगे कि भारत बहुजातीय राष्ट्र है, तब तक हमारा राष्ट्रप्रेम हिंदू राष्ट्रवाद से ज्यादा दूर न रहेगा। यदि भारत में जातियाँ नहीं रहती तो यहाँ केवल संप्रदाय

रहेगे, यह निश्चित है।”<sup>10</sup> रामविलास जी यह मानकर चलते हैं कि यदि हिंदी जाति का निर्माण हो सका तो हिंदी प्रदेश जात-पाँत, ऊँच-नीच और हिंदू-मुस्लिम जैसी विभाजित श्रेणियों से मुक्त हो जाएगा। रामविलास जी जातीय बोध को ही हिंदी प्रदेश की प्रत्येक सामाजिक-राजनीतिक समस्या के समाधान के रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। धीरे-धीरे उनकी जातीय बोध की अवधारणा एक दूसरा रुख लेते हुए एक राजनीतिक स्वर अख्तियार करती है, जहाँ राष्ट्र की एकता का मुख्य आधार उन्हें हिंदी जाति की एकता के आधार पर बनता दिखाई देता है। उन्होंने लिखा-“हिंदी प्रदेश को विभाजित कर राष्ट्रीय एकता की बातें करना प्रलाप मात्र है। हिंदी प्रदेश की एकता सबसे पहले राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए आवश्यक है।”<sup>11</sup> दरअसल बोलियों और उर्दू के सवाल को उठाया जाना डॉ. शर्मा की दृष्टि में ‘हिंदी प्रदेश’ में विभाजन की स्थिति पैदा करना है। डॉ. नामवर सिंह ने भाषा के आधार पर जाति के गठन की प्रक्रिया को लेकर उसकी विभिन्नताओं की ओर इशारा किया है। श्री शिवदान सिंह चौहान ने भी पहले बोलियों और उर्दू की सुरक्षा का प्रश्न उठाया था। इसी प्रकार डॉ. नामवर सिंह प्रश्न खड़ा करते हैं कि जनपदीय भाषाओं या बोलियों के संदर्भ में-“क्या उनके लिए यह खड़ी बोली हिंदी वही भूमिका नहीं अदा करेगी जो अंग्रेजी हम लोगों के लिए कर रही है।”<sup>12</sup> यहाँ समस्या यह है कि डॉ. रामविलास शर्मा जनपदीय भाषाओं को हटाकर खड़ी बोली के केंद्र में आने की प्रक्रिया को वैज्ञानिक रूप से विकसित मानते हैं। उनके अनुसार हिंदी का निर्माण सामान्य बोलचाल की भाषा के रूप में होता है। और यह सब सामाजिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में ही होता है। लेकिन डॉ. शर्मा नवजागरण का विवेचन करते हुए उस जगह सवाल खड़ा नहीं करते जहाँ कई साहित्यकार-जिनमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल प्रमुख हैं-बोलचाल की हिंदी या ‘हिंदुस्तानी’ को नकारते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साफ-साफ शब्दों में कहा था-“जो लोग राजनीतिक दृष्टि से हिंदू-मुस्लिम एकता अत्यंत आवश्यक समझते हैं वे एक बीच का रास्ता पकड़कर ‘हिंदुस्तानी’ लेकर उठे हैं। इस हिंदुस्तानी का समर्थन कुछ उदार समझे जाने वाले मुसलमान और उर्दू की गोद में पले हिंदू भी कर रहे हैं। हम भोली-भाली जनता को इस ‘हिंदुस्तानी’ से सावधान करना अत्यंत आवश्यक समझते हैं। जो ‘हिंदुस्तानी’ इन लोगों के ध्यान में है, वह थोड़ी

छनी हुई उर्दू के सिवा कुछ नहीं है।”<sup>13</sup>

डॉ. रामविलास शर्मा की ‘जातीयता’ की अवधारणा का आधार ‘भाषा’ को मानने में कई दोष दिखाई देते हैं। प्रथम, यह कि जैसे ही भाषा एकता का मुख्य आधार बनती है, उसके एक रूप की स्थिरता को लेकर उसकी बोलियों को दरकिनार कर देना पड़ता है। दूसरे, शर्मा जी की भाषा-संबंधी सोच उन्हें यह बोध कराती है कि साम्राज्यवादी दौर में अपनी भाषा और संस्कृति पर गर्व करना साम्राज्यवाद का विरोध है। लेकिन भाषा और संस्कृति के गौरवान्वित तत्वों की पहचान के बिना साम्राज्यवाद पर किया गया यह चिंतन अधूरा लगता है। जैसा कि श्यामाचरण दूबे लिखते हैं-“शब्द और भाषा दोनों अपने-आपमें अंतिम रूप से स्वयं पूर्ण न होकर उन विशिष्ट समाजों की सांस्कृतिक चेतना पर आधारित होते हैं जिनमें उनका विकास होता है। शब्द व्यक्ति और समाज की चेतनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।”<sup>14</sup> इसलिए जातीयता और जातीय-साहित्य की चर्चा करते समय आधुनिक काल में विकसित हो रही लोक-वृत्त की चेतना के समग्र स्वरूप पर विचार करना अपेक्षित होगा। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस काल का विवेचन करते समय इसके साम्राज्यवादी स्वर को प्रमुखता से उजागर किया है किन्तु धीरे-धीरे विकसित हो रही धर्माधारित चेतना को अक्सर अनदेखा किया है। उनके स्वयं के लेखन में यह हिंदी जाति का भाव-बोध किस रूप में विकसित हुआ है, इस पर टिप्पणी करते हुए श्री पी.एन. सिंह कहते हैं-“दयानंद सरस्वती का हिंदू जागरण भी मुस्लिम विरोधी था और सर सैय्यद का मुस्लिम जागरण भी अंततः हिंदू विरोधी बना। फिर भी रामविलास जी दयानंद सरस्वती को गौतम बुद्ध के बाद एकमात्र ऋषि बताते हैं और सर सैय्यद के बारे में या तो चुप रहते हैं या उन पर प्रतिकूल टिप्पणी करते हैं। इस प्रकार उनका हिंदी जातीय बोध सांप्रदायिकता का उत्तर नहीं दिखता।”<sup>15</sup> सवाल केवल सांप्रदायिकता का ही नहीं बल्कि विरोध के उन स्वरों का भी है, जिनकी हिमायत मार्क्सवाद करता है। किसी प्रदेश की भाषा में ही जनाकांक्षा व्यक्त होती है। लेकिन क्या भाषा में जातीय चेतना एकता को दर्शाने वाली जनाकांक्षा एक ही आधार तय करती है? क्या किसी भी प्रदेश में वर्ग, जाति, धर्म की भिन्नताएँ, शोषण का समर्थन, शोषण का विरोध उसी भाषा में व्यक्त नहीं होता? यदि ऐसा होता है तो भाषा फिर एकता का माध्यम कैसे बन सकती है। यदि ‘हिंदी जाति’ को ही लें तो क्या हिंदी के

समर्थन के पीछे नवजागरण या उसके बाद भी मात्र 'एक भाषा' अपनाने का स्वर ही है? यदि ऐसा है तो फिर जगह-जगह हिंदी के साथ हिंदू और हिंदुस्तान क्यों खड़े दिखाई देते हैं? रामविलास जी इस प्रक्रिया में या तो 'हिंदू' को अनदेखा करते हैं या उसे साम्राज्यवादी शासन की कुचाल कहकर टाल देते हैं। यदि किसी जाति का निर्माण ऐतिहासिक प्रक्रिया में ही होता तो यह नहीं मानना चाहिए कि बारहवीं सदी से आरंभ तो ठीक रहा लेकिन अंग्रेजी के कारण ही धीरे-धीरे हिंदी जाति हिंदू जाति में बदलने लगी। डॉ. रामविलास शर्मा ऐसा ही मानते प्रतीत होते हैं। डॉ. शर्मा के लेखन में जाति-निर्माण की प्रक्रिया को लक्षित करते हुए डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने लक्षित किया है कि- "रामविलास शर्मा ने हिंदी जाति की संस्कृति और उसके जातीय साहित्य की जो व्याख्या की, उसमें कहीं-कहीं वर्गीय आधार और विचारधारात्मक प्रभावों की ओर संकेत है, लेकिन उनकी कई बार उपेक्षा भी हुई है। हिंदी नवजागरण और उसके साहित्य की प्रगतिशीलता सिद्ध करने की चिंता के कारण वर्गीय आधार और विचारधारात्मक अंतर्विरोध पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।"<sup>16</sup>

**निष्कर्ष :** अंततः कहा जा सकता है कि डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचनात्मक कर्म का आधार बनने वाली जातीयता तथा जातीय साहित्य की अवधारणा को दोष-रहित नहीं कहा जा सकता। प्रथमतः, भले ही सैद्धांतिक तौर पर इस अवधारणा में भाषिक एकता की बात कही गई हो किन्तु, हिन्दी प्रदेश के संदर्भ में, इससे जनपदीय भाषाओं

तथा स्थानीय बोलियों को अनदेखा किए जाने का व्यवहारिक खतरा पैदा होता है। दूसरे, रीतिकाल तथा नवजागरण के दौर के साहित्य कि कुछ विशेषताओं कि व्याख्या में यह अवधारणा कारगर सिद्ध नहीं होती है। इसीलिए स्वयं रामविलास जी के आलोचना-कर्म में बहुधा विरोधाभास लक्षित होते हैं। स्वयं रामविलास शर्मा जी जिस प्रकार कई साहित्येतिहास के कुछ अंतर्विरोधों को अनदेखा कर जाते हैं, उससे 'हिंदी जाति' द्वारा सांप्रदायिकता और जात-पाँत को दूर करने में कोई मदद मिलेगी, ऐसा नहीं लगता। तीसरे, जातीय साहित्य की आधारभूत धारणा- 'सामान्य-भाषा' की ही बात करें, तो भाषा शोषक और शोषित को एक ही धरातल पर कब तक साथ रख सकेगी? क्योंकि भाषा की एकता किसी अन्य (भाषा या क्षेत्र) के सामने अथवा विरोधी होने पर तो बन भी सकती है, लेकिन यह मानना कि यह एकता सभी प्रकार की विषमताओं को दूर कर देगी, सही नहीं लगता। किसी भी भाषायी प्रदेश में वर्गीय संघर्ष या कोई और शोषित और शोषक का एक ही भाषा को बोलना किसी स्थायी एकता को नहीं बनाता। यदि ऐसा होता भी है तो रामविलास जी की मार्क्सवादी आलोचना का आधार (वर्ग-चेतना) के परिप्रेक्ष्य में इसे सही नहीं माना जा सकता।

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग  
जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य)  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली  
ईमेल : sgautam20@gmail.com

## संदर्भ सूची

1. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृष्ठ 74
2. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1977, पृष्ठ 270
3. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ 179
4. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 367
5. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 395
6. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ 179
7. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 247
8. वही
9. दूबे, श्यामाचरण, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 17
10. रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृष्ठ 372
11. रामविलास शर्मा, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 15
12. उद्भूत, रामविलास शर्मा, भारतीय साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 358
13. सिंह, नामवर (सं.), चिंतामणि (भाग-3), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983, पृष्ठ 248
14. दूबे, श्यामाचरण, मानव और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 17
15. पी.एन. सिंह, रामविलास शर्मा और हिंदी जाति, आलोचना, अप्रैल 2001, पृष्ठ 87
16. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ 181



डॉ. नारायण कुमार झा

## सिद्ध साहित्य

हमर आलेखक विषय वस्तु कोनो नव नहि अछि, मुद्दा हमर प्रयास अछि जे मैथिली साहित्यक उदभव ओ विकासक कथा के कोनो सीमा संदर्भ में बान्हि के नहि राखल जा सकैछ। किछु विद्वान एकरा प्राक मैथिली निर्माणक काल मानैत छथि। महाराजा हर्षक पश्चात बंगालक पालवंशक राजालोकनिक अधिकार मिथिला पर भगेन्हि। हर्षक मृत्यु 647 ई. पश्चात मिथिलाक इतिहास तिमिराच्छन अछि। हर्ष निःस्तान छलाह। जकर फलस्वरूप ओ कोनो उत्तराधिकारी नहि द सकेल। कामरूपक भास्कर वर्मन हर्षक मित्र छला मुद्दा हिनक मृत्यु के बाद कन्नौज सँ अपन मित्रतापूर्ण संबंध तोर लेलानि।<sup>1</sup> मिथिलाक सामंत अरूणाश्व अथवा अर्जून हर्षवर्दनक मंत्री छला जे गृह राज्य तीरभुक्ति अथवा तिरहुत के केन्द्रराज्य कन्नौज सँ विच्छेद क लेलानि।

अरूणाश्व वा अर्जूनक समय में चीन सम्राट द्वारा एक दूत मंडल के अपमानित कयलनि फलतः तिब्बत एवं नेपालक दुनू राज्यक सैनिक सहायता प्राप्त क वांग-हुएन-त्से मिथिला पर चढ़ाई क देलनि एवं तिरहुतक विजय क लेलनि 2 सातम शताब्दीक पूर्वार्ध में बंगाल में सिंहचन्द्रक पुत्र बालचन्द्र राज्य करैत छलाह। मुद्दा लिच्छवि कुलक प्रतापि राजा पंचम सिंह जकर राज्य तिब्बत सँ त्रिलिंग एवं काशी तथा समुद्र धरि विस्तृत छल ओ बालचन्द्र कै बंगाल सँ निष्ठाकिषत क देलनि। बालचन्द्र अपन पैतृक राज्य सँ विस्तारित भ तीरभुक्ति आवि गेलाह तथा एतय नव राज्यधानी स्थापित कयलनि। हुनक राज्य बंगाल तथा अन्य पाँच प्रदेश में छलनि जाहि मे मिथिलो एक प्रदेश छल।<sup>3</sup> बालचन्द्रक पुत्र महाप्रतापी विजेता

छलाह। ओ बंगाल तथा कामरूप पर आपन आधिपत्य स्थापित कयलनि। पुनः हिनक पुत्र अयोग्य साबित भेला, ओ राज्यकर्म सँ हट सन्यास मार्गक अनुयायी बनलाह। राजा के अभाव में देश शासनहीन भ गेल। जनता में अराजकता व्याप्त भ गेल।<sup>4</sup> पुनः जनता सुयोग्य व्यक्ति के अपन नेता निर्वाचित केला। वो छेला गोपाल। गोपाल लगभग 750 ई. में पाल वंशज स्थापना केलेन तथा सुचारूपेन बंगाल एवं तिरहुत पर शासन कयलनि। पाल लोकनि बौद्ध विष्णु सभक महान संरक्षक छलाह। बौद्धकालिन सभ्यता ओ तांत्रिक विध्या के आश्रय भेटल। पालवंशक शासक विक्रमशिला विश्वविद्यालय के संरक्षण देलनि 5 जएय चौरासि सिद्धगण रहैत छलाह। जाहि में अधिकांश मैथिली में चर्यापद सभ लिखनहि। अपन सिद्ध एवं विभूति लेल प्रसिद्ध बौद्ध तांत्रिक रचना सिद्ध साहित्य कहाबैत अछि। 1416 ई. म. म. हर प्रसाद भारती एकरा बंगला भाषाक प्राचीनतम सम्पति कहि बौद्धगान ओ दोहा कोश नाम सँ बंगला में प्रकाशित करौलनि। केभो एकरा प्राचीन असमिया मानैत छथि। हर प्रसाद भारती एकरा तीन भग में विभाजित कयलनि। 1. चर्यापद विनिच्चय 2. दोहाकोश 3. डाकार्णव

दोहाकोश अप भ्रंश भाषा मे अछि, किन्तु चर्यापद विनिश्चय आ डाकार्णव निश्चित रूप सँ मैथिली साहित्यक प्राचीन ग्रंथ थिक। एकर रचना समक भाषा कँ संध्या भाषा आ आलो अंधारी भाषा कहल जाइत अछि। आलोअंधारी भाषाक अर्थ होइछ जकर वाहय अर्थ किछु आओर होअय जा आंतरिक अर्थ किछु।

## डाक भ घाध वचन

डाक आ घाध वचन मैथिली साहित्यक प्राचीनतम श्रोत अछि। कृषि एवं ज्योतिष सँ संबंधित हिनक पद विशेष महत्वक अछि। कारण ई संगहि धुमक्कड़ जीवन जीकैत छलाह। हिनका लोकनि सूक्ष्म ज्ञान प्रकृतिक साहित्य रहि छोट-क्षीण धटना, गिरगिट, वनमुरगी, सोंप, गैरिया, मेढ़क, चीटी, बकरी, आदि जीव-जन्तुक गतिविधि आ हवाक रूखक आ आकाशक रंग के देखि वर्षाक सटीक अनुमान क लैत छलाह। ओ लोकनि पौष आ माघक वातावरण क देखि मादक वृष्टिक अनुमान करैत छलाह। ओ मानैत छलाह जे ज्येष्ठक महीना यदि वारिस नहि भेल तै सावन-भादो में नीक वर्षा होइत। वर्षाक सटीक अनुमान क लैत छलाह। ओ लोकनि पौष आ माघक वातावरण क देखि माधक वृष्टिक अनुमान करैत छलाह। ओ मानैत छलाह जे ज्येष्ठ क महीना यदि वारिस नहि भेल तै सावन भादो मंभ नीक वर्षा होइत। हिनका लोकनिक द्वारा नक्षत्र आ ग्रहक गतिक गणना तथा ओकर प्रभावक मूल्यांकन लोक हित मे सदैव सत्य साबित भेल अछि। हिनका लोकनिक दोहा आ कहावत में प्रकृतिक अदभूत संयोग आ ओहि सँ सम्बन्धित गूढ़ रहस्य निहित रहैत छल, जे सर्व साधारण कृषक के अहिना सुनैत कंठस्य भ जाइत छल। बहुधा आइओ हम ग्रामीण क्षेत्र में एकर अनुभव क सकैत छी। यथा-

शुक्र दिन की बादरी, रहे सनीचर छाये  
वहे घाध सुन घाधरी, बिनु वरसे नहि जाए।

यदि शुक्र दिन सँ बादल आसमान में आच्छादित रहैत अछि। शनि दिन धरि ओ ओहिना रहैत अछ। तै बिना वरखा भेने नहि जायता।

भादवक छठ चाँदनी जे अनुराधा होय  
उबड़ खाबड़ विज दे अन धनेरा होय।

भादव सुदी छठ कै अनुराधा नक्षत्र पड़ल हो तै उबड़ खाबड़ जमीन में अन्य बोआई बहुत पैदावार होइत अछ।

हस्त वरस चित्र मडराए  
धर बैठे किसान सुख पाए।

हस्त नक्षत्र में पानी बरसने आ चित्रा में बादल मडराने सँ किसान धर बैठल सुख पबैत छ।

पुरवा रोपे पुर किसान  
आधा खखड़ी आधा धान।  
गेहूँ वाहे धान विदाहे

गेहूँक पैदावार अधिक जोत सँ आ धानक पैदावार विदाइने सँ अधिक होइत अछि।

तीन चार सौ वर्ष पुरान अनेकों काल पत्रक लेख में डाकक वचन उल्लिखित भेटक छ। हरपति ठाकुरक एक गोट ग्रांट व्यवहार दिपक में डाकक अनेक वचन प्रमाण रूपे उपलब्ध अछ।

यथा

मेष मीन तिअ दण्डा दीक्ष

त उपरि दिअ पल अठतीस वृष कम्भा चौदण्डा मान  
पल एगारह मृगु तीस मान

म्हाराज शुभंकर ठाकुर अपन (तिथि द्वैत निर्णय में) डाकक वचन उद्धृत करैत कहैत छथि।

स्वाति दीआ जे वरए विसरवा खेलए गाय

टवसओं नर वर जुगार अन्न महग्धा जाय।

चर्यापद विनिश्चय चर्यापद नाम सँ ख्यात अछि। चर्यापदक भाषा, व्याकरण, रचना शैली आजुक मैथिली सँ साम्य अछि। जकरा में एहेन सांस्कृतिक विशेषताएं उल्लेख अछि से मैथिली जनपदक थिक।

सिद्धरथु मइ पढ़ने पढ़िअक

मण्ड पिवन्तक विसरह एमइउ

मिथिलांचल में अक्षरांभ आइयो सिद्धरस्तु सँ होइत अछि। एतय एखनहु विश्वास छैक जे माड़ पीला स मेधाशक्ति हास हो जाइत अछि। तै कोनो नेना कै माड़ भात नहि देल जाइत अछि। सिद्ध लोकनिक मिथिलाक छल मैथिल छल। आई विज्ञानक युग अछि। उपग्रह द्वारा मौसम आदि के जानकारी देल जाइत अछि। जे आंशिक सत्य होइत अछ। मुधा आई सँ हजारो साल पूर्व सिद्ध लोकनिक भविष्यवाणी पूर्णत सत्य होइत छ। एकर मूल कारण छल। इ लोकनि कारण छल। ई लोकन प्राकृतिक सानिध्य रहि ओहि में बदलाव, जीव जन्तु में अध्ययन एवं अनुशीलन ओकर हाव भाव आदि के आधार पर अपन भविष्यवाणी करैत छला जै पूर्णत सत्य छल। मिथिला कृषक डाक घाधक वचनक अनुसार कृषि कार्य करैत छलाह, जे बहुत अन्य उपजावैत छलाह। किछु डाक वचन एतय देखल जाय।

1. कपड़ा पहिरी तीन दिन, बुध, वृहस्पति, शुक्र दिन शनि जाइरा रवि फाड़ए सोमा करए सुडाह  
मंगल मारर जीव सँ, बुध पहिरि धर आह।
2. नंगटे पहिरी भुखले खाइ, जहाँ मन आवए तहाँ

जाई।

3. रवि के पान सोम के दर्पण  
मंगल किछु किछु धनिया चर्वन  
बुध में गुड़ वृहस्पति के राई,  
शुक्र कहए जे दहि सोहाई  
शनि कहए मोहि अदरक भाव,  
सकल काजके जीत धर आव

ने गुनि भदवा ने दिगभूल कहलि  
डाक ई अमृत समहूक।  
आदि लोक जीवन सँ सम्बन्धित पद अनुसार मिथिलावासी  
सकल जीवन आपन जीवन व्यतीत करैत छलाह।

मैथिली विभागाध्यक्ष  
डी.एस. कॉलेज, कटिहार

---

### संदर्भ सूची

1. हिस्ट्री ऑफ मिथिला - डॉ. उपेन्द्र ठाकुर, पृ. 204
2. हिस्ट्री ऑफ नेपाल - आर. सी. मजुमदार, पृ. 183
3. मैथिली साहित्यक इतिहास - डॉ. जयकान्त मिश्र, पृ. 27
4. हिस्ट्री ऑफ बंगाल भाग 1 - डॉ. सुनील कुमार चैटर्जी



डॉ. प्रेम प्रकाश मीणा

## फैशन का बदलता स्वरूप और मीडिया

‘फैशन’ और ‘मीडिया’ दोनों ही आज के सर्वाधिक चर्चित विषय हैं। विश्वविद्यालय कैम्पस से लेकर बॉलीवुड हॉलीवुड तक हर जगह फैशन और मीडिया की हलचल सर्वविदित है। फैशन टीवी और उसके बाद सोशल मीडिया के आने के बाद समूची दुनिया में फैशन के प्रवाह में कई गुना वृद्धि हुई है। निरन्तर चलने वाली फैशन परेडों के जरिए चोली, स्कर्ट, जंपर, चड्ढी, पैंट, कोट, टोप, स्वेटर से लेकर सूट तक हर तरह के हर मौसम और हर समय के कपड़ों का अहर्निश प्रदर्शन बाजार की मंशाओं को आदर्श रूप में पेश करता है। फैशन टीवी का बुनियादी लक्ष्य है—शरीर और फैशन की महत्ता स्थापित करना। शरीर अनाकर्षक तो फैशन भी अनाकर्षक। जब कभी अनाकर्षक शरीर का मॉडल आ जाता है तो वह फैशन को भी बदसूरत बना देता है। फैशन टीवी की भाषा शरीर की भाषा है, यह ऐसी भाषा है जो बेलाग, खुलेपन और संशयहीनता की प्रेरक है। यह सजावट, पहनावे या स्टाइल की बात नहीं करती, बल्कि ‘एटीट्यूट्स’ निर्मित करती है। ‘एटीट्यूट्स’ ही फैशन की धुरी है। इन ‘एटीट्यूट्स’ अर्थात् फैशन को अधिकाधिक ग्लैमराइज करते हुए यूनिवर्सल रूप देता है मीडिया। आज न केवल अच्छे कपड़े पहनना, बल्कि ‘सम्पूर्ण जीवन पद्धति’ का नाम फैशन है। इसलिए आज फैशन ‘स्टाइल स्टेटमेंट’ और ‘स्टेटस सिंबल’ के रूप में हमारे सामने है। जैसा कि एस.आर. स्टीनमेट्ज़ कहते हैं “‘फैशन का अर्थ है युगानुरूप स्टाइल में चरित्रगत, परिवर्तन।’” अतः फैशन स्थायी नहीं हो सकता परन्तु उसके परिवर्तनों को वर्तमान मीडिया समाज तक प्रसारित कर समाज को उसका अनुकरण

करने के लिए ‘बाध्य’ कर देता है और समयानुरूप अपडेट रहने की ‘मजबूरी’ के कारण लोग इस फैशन का अंधानुकरण भी करने लगते हैं।

नवीन फैशन के बदलावों के संदर्भ में टेलीविजन के धारावाहिकों, कार्यक्रमों, वृत्तचित्रों, कलाकारों, चलचित्र इत्यादि को सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

हिन्दी ‘फैशन’ का समानार्थी शब्द ‘प्रचलन’ प्रतीत होता है यहां प्रचलन एवं प्रचलित में अंतर है। यह ‘प्रचलन’ प्रचलित होने पर रूढ़ि या परंपरा दोनों ही बन सकता है। फैशन के अन्तर्गत मानव-जीवन के वे समस्त ऐच्छिक क्रिया-कलाप समाहित हैं जो परम्परा या रूढ़ि प्रदत्त नहीं है। अतः फैशन एक प्रदर्शन-प्रिय जीवन-शैली है। फैशन का जन्म किन्हीं व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा ही होता है। यह प्रयास एक से अधिक लोगों का भी हो सकता है, परन्तु कोई भी फैशन अपने आप में पूर्णतया मौलिक नहीं होता, वह नवीन अवश्य होगा। फैशन की यह नवीनता ही उसका ‘मेरूदण्ड’ होती है। फैशन के मूल में प्रदर्शन एवं अंधानुकरण होने के कारण यह एक संक्रामक रोग के समान बड़ी तीव्रता से फैलता है। फैशन की इस संक्रामकता में जो लोग असावधान (निम्न-मध्यवर्ग) रहते हैं वे तो इसकी चपेट में बहुत बुरी तरह आते ही हैं, प्रबुद्ध लोग (उच्च वर्ग) भी इसके संक्रमण से पूरी तरह बचे रहने का दावा नहीं कर सकते। हां, यह बात अलग है कि प्रबुद्ध लोग उस फैशन-विशेष का अपनी चेतना से परिष्कार कर आत्मसात् करता है। आखिरकार फैशन के इस संक्रमण से चेतनशील व्यक्ति भी क्यों नहीं बच पाता? वर्ष 2008 में आई बॉलीवुड फिल्म ‘फैशन’ इसे अच्छी तरह से प्रस्तुत

करती है।

विज्ञान के अनुसार, 'परिधि केन्द्र की ओर आकर्षित होती है।' समाज विज्ञान की दृष्टि से फैशन के संदर्भ में भी यही नियम लागू होता है। फैशन की आयु उसके अनुकरणकर्ताओं के सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक हैसियत पर निर्भर करती है। ऐसे लोग जो वर्चस्व के केन्द्र में होते हैं वे अल्पसंख्यक होते हैं, परन्तु उसकी अपीलिंग-पॉवर हाशिए के लोगों की हीनता-ग्रंथि के कारण हाशिए के लोगों को केन्द्र के अल्पसंख्यकों की ओर आकर्षित करती है। केन्द्र के लोग जब किसी फैशन को अपनाते हैं तो हाशिए के लोगों को वह फैशन बिजली की भाँति अपनी चकाचौंध से चमत्कृत कर देता है जिससे हाशिए के लोग अपनी सुध-बुध खोकर अपना जीवन स्तर (स्टेट्स) ऊँचा दर्शाने के लिए उस विशिष्ट फैशन का अंधानुकरण करते चले जाते हैं। परिधि के प्रबुद्ध लोगों में भी कुछ वर्ग उसका विरोध तो करते हैं, परन्तु उनकी जीवन-शैली (लाइफ स्टाइल) के प्रति तीव्र रूप से आकर्षित भी रहते हैं। अपने अवचेतन की इस आकर्षण शक्ति के कारण प्रबुद्धों का वह वर्ग भी फैशन के संक्रमण का शिकार होता चला जाता है। फैशन एवं विचार (दृष्टिकोण/एटीट्यूड) में मतभेद दर्शाकर यह प्रबुद्ध वर्ग अपने अहम् को तुष्ट भी कर लेता है।

वैसे, यह विवादित रहा है कि फैशन का उदय उच्च वर्ग से हुआ अथवा निम्नवर्गीय समाज से। इस संदर्भ में हरबर्ट स्पेंसर अपनी कृति 'प्रिंसिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी' (चार खण्ड) में विस्तार से चर्चा करते हैं। वह लिखते हैं कि 'फैशन का उच्च और निम्नवर्ग विकास करते हैं। निम्नवर्ग के द्वारा फैशन का कोई रूप अपना लिए जाने के बाद उच्च वर्गों पर दबाव पड़ता है कि वे अपनी वेशभूषा बदले।' जगदीश्वर चतुर्वेदी भी फैशन को सामाजिक हैसियत से जोड़ते हैं।

जो भी हो, परन्तु फैशन को उसका वास्तविक स्वरूप तभी प्राप्त हो पाता है जब वह प्रसारित हो जाए अथवा उसका दायरा विस्तृत हो जाए। किसी वस्तु अथवा विचार को प्रचारित-प्रसारित करने के लिए मनुष्य स्वयं से इतर अन्य साधनों का प्रयोग करता है। फैशन के प्रचार हेतु आधुनिक काल में विशिष्ट माध्यमों का जन्म एवं प्राचीन माध्यमों का परिष्करण एवं विकास हुआ। इन विभिन्न माध्यमों की प्रसार क्षमता में काल की निर्णायक भूमिका

है। इस दृष्टिकोण से फैशन के प्रचार-प्रसार में इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों (मीडिया) की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में विज्ञापन, समाचार, नृत्य-संगीत, चलचित्र, धारावाहिक एवं अन्य कार्यक्रम प्रमुख फैशन-प्रचारक साधन हैं। काल की दृष्टि से विज्ञापन सबसे कम तथा चलचित्र (सिनेमा) सबसे अधिक समय घेरता है, परन्तु आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि जो साधन जितना कम समय लेता है वह उतना ही ज्यादा फैशन को प्रभावित-प्रसारित भी करता है।

इसका कारण यह है कि विज्ञापन का निर्माण एवं प्रसारण किसी विशिष्ट उपभोक्ता वर्ग को लक्ष्य करके किया जाता है। जबकि अधिकांश भारतीय फिल्में सम्पूर्ण परिवार एवं समाज को ध्यान में रखकर बनायी जाती है। वस्तु या विचार को उपभोक्ता वर्ग तक विज्ञापित करना तथा उस उत्पाद का उपभोग करने हेतु उपभोक्ता को प्रेरित करना विज्ञापन का घोषित लक्ष्य होता है। इसके साथ ही बाजार की प्रतिस्पर्धा के कारण नवीन उपभोक्ता को तैयार करना ही विज्ञापन जगत का कार्य होता है। प्रतिस्पर्धा के कारण तथा उपभोक्ताओं की दृष्टि में उत्पाद को नित-नवीन बनाए रखने तथा उपभोक्ताओं की 'जरा हटके' की मांग ही विज्ञापन जगत को नए फैशन को जन्म देने अथवा पुराने का परिष्करण करने की ओर प्रेरित करती हैं। अतः उत्पाद की विशिष्टता का दावा करने के साथ-साथ ऐसे आचार-विचार-व्यवहार को भी उपभोक्ताओं तक यह दावा करते हुए परोसा जाता है कि अमुक उत्पाद का उपभोग करने वाला भी उतना ही विशिष्ट हो जायेगा, जितना विज्ञापन का कार्य करने वाला कलाकार है। एफ. एंगेल्स ने 'दि इमेजेज ऑफ पॉवर' में लिखा है कि 'विज्ञापन की यह खूबी है कि वह भविष्य के सपनों को जगाता है और बार-बार पुनरावृत्ति कर उन्हें सामाजिक विश्वास में बदल देता है।'

दूसरी ओर चलचित्रों का प्रमुख ध्येय एक कथा द्वारा अपने दर्शकों को आकृष्ट करना है। इस आकर्षण के लिए चलचित्र विज्ञापन का भी प्रयोग करते हैं। व्यक्तिगत तौर पर कथा-वस्तु की न्याससंगतता के कारण चलचित्र मनमाने फैशन को दर्शकों तक नहीं परोस सकते हैं। अपनी बहुपात्रता एवं दीर्घावधि के कारण भी चलचित्र फैशन के संदर्भ में दर्शकों के मन-मस्तिष्क को उस तरह चमत्कृत नहीं कर पाते, जिस तरह विज्ञापन करता है। साहित्य का

उदाहरण लें तो मुक्तक एवं प्रबंध की तुलना में मुक्तक हमें ज्यादा चमत्कृत करता है। हालांकि जो फिल्मों किसी विशिष्ट दर्शक वर्ग को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं वे फैशन को जन्म देने एवं प्रसारित करने में अहम् भूमिका निभाती हैं। जैसे-‘दिल चाहता है’, ‘दिल तो पागल है’ ‘कुछ कुछ होता है’, ‘रंग दे बसंती’, ‘गजनी’, ‘रब ने बना दी जोड़ी’, ‘फैशन’ इत्यादि।

विज्ञापन में किसी भी उत्पाद अथवा विचार की क्रमिक आवृत्ति होती रहती है। फिल्म विशेष की आवृत्ति की तुलना में विज्ञापन विशेष की बहुसंख्य आवृत्ति उसे अपने उपभोक्ता वर्ग को मानसिक तौर पर उस उत्पाद/विचार तथा उससे जुड़े फैशन को अपनाने के लिए तैयार कर देता है। कई डिओडरेंट, परफ्यूम, कार एवं बाइक के विज्ञापन इसके ठोस उदाहरण हैं।

स्वाभाविक तौर पर मनुष्य नएपन की तलाश में रहता है लेकिन नएपने को एकाएक आत्मसात् करने से हिचकता है। विज्ञापन की क्रमिक आवृत्तियों के कारण मनुष्य को नएपन को आत्मसात् करने की हिचक से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

फैशन को उपभोक्ता वर्ग तक परोसने में सिने कलाकारों, खिलाड़ियों एवं प्रतिष्ठित मॉडल्स का महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये लोग फिल्मों की तुलना में विज्ञापनों द्वारा फैशन को ज्यादा प्रचारित-प्रसारित करते हुए ‘पब्लिक आइकन’ बन जाते हैं और पब्लिक उनके जैसा लाइफस्टाइल (जीवन-शैली) चाहने लगती है। विज्ञापनों में कार्य करने के दौरान ये ‘पब्लिक आइकन’ (कलाकार) अपनी सम्पूर्ण सिनेमाई चकाचौंध एवं गरिमा के साथ व्यक्तिगत रसूख को प्रदर्शित करते हुए उपभोक्ताओं के समक्ष अवतरित होते हैं। जबकि फिल्मों में कार्य करते समय इन कलाकारों की वैयक्तिकता को फिल्म के प्रारम्भ होने के कुछ ही पल बाद साधारणीकरण द्वारा अधिकांश दर्शक वर्ग भूल जाता है।

उदाहरणस्वरूप देखें तो सन् 2001 में आमिर खान की ‘दिल चाहता है’ और ‘लगान’ दो फिल्मों प्रदर्शित हुई। इनमें ‘लगान’ हर आम भारतीय के लिए थी जबकि ‘दिल चाहता है’ विशिष्ट रूप से शहरी, मध्यम एवं उच्च वर्ग के युवाओं को ध्यान में रखकर बनाई गई थी।

यहां फैशन की दृष्टि से तुलना में ‘दिल चाहता है’ ने भारतीय फैशन ‘दिल चाहता है’ ने भारतीय फैशन जगत

में तहलका मचा दिया था। इसका प्रमुख कारण यह था कि ‘लगान’ के आमिर खान एवं ‘दिल चाहता है’ के आमिर खान में वैयक्तिक प्रभामंडल एवं चकाचौंध की दृष्टि से जमीन-आसमान का अंतर था। ‘दिल चाहता है’ का आमिर खान अपने निजी जीवन के ग्लैमर से बहुसाम्य रखता था। यही तुलना वर्ष 2008 में आई फिल्म ‘रब ने बना दी जोड़ी’ में शाहरूख खान के दोनों चरित्रों (सुरेन्द्र सूरी – राज) में की जा सकती है जो कि समाज के दो वर्गों की कहानी कहता है। फिल्म ‘फैशन’ भी इसका प्रमुख उदाहरण है।

यहां एक महत्वपूर्ण बात यह है कि आज फिल्मों और विज्ञापन बहुत ही ग्लैमरस एवं फैशनेबल तरीके से बनाये जाते हैं। यहां तक की अखबार एवं फैशन-पत्रिकाएं तथा उनके विज्ञापन इत्यादि भी बहुत ‘हटके डिजाइन किये जाते हैं जिसका सीधा असर जनता के मन-मस्तिष्क पर पड़ता है और जनता के कुछ वर्ग उस जीवन-शैली (लाइफ स्टाइल) के ‘गुलाम’ होने लगते हैं। परन्तु फैशन के ‘अंधानुकरण’ से बचना चाहिए क्योंकि फैशन की भी कुछ सीमाएं हैं। जब एक सीमा लांघ दी जाती है तो फैशन, फूहड़ता का रूप लेने लगता है। यह फूहड़ता अश्लीलता को जन्म देती है और यह अश्लीलता आकर्षण के स्थान पर अनाकर्षण को जन्म देती है। वर्तमान मीडिया (सिनेमा आदि) अथवा सोशल-मीडिया के विभिन्न प्लेटफॉर्म कई बार फैशन का भोंड़ा प्रदर्शन करता है परन्तु इसमें इतना संतुलन होना चाहिए कि फैशन नग्नता का रूप ग्रहण न कर सके। फैशन के नाम पर भारतीय संस्कृति को तिलांजलि देकर पाश्चात्य संस्कृति को अपनाना अपनी जड़ों पर कुठाराघात करना होगा। नवीनता (आधुनिकता) अच्छी बात है। पर पुरानी अच्छी चीजों/विचारों को भी बनाये रखना आवश्यक है क्योंकि फैशन के नाम पर नग्नता का ही परिणाम है कि बलात्कार जैसी घटनाओं में इजाफा हुआ है।

इसी के चलते कुछ समय पहले उत्तर प्रदेश के एक शहर कानपुर के एक कॉलेज में लड़कियों के जींस पहनने एवं अति फैशनेबल (फूहड़) बनने पर रोक लगाने की खबर भी अखबारों में छपी थी। यह तो एक उदाहरण है परन्तु फैशन में अच्छी चीजों/विचारों का समावेश जरूरी है न कि पाश्चात्य फैशन का अंधानुकरण। वैसे भी युग एवं परिवेशानुरूप बदलाव ही फैशन है अतः इसके परिप्रेक्ष्य

(भारतीय/पाश्चात्य) का ध्यान रखना उचित होगा। मीडिया को भी इस बदलाव को सहज (फैशन) रूप से प्रस्तुत करना चाहिए। मीडिया का असहज (फूहड़) प्रदर्शन हमारी सभ्यता एवं संस्कृति पर हमला होगा। वर्तमान में, सोशल मीडिया ने इस अहर्निश प्रदर्शन की हमें खुली छूट दी है। टिक-टोक, इंस्टा रील्स से लेकर फेसबुक, यूट्यूब

इत्यादि ने फैशन के प्रचार-प्रसार के साथ ही फूहड़ता को भी बढ़ावा दिया है इसलिए इन माध्यमों का संभलकर प्रयोग करना बेहतर होगा।

सहायक प्रोफेसर  
हिंदी विभाग, लक्ष्मी बाई कॉलेज,  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

---

### संदर्भ सूची

1. माध्यम साम्राज्यवाद, जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ. 74.
2. माध्यम साम्राज्यवाद, जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ. 75.
3. माध्यम साम्राज्यवाद, जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ. 51.



निर्मला

## वृद्धाश्रमों की प्रबन्धन पद्धति का विश्लेषणात्मक अध्ययन : रोहतक जिले के सन्दर्भ में

### शोध लेख सार

प्रस्तुत शोधपत्र वृद्धाश्रमों की प्रबन्धन पद्धति के अध्ययन से संबंधित है। जिसके लिए हरियाणा राज्य के रोहतक जिले के दो वृद्धाश्रमों का चयन उद्देश्यपूर्ण विधि द्वारा किया गया है। आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए साक्षात्कार व अनुसूची विधि का प्रयोग किया गया है जिसके अन्तर्गत दो अनुसूचियां बनाई गई हैं। प्रथम अनुसूची का प्रयोग वृद्ध आश्रम के प्रशासनिक अधिकारियों के लिए किया गया। जिसमें 15 बहुउद्देश्यपूर्ण प्रश्नों का प्रयोग किया गया है। दूसरी अनुसूची का प्रयोग वृद्धाश्रमों में रहने वाले वृद्धजनों के लिए किया गया। जिसमें 12 बहुउद्देश्यपूर्ण प्रश्नों को शामिल किया गया है। एकत्रित आंकड़ों से प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करके व्याख्या की गई है। शोध से प्राप्त निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि रोहतक वृद्धाश्रमों की प्रबन्धन पद्धति से अधिकतर वृद्धजन संतुष्ट हैं।

**मुख्य शब्द :** संतुष्टि स्तर, प्रबन्धन पद्धति, अधिकारी, वृद्ध, गैर सरकारी संगठन।

### भूमिका

प्राचीनकाल से ही भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली चली आ रही है तथा भारतीय समाज की परंपराओं, संस्कृति एवं इसके सामाजिक मूल्यों के कारण परिवार में वृद्धों का बड़ा आदर होता रहा है। इसमें एक ही छत के नीचे तीन-तीन पीढ़ियां एक साथ प्रेम और सद्भाव के साथ रहती आई हैं। घर परिवार के कामों में बुजुर्गों से सलाह मशविरा लिया जाता है। भारतीय संयुक्त परिवार प्रणाली उनको सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है तथा पूरी देखभाल करती है।<sup>1</sup>

भारतीय साहित्य का अध्ययन करने से वरिष्ठ नागरिकों के स्वरूप को अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है। भारतीय साहित्य में सर्वप्रथम वेदों की गणना होती है और वैदिक साहित्य में वृद्धों के प्रति सम्मान, सेवाभाव का भरपूर उल्लेख किया गया है। गीता में भी वरिष्ठ नागरिकों को महापुरुष का दर्जा दिया गया है। श्री कृष्ण स्वयं इसके प्रतीक हैं। उनके अनुसार वरिष्ठ नागरिकों का कर्तव्य है समाज और राष्ट्र को पतन से बचाना और एक नई दिशा देना। भारतीय परम्परा के अनुसार आशीर्वाद प्राप्त करना सौभाग्य एवं विजय का सूचक माना जाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है कि आपने बड़े-बुजुर्गों, माता-पिता एवं गुरुजनों से आशीर्वाद मिलने से मनुष्य का मनोबल बढ़ता है। इससे एक प्रकार की शक्ति अनुभव होती है।<sup>2</sup>

### वृद्धाश्रमों की आवश्यकता

वर्तमान समय की सच्चाई यह है कि वृद्धों को आदर सम्मान देने वाले इस देश में माता-पिता को, विशेष रूप से बुजुर्गों को तिरस्कृत, उपेक्षित और अपमानित किया जाने लगा है। उन्हें यह अहसास कराया जाता है कि परिवार के अहम् फैसलों में उनकी कोई भूमिका नहीं है। आज समाज ने पाश्चात्य संस्कृति को इतना अधिक अपना लिया है कि वे अपनी संस्कृति के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना भी जरूरी नहीं समझते।<sup>3</sup>

बुजुर्गों से दुर्व्यवहार करना केवल पश्चिमी देशों में ही नहीं बल्कि इसके प्रभाव से भारत में भी यह आम समस्या बनती जा रही है। जिन बच्चों को माता-पिता अपने खून पसीने से योग्य बनाते हैं, वे भी रोजगार पाने के बाद उनसे दूर हो जाते हैं। इसी कारण परिवार के सदस्यों का लगाव

कम होता जा रहा है। जिसके लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं—दरिद्रता, बेकारी, अर्धबेरोजगारी, नगीरकरण, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, सामाजिक मूल्यों का पतन, औद्योगिकरण, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, सामाजिक मूल्यों का पतन, औद्योगिकरण आये हैं।<sup>4</sup>

वृद्धावस्था में व्यक्ति विचारों और अनुभवों की दृष्टि से समृद्ध होता है। लेकिन उनके अनुभव आज की युवा पीढ़ी को 'गए जमाने की बात' लगते हैं। परिवार के युवाओं को उनकी रोक-टोक अपने विकास, अपनी स्वतंत्रता में बाधा लगने लगती है। ऐसी अवस्था में वे एक आदर्श परिवार की कल्पना की पूर्ति नहीं कर पाते हैं तो वे इस अकेलेपन का समाधान वृद्धाश्रमों में खोजने का प्रयास करते हैं।<sup>5</sup>

परिणामस्वरूप वृद्धजनों को अनदेखा किया जाने लगा है एवं उनके प्रति लगाव कम होने लगा है। बुजुर्गों को परिवार में बोझ समझा जाने लगा है क्योंकि युवावर्ग का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी होता जा रहा है। आर्थिक विषमताओं के कारण परिवार के सभी जन पैसा कमाने की होड़ में परिवार के वृद्धों को अनदेखा कर रहे हैं जिससे उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा उन्हें स्वयं ही अपनी देखभाल करनी पड़ती है।<sup>6</sup>

ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्थिति बदल गई है। परिवार की पीढ़ियों में विभिन्न दृष्टिकोण होने के कारण वृद्धों को अपने जीवन के अंतिम वर्षों में परिस्थितियों से समझौता कर अपना समय काटना पड़ता है। जब पारिवारिक सदस्यों द्वारा बुजुर्गों के प्रति इस उपेक्षा ने भयावह रूप ले लिया। समाज में बुजुर्गों पर अत्याचार तथा जुर्म बढ़ गए तब सरकार तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा इस समस्या के निवारण के लिए उपाय ढूँढना आवश्यक हो गया। सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं को ऐसे आश्रय स्थलों की आवश्यकता महसूस हुई जहाँ पर ऐसे निराश्रित एवं उपेक्षित बुजुर्गों को आश्रय दिया जा सके तथा उनको मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकें। अतः वृद्धों की समस्या व उनकी सुरक्षा न केवल भारत की विश्वस्तर पर चिन्ता का विषय बन गया है। वृद्ध व्यक्ति की संख्या जिनकी आयु 60 वर्ष या इससे अधिक है जो 2020 में विश्व स्तर पर 992 मिलियन से बढ़कर 2.1 बिलियन हो गई है। जो दुनिया की कुल आबादी का 13 प्रतिशत प्रतिनिधित्व करते हैं। इस जनसंख्या की वृद्धि दर 3 प्रतिशत सालाना है। अनुमान के मुताबिक 2030 तक

विश्व में बुजुर्ग व्यक्तियों की संख्या 1400 मिलियन तक पहुंच जाएगी।<sup>7</sup>

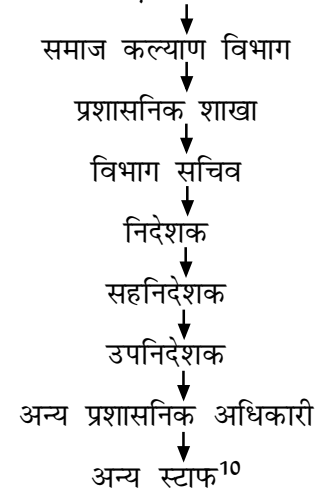
### वरिष्ठजनों के लिए संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्त

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1992 में वृद्धों के कल्याण संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया। उसी वर्ष से वृद्ध व्यक्तियों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वृद्ध दिवस प्रत्येक 1 अक्टूबर को मनाया जाता है, इसी वर्ष 16 दिसंबर 1992 को वृद्धजनों के लिए संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों को अंगीकृत किया गया, जो वृद्धावस्था संबंधी अन्तर्राष्ट्रीय कार्ययोजना पर आधारित है। ये सिद्धान्त सभी देशों की सरकारों द्वारा अपने राष्ट्रीय कार्यक्रमों में सम्मिलित किये गए हैं।<sup>8</sup>

### हरियाणा में वृद्धाश्रमों की स्थिति

वर्तमान में हरियाणा में कुल जनसंख्या का 1/3 भाग वरिष्ठ नागरिक हैं। राज्य में वृद्धजनों की दिन-प्रतिदिन बढ़ती समस्याओं के कारण और निराश्रित वृद्धों को अक्षय एवं मूलभूत सुविधाएं प्रदान करने के लिए प्रयास किये गए हैं। राज्य द्वारा सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से वृद्धाश्रमों का संचालन किया जाता है। वृद्धाश्रमों का कार्यसंचालन या वृद्धों संबंधी कल्याण कार्य समाज कल्याण विभाग के अन्तर्गत आते हैं। इस विभाग में समाज के कमजोर, बेसहारा, निराश्रित और आर्थिक तौर पर पिछड़े वर्गों के कल्याण कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया जाता है। वर्तमान में हरियाणा में कुल 27 वृद्धाश्रम चलाए जा रहे हैं जिनमें से 26 गैर सरकारी संगठनों द्वारा संचालित है एवम् 1 सरकार द्वारा संचालित है।<sup>9</sup> इसलिए समाज कल्याण विभाग के संगठन के बारे में जानना आवश्यक हो जाता है। जिसका प्रशासनिक ढांचा इस प्रकार है—

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय



## शोध के उद्देश्य

1. वृद्धाश्रमों के संचालन में संसाधनों के प्रबन्धन का अध्ययन करना।
2. वृद्धाश्रमों में रहने वाले वृद्धजनों को मिलने वाली सुविधाओं का पता लगाना।

## शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध के लिए हरियाणा राज्य के जिला रोहतक के 5 ब्लॉक में से रोहतक ब्लॉक के 2 वृद्धाश्रमों (जन सेवा संस्थान वृद्धाश्रम एवं महिला वृद्धाश्रम श्रीनगर कॉलोनी) को अध्ययन में शामिल किया गया है। प्रत्येक वृद्धाश्रम से 5 प्रबन्धकों एवं 25 वृद्धजनों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि द्वारा किया गया है। इस प्रकार प्राथमिक आंकड़ों के संकलन के लिए कुल 60 उत्तरदाताओं से साक्षात्कार व अनुसूची विधि द्वारा जानकारी प्राप्त की गई है। इसके अतिरिक्त अवलोकन विधि का भी प्रयोग किया गया है। वहीं द्वितीय आंकड़ों का संकलन किताबों, शोधपत्र, पत्रिकाओं, समाचार पत्र एवं इंटरनेट के माध्यम से किया गया है। दिये गये उत्तरों के आधार पर आंकड़ों का विश्लेषण करके व्याख्या की गई है।

## प्रथम अनुसूचि से सम्बन्धित उत्तर

### वृद्धाश्रमों के संचालन हेतु प्रबंध के बारे में जानना

कोई भी संस्था चाहे वह सरकारी हो अथवा गैर सरकारी हो उसके संचालन के लिए संसाधनों की आवश्यकता होती है। इन संसाधनों को जुटाने के लिए जनता एवं सरकार का सहयोग आवश्यक रहता है ताकि जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर उनका संचालन किया गया है उसे पूरा किया जा सके जैसा कि हैनरी फेयोल ने प्रबन्ध के बारे में परिभाषित करते हुए कहा-“प्रबन्ध करने से आशय पूर्वानुमान लगाना व योजना बनाना, संगठन करना, निदेशन करना, समन्वय काना तथा नियन्त्रण करना है।”<sup>11</sup> इसी परिभाषा के आधार पर वृद्धाश्रम संचालकों से यह जानने का प्रयास किया गया है कि वे वृद्धाश्रमों के संचालन हेतु संसाधनों का प्रबन्धन किस प्रकार करते हैं।

तालिका 1.1

### वृद्धाश्रमों के संचालन हेतु प्रबंध के बारे में जानना

| क्रम | वित्तीय स्रोत     | हाँ         | नहीं        | उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत |
|------|-------------------|-------------|-------------|-------------------------------------|
| 1    | चंदा इकट्ठा करके  | 10<br>(100) | 00          | 10<br>(100)                         |
| 2    | सरकार के सहयोग से | 00          | 10<br>(100) | 10<br>(100)                         |
| 3    | चैरिटी क्लबों से  | 10<br>(100) | 00          | 10<br>(100)                         |
| 4    | जनता के सहयोग से  | 10<br>(100) | 00          | 10<br>(100)                         |

### स्रोत: प्राथमिक आंकड़ें

उपरोक्त तालिका 1.1 वृद्धाश्रमों के संचालकों द्वारा दिये गए उत्तरों पर आधारित है जिसमें शोधार्थी द्वारा वृद्धाश्रमों के संचालन हेतु वित्तीय संसाधनों के प्रबन्धन/स्रोत संबंधी आंकड़े एकत्रित किये गए। अतः आंकड़ों से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों वृद्धाश्रमों के सभी संचालक (100 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के अनुसार वृद्धाश्रमों के संचालन में जनता का पूरा सहयोग मिलता है एवं चंदा एकत्रित करके भी सहायता राशि जुटाई जाती है। साथ ही चैरिटी क्लबों द्वारा भी इनको सहायता राशि प्रदान की जाती है। जिनके सहयोग से इनका संचालन एवं प्रबन्धन सुचारू रूप से हो रहा है। इसके साथ ही सभी संचालक (100 प्रतिशत) उत्तरदाताओं द्वारा दी गई सूचना से स्पष्ट है कि उनको सरकार की तरफ से कोई सहायता राशि नहीं दी जाती है। यह एक विचारणीय विषय है क्योंकि सरकार का सहयोग भी बहुत

आवश्यक है ताकि ये संगठन और अधिक प्रतिबद्धता के साथ वृद्धों के लिए कल्याण कार्य कर सकें।

अतः सरकार द्वारा ऐसी संस्थाओं को सहायता राशि प्रदान की जानी चाहिए ताकि असहाय और निराश्रित व्यक्तियों की सहायता की जा सके।

#### वृद्धाश्रम संचालन में आने वाली समस्याओं संबंधी

किसी भी संस्था का जब निर्माण किया जाता है और संचालन किया जाता है तो बहुत सारे संसाधनों की आवश्यकता होती है ताकि संचालन कार्य सुचारू रूप से किया जा सके। संसाधनों को जुटाने के लिए संचालकों को बहुत सी समस्याओं से जूझना पड़ता है। इसी आधार पर संचालकों से यह जानकारी जुटाने का प्रयास किया गया है कि संचालक में किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

तालिका 1.2

#### वृद्धाश्रम संचालन में आने वाली समस्याएं

| क्रम | समस्या                                 | हाँ           | नहीं          | उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत |
|------|----------------------------------------|---------------|---------------|-------------------------------------|
| 1    | वित्त की कमी                           | 08<br>(80.00) | 02<br>(20.00) | 10<br>(100.00)                      |
| 2    | जन सहयोग की कमी                        | 02<br>(20.00) | 08<br>(80.00) | 10<br>(100.00)                      |
| 3    | कर्मचारियों व स्टाफ की व्यवस्था संबंधी | 00            | 10<br>(100)   | 10<br>(100)                         |

#### स्रोत: प्राथमिक आंकड़ें

उपरोक्त तालिका 1.2 के आंकड़ों से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों वृद्धाश्रमों के (80 प्रतिशत) संचालक उत्तरदाताओं का मानना है कि उन्हें संचालन कार्यों को पूरा करने के लिए वित्तीय समस्या से जुझना पड़ता है जैसे-डॉक्टर को बुलवाना, वृद्धों के लिए साधन जुटाना और स्वास्थ्य शिविरों का आयोजन करने के लिए कई बार वित्तीय समस्याएं आ जाती हैं जबकि 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना है कि उन्हें वित्त की कमी के साथ ही कभी-कभी जनता का पूर्ण सहयोग न मिलने पर भी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार सभी संचालकों (100 प्रतिशत) द्वारा दी गई सूचना से यह स्पष्ट है कि उन्हें कर्मचारियों व स्टाफ की व्यवस्था में समस्या नहीं आती है जिनका प्रबन्धन वे कर लेते हैं।

अतः स्पष्ट है कि एक तिहाई से अधिक उत्तरदाताओं ने माना कि उनको जनता का सहयोग नहीं मिलता है एवं उन्हें संचालन के समय वित्त और जनसहयोग की कमी का सामना करना पड़ता है।

#### समाज के लोगों द्वारा सहायता करने संबंधी

किसी भी कार्य का संचालन बिना जनसहयोग के सम्भव नहीं है। समाज में लोगों के सहयोग से ही कार्य का सफलता व प्रगति निर्भर करती है। इस भावना को हम सहयोग की भावना भी कहा जाता है। इसी भावना को ध्यान में रखते हुए हम समाज में लोगों की वृद्धाश्रम की सहायता करने सम्बन्धी जानकारी को जानने का प्रयास करेंगे।

तालिका 1.3

#### समाज के लोगों द्वारा सहायता संबंधी जानकारी

| क्रम | सहायता                | हाँ           | नहीं          | उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत |
|------|-----------------------|---------------|---------------|-------------------------------------|
| 1    | आर्थिक सहायता देकर    | 10<br>(100)   | 00            | 10<br>(100)                         |
| 2    | वस्त्र व वस्तुएं देकर | 10<br>(100)   | 00            | 10<br>(100)                         |
| 3    | वृद्धों की सेवा करके  | 00            | 10<br>(100)   | 10<br>(100)                         |
| 4    | केवल सलाह देकर        | 07<br>(70.00) | 03<br>(30.00) | 10<br>(100)                         |

#### स्रोत: प्राथमिक आंकड़ें

उपरोक्त तालिका 1.3 के आंकड़ों से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों वृद्धाश्रमों के सभी संचालकों के अनुसार समाज के कुछ लोग (30 प्रतिशत) जरूरत पड़ने पर या समस्या आने पर आर्थिक सहायता करते हैं। वस्त्र एवं अन्य वस्तुएं जैसे वाटरकूलर, पंखें, ईट, सीमेंट आदि दान देकर समस्या के समाधान में अपना योगदान देते हैं। इसके अतिरिक्त 70 प्रतिशत संचालकों का मानना है कि जरूरत पड़ने पर ऐसे व्यक्ति (एनजीओ संचालक) जो अन्य संस्थाओं का संचालन करते हैं और उन्हें संचालन से संबंधित समस्याओं से निपटने का काफी अनुभव है वे प्रबन्धन संबंधी समस्याओं को सुलझाने में अपना पूरा सहयोग देते हैं। वृद्धों की सेवा करने के संबंध में सभी संचालक उत्तरदाताओं ने कहा कि इस प्रकार की सेवा

लोगों द्वारा उनके वृद्धाश्रम में नहीं की जाती है।

अतः प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि आवश्यकता होने पर उन्हें समाज से सहयोग मिलता है। चाहे वह आर्थिक रूप में हो चाहे अन्य रूप में।

#### अनुसूची-2 से सम्बन्धित

#### वृद्धाश्रमों में वृद्धजनों को मिलने वाली सुविधाओं की जानकारी

वृद्धाश्रमों का मुख्य उद्देश्य वृद्धों को सुख सुविधाएं प्रदान करना है ताकि वे अपना जीवन अच्छे से व्यतीत कर सकें। जिन वृद्धों को अपने परिवार में रहते हुए मूलभूत सुविधाएं नहीं मिल सकी। जिनके कारण उनको वृद्धाश्रम का सहारा लेना पड़ा, वे यहां पर अपनी मूल आवश्यकताएं पूरी होने की उम्मीद रखते हैं। इसी संदर्भ में वृद्धाश्रमों में रहने वाले वृद्धों से यह जानने का प्रयास किया गया है कि उन्हें कौन-कौन सी सुविधाएं प्रदान की जाती हैं।

तालिका 2.1

#### वृद्धाश्रमों में मिलने वाली सुविधाओं की जानकारी

| क्रम | सुविधाएँ                  | हाँ         | नहीं | उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत |
|------|---------------------------|-------------|------|-------------------------------------|
| 1    | भोजन व स्वास्थ्य सम्बन्धी | 50<br>(100) | 00   | 50<br>(100)                         |
| 2    | मनोरंजन सम्बन्धी          | 50<br>(100) | 00   | 50<br>(100)                         |

#### स्रोत: प्राथमिक आंकड़ें

उपरोक्त तालिका 2.1 के आंकड़ों से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों वृद्धाश्रमों के सभी (100 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के अनुसार उन्हें खाने-पीने (आयु व स्वास्थ्य के अनुसार) संबंधी, मनोरंजन, ताश खेलना, पार्क, समाचार देखना, पूजा-पाठ करने आदि की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं।

इस बात से यह पता चलता है कि वृद्धाश्रमों में वृद्धों की जरूरतों का पूरा ध्यान रखा जाता है एवं उनके स्वास्थ्य संबंधी बातों को ध्यान में रखकर ही उन्हें भोजन दिया जाता है।

#### समय व जरूरत के अनुसार वृद्धों को मिलने वाली सुविधाएं संबंधी जानकारी-

वृद्धावस्था एक ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति की

शारीरिक क्षमता एवं पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है, इसलिए उनके खाने-पीने के लिए विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। अतः उनकी जरूरतों एवं मौसम को ध्यान में रखते हुए उन्हें सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। इसी संदर्भ को ध्यान में रखते हुए वृद्धाश्रम में रहने वाले वृद्धजनों से यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या उनको मिलने वाली सुविधाएं व खाने-पीने की वस्तुएं सही समय और जरूरत के अनुसार दी जाती है।

तालिका 2.2

#### सभी सुविधाएं समय एवं जरूरत के अनुसार सम्बन्धी जानकारी

| क्रम | सुविधाएँ  | हाँ        | नहीं     | उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत |
|------|-----------|------------|----------|-------------------------------------|
| 1    | समयानुसार | 48<br>(96) | 2<br>(4) | 50<br>(100)                         |

#### स्रोत: प्राथमिक आंकड़ें

उपरोक्त तालिका 2.2 के आंकड़ों से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि दोनों वृद्धाश्रमों में रहने वाले (96 प्रतिशत) वृद्धों के अनुसार उनको वृद्धाश्रम में खाने-पीने संबंधी, स्वास्थ्य संबंधी एवं बीमारी की अवस्था में सभी सुविधाएं समय के अनुसार एवं जरूरत होने पर प्रदान की गई जबकि केवल 4 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा दी गई सूचना से स्पष्ट है कि उनकी बातों को अनसूना कर दिया जाता है एवं उनके स्वास्थ्य व आवश्यकता को ध्यान में रखे बगैर ही वस्तुओं का वितरण किया जाता है। जिसका कारण ये है कि ये उत्तरदाता साक्षात्कार के समय मानसिक रूप से परेशान होने के कारण जवाब देने की स्थिति में नहीं थे।

अतः आंकड़ों से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि इन वृद्धाश्रमों में वृद्धों की सभी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। इसलिए यहां वृद्धों को कोई परेशानी नहीं है।

#### वृद्धों से उनकी सुविधाओं के बारे में सुझाव मांगने संबंधी

वृद्धाश्रमों में वृद्धों से उनकी सुविधाओं के बारे में अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा सुझाव मांगना वृद्धों के प्रति सम्मान और आदर भाव को दर्शाता है जोकि वर्तमान

समय में कम होता जा रहा है, क्योंकि जिसके लिए सुविधाएं दी जा रही हैं उनसे उनकी सुविधाओं के बारे में सुझाव मांगना आवश्यक होता है। अतः प्रस्तुत तालिका के अन्तर्गत वृद्ध उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या उनकी सुविधाओं के बारे में उनसे सुझाव लिये जाते हैं।

**तालिका 2.3**  
**वृद्ध उत्तरदाताओं द्वारा संचालकों की सुविधाओं संबंधित सुझाव**

| क्रम | सुविधाएँ | हाँ        | नहीं       | उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत |
|------|----------|------------|------------|-------------------------------------|
| 1    | सुझाव    | 48<br>(96) | 02<br>(04) | 50<br>(100)                         |

#### स्रोत: प्राथमिक आंकड़ें

उपरोक्त तालिका 2.3 के आंकड़ों से प्राप्त परिणामों से यह ज्ञात होता है कि वृद्धाश्रमों के कुल (56 प्रतिशत) वृद्ध उत्तरदाताओं के अनुसार उनसे उनकी सुविधाओं से संबंधित किसी भी प्रकार के सुझाव नहीं लिये जाते हैं जैसे-आश्रम में किसी आयोजन के समय था, कहीं जाते हैं। इसके अतिरिक्त (44 प्रतिशत) वृद्धों ने बताया कि उनसे केवल खाने-पीने संबंधी बातों के बारे में पूछ लिया जाता है जिसका कारण यह है कि जिनसे राय ली गई वे वृद्ध बीमार रहते हैं इसलिए उनके खाने-पीने का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसके अलावा उनसे अन्य कोई राय नहीं ली गई है।

#### बीमार वृद्धों को मिलने वाली सुविधाओं को जानना संबंधी

वृद्धाश्रम में बीमार वृद्धों को अलग सुविधाएं एवं चिकित्सकों की व्यवस्था करना वृद्धाश्रमों के प्रभावी संचालन को दर्शाता है क्योंकि इन संस्थाओं का उद्देश्य वृद्धों को सेवा प्रदान करना है। इसी संदर्भ में वृद्धाश्रमों में रहने वाले वृद्धजनों से यह जानने का प्रयास किया गया है कि बीमार होने पर उनको क्या-क्या सुविधाएं दी जाती हैं।

**तालिका 2.4**  
**बीमार होने पर मिलने वाली सुविधाएं**

| क्रम | सुविधाएँ                      | हाँ         | नहीं        | उत्तरदाताओं की कुल संख्या व प्रतिशत |
|------|-------------------------------|-------------|-------------|-------------------------------------|
| 1    | दवाईयाँ व एंबुलेस की व्यवस्था | 50<br>(100) | 00          | 50<br>(100)                         |
| 2    | नहाने व भोजन पानी की सुविधा   | 50<br>(100) |             | 50<br>00 (100)                      |
| 3    | अन्य                          | 00          | 10<br>(100) | 10<br>(100)                         |

#### स्रोत: प्राथमिक आंकड़ें

उपरोक्त तालिका 2.4 के आंकड़ों से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि सभी (100 प्रतिशत) वृद्ध उत्तरदाताओं के अनुसार उनके बीमार होने पर दवाईयों व एंबुलेंस की व्यवस्था, नहलाने वालों की व्यवस्था है। उनकी आवश्यकता के अनुसार भोजन व गर्म पानी या ठंडा आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराए जाते हैं। वहीं इतने ही (100 प्रतिशत) वृद्धों ने इन सुविधाओं के अतिरिक्त अन्य सुविधाओं-जैसे यूरिन टब, नियमित डॉक्टर बुलवाना, चैकअप कराने आदि की व्यवस्था की बात कही।

इस प्रकार वृद्धाश्रम में बीमार वृद्धों को मिलने वाली सुविधाओं का अध्ययन करने पर पाया कि वृद्धों को सभी सुविधाएं प्रदान की गई है एवं रोगग्रस्त होने पर बीमारी के अनुसार इलाज कराया जाता है।

अतः प्राप्त परिणामों से विदित होता है कि अधिकतर वृद्ध उत्तरदाताओं को बीमारी की अवस्था में सभी सुविधाएं दी गई है ताकि उन्हें कोई समस्या न हो। वृद्धाश्रमों में इन सुविधाओं को और बेहतर बनाने के लिए सरकार को सहयोग देना चाहिए ताकि वृद्धों की सेवा की जा सके।

#### सुझाव

1. वृद्धाश्रमों के संचालन के लिए संसाधनों का प्रबन्धन करने के लिए सरकार द्वारा सहायता राशि प्रदान की जाए और गैर सरकारी संगठनों को भी सहयोग दे जिससे निराश्रित वृद्धों की सेवा की जा सके।

2. वृद्धाश्रमों के कल्याण संबंधी कार्यों में धनाढ्य वर्ग और सामाजिक कार्यकर्ताओं को आगे आना होगा ताकि अन्य वर्गों को प्रेरित किया जा सकता है।

3. गैर सरकारी संगठनों द्वारा किये जाने वाले कल्याणकारी कार्यों के लिए उनको सरकार द्वारा प्रोत्साहित किया जाए जिससे ये संगठन कल्याण संबंधी कार्यों को और अधिक प्रतिबद्धता के साथ कर सकें।

4. वृद्धाश्रमों में स्वच्छता बनाए रखने के लिए सफाई की और विशेष ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है जिससे वृद्धों का संक्रमित बीमारियों से बचाव किया जा सके।

5. वृद्धाश्रम में रहने वाले वृद्धों के लिए भोजन, आवास एवं स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं की तरफ विशेष ध्यान दिया जाए ताकि उन्हें किसी तरह की परेशानी न हो और स्वास्थ्य संबंधी दिक्कतों का सामना न करना पड़े।

6. वृद्धों के मनोरंजन के लिए उन्हें आस-पास के पर्यटन स्थलों व धार्मिक स्थानों पर ले जाए ताकि उन्हें घर जैसा माहौल महसूस हो और उनकी दिनचर्या में बदलाव आए तथा उन्हें परिवार की कमी न लगे।

7. सरकार द्वारा वृद्धाश्रमों में दिव्यांग वृद्धों के लिए भी अलग से सुविधाओं की व्यवस्था करनी होगी जिससे उनके मन में हीन भावना न आए।

8. वृद्धाश्रमों में संचालकों द्वारा सभी वृद्धों की महीने में कम से कम एक बार स्वास्थ्य संबंधी जांच का प्रावधान अवश्य किया जाए जिससे वृद्धों के स्वास्थ्य स्तर की जानकारी मिलती रहे।

9. वृद्धाश्रम में रहने वाले वृद्धों के संकोच व असुरक्षा की भावना को दूर करने के लिए समय-समय पर मनोवैज्ञानिक परामर्श शिविरों का आयोजन करवाएं जिसमें वृद्धजन अपनी समस्याओं को निःसंकोच बता सकें। वृद्धों

की समस्याओं और सुविधाओं की कमियों को संचालकों द्वारा ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए। इन कमियों को दूर करने का प्रयास किया जाए।

10. वृद्धावस्था में वृद्धों की मानसिकता में परिवर्तन आ जाता है इसलिए उनकी मानसिकता को समझते हुए उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए जिससे वे अपने आपको भावनात्मक रूप से असुरक्षित न समझे।

#### निष्कर्ष

अतः अध्ययन से विदित होता है कि वृद्धाश्रमों के संचालन में जनता का पूरा सहयोग मिलता है और चंदा इकट्ठा करके भी सहायता राशि जुटाई जाती है। बीमार वृद्धों को अलग से सुविधाएं प्रदान की जाती हैं जोकि प्रभावी संचालन व्यवस्था का सूचक है। इन सुविधाओं के अतिरिक्त उन्हें अन्य सुविधाएं जैसे श्रवण मशीन एवं चश्मे का वितरण किया जाता है। दिव्यांगों के लिए व्हीलचेयर की व्यवस्था की गई है जो वृद्धाश्रमों के अच्छे प्रबन्धन कार्य को दर्शाता है।

अतः अध्ययन के आधार पर पाया गया कि वृद्धाश्रमों को जिस उद्देश्य के लिए चलाया जा रहा है वे अपने प्रबन्धन कार्यों में प्रभावी रूप से सक्षम हैं।

शोधकर्त्री, लोक प्रशासन विभाग  
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ. जगबीर नरवाल  
सहायक व्याख्याता, लोक प्रशासन विभाग  
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

#### संदर्भ सूची

1. तातेड़, सोहनराज, 2014. वरिष्ठ नागरिक जीवन दर्शन, जयपुर, एस. पब्लिकेश, पृष्ठ संख्या 178
2. रौलेण्ड, व्यास. 2013. समाज कल्याण एवं प्रशासन, आगरा, निखिल पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या 21
3. पाण्डेय, अर्चना, 2014. आधुनिक भारत में समाज कल्याण प्रशासन, नई दिल्ली, अभिजीत प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 122
4. श्यामलाल, 2004. प्रोब्लमस् ऑफ ओल्डएज पर्सन, मेरठ, जर्नल ऑफ नेशनल डेव्लपमेंट, पृष्ठ संख्या 57
5. वही, पृष्ठ संख्या 128
6. सचदेवा, डी. आर. 2009. भारत में समाज कल्याण प्रशासन, इलाहाबाद, किताब महल, पृष्ठ संख्या 272

7. आहूजा, राम. 2016. सामाजिक समस्याएँ, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स, पृष्ठ संख्या 12
8. हैलपेज इंटरनेशनल. 2017. सीनियर सिटीजन गाईड, रिवाईज्ड एडिसन, पोलिसी रिसर्च एंड डिपार्टमेंट इण्डिया
9. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.न्यूजसक्रिप्टडोटकॉम 15/04/2017, 12:00पीएम
10. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू सोशलजस्टिस.एनआईसी.इन.17 अगस्त, 2021
11. शर्मा, ओ.पी. 2008. भारत में समाज कल्याण प्रशासन, कानपुर, विकास प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 106
12. शेखावत, राजेन्द्र सिंह, 2014. सीनियर सिटीजन की दुनिया, जोधपुर, ओम प्रिंटर्स, पृष्ठ संख्या 224



डॉ. मीना कुमारी

## रोगमुक्ति में चिकित्सक की भूमिका

स्वस्थ तन और मन, मानवजीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। वैदिक काल से ही मनुष्य यह कामना करता आया है कि वह नीरोग एवं स्वस्थ रहते हुए दीर्घायु को प्राप्त करे। मुण्डकोपनिषद् का शान्ति-पाठ स्वास्थ्य के वास्तविक अर्थ को समग्रता के साथ अभिव्यक्त करता है। मन्त्र में कहा गया है कि यज्ञकर्म में समर्थ होकर कानों से कल्याणमय (वचन) सुनें, नेत्रों से हम शुभ ही देखें। सुदृढ़ अंगों से और शरीरों से स्तुति करते हुए देवों के लिए हितकर पूर्णायु (सौ वर्ष की आयु) को प्राप्त करे।<sup>1</sup> निस्सन्देह केवल तन का या केवल मन का ही स्वस्थ होना पर्याप्त नहीं है। दोनों समान रूप से सक्रिय हो, उनमें कोई विकार न हो; तभी कोई भी मनुष्य वास्तव में स्वस्थ होता है। किसी भी व्यक्ति के रोगरहित अथवा स्वस्थ रहने में तीन मुख्य घटक तत्व होते हैं—(1) व्याधिग्रस्त मनुष्य, (2) औषधियाँ तथा (3) चिकित्सक। ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूक्त 97 में जहाँ रोगमुक्ति में औषधियों की महिमा का गुणगान किया गया है; वहीं चिकित्सक की भूमिका को भी उद्घाटित किया गया है।

औषधियाँ देवनिर्मित हैं, ऐसी ऋषियों की मान्यता है। इन औषधियों का निर्माण उन्होंने सत्य, त्रेता तथा द्वापर इन तीन युगों अथवा वसन्त, वर्षा और शरद्-इन तीन ऋतुओं में किया था। बभ्रु वर्ण की ये औषधियाँ एक सौ सात स्थानों में विद्यमान हैं।<sup>2</sup> कहने का अभिप्राय यह है कि जीवनदायिनी शक्ति से युक्त होने के कारण औषधियाँ ऋषियों के द्वारा 'देवनिर्मित' कही गई है। यह औषधियाँ सृष्टि के आदिकाल से ही इस धरा पर विद्यमान थीं और हर ऋतु में इनका अस्तित्व और प्रभाव बना रहता है।

'औषधियों के एक सौ सात स्थान पर विद्यमान होना', वस्तुतः लाक्षणिक है। औषधियाँ विश्व में सर्वत्र विद्यमान, यह अर्थ है। रुद्र सूक्त के एक मन्त्र में कहा गया है कि हमारे इस विश्व रूपी ग्राम में सभी द्विपद तथा चतुष्पद पुष्ट तथा नीरोग रहे। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ केवल मनुष्यों के ही नहीं अन्य सभी प्राणी समूह के स्वास्थ्य की कामना की गई है।<sup>3</sup> अस्तु, ऋषि की दृष्टि में औषधियाँ जीवनदायिनी और पोषण करने वाली होने के कारण मातृस्वरूपा हैं और इनके जन्म असीम हैं अर्थात् ये सर्वत्र पाई जाती है। ये अनेक प्रकार से प्राणियों को लाभ पहुँचाती हैं, अतएव 'सौ कर्मों वाली' कही गई है।<sup>4</sup> औषधियों अनेक प्रकार की होती हैं। वे फल और फूल से युक्त होती हैं। जैसे वेगशाली अश्व शीघ्र मार्ग को व्याप्त कर लेता है, उसी प्रकार यह मनुष्यों को शीघ्र रोग से मुक्त करने में समर्थ होती हैं।<sup>5</sup>

एक मन्त्र में अश्वत्थ तथा पलाश वृक्ष पर सभी औषधियों के निवास करने की बात कही गई है। सायण के अनुसार यज्ञकर्मों में इन दोनों वृक्षों की उपयोगिता को देखते हुए ही इन्हें ये महत्व प्रदान किया गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि उपकार की दृष्टि से, ये दोनों वृक्ष, जिन विशेष गुणों से सम्पन्न हैं, उसी के कारण सभी औषधियों का निवास इनमें कहा गया है।

रोगी के मन में भी रोगमुक्त होने की इच्छा होनी चाहिए अन्यथा केवल औषधि ग्रहण करने मात्र से रोग दूर नहीं हो सकता। उसके मन में यह भाव होना चाहिए कि वह जिन औषधियों को ग्रहण कर रहा है, वह उसे आरोग्य प्रदान करने वाली है। मन में यदि अविश्वास की भावना

होगी; तो बहुमूल्य औषधियों को ग्रहण करने पर भी लाभ नहीं होगा। अतः रोग से मुक्त होने की प्रबल भावना तथा औषधियों को निष्ठापूर्वक ग्रहण करना ही रुग्ण मनुष्य का ध्येय होना चाहिए। रुग्ण व्यक्ति के द्वारा सर्वथा पालनीय इस भावना का प्रत्यक्षीकरण इन शब्दों में होता है; जहाँ वह औषधियों को सम्बोधित करते हुए कहता है कि “हे दीप्तिशाली औषधियों! तुम माता के समान हितकारिणी हो। मैं तुम्हारे सामने स्वीकार करता हूँ कि मैं रोगमुक्त होने पर चिकित्सक को गौ, अश्व, वस्त्र और यहाँ तक कि स्वयं को भी देने के लिए प्रस्तुत हूँ।”<sup>6</sup>

चिकित्सक वही प्रशस्त होता है अथवा वही चिकित्सक रोग को दूर कर सकता है, जिसे औषधियों का सम्यक ज्ञान हो। ऋषि कहते हैं कि जैसे राजा लोग युद्ध के लिए एकत्र होते हैं; उसी प्रकार जिस भिषक् के पास औषधियाँ हो अथवा जो उनके सम्यक् प्रयोग को जानता है, उसे ही चिकित्सक कहा जा सकता है। क्योंकि जिसे विभिन्न औषधियों के गुण-दोषों का पर्याप्त ज्ञान हो, वही रोग विशेष की अपेक्षा के अनुसार उचित औषधि का प्रयोग कर व्याधिग्रस्त मनुष्य को रोगमुक्त कर सकता है।<sup>7</sup> कुछ औषधियाँ शीघ्रगामी अश्व के समान शीघ्र प्रभाव उत्पन्न करने वाली होती हैं, कुछ शरीर में ऊर्जा का आधान करने वाली होती हैं, कुछ सुख की अनुभूति कराने वाली होती हैं (अर्थात् रोगी के अन्दर जो असहजता अथवा बेचैनी की अनुभूति होती है, उसे शान्त करने वाली होती हैं) तो कुछ औषधियाँ शक्तिवर्धक होती हैं। इस प्रकार के ज्ञान से सम्पन्न चिकित्सक के मन में यह दृढ़ विश्वास होता है कि वह अपनी शरण में आए हुए रोगी को रोगमुक्त कर लेगा।<sup>8</sup>

चिकित्सक का कार्य केवल रोगी के रोग के कारणों को जानकर तदनुसार औषधि देना मात्र नहीं होता; अपितु उसके मन में विश्वास जगाना भी होता है। यदि चिकित्सक संवेदनशीलता के साथ तथा आत्मीयता के साथ व्यवहार करता है, तो वह असाध्य रोगों से भी उसे रोगमुक्त कर पाने में सफल रहता है। चिकित्सक किस प्रकार रोगी के मन में आत्मविश्वास जगा सकता है, ऋषि ने एक सुन्दर दृष्टान्त के द्वारा समझाया है। उनके अनुसार वह रोगी से कहे कि “हे रोगी, जैसे गोशाला से गायें बाहर निकलती हैं, वैसे ही औषधियों से उनका गुण बाहर होता है। ये औषधियाँ तुम्हें स्वास्थ्य रूपी धन देंगी।”<sup>9</sup> एक समर्पित

और निष्ठावान् चिकित्सक अपने शरणागत रोगी की व्यथा को अपने अन्तः में अनुभव करता है। वह ऐसी औषधियों के विषय में चिन्तन करता है जो रोग को दूर कर रोगी को स्वस्थ बनायें।<sup>10</sup>

वह जानता है कि औषधियों में सर्वविध रोगों को दूर करने की अद्भुत क्षमता होती है। रोगजन्य जो पीड़ा शरीर में व्याप्त हो जाती है, वे उसे भी दूर कर देती हैं। ऋषि के अनुसार कि जैसे चोर गोष्ठ को लौंघकर जाता है उसी प्रकार विश्वव्यापी और सर्वज्ञ औषधियाँ रोगों को दूर कर देती हैं।<sup>11</sup> सम्भवतः ऋषि के कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चोर दबे पाँव गोशाला से बाहर निकलता है, वैसे ही औषधियाँ रोग और तज्जन्य पीड़ा को दूर करती हैं।

रोगी को रोग से तात्कालिक लाभ दिलाना ही चिकित्सक का ध्येय नहीं होना चाहिए; अपितु रोग पूर्णतया समाप्त हो जाए, ऐसा प्रयास करना चाहिए, जैसा कि कतिपय मन्त्रों में प्रतिपादित किया गया है। रोगी के शरीर की दुर्बलता जब दूर हो जाती है, तभी उसे स्वस्थ कहा जा सकता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए चिकित्सक कहता है कि “अभी मैं इन सब औषधियों को हाथ में ग्रहण करता हूँ और रोगी के शरीर की दुर्बलता को दूर करता हूँ। इससे रोग की आत्मा वैसे ही मर जाती है, जैसे मृत्यु से जीव मर जाता है।”<sup>12</sup> रोग के प्रभाव के कारण व्यक्ति के अङ्ग-प्रत्यङ्ग और उसके शरीर की हर ग्रन्थि में पीड़ा तथा शक्तिहीनता व्याप्त हो जाती है। एक कुशल चिकित्सक ऐसी औषधियों का प्रयोग करता है जिससे उसकी रोगजन्य ये सभी व्यथाएँ दूर हो जाती हैं।<sup>13</sup> वैदिक ऋषियों की यह विशेषता रही है कि वह किसी भी मत की स्थापना करने में प्राकृतिक दृष्टान्तों को ही माध्यम बनाते हैं। रोगी के प्रति एक समर्पित चिकित्सक की भावनाओं को व्यक्त करने में भी उनकी यह दृष्टि लक्षित होती है। नीलकण्ठ और श्येन पक्षी अत्यन्त द्रुतगामी होते हैं। चिकित्सक यही कामना करता है कि जिस प्रकार ये दोनों पक्षी द्रुत वेग से भागते हैं अथवा जिस प्रकार वायु वेगपूर्वक बहती है अथवा गोधा (गोह) द्रुत गति से दौड़ती है; वैसे ही रोगी का रोग शीघ्र दूर हो जाये।<sup>14</sup>

चिकित्सक को पूर्णतया विचार करके ही रोगी को औषधि देनी चाहिए। इस भाव की अभिव्यक्ति चिकित्सक के इन शब्दों से होती है जहाँ वह औषधियों से कहता है

कि “हे औषधियों, तुम सबमें से एक औषधि दूसरी औषधि के पास जाये और दूसरी तीसरी के पास जाये। इस प्रकार संसार की सभी औषधियाँ एकमत होकर मेरी प्रार्थना की रक्षा करें।”<sup>15</sup> वस्तुतः रोगी को नीरोग बनाने के लिए, उसकी खोई हुई क्षमता की पुनर्स्थापना के लिए विभिन्न प्रकार की औषधियों का प्रयोग करना अनिवार्य हो जाता है। ऋषि के अनुसार चिकित्सक इस युक्ति से रुग्ण को औषधियाँ प्रदान करे कि वे परस्पर मिलकर विपरित प्रभाव को न उत्पन्न करे। औषधियाँ विविध प्रकार की होती हैं। कुछ फलयुक्त होती हैं तो कुछ फलरहित होती हैं। कुछ पुष्पयुक्त होती हैं तो कुछ पुष्परहित। एक सुयोग्य चिकित्सक औषधियों के गुणों को जानकर उनके द्वारा रोगी को रोगमुक्त और बलयुक्त करता है; इस प्रकार वह पाप से युक्त नहीं होता अर्थात् रोगी की चिकित्सा में प्रमाद कर, उसे हानि पहुँचाने के दोष से मुक्त रहता है।<sup>16</sup>

चाहे मानसिक रोग हो या वातादि दोष के कारण उत्पन्न व्याधियाँ; औषधियाँ सभी का निदान करने में समर्थ होती हैं। किसी को अपशब्द कहने अथवा अपने से श्रेष्ठ लोगों का तिरस्कार करने के कारण अथवा जीवन में कभी किन्हीं प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण प्रायः लोग मानसिक व्याधियों से युक्त हो जाते हैं। इसी प्रकार वातादि दोष के कारण अथवा अनियन्त्रित जीवनशैली के कारण अनेक प्रकार के शारीरिक दोषों से ग्रस्त हो जाते हैं। एक चिकित्सक इन रोगों के मूल कारणों को जानता हुआ, उनका निदान करता है और रोगी को सुखी करता है।<sup>17</sup> क्योंकि वह जानता है कि उपयुक्त औषधियों के प्रयोग से रोगी रोगमुक्त और पुनः पूर्ववत् बलयुक्त हो जाता है और उसका किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता।

वास्तविक चिकित्सक वही होता है, जो अपने ज्ञान पर या रोगी को रोगमुक्त करने के अपने सामर्थ्य पर अहंकार नहीं करता। अपितु वह विनम्रतापूर्वक औषधियों के महत्व को स्वीकार करता है। इसी का वर्णन करते हुए कहा गया है कि “औषधियों का राजा सोम है और वे असीम उपकार करने वाली हैं। पृथिवी पर नाना स्थानों पर स्थित ये औषधियाँ बृहस्पति अर्थात् विशेषज्ञ के द्वारा प्रयुक्त किए जाने पर रोगी को बल प्रदान करती हैं।”<sup>18</sup> पुनः वह चिकित्सक प्रयुक्त की गई अथवा प्रयोग की जाने वाली औषधि की प्रशंसा करते हुए कहता है कि “हे औषधि, तुम उपकारक औषधियों में श्रेष्ठ हो और सभी कामनाओं

को पूर्ण करने में तथा उसे सुखी बनाने में समर्थ हो।”<sup>19</sup> एक मन्त्र में चिकित्सक औषधियों के विषय में कहता है कि ‘औषधियाँ ने स्वर्ग से नीचे आते समय कहा था कि हम जिस प्राणी पर अनुग्रह करती हैं, उसका किसी प्रकार का अनिष्ट न हो।’<sup>20</sup> यह तो हम सभी जानते हैं कि वृष्टि जल ही औषधियों की उत्पत्ति का हेतु होता है और इस प्रकार स्वतः उत्पन्न औषधियाँ ही दिव्य गुणों से सम्पन्न कही गई हैं। चिकित्सक इस प्रकार की स्वतः जात अतएव विशेष सामर्थ्य से युक्त औषधियों का प्रयोग करे। आधुनिक सन्दर्भ में कह सकते हैं कि चिकित्सक रोगी को जो भी औषधि दे; उस औषधि के घटक तत्वों का उसे सम्यक् ज्ञान होना चाहिए।

चिकित्सक रोग के निदान में प्रयोजनीय औषधियों का पहले से ही संग्रह करके न रखे; अपितु जिस समय रोगी को औषधि देनी हो उसी समय उन्हें लेकर आए। ऐसा इसलिए कहा गया है कि तत्काल प्रयोग किए जाने पर ही औषधियों से अपेक्षित लाभ मिलता है। चिकित्सक औषधियों से अनुरोध करता है कि जब वह उन्हें उखाड़े, उस समय वे उसे नष्ट न करें और न ही जिसके लिए उन्हें खोद रहा है वे नष्ट हों।<sup>21</sup> अर्थात् औषधियों का संग्रह करते समय चिकित्सक को कोई हानि न पहुँचे; साथ ही जिस रोगी के लिए वह औषधियों का संग्रह कर रहा है उस पर उन औषधियों का दुष्प्रभाव न पड़े। चिकित्सक कामना करता है कि औषधियाँ उसके स्तोत्र को सुनें चाहे वह समीपस्थ हो अथवा सुदूरवर्ती स्थान पर स्थित हो। वे सभी एक साथ मिलकर इस रुग्ण शरीर के बल में वृद्धि करें।<sup>22</sup> कहने का अभिप्राय यह है कि रोगी के लिए जो हितकर हो वह औषधि चाहे समीपस्थ स्थान पर उपलब्ध हो या दूर में उन्हें लाना अवश्य चाहिए। प्रत्येक औषधि का अपना एक विशेष गुण होता है; अतः विभिन्न औषधियों को मिलाकर देने से रोग में लाभ होता है।

औषधियों में से प्रत्येक के विशेष गुणों को जानने वाले तथा अपने कर्म के प्रति निष्ठा रखने वाले चिकित्सक को ऋषि ने ‘स्तोता’ की संज्ञा दी है। ऐसे चिकित्सक के प्रति औषधियाँ भी सद्भाव रखती हैं; इसी अभिप्राय को प्रकट करते हुए कहा गया है कि “औषधियाँ सोम राजा से कहती हैं कि जिसकी चिकित्सा स्तोता करते हैं, उसे ही हम बचाते हैं।”<sup>23</sup>

अन्ततः हम कह सकते हैं कि असाध्य रोग भी एक

सुयोग्य चिकित्सक के औषधज्ञान से और रोगी मनुष्य के प्रति संवेदनशील व्यवहार से साध्य हो जाता है। चिकित्सक की सफलता में रोगी मनुष्य का स्वयं भी रोगमुक्ति के लिए दृढसंकल्प होना अत्यधिक महत्व रखता है। आज के समय में जब चिकित्सकों के प्रति जनसामान्य में अविश्वास बढ़ता जा रहा है; ऋग्वेद का यह सूक्त, रोगी तथा

चिकित्सक, दोनों को ही आत्म-निरीक्षण का अवसर प्रदान करता है।

एसोसिएट प्रोफेसर  
संस्कृत विभाग, मिराण्डा हाउस  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

### संदर्भ सूची

1. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।  
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
2. या औषधीः पूर्वा जाता देवेभ्योस्त्रि युगं पुरा।  
मनै नु बभ्रुणामहं शतं धामनि सप्त च॥  
(ऋग्वेद-10/8/97/1)
3. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने प्र भरामहे मतीः।  
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं  
ग्रामेऽस्मिन्ननातुरम्॥ (ऋग्वेद-1/141/1)
4. शतं वो अम्ब धामनि सहस्रमुत वो रुहः।  
अथा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत॥  
(10/8/97/2)
5. ओषधीःप्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।  
अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः॥  
(वही-10/8/97/3)
6. ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुपब्रुवे।  
सनेयमश्वगांवास आत्मानं तव पूरुष॥  
(वही.10/8/97/4)
7. यत्रौषधीः समग्मत राजानःसमिताविव।  
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः॥  
(वही. 10/8/97/6)
8. अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।  
आवित्सिसर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये।  
(वही. 10/8/97/7)
9. उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरेते।  
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष॥  
(वही. 10/8/97/8)
10. इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयंस्थ निष्कृतीः।  
सीराः पतत्रिणीःस्थनपदामयतिनिष्कृथ॥  
(वही. 10/8/97/9)
11. अतिविश्वाःपरिष्ठाः स्तेन इव ब्रजमक्रमुः।

- ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किञ्चतन्वोरपः॥  
(वही. 10/8/97/10)
12. यदिमावाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे।  
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभोयथा॥  
(वही. 10/8/97/11)
  13. यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुषरुः।  
ततो यक्ष्मं विबाधष्व उग्रो मध्यमशीरिव॥  
(वही. 10/8/97/12)
  14. साकं पक्ष्मप्रपत चाषेण किकिदीविनां।  
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया॥  
(वही. 10/8/97/13)
  15. अन्यावोअन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत।  
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः॥  
(वही. 10/8/97/14)
  16. वही. 10/8/97/15
  17. मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथोवरुण्यादुत।  
अथो यमस्य पङ्क्तीशात्सर्वस्मादेव किल्विषात्।  
(वही. 10/8/97/16)
  18. वही. 10/8/97/19
  19. वही. 10/8/97/18
  20. वही. 10/8/97/17
  21. मा वोरिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।  
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमनस्त्वनातुरम्॥  
(10/8/97/20)
  22. यास्वेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः।  
सर्वा संगत्य वीरुधोस्यै संदत्तवीर्यम्॥  
(10/8/97/21)
  23. ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा।  
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि॥  
(10/8/97/220)



कुणाल भारती\*



डॉ. विजय कुमार\*\*

## अनाहत जिजीविषा के कवि : रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय की कविताओं से गुजरते हुए हम पाते हैं कि उनकी कविताओं में अनाहत जिजीविषा बोध की चेतना विस्तार पाती हैं। इस अनाहत जिजीविषा बोध की शक्ति, उन्हें अपने पिता से मिलती हैं जहाँ वे लिखते हैं- “तुमने जो दी है अनाहत जिजीविषा उसे क्या करें?”<sup>1</sup> यह अनाहत जिजीविषा कवि को प्रतिकूल परिस्थितियों के विरुद्ध लड़ने की शक्ति देता है। यही वजह है कि रघुवीर सहाय संकटकालीन परिस्थितियों में भी अपनी जिम्मेदारी को पूरी सचाई एवं सार्थकता से निभाते हैं। अपनी कविता के उद्देश्य के रूप में प्रतिरोध की ताकत को स्वीकार करने का महत्वपूर्ण जनवादी उद्देश्य ही रघुवीर सहाय को निराशा एवं हताशा के दौर में भी जीवन की आस्था, संघर्ष एवं प्रतिरोध की कविता लिखने को प्रेरित करता है। यही भाव रघुवीर सहाय की प्रसिद्ध कविता ‘आत्महत्या के विरुद्ध’ में अभिव्यक्त हुई है-

“कुछ होगा कुछ होगा अगर मैं बोलूँगा  
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का  
मेरे अंदर का एक कायर टूटेगा टूट  
मेरे मन एक बार सही तरह  
अच्छी तरह टूट मत झूठमूठ ऊब मत रूठ  
मत डूब सिर्फ टूट....”<sup>2</sup>

अपनी अनाहत जिजीविषा को रघुवीर सहाय आम आवाम से जोड़ते हैं। वे आम आदमी की आशाओं, आकांक्षाओं, सपने एवं सार्थक उम्मीदों को आस्था एवं विश्वास से जोड़ते हैं। इस तरह वे संघर्ष के दौरान नए मानवीय रिश्तों की खोज करते हैं और आम आवाम में प्रतिरोध की चेतना को विकसित करते हैं। यह प्रतिरोध ही

व्यक्ति के भीतर अनाहत जिजीविषा के भाव को धार एवं विस्तार देता है। प्रतिरोध के संबंध में रमणिका गुप्ता लिखती हैं - “मनुष्य प्रतिरोध के बिना जिंदा नहीं रह सकता जन्म से लेकर मृत्यु तक वह प्रतिरोध से जूझते हुए विकसित होता है। प्रतिरोध की शक्ति के बिना न मनुष्य विकसित हो सकता है और ना प्रकृति। टकराव-घर्षण जरूरी है विकास के लिए। मनुष्य के अस्तित्व में ही प्रतिरोध निहित है।”<sup>3</sup> इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य के भीतर अनाहत जिजीविषा को बनाए एवं बचाए रखने के लिए प्रतिरोध जरूरी है।

रघुवीर सहाय का दूसरा काव्य-संग्रह ‘आत्महत्या के विरुद्ध’ उनकी इसी अनाहत जिजीविषा का प्रतिफल है जहाँ वे अकविता की आत्महंता प्रवृत्ति के विरुद्ध सार्थक हस्तक्षेप करते हैं और अपने-आप को आत्महत्या के विरुद्ध घोषित करते हुए प्रतिगामी शक्तियों के खिलाफ प्रतिरोध रचते हैं। “अपने को किसी कदर सम्पूर्ण व्यक्ति बनाने की लगातार कोशिश के साथ रघुवीर सहाय ने पिछले दौर से निकलकर ‘आत्महत्या के विरुद्ध’ में एक व्यापकतर संसार में प्रवेश किया है। इस संसार में भीड़ का जंगल है जिसमें कवि एक साथ अपने को खो देना और पा लेना चाहता है। वह नाचता नहीं, चीखता नहीं और सिर्फ बयान भी नहीं करता। वह इस जंगल में बुरी तरह फँसा हुआ है लेकिन उसमें से निकलना किन्हीं सामाजिक-राजनीतिक शर्तों पर उसे स्वीकार नहीं। नतीजा : ये कविताएँ।”<sup>4</sup> उनकी अनाहत जिजीविषा की चेतना है।

आजादी के बीस बरस बाद जब लोग अपने ही देश में बेगानेपन का शिकार होने लगे। अपनी न्यूनतम जरूरतों

की पूर्ति के लिए भी असहाय एवं असमर्थ साबित हुए। एक पूरी की पूरी पीढ़ी आजादी के बाद जन्म लेती है और अभावों तले जहालत भरी जिन्दगी जीते हुए अपने युवावस्था में पहुँच कर अनास्था एवं मोहभंग का शिकार हो जाते हैं। यह मोहभंग आजादी को लेकर गंभीर होता चला गया और जीवन के प्रति अनास्था युवाओं में घर करता चला गया। इस जीवन विरोधी परिस्थिति में कवि हुँकार भरता है और अपने बचपन की आजादी छीनकर लाने की घोषणा करता है -

“बीस वर्ष

खो गए भरमे उपदेश में  
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली पुसी क्लेश में  
बेगानी हो गयी अपने ही देश में  
वह अपने बचपन की आजादी  
छीनकर लाऊँगा”<sup>15</sup>

समय की मार के बीच कवि का यह हुँकार निःसंदेह उनकी अनाहत जिजीविषा बोध की चेतना का परिणाम है। ‘वे इस समाज और उसको चला रही व्यवस्था को बदलने की इतनी गहरी आकांक्षा से बिंधे थे कि कविता भी उन्हें कवि न बनाकर एक चिन्तित सामाजिक के रूप में प्रक्षेपित करती थी। इसीलिए उनकी हर कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता के विस्तार की तरह नहीं, एक नई शाखा की तरह प्रकट होती थी।’<sup>16</sup> अपनी एक कविता ‘धीर धर गया अगर’ में वे आमजन के दुखों के साथ खड़े होते हैं और उनके दुखों की सार्थकता को विस्तार देते हुए कहते हैं -

“दुख में दुख में भी अन्तर है, जो सहनेवालों में है  
एक खुले घावों में है दुख, एक पके छालों में है  
उस दुख से क्या लेना-देना जो मरनेवालों में है  
हम उस दुख के अन्वेषक हैं जो जीनेवालों में है।”<sup>17</sup>

जीनेवालों के दुख का अन्वेषक होना कवि की अनाहत जिजीविषा का ही प्रमाण है। यह प्रमाण इस रूप में भी सामने आता है, जब कवि कहता है कि -

“हमको तो अपने हक सब मिलने चाहिए  
हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन  
कम से कम वाली बात न हमसे कहिए।”<sup>18</sup>

अदम्य इच्छा शक्ति से संचालित कवि का मन अपने हक एवं अधिकार के प्रति मुखर है। उनकी यही मुखरता उन्हें आम जनता से जोड़ती है। अपने हक की संपूर्णता

का दावा कवि के अनाहत मन की उपज है। अपनी कविता ‘इस पीढ़ी की इस पद्धति में’ वे लिखते हैं -

“हम तो उस मौके से  
बाहर रहते आए हैं  
जिसमें क्षणभर जी लेने की  
कई एक सुविधाएँ हैं”<sup>19</sup>

कवि क्षणिक सुख-सुविधाओं का विरोधी नहीं है बल्कि वे आकांक्षी है उन सुख-सुविधाओं की जो दीर्घकालिक हो, क्योंकि वे यह जानते हैं कि क्षणिक लाभ दीर्घकालिक समस्याओं का समाधान नहीं होता। आम आवाम क्षणिक लाभ हेतु अपने अमूल्य प्रतिरोधी चेतना को खो बैठते हैं। इसलिए कवि पहले खुद को उन सभी सुख-सुविधाओं से अलग करते हैं जो क्षणिक हैं, फिर वे आम आवाम को इसके लिए संबोधित करते हैं।

‘अधिकार हमारा है’ शीर्षक कविता में वे आम आवाम के भीतर गौरव की भावना को जागृत करता है। वे उन्हें उनके अधिकारों से रु-ब-रु करता हैं। वे लिखते हैं-

“इस जीवन में  
मैं प्रधानमंत्री नहीं हुआ  
इस जीवन में मैं प्रधानमंत्री के पद का  
उम्मीदवार भी शायद हरगिज नहीं बनूँ  
पर होने का अधिकार हमारा है  
भारत का भावी प्रधानमंत्री होने का  
अधिकार हमारा है”<sup>20</sup>

यहाँ कवि का जिजीविषा बोध जितना तीव्र है, उतना ही तार्किक एवं संवैधानिक भी। कवि की यह भावाभिव्यक्ति आम आवाम में गौरव की भावना का विकास करता है। इस तरह की अधिकार चेतना आमजन में प्रतिरोध की क्षमता को धार एवं विस्तार देता है। कवि आम आवाम को संबोधित करते हुए कहते हैं -

“नहीं, मुक्ति भय से न चाहिए  
यदि निर्भय होना है...”<sup>21</sup>

इस संदर्भ में वे उस आदर्श का भी खंडन करते हैं जिसके नाम पर समाज का एक बड़ा तबका शोषण, दमन एवं वंचन का प्रपंच रचते आए हैं। ‘ईश्वर’ शीर्षक कविता में वे लिखते हैं -

“कुछ दिन से मेरा मन मुक्त है  
ईश्वर का भय नहीं  
केवल एक अनुभव है कि वह मुझे मिला था

अब उससे परिचय है  
पर मित्रता नहीं  
मैंने जो अपने को छोड़ दिया था उस पर  
वह अब वापस लिया  
अगली मुठभेड़ तक''<sup>12</sup>

इसी तरह 'नेता क्षमा करें' शीर्षक कविता में वे पूँजीवादी सत्ता-व्यवस्था, छद्म समाजवाद एवं संकीर्ण धर्मवाद आदि का विरोध करते हैं। इस कविता में वे लिखते हैं -

“लोगो, मेरे देश के लोगो और उनके नेताओ  
मैं सिर्फ एक कवि हूँ  
मैं तुम्हें रोटी नहीं दे सकता  
न उसके साथ खाने के लिए गम  
न मैं मिटा सकता हूँ  
ईश्वर के विषय में तुम्हारा सम्भ्रम।”<sup>13</sup>

रघुवीर सहाय का बनी-बनाई वास्तविकता और घिसी-पिटी दृष्टि व समझ से हमेशा विरोध रहा है। उनकी 'कोशिश तो यही रही है कि सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरूक रहा जाये और वैज्ञानिक तरीके से समाज को समझा जाये।' इसी क्रम में वे अपनी कविताओं के माध्यम से आम लोगों में उस अनाहत जिजीविषा की चेतना का विस्तार करना चाहते हैं जिसका विकास अपने जीवन में वे स्वयं भी करते आए हैं। इस संदर्भ में वे कहते हैं कि - “विस्मृति का यह दौर अपने साथ एक मक्कारी और चालाकी ले आए और इतिहास को तोड़-मरोड़कर वर्तमान के पतन का गुणगान करे जैसा आज कर रहा है; पर यही समय है कि निराशा में अपने कर्तव्य को न खोजकर, झूठी आशा या खोखले शब्द को कविता बनाकर उस आदमी को धोखा न दे, जो आज चाहे निरक्षर हो पर कल हर कविता पढ़कर उससे एक नई कविता बनाएगा और वह वर्तमान कविता से ज्यादा बड़ी और सच्ची होगी।”<sup>14</sup> आगे अपनी एक कविता में वे लिखते हैं कि -

“एक बार जानबूझकर चीखना होगा  
जिन्दा रहने के लिए  
दर्शक दीर्घा में से”<sup>15</sup>

यहाँ चीख का संबंध असहमति से है। जिन्दा रहने के लिए असहमति जरूरी है। जहाँ असहमति नहीं है, वहाँ शोषण, दमन एवं वंचन का भरपूर चक्र चलता है। रघुवीर

सहाय 'लिखने का कारण' में कहते हैं कि - “समाज की समझ का मतलब है, समाज में मनुष्य और मनुष्य के बीच जितने गैर इंसानी रिश्ते हैं उनकी समझ कहां से वे पैदा होते हैं इसकी समझ और उनकी जड़ों तक पहुंच, इतिहास की समझ।” दरअसल रघुवीर सहाय संघर्ष के समय ही नए मानवीय रिश्तों की तलाश करते हैं। 'लोग भूल गए हैं' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं-

“आज के समाज का मानस यही है  
तुम कहते हो इस कविता में  
बगैर यह जाने कि तुम कितना कम  
इस समाज को जानते हो  
कितना कम जानते हो तुम उस डर के कारण को  
आज की संस्कृति का जो मूल स्रोत है”<sup>16</sup>

रघुवीर सहाय की कविता अपने समय एवं अपने समय की राजनीति से मुठभेड़ करती चलती हैं। उनका यह मुठभेड़ समय के साथ तीव्र होता चला गया। उन्होंने अपने समय की राजनीतिक विसंगतियों को कविता में व्यक्त किया। राजनीतिक छल-छद्म के विरुद्ध आम आवाम को चेतन एवं चिंतनशील बनाने का काम किया। अनुभव एवं यथार्थपरक तथ्यों का कविता में तार्किक अन्वेषण करना कवि का लक्ष्य रहा है। कवि उन तमाम धारणाओं एवं मान्यताओं का विरोधी हैं जो आम जनता का हितार्थ न हो। समाज एवं राजनीति में पनप रही हत्या की संस्कृति और खंडित होती जा मानवीय संबंधों एवं रिश्तों को बचाने का सार्थक प्रयास रघुवीर अपनी कविताओं के माध्यम से करते हैं। इसके लिए वे आमजन से भी प्रतिबद्धता की अपील करते हैं ताकि आनेवाले खतरों से बचा जा सके। 'आनेवाला खतरा' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं -

“इस लज्जित और पराजित युग में  
कहीं से ले आओ वह दिमाग  
जो खुशामद आदतन नहीं करता

कहीं से ले आओ निर्धनता  
जो अपने बदले में कुछ नहीं माँगी  
और उसे एक बार आँख से आँख मिलाने दो”<sup>17</sup>  
यहाँ कवि का अग्रगामी सोच परिलक्षित होता है। आपातकाल लागू होने के ठीक पूर्व कवि आनेवाले खतरों की पहचान कर आम आवाम के राजनीतिक तथ्यों की

वृद्धि करते हैं। वे उन्हें समय से पूर्व सचेत एवं सावधान करते हैं।

रघुवीर सहाय जीवन के अंतिम समय में भी अपने अनाहत मन को बनाए एवं बचाए रखा। अपनी पत्नी को संबोधित 'मैं खुद जाना चाहूँगा' शीर्षक कविता इस बात को प्रमाणित करता है कि उनकी अनाहत जिजीविषा के वृत्त में आम आवाम सहित पत्नी और परिवार रहे हैं। वे लिखते हैं -

“सच तो यह है कि कोई कह नहीं सकता है  
हम दोनों में से कौन पहले विदा लेगा  
हाँ चाहने को मैं खुद जाना चाहूँगा  
बाकी काम तुम पर या किसी पर छोड़कर।”<sup>18</sup>

एक दूसरी कविता 'बटू को देखकर' शीर्षक में वे लिखते हैं -

“मैं चाहता हूँ कि मेरे मरने पर तुम रोओ नहीं  
यह जान लो कि हम लोग साथ साथ रह चुके  
और अब जाता हूँ  
जीवन भर जिसे जी सकी हो  
तो मर जाने का तुम दुख न करा।”<sup>19</sup>

इस तरह जीनेवालों के दुख के अन्वेषक कवि, अपनी आने वाली मृत्यु पर पत्नी को दुख न करने की सलाह देते हैं। वे अपने जीवन की सार्थकता उस अनाहत जिजीविषा में खोजते हैं जिसे उन्होंने जीवनपर्यन्त जिया।

इस प्रकार देखें तो अनाहत जिजीविषा के कवि रघुवीर सहाय का जीवन, अनुभव और उनकी कविता संघर्ष की प्रक्रिया से गुजरती नजर आती हैं। संघर्ष के इन्हीं प्रक्रियाओं के बीच वे नए मानवीय रिश्तों की खोज करते हैं। इस दौरान वे अपनी ही मूर्ति बनाते-तोड़ते, तोड़ते-बनाते रहने के सार्थक संघर्ष को गतिशीलता प्रदान करते हैं।

**\*सीनियर रिसर्च फेलो (एसआरएफ)  
हिन्दी विभाग  
पटना विश्वविद्यालय, पटना**

**\*एसोसिएट प्रोफेसर, सह शोध-निर्देशक  
हिन्दी विभाग  
पटना विश्वविद्यालय, पटना**

## संदर्भ सूची

1. शर्मा, सुरेश, संपा. 'रघुवीर सहाय रचनावली 1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 2013, पृष्ठ 60
2. वही, पृष्ठ 144
3. गुप्ता, रमणिका, सं. 'युद्धरत आम आदमी' पत्रिका, वर्ष-6, अंक-60 (अंक-180), जनवरी-मार्च, 2019, पृ. 5
4. सहाय, रघुवीर, 'आत्महत्या के विरुद्ध', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 2009, पृष्ठ 1
5. शर्मा, सुरेश, संपा. 'रघुवीर सहाय रचनावली 1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 2013, पृष्ठ 110
6. सहाय, रघुवीर, 'हँसो हँसो जल्दी हँसो', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 2018, पृष्ठ 1
7. शर्मा, सुरेश, संपा. 'रघुवीर सहाय रचनावली 1', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : 2013, पृष्ठ 84
8. वही, पृष्ठ 67
9. वही, पृष्ठ 73
10. वही, पृष्ठ 174
11. वही, पृष्ठ 254
12. वही, पृष्ठ 214
13. वही, पृष्ठ 118
14. वही, पृष्ठ 204
15. वही, पृष्ठ 117
16. वही, पृष्ठ 225
17. वही, पृष्ठ 160
18. वही, पृष्ठ 382
19. वही, पृष्ठ 382



कुमकुम गुलहरे

## प्रेमचंद का क्रांतिकारी व्यक्तित्व एवं कृतित्व दलित संबंधी प्रेमचंद का चिंतन

### सारांश

मुंशी प्रेमचंद जी आधुनिक हिन्दी जगत में अविर्भाव से हिन्दी के कथा साहित्य ने नवीन की ओर मोड़ ली। प्रेमचंद आधुनिक कथा साहित्य के जनक ही निबंध के क्षेत्र में भी आपने प्रगतिशील मौलिक विचार प्रकट किए हैं। प्रेमचंद का जीवन आदि से लेकर अंत तक आभावों, कठिनाईयों और संघर्ष की लम्बी कहानी है। बचपन से ही उन्हें कठिनाईयों के कड़वे घूंट पीने पड़े। आर्थिक विषमता से पीड़ित मध्यम वर्गीय समाज के करूणा भरे चित्र निरंतर उनकी आँखों में तैरते रहे हैं। मानव जीवन को उसके बाहरी और भीतरी रूप को उन्होंने बहुत निकट से देखा और अपने समस्त साहित्य में सच्चाई और ईमानदारी के साथ उसे उतारा। उनके जीवन का हलाहल, उनके साहित्य का अमृत बन गया यही अमृत लेकर उन्होंने गरीबी और पीड़ित हिन्दुस्तान का साहित्यिक प्रतिनिधित्व किया उनके शोषित रूप को मानसिक संबल दिया इसलिए इस महान कलाकार का जीवन हमारे राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है।

### प्रस्तावना

प्रेमचंद ने भारतीय समाज व्यवस्था के चित्रण में कभी वेद-पुराण और रामायण-महाभारत को आदर्श नहीं माना। उनको यह मान्य था कि हिन्दू समाज ने शूद्रों के साथ अन्याय किया है उन्हें कुचला है। प्रेमचंद ने दलित बस्ती के ऐसे अनेक ग्रामों को देखा था। दलित परिवारों और व्यक्तियों पर हुए अत्याचारों को जाना था। इससे उन्हें वेदना होती थी। हिन्दू समाज शक्तिशाली है! सम्पन्न है ! उसकी वर्णाश्रम व्यवस्था सम्पन्न कृत्रिम है। उसका निर्माता

मानव ही है। अतः वह तथ्यहीन है। ईश्वर की सृष्टि में सारे मानव बराबर हैं। इसलिए जाति, धर्म, पंत, व्यवसाय के आधार पर दलितों को तुच्छ समझना प्रेमचंद को मंजूर नहीं था। दलितों की ओर मानवता और उदारता दृष्टि से देखने की जरूरत उन्हें महसूस हुई थी। फलतः उन्होंने हिन्दुओं के बाह्य ढकौसले पर जब तक आक्रमण किया था।

प्रेमचंद निश्चय ही जन्म से गैर दलित लेखक हैं, किन्तु वे हिन्दी के एकमात्र ऐसे लेखक हैं जो गाँधीवाद के जितने करीब हैं उतने ही मार्क्सवाद, स्त्रीवाद और अम्बेडकर के भी। प्रेमचंद का रचनाकाल मुख्य रूप से 1916 से 1936 है। यह भारतीय इतिहास का वही दौर है जिसमें नवजागरण कालीन समाज सुधार और स्वतंत्रता आंदोलन चल रहे थे। इसी दौर में आर्य समाज, ब्रह्म समाज, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, कांग्रेस, गाँधी, अम्बेडकर आदि के आंदोलन चरम पर थे।

समाज में मनुष्य जब अपने पतन से ऊपर उठने की कोई संभावना नहीं देखता है तब वह परिवर्तन चाहता है। प्रेमचंद ने समाज में होने वाले परिवर्तन की आहट को पहचाना और पूरे साहित्य को भारतीय जनजीवन का गीत बनाकर उसे सामाजिक सरोकार से सीधा जोड़ दिया। उन्होंने भारत की आत्मा किसान-मजदूरों के दुख दर्द को अपने साहित्य का विषय बनाया। कथा साहित्य में पहली बार यथार्थ को स्वीकार बनाया। प्रेमचंद के दर्जनों उपन्यास और सैकड़ों कहानियों में शायद ही कहीं किसी राजा-महाराजा या सामंत वर्ग का कोई नायक मिल जाये। प्रेमचंद का यदि सबसे अधिक विरोध किसी से है तो वह है ब्राह्मणी व्यवस्था और हिन्दू धर्म के पाखण्ड से।

हिन्दू धर्म भेद-भाव, ऊँच-नीच और शोषण का आदृत है। उसमें रहकर अपना उद्धार नहीं होगा, ऐसा डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर को जब लगा था, उन्होंने उसका त्याग किया था। उस समय मुसलमान और ईसाई दलितों को अपने जाल में फँसाने के लिए ताक में रहते थे। इससे हिन्दू सभा की नींद उड़ गयी और उसने दलित संबंधी अपनी गलतियों को सुधारना प्रारंभ किया था। इसी तरह आर्य समाज और ब्रह्म समाज दलितोद्धार में लग चुके थे। उसका उदाहरण है उनका एक भाषण जो लाहौर में 11 अप्रैल 1936 ई. में आर्य समाज की जुबली के साथ हुए आर्य भाषा सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने दिया था - हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्य समाज ने कदम उठाया। लड़कियों की शिक्षा की जरूरत को सबसे पहले उसने समझा, वर्ण व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उसके सर है। जाति भेद और खान-पान में छुआछूत और चौके-चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त है। यह ठीक है कि ब्रह्म समाज ने इस दिशा में पहले कदम रखा, पर वह थोड़े से अंग्रेजी पढ़े-लिखों की तरह ही रह गया। इन विचारों को जनता तक पहुंचाने का बीड़ा आर्य समाज ने उठाया। प्रेमचंद के दलित चिंतन को इन बातों ने प्रभावित किया था।

इसी तरह सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में महात्मा गाँधी ने दलितों के लिए जो ठोस कार्य किए थे, उनमें तो प्रेमचंद के चिंतन को गति मिली थी। हिन्दू धर्मान्तर्गत होने वाले कर्मकाण्डों ने तो उन्हें अत्यधिक उग्र बनाया था। बेगार प्रथा ने दलितों की कमर तोड़ दी थी। इस प्रथा के आधार पर जमींदार, पूंजीपति दलितों का मनमाना शोषण करते थे और उनकी इस निर्ममता ने प्रेमचंद को विद्रोही बनाया था। जीवन के नित्य व्यवहार में उन्होंने दलितों की दशा का जो सूक्ष्म निरीक्षण किया उससे उनका मन और मस्तिष्क इतना प्रभावित हुआ था कि उससे उनके साहित्य जगत में दलितों से संबंधित विचार की प्रखर रूप से अभिव्यक्ति मिल गयी थी। सवर्णों के कुएं पर पानी भरने, मंदिर में प्रवेश, पाठशाला में प्रवेश के संदर्भ में दलितों पर जो बंधन लगाए थे, उन्हें तोड़ने के प्रयास में प्रेमचंद एक बागी चिंतक हो चुके थे। भारतीय संस्कृति के जो मतलबी भक्त धन बल से अनेक दलित नारियों को अपने रंजन का साधन समझकर उनकी आबरू लूटते थे उनकी

निर्लज्जता ने प्रेमचंद को अर्न्तमुखी बनाया था। जीवन के हर क्षेत्र में दलितों का सुधार हो वे सम्मान के भागी बनें, उन्हें न्याय मिले यही प्रेमचंद की धारणा उनके दलित चिंतन में केन्द्रीयभूत रह चुका है।

### प्रेमचंद का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व और कृतित्व

क्रान्तिकारी प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई सन् 1880 ई. में परतन्त्रता के काल में लमही नाम गाँव में हुआ था। उनका साहित्य जीवन दो महायुद्धों के बीच का काल था, जब भारतीय जनता का शोषण स्वकीयां और परकीयों के द्वारा हो रहा था। इस वक्त प्रेमचंद ने देखा था कि भारतीय ही अपने गरीब भाईयों, रूढ़ि प्रथा, अन्धश्रद्धा और वर्णभेद के आधार पर लूट रहे थे और अन्यायकारी अंग्रेजी शासन अपना उल्लू सीधा कर रहा था। इसे साथ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का असर उनके मन पर जो हुआ था, उनके क्रान्तिकारी चित्र उनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का फल है।

प्रेमचंद का स्वभाव स्वाभिमानी था। छुट्टी के दिन जब उनके स्कूल के इन्स्पेक्टर उनके घर के सामने में जाते थे जब वे उन्हें सलाम नहीं करते थे। इस अवसर पर दोनों में हुआ संवाद प्रेमचंद के स्वाभिमानी व्यक्तित्व को दिखाता है - इन्स्पेक्टर - “तुम बड़े मगरूर हो। तुम्हारा अफसर दरवाजे से निकल जाता है। उठकर सलाम भी नहीं करते। प्रेमचंद - मैं जब स्कूल में रहता हूँ, तब नौकर हूँ। बाद में मैं अपने घर का बादशाह हूँ।

सन् 1920 ई. में महात्मा गांधी के प्रभाव से प्रेमचंद के मन में सरकारी नौकरी के प्रति एक प्रकार की उदासीनता पैदा हुई थी। उन दिनों जलियानवाला बाग में जो भीषण हत्याकांड हुआ था, उससे भी उनके दिल में ज्वाला सी जल उठी थी। मुल्क पर होने वाले अत्याचारों को देखकर सरकार की यह नीति उन्हें सहन नहीं हुई थी और उन्होंने अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया था।

सन् 1928 ई. के दरम्यान लखनऊ की आतिशबाजी के संदर्भ में प्रेमचंद ने वहां की यथार्थ परिस्थिति को परखा था। लोगों में कुछ करके मरने की शक्ति औ बुद्धि नहीं थी। इससे तो मुट्ठी भर अंग्रेज भारत पर डेढ़ सौ बरस राज्य कर रहे थे। इस हालत में महात्मा गांधी शायद कुछ कर देंगे, ऐसी आशा प्रेमचंद के मन में उत्पन्न हुई थी और उन्होंने स्वराज्य को इस बीमारी का इलाज समझा था। स्वराज्य में भी कमजोर का शोषण होता है। परन्तु

शोषकों को दुरुस्त करने के लिए वे साम्यवादी विचार की ओर झुके थे। इस संदर्भ में उन्होंने सन् 1919 ई. के 11 दिसम्बर को निगम साहब को लिखा था –“मैं अब करीब करीब बोल्शेविल उसूलों का कायल हो गया हूँ।” रूस की क्रान्ति ने रूस में जैसा किया था, वैसा भारत में भी हो यह उनका विचार था –“हाँ, रूस है जहाँ पर कि बड़ों को मार-मार कर दुरुस्त कर दिया गया, अब वहाँ गरीबों को आनन्द है। शायद यहाँ भी कुछ दिनों के बाद रूस जैसा ही हो।”

प्रेमचंद को जड़ता मंजूर नहीं थी। वे चुप बैठने वाले जीव नहीं थे। विदेशियों ने अपनी आजादी छीन ली, उसे अपना दैव समझना गलत है। अत्याचार देखकर जो चुप बैठता है, उसके अन्दर गर्मी नहीं हो सकती। भारतीय लोगों की कमी यह थी कि वे उतने जिम्मेदार नहीं थे। मुट्ठी भर अंग्रेज अपने मुल्क पर राज्य करते थे, इसका अर्थ यह है कि भारतीय लोगों में चरित्रबल और आत्मबल कुछ भी नहीं था। प्रेमचंद ने इसे जगान का काम किया था। स्वयं शिवरानी देवी भी असहयोग आंदोलन में कांग्रेस का साथ देती थीं और जेल जाती थीं। आजादी का यह प्रयास व्यर्थ नहीं था, क्योंकि पौध बाबा लगाता है, तो फल पोता पाता है।

प्रेमचंद अपने व्यक्तित्व को किसी मोल पर बेचते नहीं थे। उनके विचार बिकाऊ नहीं थे। गवर्नर हेली साहब प्रेमचंद को भारत का सबसे बड़ा राइटर्स समझकर उन्हें रायसाहबी देना चाहते थे। इसमें सरकार के मतानुसार लिखना पड़ेगा यह जानकर प्रेमचंद ने इस सौदे को पसन्द नहीं किया था और जनता की रायसाहबी की ही इच्छा करते थे।

सन् 1930 ई. में महात्मा गांधी के नमक कानून भंग करने के असहयोग आन्दोलन से प्रेमचंद प्रभावित हुए थे। इस दरम्यान जवाहरलाल नेहरू जैसे बड़े-बड़े नेताओं को जेल में बन्द किया गया था। इससे शिवरानी देवी के मुर्दादिल में कुछ गर्मी उत्पन्न हुई थी और उन्होंने महिलाओं के साथ आन्दोलन में भाग लिया था। जिसमें धीरज बँधाने का काम प्रेमचंद ने किया था। उनके क्रान्तिकारी भावों को शिवरानी देवी के विद्रोही भावों से बढ़ावा मिला था और उनकी कलम ने तेज चलकर नयी-नयी कृतियों को जन्म दिया था।

प्रेमचंद आजादी के विद्रोही लेखक थे, सच्चे सैनिक

थे। वे मानते थे कि आजादी रोने-धोने से नहीं मिलती। इसके लिए त्याग, तपस्या और बलिदान की आवश्यकता होती है। पर भारत में इससे उल्टा होने से गुलामी आयी थी। उन्होंने जाना था कि अपने लोगों में जबरदस्ती के सिवा चेतना उत्पन्न नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने लोगों को जड़ निद्रा से जागृह करने का सतत् यत्न किया था।

प्रेमचंद का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व केवल अंग्रेजों के विरुद्ध ही खड़ा नहीं रहा था, बल्कि अपनी राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक तथा जातीय भयंकर अत्याचारी समस्याओं के खिलाफ भी मुखर हुआ था। सामाजिक, धार्मिक और जातीय हानिकारक रूढ़ियों के विरुद्ध तो उन्होंने विद्रोह खड़ा किया था। किसी के डर या बल से दबने वाला उनका व्यक्तित्व नहीं था।

प्रेमचंद का व्यक्तित्व निर्भय था। अपने सामाजिक जीवन में नित्य अनुभवों ने उन्हें ऐसा बनाया था। किसान, मजदूर, विधवा-विवाह, वेश्या प्रथा, छूत-अछूत की जटिलताओं पर उन्होंने खुलकर अपने अमोघ अस्त्र कलम को चलाया था। जीवन में किसी भी क्षेत्र में जब उन्होंने अमानुष परम्परा या अत्याचार को देखा तब उसके संदर्भ में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर दी थी। पूंजीपतियों से कमजोरों को शोषण, ब्राह्मणों का व्यर्थ दम्भ और बाह्याडम्बर तथा दलितों के प्रति निर्मम व्यवहार जैसे दृश्य उन्होंने नित्य देखे थे, जिन्होंने उन्हें बेचैन किया था। उनमें उन्होंने क्रान्तिकारी परिवर्तन चाहा था। क्योंकि यह जमाने की आवश्यकता थी।

प्रेमचंद को अपनी सीमित क्रान्तिकारी शक्ति पर भरोसा था क्योंकि एक छोटी सी चिनगारी बड़े जंगल को खाक बना सकती है। यही उसकी ताकत है। इस तरह समाज का राष्ट्र की तरक्की कुछ थोड़े ही सुधारकों के हाथों होती है। प्रेमचंद का विचार इसमें हाथ बँटाने का था।

प्रेमचंद दुनिया को संग्राम-स्थल समझते थे। यहाँ एक सच्चे सिपाही की भाँति डटकर रहना आवश्यक है, डरकर भागने से काम नहीं चलेगा। इसलिए वे चाहते थे कि लेखक को पब्लिक और गवर्नमेंट से न दबकर निःपक्षपाती दृष्टि से अपना उत्तरदायित्व निभाना चाहिए।

प्रेमचंद का क्रान्तिकारी व्यक्तित्व, जो प्राप्य हालत में सुधार चाहता था, बदले की कामना करता था, जीवन में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक जैसे मोर्चों पर एक साथ नेक वीर की भाँति लड़ता था। यह व्यक्तित्व

कभी सुधारवादी, यथार्थवादी, साम्यवादी तो कभी गाँधीवादी रूप में निखर आया है। क्योंकि प्रेमचंद की धारणा को पण्डित सरशार, बकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, ताल्लस्याय, गोर्की, डिकेन्स, गाल्सवार्दी, गोखले, तिलक, रानडे और महात्मा गांधी आदि की विचारधाओं ने प्रभावित किया था। उनके व्यक्तित्व गठन में इनका योग रहा था।

प्रेमचंद के विचार विध्वंसक, हिंसक या विघातक नहीं थे। उन्हें राजनीति से परहेज नहीं था। उनका लक्ष्य भारत के किसानों, मजदूरों, दीन-दलितों की परिपूर्ण स्वाधीनता था। इसकी प्राप्ति के लिए जो भी सचेष्ट हुआ था, उसके साथ प्रेमचंद रहे थे।

ऐसे हिन्दी के गौरव और क्रान्तिकारी लेखक प्रेमचंद की अन्तिम विश्राम मिला 8 अक्टूबर सन् 1936 ई. में।

प्रेमचंद का व्यक्तित्व बहुत सारे अन्तर्द्वन्द्वों के बीच प्रवाहमय है। जीवन की अनेक संकटपूर्ण स्थितियों से समझौता करने के बजाय उनसे संघर्ष करने का रास्ता उनके पात्र ही नहीं चुनते, खुद प्रेमचंद ने वे रास्ते चुने थे। उन्होंने आरम्भ में दो भाषाओं में लिखने का संकट महसूस किया। किन्तु बाद में हिन्दी की ओर लौट आये। दरअसल यह उनकी अपनी अभिव्यक्ति को बड़ा क्षेत्र देने के लिए आवश्यक था। इस कोण से हम देखते हैं कि उन्होंने न केवल रचना कार्य का दायित्व समझा था, बल्कि उन्होंने रचनाओं को जिस जनमानस तक पहुंचाने का विचार किया था, उसकी सहज भाषा को ही उन्होंने स्पष्ट किया था। प्रेमचंद ने स्वीकार भी किया था कि भाषा की गुलामी ही सच्ची गुलामी है।

प्रेमचंद की रचनाएँ ही उनके व्यक्तित्व की प्रामाणिक साक्ष्य है। इसका मतलब यह नहीं है कि रचनाओं से बाहर के जीवन का उनके व्यक्तित्व से कोई संबंध नहीं। प्रेमचंद जो जीवन में थे उससे साफ और गहरे वे रचनाओं में मिलते हैं। प्रेमचंद का निजी जीवन कहीं न कहीं बड़े सन्दर्भ से जुड़ा है। उनके बारे में लिखे लेख, समकालीन लेखक-आलोचक की सूचनाएँ हमें मिलती हैं और स्पष्ट करती हैं कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम के संघर्ष में लेखक से बाहर की भी हिस्सेदारी प्रेमचंद ने निभायी है।

साहित्यकार अपने कृतित्व का आधार उसकी रचनाएँ और कृतियों के द्वारा व्यक्त करता है, जिसके माध्यम से वह तन, मन से कल्पना जगत और यथार्थ जगत की अभिव्यक्ति करता है। प्रेमचंद हिन्दी साहित्यकारों में एक

प्रसिद्ध साहित्यकार माने जाते हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य के लगभग सभी विधाओं पर लेखन किया है। हम यहां उनके कुछ विधाओं का केवल नामोल्लेख कर रहे हैं। चूँकि हमारा शोधकार्य उपन्यास से संबंधित है अतः यहां उनके द्वारा लिखित उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

### निष्कर्ष

दलित जीवन से संबंधित प्रेमचंद का साहित्य किस काल में रचा गया, यह प्रेमचंद के लिये स्फूर्तिदायी था। अंग्रेजों के शासन काल में सामाजिक वर्णव्यवस्था में भारतीयों और अंग्रेजों से दलितों की अशिक्षा, दरिद्रता, अन्धश्रद्धा और अस्पृश्यता के कारण उनका जो शोषण किया था, उससे निकली उनकी आह, वेदना और पतिततावस्था का यथार्थ चित्रण हुये प्रेमचंद की वकालत की है। इसमें उन्होंने अधिकारियों, हिन्दुओं और मुसलमानों पर दोषारोपण करके उन पर तीव्र व्यंग्य बाण चलाये हैं। इस रूप में प्रेमचंद ने दलित जागरण करके दलित आन्दोलन में जो सहयोग दिया है, वह एक सीमित दायरे में रहकर अपना अभिमत प्रस्तुत किया है।

प्रेमचंद दलित आन्दोलन की सक्रिय लड़ाई लड़ने वाले कोई राजपुत्र, राजनीतिक दल के नेता या महात्मा गांधी की तरह नंगे बदन घूमने वाले महात्मा नहीं थे। वे सामान्य हिन्दू परिवार में उत्पन्न असामान्य हिन्दू लेखक थे। आर्थिक, राजनीतिक या किसी विशिष्ट संगठन की कोई ताकत उनके पीछे न होने पर भी उन्होंने साहित्य के रूप में दलित मुक्ति संग्राम का जो नेतृत्व किया था, वह निःसंदेह प्रशंसनीय है। अपने सीमित कक्ष में बैठकर दलितों का आँखों देखा हाल उन्होंने साहित्य में प्रतिबिम्बित करके दलितों को जगाया है और हिन्दुओं, मुसलमानों तथा अंग्रेजों को समझाया है। उनका हृदय परिवर्तन किया है। इसमें उनका साहित्य कहीं सुधारवाद, कहीं आदर्शवाद तो कहीं यथार्थवाद की ओर झुक गया है। उनकी बदली हुई ये वैचारिक धारणाओं की परिसीमाएँ हैं, जिनके भीतर रहकर उनका साहित्य दलित आन्दोलन में योग देता है। प्रेमचंद का प्रारंभिक साहित्य गांधीवादी धारणा से अनुप्राणित है। यही धारणा उनके कुछ दलितों को अहिंसावादी, मानवतावादी बना देती है। प्रेमचंद के साहित्य की यह एक सीमा है।

प्रेमचंद के साहित्य में दलितोद्धार लड़ने वाले कार्यकर्ता दलितोत्तर हैं। कोई दलित पात्र राजनीतिक दल का नेता

बनकर दलित वर्ग का कल्याणार्थ लड़ता नहीं है, जो तत्कालीन परिस्थितियों से सुसंगत है। दलित वर्ग में होने वाले संगठन के अभाव की पीड़ा सौभाग्य के कोड़े के नथुवा और विध्वंस की भुनगी के शब्दों में व्यक्त हुई है। इस तरह प्रेमचंद ने यथार्थता का उल्लंघन न करके अपने दलित चित्रण की अभिव्यक्ति दी है।

प्रेमचंद साहित्य स्वाधीनता पूर्व काल की रचना सृष्टि होने से उसमें दलितों के उस काल के प्रश्नों के आधार पर ही दलित जीवन की सच्ची फोटो खींची है। स्वाधीनताोत्तर काल के दलित चित्र उसमें नहीं आ सकते।

रूस की जो बोल्शेविक क्रान्ति मजदूरों की विद्रोही नीति का फल थी, उससे संसार के मजदूरों में जागरण की नयी हवा बह रही है। इसके अनुसार अधिक परिश्रमी मजदूर सम्मानित व्यक्ति है, शासक है। प्रेमचंद साहित्य के चमार मजदूरों को भी जागरण की नयी हवा लगी हुई है। प्रेमाश्रम और कायाकल्प में बोल्शेविक क्रान्ति के आये हुये विचारों की सीमा में प्रेमचंद साहित्य दलित आन्दोलन

के लिए उपयोगी है।

प्रेमचंद जाति से दलित नहीं, दलितेतर थे। कोई दलित लेखक प्रत्यक्ष अनुभूत दुःखों के आधार पर दलितों के दुःखों के यथार्थ और प्रभावी स्वर दे सकता है। यह बिल्कुल सही है। परन्तु दलित न होते हुये भी प्रेमचंद ने दलितों की ओर पक्षपाती दृष्टि से नहीं देखा है। भारतीय जन जीवन की विभिन्न समस्याओं की तरह उन्होंने दलितों की समस्याओं पर गंभीरता के साथ चिन्तन किया है।

प्रेमचंद साहित्य दलित लेखक के द्वारा केवल दलितों के संबंध में लिखा गया दलित साहित्य नहीं है। दलित और दलितेतर से संबंधित विस्तृत चर्चा के रूप में लिखा गया साहित्य है। प्रेमचंद ने दलित साहित्य को वंचितों का साहित्य बताते हुए उनके शोषण को बड़े कैनवास पर आलोकित करने का अभिनव प्रयास किया है।

शोधार्थी

हिन्दी विभाग

भारतीय विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची

##### प्रेमचन्द द्वारा रचित उपन्यास

1. सेवासदन -1963
2. प्रेमाश्रम -1981
3. वरदान -1980
4. रंगभूमि -1969
5. कायाकल्प -1969
6. निर्मला -1983
7. गबन -1982
8. कर्मभूमि -1981
9. गोदान -1981
10. मंगलसूत्र व अन्य रचनाएँ

#### प्रेमचन्द द्वारा रचित कहानियाँ

1. मानसरोवर - 1 -1968
2. मानसरोवर - 2 -1969
3. मानसरोवर - 3 -1969
4. मानसरोवर - 4 -1980
5. मानसरोवर - 5 -1970
6. मानसरोवर - 6 -1966
7. मानसरोवर - 7 -1965
8. मानसरोवर - 8 -1966
9. कफन संग्रह-1961



प्रो. ब्रजेश कुमार पाण्डेय\* अभिषेक कुमार पाण्डेय\*\*

## अलङ्कार्य का अलङ्कारकत्व प्रतिपादन

**भ**ारतीय वाङ्मय की 'वेदवद् इमा विद्या अनादयः' इस सिद्धोक्ति के अनुसार सभी विद्याएं अनादि हैं। अनादि काल से प्रवर्तमान चराचरामक जगत में मानव सुख अनुसन्धान तथा आत्यन्तिक दुःख से निवृत्ति के लिये सदैव प्रयासरत रहा है। मरणधर्मी मानव के संसार से उद्धार के लिए साक्षात्कृत धर्म ऋषि ने परम क्षणिक भावना से वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, पुराण, शास्त्र स्मृति आदि का प्रकाशन किया। इसी क्रम में कान्ता-सम्मिलित उपदेश के लिए भारतीय परम्परा में काव्य मार्ग का उदय हुआ। भारतीय काव्य का उदय लक्ष्यरूप में वेदों से ही पदे पदे दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद का यह वाक्य - **द्वामुपर्णा सयुजा सखाया, समानवृक्षं परिषस्वजाते तयोरन्यः पिपलं स्वाद्वत्यक्षन्नन्यो अभिचाकशीति**<sup>1</sup> इस बात को स्पष्टतया परिपुष्ट करता है। उपरोक्त पत्र में रूपक अलंकार होने के कारण काव्यालंकार की सिद्धि होती है। ऋग्वेद में ही अन्यत्र काव्य विषयक वर्णन मिलता है जहाँ कहा गया है- **“उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती गुवासाः।”**<sup>2</sup> काव्यशास्त्र ग्रंथ के रूप में सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र प्राप्त होता है। यद्यपि नाट्यशास्त्र में प्रधानरूप से नाट्यतत्त्व की ही चर्चा प्राप्त होती है तथापि नाट्यशास्त्रकार ने काव्य विषयक प्रधान विषयों की ओर संकेत अवश्य किया है। पूर्णतया काव्यशास्त्रीय ग्रंथ के रूप में आचार्य भामहकृत काव्यालंकारकारिका ग्रन्थ प्राप्त होता है।

आचार्य भामह ने काव्य का लक्षण **“शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्”**<sup>3</sup> इत्यादि स्वरूप निर्वचन किया है। काव्य के स्वरूप के संदर्भ में आनन्दवर्धन के पूर्व तक आचार्यों ने

स्थूल विवेचन किया है। यद्यपि आचार्य वामन ने परम्परा से किञ्चित् हटकर नूतन स्वरूप प्रदान करते हुए **“रीतिरात्मा तुकाव्यस्य”**<sup>4</sup> कहकर काव्य की आत्मा रीति को माना। काव्यशास्त्र में आचार्य आनन्दवर्धन ने सर्वथा नवीन पथ को प्रदर्शित करते हुए अपने सिद्धान्त का प्रकाशन किया।<sup>5</sup> ध्वनि सम्प्रदाय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नवम शताब्दी है। आनन्दवर्धन ने ध्वनि को आत्मतत्त्व के रूप में स्वीकार करते हुए सम्भावित सभी पक्षों को उपस्थापित कर अभाववादी, भाक्तवादी, अनिर्वचनीयतावादी मतों का निरास करते हुए रसध्वनि को अन्ततः काव्यात्म तत्त्व के रूप में व्यवस्थापित किया है, परञ्च यदा कदा ये अलंकार्य तत्त्व अलङ्कार का भी प्रतिपादन करते हैं। जो हमें रसवदलकार के रूप में प्राप्त होते हैं, **“रसवदलंकारावलक्ष्यक्रमद्यो-तनात्मनो ध्वनेर्विभक्तो विषय”**<sup>6</sup> रसादिध्वनि निश्चित ष से अलंकार्य है, एवं उपमादि अलंकार उसके अलंकारक तत्त्व है परन्तु कभी-कभी रसादि की भी स्थिति अलंकार के रूप में प्राप्त होती है, वहाँ रसवदलकार एवं असंलक्ष्यक्रम-ध्वनि, दोनों विभक्त विषय होते हैं।

**वाच्यवाचकचारताहेतूनां विविधात्मनाम्।**

**रसादिपरता यत्र स ध्वनेर्विषयो मतः॥**<sup>7</sup>

विविध जो वाच्य वाचक के चारुत्व हेतु उनका जब रस में तात्पर्य होता है। तो वहाँ रसध्वनि होती है, एवं विपरीत अवस्था में जहाँ रसादिध्वनियों का वाच्य वाचक के चारुत्व हेतु में प्रयोग होने पर वहाँ रसवदलंकार होता है।

**नन्वङ्गित्वेनावभासमान इत्युच्यते, तत्राङ्गत्वमपि किमस्ति रसादेर्येन तन्निराकरणायैतद्विशेषणमित्य-**

भिप्रायेणोपक्रमते इदानीमित्यादिना । अङ्गत्वमस्ति रसादीनां रसवत्प्रेय ऊर्जस्विसमाहितालङ्काररूप तयामिति भावः। अनयाच भङ्ग्या रसवदादिष्वलंकारेषु रसादि-ध्वनेर्नान्तर्भाव इति सूचयति।<sup>8</sup>

जहाँ भी ये रसवद, प्रेय, ऊर्जस्वी या समाहित अलंकार होते हैं, वहाँ रसादि गौण एवं रसवदाद्यलंकार प्रधान अलंकाररूप होते हैं।

**प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङ्गतु रसादयः।**

**काव्ये तस्मिन्नतङ्कारो रसादिरिति मे मतिः॥**<sup>9</sup>

चाटु के विषय में प्रेयोऽलंकार के मुख्यरूप से रहने एवं रसादि के गौणरूप से रहने के कारण अब रूप एवं रसवद् को मुख्य रूप से देखा जाता है। जहाँ प्रेयोऽलंकार प्रधान होता है वहाँ वह अलंकरणीय होता है। अलङ्कार की अलङ्करणीयता ठीक नहीं होती है। यदि वह वाक्यार्थ होता है। अर्थात् प्रधान होता है यदि प्रेयोऽलंकार में ही चमत्कारकारित्व होता है, ऐसी स्थिति में रसादि उसके अङ्ग होते हैं। इसके दो भेद होते हैं, शुद्ध एवं सङ्कीर्ण जहाँ पर एक ही रसादि प्रेयोऽलङ्कार गुरु, देवता, राजा तथा पुत्र विषयक प्रेम का अङ्ग होता है। वहाँ पर शुद्ध रसवदलङ्कार होता है, जहाँ पर संकीर्ण रसादि अङ्ग होते हैं वहाँ पर सङ्कीर्ण रसवदलदार होता है।

**रतिर्देवादिविषया व्यभिचारि तथाञ्जितः, भावः प्रोक्तः॥**<sup>10</sup>

“किं हास्येन न मे प्रयास्यसि पुनः प्राप्तश्चिराद्दर्शनं केयं निष्करुण! प्रवासरुचिता केनासि दूरीकृतः। स्वप्नान्तेष्विति ते वढन् प्रियतमव्यासक्तकण्ठग्रहो बुद्ध्वा रोढिति रिक्तबाहुवलयस्तारं रिपुस्त्रीजनः॥”<sup>11</sup>

यह श्लोक शुद्ध रसवदलंकार का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ शुद्ध करुण रस राजभक्ति का अङ्ग बन रहा है संकीर्ण रसवदलंकार—

**‘क्षिप्तो हस्तावलग्नः प्रसभमभिहतोऽप्याददानोंऽ-  
शुकान्तम्**

**गृह्णन्केशेष्वपास्तश्चरणनिपतितो नेक्षितः संप्रमेण।**

**आलिङ्ग्योऽवधूतस्त्रिपुरयुवतिभिः साश्रुनेत्रोत्पलाभिः**

**कामीवार्द्धापराधः स दहतु दुरितं शांभवो वः**

**शराग्निः॥**<sup>12</sup>

भगवान् शङ्कर के प्रभावातिशय वर्णन ही कवि का उद्देश्य है श्लेषयुक्त ईष्याविप्रलम्भ तथा करुण उसके अंग है। इसी प्रकार के उदाहरण रसवदलङ्कार के उचित

विषय होते हैं।

पुनः यह चर्चा उपस्थित होती है कि यदि रसवद भी अलंकार है पुनः दोनों का भेदकतत्त्व क्या होगा? तो इसका उत्तर यह होगा कि जहाँ चेतन वस्तुवृत्तान्त होगा वहाँ रसवदलङ्कार एवं जहाँ अचेतन वस्तु वृत्तान्त होगा वहीं उपमाद्यलङ्कार होते हैं, यदि इस सिद्धान्त को शब्दशः स्वीकार्य करें तो पुनः यह कल्पना मन को दोलायित करता है कि ऐसा कोई अचेतन वस्तु वृत्तान्त नहीं जहाँ अध्याहारित कर पुनः चेतन वस्तु वृत्तान्त न आ सके। इस प्रकार यह या तो रसवदलंकार का प्रविरल विषय हो जायेगा या उपमाद्यलंकार का प्रविरल विषय हो जायेगा।

उदाहरणस्वरूप यदि ध्वन्यालोककार द्वारा प्रतिपादित इस उदाहरण को देखें तो

**तरङ्गभूभंगा क्षुमित विहगश्रेणिरशना विकर्षन्ती  
फेनं वसनमिव संरम्भशिशिलम्।**

**विदध्यं याति स्खलितमभिसंधाय बहुशो नदीरूपेणेयं  
ध्रुवमसहना सा परिणता॥**<sup>13</sup>

इस श्लोक में अचेतन वस्तु वृत्तान्त है, परञ्च विभावादि के माध्यम से चेतन वस्तु वृत्तान्त अध्याहारित हो जाता है ऐसे ही प्रायः सभी अचेतन वस्तु वृत्तान्त के जगह चेतन का अध्याहार होने से उपमाद्यलङ्कारों की सत्ता ही दृष्टिपथ से ओझल हो जायेगी अतः चेतन और अचेतन को त्याग कर यह मानें कि जहाँ रसादि वाक्यार्थ के अङ्ग होते हैं, तो वहाँ पर रसाद्यलङ्कार होता है और जहाँ पर रस अथवा भाव ही प्रधान होने के कारण प्रधान होते हैं तब वही रसादि ध्वनि होती है। मम्मट में भी स्वकीय काव्यप्रबन्ध काव्यप्रकाश में रसवदलंकार की चर्चा की है।

**रसभावतदाभास भावशान्त्याविरक्रमः।**

**भिनोरसाद्यलंकारादलंकार्यतया स्थितः॥**<sup>14</sup>

रस, भाव, तदाभास, तथा भावाभास और भावशान्ति आदिअलक्ष्यक्रम ध्वनि प्रधान होने से (अलङ्कार्य होने से) रसवदादि अर्थात् (रसवद्, प्रेय, ऊर्जस्विन, समाहित) इन अलङ्कारों से भिन्न है।

**प्रधानतया यत्र स्थितो रसादिस्तत्रालंकार्यं  
यथोदाहरिष्यते। अन्यत्रतु प्रधाने वाक्यार्थे यत्राभूतो  
रसादिस्तत्र गुणीभूतव्यङ्ग्य रसवत् प्रेय,  
ऊर्जस्विसमाहितादयोऽतकाराः॥**<sup>15</sup>

जहाँ रसवदलंकार की स्थिति प्राप्त होती है। वहीं उत्तम काव्य न होकर गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य होता है

रसवदलंकार पर विचार आचार्य जगन्नाथ ने भी अपने रसगंगाधर के प्रथमानन के अन्त में किया है-**एवमेषां रसादिना प्राधान्येन निरूपितान्युदाहरणानि**<sup>16</sup> **गुणीभूतव्यंग्यरसादीनामुदाहरणापेक्षयामाह तत्र प्राधान्य एवैषां रसादित्वमेव अन्यथा तु रत्यादित्वमेव**<sup>17</sup> यदि यह जिज्ञासा कीजिये कि जब ये गुणीभाव को प्राप्त होते हैं, तो वहाँ रसादि का अभाव होता है, पुनः रसवद् शब्द से इनकी विवेचना क्यों की जाती है, तो इस पर कुछ विद्वानों का मन्तव्य है कि जब रसादि गौण हो जाते हैं। तो इसमें रसादि पद रत्यादि के ही बोधक होते हैं, गौण हो जाने पर रत्यादिभावत्व होते हैं। केवल ध्वनि काव्यवहार नहीं होता है। **नामानिरसपदं तुरत्यादिपरमित्येके। अस्त्येवः रसादित्वम्, किन्तु न ध्वनि व्यपदेशहेतुत्वमित्यपरे**<sup>18</sup> **निष्कर्ष**

प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से यह विवेचित किया गया

है की “**राजानुगतविवाहप्रवृत्तभृत्यवत्**”<sup>19</sup> के अनुसार कभी-कभी रसादि भी अंग के रूप में विद्यमान होते हैं और आज भी कभी प्राधान्यता को प्राप्त होता है, इसके स्वरूप पर काव्यशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों से प्रकाश डाला गया है एवं इसके स्वरूप का विस्तार किया गया है एवं इस काव्यशास्त्र के जटिल सिद्धान्त को परिमार्जित करने एवं शोध सुलभ बनाने का प्रयास किया गया है।

**\*प्राध्यापक**

**संस्कृत एवं प्राच्यविद्याध्ययन संस्थान**

**जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,**

**नई दिल्ली-110067**

**\*शोधार्थी**

**संस्कृत एवं प्राच्यविद्याध्ययन संस्थान**

**जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,**

**नई दिल्ली-110067**

#### संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद- 1/164/20
2. वही-10/71/4
3. काव्यालंकार-1.16
4. काव्यालंकार-1.2.6
5. तस्य हि ध्वनिरूपं सकलसत्कविकाव्योपनिषद्भूत-  
मतिरमणीयसीभिरपि चिरंतनकाव्यलक्षण विधायिनां  
बुद्धिभिरनुन्मीलितपूर्वम्, अथ च रामायणमहाभारत-  
प्रभृतिनिलक्ष्ये सर्वत्र सहृदयानामानंदो मनसि लभतां प्रतिष्ठामिति  
प्रकाशयते। 1.6
6. ध्वन्यालोक, वृत्तिभाग-1.6
7. ध्वन्यालोक, वृत्तिभाग-2.4
8. ध्वन्यालोक, 2.4
9. ध्वन्यालोक, लोचन-2.4
10. काव्यप्रकाश, वृत्तिभाग-4.35
11. ध्वन्यालोक, उदाहरण-2.4
12. ध्वन्यालोक, उदाहरण-2.4
13. ध्वन्यालोक, 2.5
14. काव्यप्रकाश, 4.6
15. काव्यप्रकाश, वृत्तिभाग-4.6
16. रसगंगाधर-1, पृ. 405
17. रसगंगाधर-1, पृ. 405
18. रसगंगाधर-1, पृ. 406
19. काव्यप्रकाश-4, सूत्र-51, पृ. 146

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ध्वन्यालोकः, लोचनसहितः (आनन्दवर्धनाचार्यः, अभिनवगुप्तः)  
जगन्नाथपाठकः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2011
2. ध्वन्यालोकः (विश्वेश्वरसिद्धान्तशिरोमणि कृतहिन्दी-  
व्याख्यासमन्वितः), आनन्दवर्धनः, सम्पादकः - नगेन्द्रः,  
गौतम बुक डिपो : दिल्ली, 1952
3. काव्यप्रकाशः, वामनीसहितः (मम्मटः, झळकीकरः) परिमल  
पब्लिकेशन्स, दिल्ली - 2012
4. काव्यप्रकाशः, मम्मटः, सम्पादकः - निवासशास्त्री, साहित्य  
भण्डार : मेरठ - 1960
5. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, (हिन्दी अनुवाद), पी वी  
काणे, मोतीलाल बनारसी दास : दिल्ली 1994
6. रसगंगाधर (केदारनाथ-ओझाकृतसचन्द्रिकासहितः),  
पण्डितराजजगन्नाथः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः :  
वाराणसी, 1981
7. रसगङ्गाधरः (नागेशकृतगुरुममप्रकाशसहितः),  
पण्डितराजजगन्नाथः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः,  
वाराणसी, 1998
8. रसगङ्गाधरः (मदनमोहनझाकृतचन्द्रिकासंस्कृतहिन्दी-  
व्याख्यासहितः), पण्डितराजजगन्नाथः, चौखम्बा विद्या भवन :  
वाराणसी, 1987
9. रसगङ्गाधरः (बदरीनाथझाकृतसंस्कृतव्याख्या-  
मदनमोहनझाकृतहिन्दीव्याख्यासहितः), पण्डितराज- जगन्नाथः  
चौखम्बा विद्या भवन : वाराणसी, 1955



सुनील कुमार

## यात्रा के जरिए जीवन को अर्थ और संभावनाएँ देती स्त्रियाँ

“जीवन एक वरदान है  
प्यार इससे भी ज्यादा  
लेकिन स्वतंत्रता पाने के लिए  
मैं इन दोनों को भी फेंक सकता हूँ।”<sup>1</sup>

यिन फू आजादी को प्रेम से भी बड़ा मानते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो स्त्रियों को प्रेम के जरिए बांधने की कोशिश की जाती है, जहाँ उन्हें मातृत्व का हवाला देकर घरेलू जीवन में उलझाकर रखा जाता है। स्त्रियों का घरेलू जीवन उसे एक सीमित दायरे में रखने का प्रयास है। यात्रा उन्हें इस सीमित दायरे से बाहर निकालती है। यात्रा, यात्रा करती हुई स्त्रियों से प्रश्न करता है कि वे कौन हैं? उनकी अस्मिता क्या है? उनके सपने क्या हैं? ऐसे प्रश्न उनके भीतर कसमसाहट पैदा करती हैं, एक बेचैनी जिसके जरिए स्त्रियाँ अपने जीवन पर एक सरसरी निगाह डालती हैं, फिर उनसे गुजरते हुए एक अर्थवत्ता की तलाश करती हैं। स्त्रियाँ बेहतर जीवन की तलाश में कई जगहों की यात्रा करते हुए अपने जीवन में उन्मुक्तता की पहचान करती हैं। यह उन्मुक्तता स्त्रियों को एक पहचान देती है, जो उन्हें लीक से हटकर चलने की प्रेरणा देती है। इस प्रकार, यात्रा के जरिए स्त्रियाँ अपने जीवन को अर्थ और संभावनाएँ देती हैं।

अस्मिता मूलक विमर्श हिंदी साहित्य में एक नई दृष्टि लेकर आया। इस विमर्श ने जिन विधाओं के जरिए अपनी अभिव्यक्ति की है, उनमें कविता, कहानी, आत्मकथा और यात्रा-संस्मरण प्रमुख हैं। दलित विमर्श की शुरुआती अभिव्यक्ति में कविता और आत्मकथा की भूमिका महत्वपूर्ण रही। बदलते संदर्भ में आत्मकथा के साथ-साथ यात्रा-संस्मरण

ने उसे मुखरता प्रदान की है। जहाँ आत्मकथा जीवन में घटित घटनाओं का तार्किक विश्लेषण है, वहीं पर यात्रा-संस्मरण जीवन में एक अलग स्पेस देते हुए उसके पहचान को पुष्ट करता है, ध्वस्त करता है तथा एक नई पहचान देती है। जीवन के इस स्पेस को देखने का पुरुष और स्त्री के नजरिए में काफी अंतर है। जहाँ पुरुष के लिए यात्रा सुगम और सुलभ है, वहीं स्त्री के लिए खतरनाक और दुष्कर है। यात्रा को पुरुषोचित कर्म माना जाता रहा है, इसलिए यात्रा को स्त्री के लिए वर्जित माना गया है। यातायात के साधन ने स्त्रियों के लिए यात्रा का मार्ग सरल बनाया, जिससे स्त्रियों ने यात्राएँ की तथा अपने अनुभवों को लिपिबद्ध भी किया।

यात्रा-संस्मरण लेखन में पुरुष और स्त्री की प्राथमिकताओं और उद्देश्य में काफी अंतर रहा है। यह माना जाता है कि जहाँ पुरुष प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा के लिए यात्रा पर निकलता था, वहीं स्त्री के लिए प्रसिद्धि का प्रश्न प्रतिष्ठा के खिलाफ था। दरअसल, उसके लिए एक सीमित दायरे का पालन करना अनिवार्य था। इस अनिवार्यता के मूल में स्त्रियों को कैद में रखना था। यात्रा के जरिए स्त्रियों का उद्देश्य उस कैद से बाहर निकलना और अपनी आजादी को महसूसना है। यात्रा-संस्मरण आजादी के लिए एक स्पेस क्रिएट करता है। जैसा कि गरिमा श्रीवास्तव कहती हैं—“जब हम कहते हैं कि स्त्री के अपने मुहावरे होते हैं और उनकी अपनी भाषा होती है तो दरअसल हम स्त्री की विशिष्ट अभिव्यक्ति की शिनाख्त कर रहे होते हैं।”<sup>2</sup>

यह विशिष्ट अभिव्यक्ति स्त्री के अपने निर्णय और चयन की स्वतंत्रता तथा उसके सबल पक्ष को सामने लाने

का प्रयास है। स्त्री जब अकेले यात्रा पर निकलती है, तब उसका सबल पक्ष सामने आता है जैसा कि अनुराधा बेनीवाल स्त्रियों को संबोधित करती हुई लिखती हैं- “एक अकेली बेकाम, बेफिक्र, बेटैम फिरती लड़की में एक अलग-सी ताकत होती है। एक अलग-सा साहस होता है। वह साहस जो किसी (बाप, भाई, पति) का हाथ पकड़कर निकलने में कहीं छुप जाता है। वह साहस जिससे हमारा समाज घबराता है। वह साहस जिसे कभी बाहर निकलने का मौका ही नहीं दिया गया। वहीं साहस ढूँढ़ने तुम निकलोगी। तुम फिरोगी उस साहस को जीने। वह तुम्हारा ही है। जब निकलोगी तब पाओगी।”<sup>3</sup>

पितृसत्तात्मक समाज यह कभी नहीं चाहता है कि स्त्री साहसी हो। उसके साहस को दबाने का ही प्रयत्न किया जाता है। यही कारण है कि स्त्रियों को इतिहास में पर्याप्त स्थान नहीं मिला है। जिन स्त्रियों ने इतिहास बनाए हैं, उन्हें भी इतिहास में कमकर आँका गया है। उनकी छवि को इस प्रकार गढ़ा गया है कि वे पितृसत्ता को ही पुष्ट करती हुई नजर आती हैं। जैसे कि सीता, सावित्री या अन्य स्त्रियाँ। इतिहास में कुछ ऐसी भी स्त्रियाँ हैं जिनकी तेजस्विता को कम नहीं किया जा सकता था। वे इतिहास के लोक परम्परा में स्थान पाकर अपनी तेजस्विता के साथ जीवित रही हैं। दरअसल, पुरुषों के द्वारा लिखित इतिहास में स्त्री पुरुष की सहायिका के रूप में व्यक्त होती रही हैं। ऐसे में यह स्वाभाविक है कि स्त्री यात्रा-संस्मरण का आवश्यक विवेचन और विश्लेषण आलोचना साहित्य में नहीं हुआ है। स्त्री यात्रा-संस्मरण को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा गया। जबकि बराबर स्त्रियों ने यात्राएँ कीं, और यात्रा-संस्मरण लिखीं। पश्चिम में महिला यात्रा-संस्मरणकार की एक लम्बी लिस्ट है। फिर भी इतिहास में स्त्रियों को विशेष स्थान नहीं मिला। यूरोप में स्त्रियों के यात्रा पर भी पाबंदी रही। विक्टोरिया युग में महिला यात्री को शालीन पोशाक पहनकर ही यात्रा पर जाने की छूट थी। जैसा कि अरुण प्रकाश लिखते हैं-“प्रसिद्ध यात्रा-आख्यान ‘इन द शैडो ऑफ इस्लाम’ की लेखिका इसाबेल एबेरहार्ट ने सामाजिक बंदिशों को देखते हुए इस्लाम कबूल कर लिया और पुरुष वेश में यात्रा की।”<sup>4</sup>

भारत में देखा जाए तो इस तरह का उदाहरण मीराँबाई का है। मीराँबाई भी एक यात्री रही है। वे जीवन की अर्थवत्ता की तलाश में यात्रा पर निकलती हैं। गिरधर की तलाश में वे जीवन को एक अलग स्पेस देते हुए निज

स्वतंत्रता की तलाश करती हैं। इस क्रम में वह पहले मथुरा, वृंदावन की यात्रा करती हुई, अंततः द्वारिका में स्वतंत्र जीवन जीती हैं। वे कहती हैं-

“मैं गिरधर के घर जाऊँ।

गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम

देखत रूप लुभाऊँ ॥

रैण पड़ै तब ही उठ जाऊँ

भोर भये उठ आऊँ॥

घर आँगण न सुहावे पिया बिन मोहिन भावे॥

दीपक जोय कहा करूँ सजनी

पिया परदेस रहावे।

सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे,

सिसक सिसक जिय जावे॥

नैण निंदरा नहीं आवे॥”<sup>5</sup>

मीराँबाई के बारे में पंकज बिष्ट लिखते हैं-“वैरागी या वैरागन होने की मंशा मूलतः इन बंधनों से मुक्त होने की आकांक्षा के चलते ही है। कंठी-भभूत और जटा-जुट की कामना मात्रा गली-कूची में भटकने और गाने-बजाने की आजादी की कामना नहीं है। यह आत्मनिर्णय की आजादी की ललक है।”<sup>6</sup>

यह आजादी की ललक मीराँबाई को विद्रोहिणी बनाती है। अध्यात्म बस एक जरिया है जिसके सहारे वे बंधन मुक्त होकर खुली हवा में साँस लेना चाहती हैं। मीराँबाई की तरह ईसाबेल ने इस्लाम कबूल कर पुरुष वेश में यात्रा की। मीराँबाई और ईसाबेल तत्कालीन वर्चस्ववादी मानसिकता के खिलाफ अपना रास्ता निकालकर निज स्वतंत्रता की तलाश में यात्रा करती हैं। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि दुनिया किसी भी कोने में स्त्रियों के लिए यात्रा करना कितना कठिन रहा है। ऐसे में स्त्री यात्रा-संस्मरण को आलोचकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया होगा, संशयात्मक है।

भारत में यात्रा-संस्मरण लेखन का शुरुआत भारतेन्दु-युग से होता है। इसी युग में स्त्री यात्रा-संस्मरण लेखन की भी शुरुआत होती है। ‘हरदेवी का लंदन यात्रा’ हिंदी का पहला स्त्री यात्रा-संस्मरण है। इससे पहले हिंदी में स्त्री यात्रा-संस्मरण नहीं लिखे गए। हरदेवी के बाद भी स्त्री यात्रा-संस्मरण एक लम्बे अरसे तक उपलब्ध नहीं होते हैं। ऐसा नहीं है कि यात्रा-संस्मरण लिखे ही नहीं गए होंगे। यह संशयात्मक है। दरअसल, ‘हरदेवी का लंदन यात्रा’ का भारत में तीव्र विरोध हुआ था। इसका कारण यह था कि वे जिस तरह

के सवाल उठा रही थीं, भारत का तथाकथित सभ्य समाज उसे मानने के लिए तैयार नहीं था। यही कारण है कि हरदेवी के यात्रा-संस्मरण को नोटिस नहीं किया गया या अन्य स्त्री यात्रा-संस्मरण लेखिका हाशिए पर रही। हिंदी प्रदेश के अलावा भारत के अन्य भाषिक समुदाय जैसे बांग्ला में स्त्री यात्रा-संस्मरण लेखन के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। बंगाल और गुजरात में यात्रा पर जाने का चलन रहा है। यहां पर यात्रा को एक कल्चर की तरह देखा जाता है। यही कारण है कि बंगाल की स्त्रियाँ यात्रा पर निकलती हैं।

भारत में जहां समुद्र पार करना अपशकुन माना जाता रहा है, वहीं पर बंगाल की स्त्रियाँ ने समुद्र पार की यात्राएँ कर इस, इस मिथ को चुनौती दी। हालाँकि पुरुषों ने पहले ही समुद्र पार की यात्राएँ कर उसे चुनौती दिया था। राजकुमारी बनर्जी पहली महिला हैं जो विदेश यात्रा पर जाती हैं। यह अलग बात है कि वे एक विशेष निमंत्रण पर इंग्लैंड जाती हैं। यह किसी महिला द्वारा पहला समुद्र पार की यात्रा थी। इसके बाद कई महिलाओं ने इस तरह की यात्राएँ की तथा कुछ स्त्रियों ने यात्रा-संस्मरण भी लिखा। कृष्णभामिनी दास ने 'इंग्लैंड बंग महिला' यात्रा-संस्मरण 1885 में लिखा। इसके बाद प्रसन्नमयी देवी ने 'आर्यावर्त: जनैका विहार भ्रमण वृत्त' (1888) लिखा। हिंदी में स्त्री का पहला यात्रा-संस्मरण 'हरदेवी की लंदन यात्रा' (1888) है। इसकी लेखिका हरदेवी है, जो अपने भाई सेवाराम और भाभी के साथ लंदन पढ़ाई के लिए जाती हैं। इस तरह से अन्य महिलाएँ भी यात्रा पर निकलती हैं और यात्रा-संस्मरण लिखती हैं। जैसे जगत्मोहिनी चौधरी, कमलमणि ठाकुर आदि ये दोनों बांग्ला की यात्रा संस्मरण लेखिका हैं। हिंदी साहित्य में इसी समय यात्रा-संस्मरण लेखन का शुरुआत होता है, जिसमें हरदेवी का नाम शुरुआती यात्रा-संस्मरणकार के रूप में गिना जा सकता है। उमा नेहरू 'युद्ध की सैर' और श्रीमती भवानी का 'रामेश्वर यात्रा' 'हरदेवी की लंदन यात्रा' के चालीस वर्ष के बाद आता है। चालीस वर्षों का सन्नाटा हिंदी प्रदेश में स्त्रियों की स्थितियों को समझने के लिए पर्याप्त है। महादेवी वर्मा के यात्रा-प्रसंग इस सन्नाटा को भरने की कोशिश अवश्य करती हैं। महादेवी के यात्रा-प्रसंगों में स्वाभिमानी स्त्रियों के वर्णन के साथ-साथ उनके खिलाफ हो रहे शोषण भी रेखांकित हैं। दरअसल, महादेवी वर्मा स्मृतियों के सहारे ही अपने प्रवास के दिनों के यादों को रेखांकित करती हैं।

महादेवी की 'स्मृति की रेखाएँ' में संकलित निबंध 'ठकुरी बाबा' यात्रा प्रसंग ही है। उनकी रचनाओं में यात्रा, संस्मरण विधा में घुला मिला है। महादेवी वर्मा छोट्टियों में ज्यादातर हिमालय क्षेत्र का भ्रमण करती हैं। हिमालय से संबंधित उनकी रचना है- 'पर्वत पुत्र-डोटियाल'। डोटियाल के संबंध में महादेवी वर्मा अपनी स्मृति को मार्मिक शब्दों में व्यक्त करती लिखती हैं- "ऐसी यात्रा में चलचित्र के सामने जो जीवन दिखाई देता है, उससे हम किसी जाति के संबंध में ऐसा बहुत कुछ ज्ञातव्य जान सकते हैं, जो अन्य किसी प्रकार संभव नहीं है। घर में व्यक्ति अपने आश्रितों और सेवकों के प्रति अपने व्यवहार को छिपा सकता है, कृत्रिम बना सकता है; परंतु यात्रा में ऐसा सहज नहीं होता। मनुष्य में जो भी स्वार्थपरता, विवेकहीनता, क्रूरता और असहिष्णुता रहती है, वह ऐसी यात्रा में पग-पग पर प्रकट होती चलती है। कुली को पैसे देते समय, उसके विश्राम, भोजन का समय निश्चित करते हुए, साथियों के सुख-दुख की चिंता और सहायता के अवसर पर मनुष्य अपने अंतरमन का ऐसा आभास दे जाता है, जिससे उसके चरित्र की अच्छी व्याख्या हो सकती है।"<sup>17</sup>

महादेवी वर्मा के समानांतर कोई स्त्री यात्रा-संस्मरण लेखिका सामने नहीं आती हैं। साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श के आने के पश्चात ही स्त्री यात्रा-संस्मरण की एक सुदृढ़ परम्परा सामने आती हैं। गरिमा श्रीवास्तव इन शुरुआती स्त्री रचनाकारों की यात्रा-संस्मरण का विश्लेषण करती हुई लिखती हैं- "इन यात्रा-वृत्तांतों को पढ़कर लगता है कि स्त्रियाँ अपने रहवास की स्थितियों, संस्कृति, संसार की बदली हुई परिस्थितियों में कैसे देख रही थीं।"<sup>18</sup>

स्पष्ट है कि इन यात्रा-संस्मरणों में भारत और यूरोप की स्त्रियों की स्थितियों का तुलनात्मक वर्णन मिलता है। इस तुलनात्मकता से स्त्रियों के स्वतंत्रता का भी सवाल जुड़ा हुआ है। इस संदर्भ में गरिमा श्रीवास्तव लिखती हैं कि- "यात्रा अनुभवों और यात्रा-वृत्तांतों के लिखे जाने से एक नई जेंडर संबंधी ताकत का उदय हुआ। स्त्रियों ने यात्रा करके, अपना स्पेस लिया और उन्हें जो भी परंपरा और समाज ने दी थी उस भाषा में (जिस पर पहले पुरुषों का अधिकार था) वृत्तांत लिखकर उसे नवीन अर्थ संदर्भ दिए।"<sup>19</sup>

अरुण प्रकाश यात्रा-वृत्तांत के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "पुरुष और स्त्री यात्रा-आख्यान में भेद है।

उनमें पुरुष यात्रियों वाले विजयी भाव के बजाय सहभागिता, सद्भावना और समभाव मिलते हैं। वे पुरुष से भिन्न दृष्टिकोण अपनाती हैं, उनकी संवेदना भी भिन्न होती है।<sup>10</sup>

दरअसल, स्त्री-संस्मरण की भाषा वह भाषा है जो पुरुषवादी साहित्यिक दृष्टिकोण के फ्रेम से बाहर है। शायद यही कारण है स्त्री यात्रा-संस्मरण आलोचना में हाशिए पर है।

आज के समय में यात्रा करना जितना आम हो चुका है, शायद स्त्रियों के लिए आज भी उतना ही मुश्किल है। यह बात अलग है कि स्त्रियों काम के सिलसिले में स्वतंत्र रूप से घ रसे निकलने लगी हैं। कामकाजी स्त्रियों के साथ यह समस्या यह रही है कि नौकरी के बावजूद, वह घर के कामों में संलिप्त हो ही जाती है, जिससे यात्रा पर जाने का रिवाज नहीं बन सका है। वे अब भी यात्रा पर परिवार के संग ही जाया करती हैं। गृहस्थी का सारा भार महिलाओं पर ही है। यही कारण है स्त्रियों के यात्रा-संस्मरण कम ही लिखे जा रहे हैं। फिर भी यह महत्वपूर्ण है कि उनके यात्रा-संस्मरण नोटिस किए जा रहे हैं। जैसे दुर्गावती सिंह की 1976 में लिखी 'सीधी सादी यादें', लक्ष्मी कुमारी चूड़ावत की 'हिंदूकुश के उस पार' विमला कपूर की 'अनजाने देश में' सत्यवती मलिक की 'कश्मीर की सैर' आदि शुरुआती स्त्री यात्रा-संस्मरण हैं। हालांकि 'हरदेवी की लंदन यात्रा' के बाद की इन रचनाओं में स्त्रीवाद का वह स्वरूप नहीं जो हरदेवी में है। भारत में यात्रा संस्करण में स्त्रीवाद का स्वरूप उस तरह से नहीं आया है, जिस तरह से पाश्चात्य यात्रा साहित्य में आया है। दरअसल, "स्त्रीवादी लेखन करना जीवन की कोमलता के खिलाफ होना नहीं है, न ही उससे महरूम होना है। स्त्रीवादी होना सत्ता के क्रूरताओं और नफरत के खिलाफ होना है।"<sup>11</sup>

यही कारण है कि स्त्री यात्रा-संस्मरण लेखन में समभाव, सहभागिता, सद्भावना है। इस लेखन में प्रतिरोध का स्वर तो है लेकिन उसका स्वरूप आक्रामक नहीं है, चाहे वह हरदेवी की 'लंदन यात्रा' हो या फिर अनुराधा का 'आजादी मेरा ब्रांड'। दरअसल, ये यात्रा-संस्मरण भारतीय स्त्री की जड़ता के खिलाफ है, जो उसे उन रूढ़ियों और परंपरा से लड़ना सिखाता है, जो उसे घरेलू दायरे में बांधकर रखता है। यदि स्त्री चाहे तो उस दायरे को तोड़ सकती है लेकिन इसके लिए उसे घर से बाहर निकलना पड़ेगा, यात्राएँ करनी होंगी, सूचनाएँ इकट्ठा करना होगा

और दुनिया के विभिन्न संस्कृतियों का परिचय प्राप्त करना होगा। अनुराधा कहती हैं –“एक बार आजादी चख लेना खून चख लेने जैसा है एक बार चख लिया तो फिर कोई वापसी नहीं।”<sup>12</sup>

इस प्रकार स्त्रियाँ यात्री आजादी के महत्व को यात्रा के जरिए समझाने की कोशिश करती हैं। इस क्रम में वे जगहों के महत्व को भी बताती चलती हैं और उनके सत्य को रेखांकित भी करती हैं।

एक यात्री के लिए जगह के सत्य को समझना जरूरी होता है। शायद यही कारण है कि स्त्रियाँ सत्य के भीतर छिपे सत्य की तलाश करती है यात्रा के क्रम में वह इन मुठभेड़ों से गुजरती हैं, इस क्रम में मधु कांकरिया कहती हैं–“हर शहर के कई चेहरे होते हैं। चेहरे के भीतर चेहरे और सत्य के भीतर सत्य छुपा रहता है और चेहरे तो ऐसे भी होते हैं, जिसका सत्य व्याहता स्त्री के चरित्र स्खलन की तरह अंधेरी रात के तहखाने में खुलती है।”<sup>13</sup>

यानी यात्रा करते हुए सत्य की पहचान आवश्यक है। हरेक व्यक्ति इस सत्य का अनुभव अलग-अलग तरीके से करता है। स्त्रियाँ भाषा के जरिए भोगे हुए यथार्थ को सामने लाती हैं। भाषा का यह स्वरूप पितृसत्ता के फ्रेम से बाहर है। इसलिए स्त्री यात्रा-संस्मरणकार यह अपील करती हैं कि हमारी भाषा उन्हें ही समझ में आएगी जिनमें संवेदनाएँ बची हो। मधु कांकरिया कहती हैं–“यात्रा-वृत्तांत ... आपको उद्देलित कर आपकी चेतना में सुराख कर देगा.... शर्त यह है कि आप अपने इंसान होने की पहचान सोच और संवेदना से वंचित न हुए हों।”<sup>14</sup>

यात्रा करती हुई स्त्री के मन में एक साथ कई विचार उत्पन्न होते हैं। वह अतीत की कोहरा से मुक्त होती हैं, उसके अंदर का तमस और जड़ता खत्म होती है और उसके अंदर एक विचार अंगड़ाई लेती है, वह पक्षियों की तरह उड़ती हुई कहाँ पहुँच गई है। यह विचार हैरान करती हैं कि वह घरेलू दायरे से बाहर निकलकर वहाँ पहुँच गई है, जहाँ आजादी की पहली किरण नजर आई। इस तरह यात्राएँ जीवन को संभावनाएँ, अर्थ और सपने देती हैं, जिससे कि स्त्रियाँ अलग से फ्रेम के बाहर कोई रास्ता तलाश करें और उससे जवाब माँगे, जिसने उसे कैद कर रखा है। शलभ श्री राम सिंह के शब्दों में कहें तो–

“घिरें हैं हम सवालों से

हमें जवाब चाहिए

जवाब दर जवाब है कि इंकलाब चाहिए।”<sup>15</sup>

इंकलाब करती हुई स्त्रियों ने यात्रा के जरिए जीवन को एक नया आयाम देने की कोशिश की। मृदुला गर्ग के यात्रा-संस्मरण का शीर्षक ही है 'कुछ अटके कुछ भटके'। इस यात्रा के जरिए वे इतिहास की पड़ताल करती हुई लिखती हैं-“मजे की बात यह है कि जितना नाम भटक-भटक कर गलत मुकाम पर पहुँचने के लिए कोलंबस का हुआ; सीधे मंजिल तक पहुँचने वाले वास्को-डि-गामा का नहीं हुआ। फर्क मंजिल की भावी रईसी और इतिहास लेखन पर कब्जे का रहा होगा।”<sup>16</sup>

यही बात स्त्री यात्रा-संस्मरण पर भी लागू होती है। पुरुष के सामंती और वर्चस्ववादी लेखन के सामने आजादी की माँग करती हुई स्त्री यात्रा-संस्मरण कहा टिकने वाला रहा होगा।

यात्रा-संस्मरण लेखन में हरदेवी (हरदेवी की लंदन यात्रा), महादेवी वर्मा (पर्वत पुत्र), कुसुम अंचल (सरे राह चलते-चलते), मधु कांकरिया (बादलों में बारूद), गगनगिल (आवाक्), मृदुला गर्ग (कुछ अटके कुछ भटके), रमणिका गुप्ता (लहरों की लय), नासिरा शर्मा (जहाँ फव्वारे लहू रोते हैं), गरिमा श्रीवास्तव (देह ही देश), कृष्णा सोबती (बुद्ध का कमंडल), अनुराधा बेनीवाल (आजादी मेरा ब्रांड और जो लोग मुझमें रह गए) महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। इस प्रकार स्त्रियों के लेखन से यात्रा-संस्मरण अपने को समृद्ध करती हैं। ये स्त्रियाँ अपनी यात्रा-संस्मरण

में जो खुद से प्रश्न करती हैं, वह उसके पहचान को पुष्ट और अर्थपूर्ण बनाती हैं। जैसा कि मधु कांकरिया कहती हैं-“यहाँ मैं अपने को खोजने आती हूँ। क्या है मेरे होने की अर्थवत्ता? यह आत्म खोज की ख्वाहिश ही मुझे लोहरदग्गा और गुमला के इन आदिवासी अंचलों में बार-बार खींच लाती है..। क्योंकि यही मुझे बताते हैं कि मैं कौन हूँ।”<sup>17</sup>

इसी तरह अनुराधा बेनीवाल अपने आपको महसूसने पर बल देती हैं। वे कहती हैं “...शायद अपनी इच्छाओं को तरजीह देना सीखा था, वह इच्छा चाहे कितनी ही मामूली क्यों ना हो।”<sup>18</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि दुनिया भर के समाज में कुछ प्रतिबद्ध और रचनात्मक स्त्रियाँ यात्रा एवं यात्रा-संस्मरणों के द्वारा जीवन में नए-नए अर्थों और संभावनाओं की तलाश करती हुई अपने सपनों को उड़ान देती हैं और स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति, रचनात्मकता की राह पर मजबूती के साथ अग्रसर होती हैं। स्त्रियों की यात्रा के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि उनकी यात्रा इस जड़ समाज में क्रांतिकारी हस्तक्षेप की तरह है। जिससे स्त्रियों की दुनिया और जीवन बदलती है और बेहतर भी होती है।

शोधार्थी (एस.आर.एफ.)

हिंदी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

### संदर्भ सूची

1. शुन, लू; 'कला, साहित्य और संस्कृति', नई दिल्ली (भारत): वाणी प्रकाशन, 2015, पृष्ठ सं- 90
2. हरदेवी; 'हरदेवी की यात्रा', नोएडा (भारत): सेतु प्रकाशन 2023, पृष्ठ सं-09
3. बेनीवाल, अनुराधा; 'आजादी मेरा ब्रांड', नई दिल्ली (भारत): राजकमल प्रकाशन 2016, पृष्ठ सं- xiv
4. प्रकाश, अरुण; 'गद्य की पहचान', गाजियाबाद (भारत): अंतिका प्रकाशन 2012, पृष्ठ सं-89
5. बिष्ट, पंकज; 'खरामा-खरामा', गाजियाबाद (भारत): अंतिका प्रकाशन 2019, पृष्ठ सं-24
6. वही, पृष्ठ सं-26
7. वर्मा, महादेवी; 'मेरे प्रिय संस्मरण', मयूर पैपरबैक्स, द्वितीय संस्करण: 1991, पर्वत पुत्र, पृष्ठ सं-46
8. हरदेवी; 'हरदेवी की यात्रा', नोएडा (भारत): सेतु प्रकाशन 2023, पृष्ठ सं-19
9. वही, पृष्ठ सं-18

10. प्रकाश, अरुण; 'गद्य की पहचान', गाजियाबाद (भारत): अंतिका प्रकाशन 2012, पृष्ठ सं-89
11. तद्भव (संपा.) अखिलेश; दिल्ली, जुलाई 2023, अंक-47, पृष्ठ सं-313
12. बेनीवाल, अनुराधा; 'आजादी मेरा ब्रांड' नई दिल्ली (भारत): राजकमल प्रकाशन 2016, पृष्ठ सं-6
13. कांकरिया, मधु; 'बादलों में बारूद', नई दिल्ली (भारत): किताबघर प्रकाशन 2014, पृष्ठ सं-101
14. वही, पृष्ठ सं-49
15. वही, पृष्ठ सं-48
16. गर्ग, मृदुला; 'कुछ अटके कुछ भटके', नई दिल्ली (भारत): पेंगुइन प्रकाशन 2014, पृष्ठ सं-xii
17. कांकरिया, मधु; 'बादलों में बारूद', नई दिल्ली (भारत): किताबघर प्रकाशन 2014, पृष्ठ सं-9
18. बेनीवाल, अनुराधा; 'आजादी मेरा ब्रांड', नई दिल्ली (भारत): राजकमल प्रकाशन 2016, पृष्ठ सं-4



डॉ. सीमा माहेश्वरी

## नये मूल्यों की खोज का गीति-नाट्य : 'अंधायुग'

**ना**टक की भाषा हरकत की भाषा होती है। रंगमंचीय गत्यात्मकता ही नाटक का मूल मर्म है। नाट्य अभिनय के लिए प्रयोग किये जाने वाले शब्द या वाक्य तभी सार्थक माने जाते हैं जब वे कायिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य अभिनय को उकसाते या प्रेरित करते हैं। नाट्य-प्रदर्शन को कालिदास ने चाक्षुष यज्ञ कहा। आधुनिक नाटककार सिसरो के अनुसार - नाटक जीवन की अनुकृति है, यह विचारों का दर्पण और सत्य का प्रतिबिम्बन है। इस परिप्रेक्ष्य में धर्मवीर भारती के अंधा-युग को समझना हमारा अभीष्ट है।

डॉ. धर्मवीर भारती बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। भारती जी 'नई कविता' युग की मनोभूमि के प्रतिनिधि रचनाकार, चिन्तक, संपादक और अनुवादक रहे हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना, अनुवाद, रिपोर्टाज आदि विधाओं को उनकी लेखनी से बहुत कुछ मिला है। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं - साँस की कलम से, मेरी वाणी गैरिक वसना, कनुप्रिया, सात गीत वर्ष, ठंडा लोहा, सपना अभी भी, सूरज का सातवाँ घोड़ा, बंद गली का आखरी मकान, पश्यंती, कहनी अनकहनी, शब्दिता, मानव-मूल्य और साहित्य, गुनाहों का देवता तथा अंधा-युग।

आधुनिक भावबोध को रूपायित करने वाले नाटकों में धर्मवीर भारती का गीति-नाट्य (काव्य-नाटक) अंधा युग विशेष उल्लेखनीय है। इसमें महाभारत के 18वें दिन की संध्या से प्रभास-तीर्थ में कृष्ण के देहावसान के क्षणों तक की कथा ली गयी है। इस कथा को चुनने का मूल प्रयोजन युद्धजन्य वर्तमानकलीनता को प्रासंगिकता देना है। किन्तु इसकी उपलब्धि केवल वर्तमानता के कारण नहीं है

बल्कि जब-जब युद्ध होगा ऐसी ही अवसादपूर्ण त्रासद स्थितियाँ उत्पन्न होंगी और विघटित मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य को नये मूल्यों की तलाश करनी होगी। बाह्य संकट से आगे बढ़ने पर जिन आंतरिक संकटों का सामना करना पड़ता है वे अत्यंत भयावह होते हैं - इस थीम के नियोजन के अतिरिक्त भारती जी ने प्रस्तुत गीति-नाट्य को जो बहुआयामी धरातल दिया है और जैसी नाटकीय बिम्बात्मकता तथा रचनात्मकता प्रदान की है, वह पूर्ववर्ती नाटकों में सुलभ नहीं है। युद्ध के बाद पहले के सारे अर्थ बदल जाते हैं, आस्था अनास्था में बदलती है तथा मूल्य निर्मूल्यता में खो जाते हैं। इसलिए अंधा युग में बहिर्द्वन्द्व के समाप्त होने पर अंतर्द्वन्द्व की विकराल ज्वाला जगकर सभी को भस्मीभूत कर लेने के लिए उतावली हो जाती है। लेकिन भारती का उद्देश्य केवल युद्ध की फलश्रुति प्रस्तुत करना नहीं है। उनका कहना है 'यह कथा ज्योति की है, अंधों के माध्यम से।'

वस्तुतः यह तनावों का नाटक है, संघर्ष का नहीं और नाटकीयता तनावों में ही होती है। अश्वत्थामा का अन्तः संघर्ष सहृदय को भी तनावपूर्ण स्थिति में डाल देता है। अश्वत्थामा के व्यथापूर्ण आक्रोश, युयुत्स की यातना, गांधारी का आवेश, धृतराष्ट्र की आत्मभर्त्सना और संजय की अभिशप्त चीख से घिरकर 'अंधायुग' युद्धजन्य स्थितियों को पूर्णतः नाटकीय बना देता है। इसकी भाषा भी अपनी सरलता, टोन के उतार-चढ़ाव, लय, क्रियात्मकता आदि के कारण नाटकीय स्थितियों का जो बिम्ब प्रस्तुत करती है, उससे यथार्थ का नवीन पक्ष उद्घाटित होता है।

काव्य नाटक अंधायुग काव्यात्मक सामर्थ्य और नाट्य

शक्ति का अनुपम प्रतिमान है। अपनी इसी तरह की क्षमताओं के कारण यह कृति समस्त हिंदी साहित्य विशेषकर नई कविता युग की सबसे बड़ी उपलब्धि है। हिंदी रंगमंच की प्रयोग-कला की दृष्टि से अंधायुग एक ऐसा क्लासिक काव्य-नाटक है जिसने सर्जनात्मकता के शिखर का स्पर्श किया है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने लिखा है – ‘हिंदी क्षेत्र में यह कार्य उसी भूमिका का है जिस भूमिका का कार्य टी.एस. एलिंग्टन की मर्डर इन द कैथेड्रल नामक कृति की है।’

इस नाटकीय काव्य के सभी पात्र- गांधारी, धृतराष्ट्र, अश्वत्थामा, युयुत्सु, संजय, कृपाचार्य, प्रहरी आदि सभी किसी-न-किसी तरह के अंधेपन से पीड़ित हैं। फिर भी ये कथा ज्योति की है। समग्र अंधता, अंधी-संस्कृति की मूल्यान्धता का प्रतीक है अंधायुग। इसे इन पंक्तियों में देखा जा सकता है –

“हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं-न-कहीं  
हर क्षण अधियारा गहरा होता जाता है।”

\* \* \* \*

“हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग  
अश्वत्थामा है, संजय है – अधियारा है  
है दासवृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों की  
अंधा संशय है,  
लज्जाजनक पराजय है।”

यह अंधकार मूल्य-मर्यादा के विनाश से बना है। फलतः प्रतिरोध, घृणा, कुंठा, संत्रास, विकृति, भय, रक्तपात, हत्या, ध्वंस, मूल्यहीनता का अंधकार महाभारत युग की स्मृति ही नहीं दिलाता है बल्कि नेहरू युग के मोहभंग से उत्पन्न अंधकार को भी सामने लाता है। अंधा युग का उद्देश्य है – युद्ध के बाद पैदा होने वाली विकृतियों, विसंगतियों की व्यंजना। इसलिए अंधा युग हमारा अतीत नहीं है – वर्तमान है, वर्तमान के सत्य की त्रासदी है। उस दिन जो अंधा युग अवतरित हुआ जग पर, वह बोलता नहीं है – रह रहकर अपने को दुहराता है। अंधा युग नेहरू युग में आया ही इसलिए कि नैतिक-सांस्कृतिक मूल्यों-सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ गई थीं। अंधा युग उन जले स्वप्नों का सत्य है और उसके कथ्य की आधुनिकता में ‘संशय’ का कीड़ा है। हाँ, पर कृष्ण का चरित्र जटिलता के बावजूद मानव आस्था का संकेत है।

अंधा युग में कवि-नाटककार ने सभी शीर्षक

प्रतीकात्मक दिए हैं जैसे : कौरव नागरी, पशु का उदय, अश्वत्थामा का अर्धसर्प, गांधारी का शाप, विजयः एक क्रमिक आत्महत्या, अन्तराल को पंख चाहिए और पत्तियों तथा प्रभु की मृत्यु। अंधा युग की कथावास्तु भले महाभारतकालीन है परन्तु इसके जरिए भारती जी ने आधुनिक भावबोध का निरूपण है साथ ही आधुनिक जीवन के तनाव या द्वंद्व को रूपायित करने का प्रयास किया है। अंधा युग में मनःस्थितियों, प्रवृत्तियों, विचारधारों को पत्रों में मूर्तित किया गया है। इसके पात्र प्रायः प्रतीक हैं। युयुत्सु (युद्ध के लिए उत्सुक) के चरित्र में नियति के संबंध को लेकर अस्तित्ववादी अवधारणाओं को मूर्त किया गया है। युयुत्सु का चरित्र अपने नाम के बिलकुल विरुद्ध है क्योंकि वह कहीं से भी अकारण युद्ध के लिए उत्सुक नहीं दीखता। यदि नाम और चरित्र में अंतर्विरोध है तब फिर नाम की क्या सार्थकता? युयुत्सु दुर्योधन का सौतेला भाई है। उसके सामने चुनने के लिए दो ही रास्ते हैं – या तो वह असत्य का साथ देकर दुर्योधन की ओर से लड़ता हुआ कौरवों में सम्मानित बना रहे या सत्य का साथ देकर दुर्योधन से अपमान और उत्पीड़न झेले। वह दूसरे रास्ते का चुनाव करता है। उसका कर्म उसकी नियति निर्धारित कर देता है। जब वह युद्ध में छल से एक-एक कौरवों को मारा जाता देखता है तो उसका हृदय अनुताप से भर जाता है। वह सोचता है: ‘अच्छा होता यदि मैं कर लेता समझौता असत्य से।’

इस नाटक में कृष्ण और अश्वत्थामा दो बड़े चरित्र हैं। ये दोनों एक दूसरे के विलोम हैं। अंधा युग का अश्वत्थामा अमर होने का वरदान लिए हुए है। लेकिन द्रौपदी के पाँच पुत्रों की हत्या के अपराध में कृष्ण ने उसे अभिशाप दे रखा है कि तुम जीवन भर अपनी देह पर कोढ़ के घाव लिए जीने को अभिशप्त रहोगे। अश्वत्थामा वरदान के कारण जीना चाहता है और अभिशाप के कारण मरना चाहता है। वह ना तो जी पा रहा है और न ही मर पा रहा है। न तो उसके जीवन में संगति है और न अभिशाप और वरदान ही। ये पंक्तियाँ उसके विसंगति बोध का अनुभव कराते हैं : –

“मैं यह तुम्हारा अश्वत्थामा  
शेष हूँ अभी तक  
जैसे रोगी मुर्दे के मुख में  
शेष रहता है

## गन्दा कफ, वासी थूक के रूप में शेष हूँ अभी तक।”

कृष्ण का चरित्र अपनी तमाम जटिलताओं के बावजूद भी मानव आस्था का संकेत देता है। हालाँकि कुछ आलोचकों ने यह भी आरोप लगाया है कि कृष्ण के व्यक्तित्व में क्राइस्ट की छाया है। लेकिन अंधा युग में वृद्ध याचक भविष्य का प्रतीक है। अंधा युग में दो प्रहरी आज के मनुष्य के निरर्थकता बोध को तो व्यंजित करते ही हैं, वे युद्ध-विरोधी जनता को भी प्रतीकित करते हैं। महाभारत युद्ध के बाद कुछ भी शेष नहीं रह गया है, जिसे सुरक्षित रखने के लिए पहरा दिया जाए, लेकिन प्रहरी पहरा दे रहे हैं। एक प्रहरी कहता है कि ‘कुछ भी रक्षणीय नहीं है लेकिन हम प्रहरी हैं इसलिए पहरा देना जरूरी है।’

अंधा युग में नाट्य प्रयोगों की भरमार है। उल्लू और कौवे का युद्ध अश्वत्थामा की बर्बरता को उभारता है। उल्लू रात में सोये हुए कौवे पर अचानक हमला कर कौवे की आँख निकाल लेता है। इससे अश्वत्थामा के भीतर पाशविक प्रवृत्तियाँ जगती हैं और वह द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को मार देता है। दूसरा प्रयोग प्रेतलोक के चित्रण में दिखता है। नाटककार रंगमंच पर मकड़ी के जाले जैसी प्रकाश रेखाएं फेंककर प्रेतलोक निर्मित करता है और मरे हुए पात्रों वृद्ध याचक, युयुत्सु, विदुर आदि को जड़वत खड़ा दिखाता है। यह सामूहिक जड़ता का चित्र है। इसके माध्यम से नाटककार ने आज के महानगरीय जीवन चरित्र को जड़ता, किंकर्तव्यविमूढ़ता, निरुपायता आदि का बोध कराया है।

धर्मवीर भारती ने अंधा युग में महाभारतकालीन परिस्थितियों के जरिये समकालीन मूल्यहीनता, विकृति और विसंगति को उभारा है। इस नाटक में कथा में क्रमशः विकसित होती हुई आस्था के पार्श्व में अनास्था भी विकसित होती रहती है। आज के मनुष्य जीवन में गहरी निराशा और अनास्था घर कर गई है। गांधारी जब देखती है कि जिस कृष्ण पर उसने विश्वास किया था उसी ने

छल से उसके सारे पुत्रों को मरवाया है तब उसमें गहरी अनास्था भर जाती है। विदुर कृष्ण के प्रति गांधारी के मन में पाल रही अनास्था से परिचित हैं। वे कृष्ण से कहते हैं-‘आस्था तुम लोगे तो अनास्था लेगा कौन’।

यह नाटक मुक्त छंद में है यानी भाव के अनुरूप लय परिवर्तित होता है। इसमें ग्रीक कोरस के अनुरूप निम्नवर्गीय पात्र के रूप में दो प्रहरी का प्रवेश होता है। अंधा युग है तो मूलतः काव्य नाटक लेकिन अपने गीतात्मक विधान और नाट्य स्वरूप के कारण यह काव्य गीति-नाट्य कहलाता है। काव्य के क्षेत्र में धर्मवीर भारती जी का नवाचार है। इसे इस तर्ज पर लिखा गया है जिसका मंचन हो सके। अतः यह गीति-नाट्य बारम्बार सफलतापूर्वक मंचित हुआ है।

कुल मिलाकर अंधा युग का निहितार्थ – महायुद्धों की पीड़ा में यह अर्थ खोजने का प्रयास है कि इसके बाद मानव भविष्य क्या बनेगा? कौन-सा मनुष्य बनेगा जो जीवन को अर्थ दे सके। प्रश्न है – मनुष्य पूर्णता कैसे प्राप्त कर सकता है? जो मूल्य आत्मसाक्षत्कार से मानव को पूर्णता की ओर ले जाते हैं, उन्हीं मूल्यों को भारती जी ने ‘मानव मूल्य’ माना है। फलतः अंधा युग में प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध की बेचैनी है और मानव भविष्य पर चिंता। प्रश्नाकुल कवि-मन पूछता है कि क्या मानव-नियति पूर्व निर्धारित है या उसको कोई संकल्प बदल सकता है!

“मैं रथ का टूटा हुआ पहिया

लेकिन मुझे फेंको मत

इतिहास की सामूहिक गति सहसा

झूठी पड़ने पर

क्या जाने, सच्चाई

टूटे हुए पहियों का आश्रय ले।”

हिंदी विभाग

कमला नेहरू कॉलेज

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

### संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. धर्मवीर भारती – अंधा युग (1954)
2. डॉ. धर्मवीर भारती – मानव मूल्य और साहित्य
3. डॉ. नागेन्द्र – हिंदी साहित्य का इतिहास
4. प्रो. नामवर सिंह – कविता के नए प्रतिमान

5. प्रो. वासुदेव सिंह – हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास
6. डॉ. बच्चन सिंह – हिंदी नाटक



अनीश कुमार यादव

## अमीर खुसरो : भारतीय संस्कृति के प्रणेता

हिंद मेरा मौलिक-ओ-मादा-ओ-वतन।

(भारत मेरी जन्मभूमि है। मेरी माता और मेरा देश है।)

भारतीय साझी संस्कृति की निर्मिति कोई आकस्मिक घटना नहीं है। इसके बनने का एक विस्तृत और प्राचीन इतिहास रहा है। उस इतिहास का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है, भिन्न-भिन्न कालखंडों में अनेकानेक जातियों का आगमन यहां होता है अर्थात् प्राचीन काल से ही भारत अन्यान्य संस्कृतियों व सभ्यताओं का देश रहा है। ये जातियां आरंभ में संघर्षशील रहीं किंतु बाद में अन्य जातियों से एक होकर इन्होंने इस प्रकार समरूपता का परिचय दिया जैसे प्रारंभ से ही यहीं वास करते आई हों। इन जातियों के मेल से भारतीय सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों बहुत हद तक प्रभावित हुईं। कालान्तर, इन जातियों के मेल से जो संस्कृति यहां बनी; उसे ही आज हम भारतीय संस्कृति के रूप में जानते हैं। जहां तक भारतीय जनता का प्रश्न है, रामधारी सिंह दिनकर इसे 'संस्कृति के चार अध्याय' में रेखांकित करते हुए कहते हैं-“भारत में जो भी लोग मौजूद हैं, उनके पूर्वज इस देश में अन्य देशों से आए और अन्य देशों से आकर ही उन्होंने, आपस में मिश्रित होकर, इस देश में जन-समूह की रचना की, जिसे हम भारतीय जनता कहते हैं।”<sup>1</sup>

भारत की संस्कृति में बड़ा बदलाव मध्यकाल में इस्लाम के आगमन के साथ होता है। इस्लाम से पूर्व की जातियों के विषय में दिनकर जी कहते हैं-“अगर ईसाइयों और मुसलमानों को छोड़ दें, तब भी इस देश में एक के बाद एक, कम से कम ग्यारह जातियों के आगमन और

समागम का प्रमाण मिलता है, जिन्होंने इस देश को ही अपना देश मान लिया है और जिनका एक-एक सदस्य यहां की संस्कृति और समाज में भली-भांति पच-खपकर आर्य अथवा हिंदू हो गया है।”<sup>2</sup> 7वीं शताब्दी में इस्लाम के आगमन ने पूर्व से एक होकर रह रहीं जातियों को बहुत गहराई से प्रभावित किया। 12वीं शताब्दी में इस्लामिक शासन की वास्तविक स्थापना से पूर्व भारतीय संस्कृति एक महत्वपूर्ण बदलाव गुजर चुकी थी। व्यापारिक परिवेश के निर्माण ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन के अत्यधिक योगदान दिया।

आज हम जिस साझी संस्कृति की बात करते हैं, उसके आरंभिक रूप की स्थापना का साक्षी यही कालखंड रहा है। यह वह समय है, जहां दो संस्कृतियों में इस प्रकार की टकराहट व्याप्त थी कि एक ओर इन संस्कृतियों में आपस में संघर्ष की भी स्थिति उपस्थित हो रही थी, तो दूसरी ही ओर ये परस्पर आकर्षित भी हो रहीं थी। अतः यह पूरा युग जिसके मध्य अमीर खुसरो जैसे कवि का पदार्पण होता है, संक्रांति युग या संक्रमण युग जैसे नाम से जाना जाता है। भारतीय इतिहास ही नहीं, हिंदी साहित्य के इतिहास पर भी प्रकाश डालें तो खुसरो का समय (13वीं शताब्दी) आदिकाल की समाप्ति और भक्तिकाल के उदय के मध्य है। हिंदी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से भी खुसरो संक्रमणकालीन कवि हैं। इस संक्रमण और सांझेपन और साझेपन का प्रतिबिंब खुसरो-साहित्य में गहराई से व्याप्त है। खुसरो के इस विचार-दिशा व उनके साहित्य का संबंध स्पष्ट करते हुए डॉ. शाकिर अली ने कहा है-“दो विरोधी विचारधाराओं के संगम में डुबकी

लगाते हुए भी एक गुण उनके व्यक्तित्व में सदा समाहित था- समावेशी संस्कृति की चेतना....इसी चेतना को उन्होंने अपने साहित्य में जीवंत रखा।<sup>13</sup> अर्थात् 13वीं शताब्दी में बन रही उस साझी संस्कृति की बुनावट को न केवल खुसरो ने समझा बल्कि उन आधार-तंतुओं को अपने साहित्य द्वारा विस्तार भी दिया। इस परिप्रेक्ष्य से अमीर खुसरो का साहित्य निश्चित रूप से हिंदू-मुस्लिम साझी संस्कृति के संदर्भ में पयोनिधि है।

खुसरो को साझी संस्कृति के महत्व एवं उसकी विशेषताओं का ज्ञान उनके अपने घर से ही प्राप्त हुआ था। खुसरो से पूर्वज तुर्की किसान थे जो बलख देश से हिंदुस्तान आए थे। उनके पिता का संबंध तुर्क से था तथा माता हिन्दुस्तानी थीं। दो भिन्न संस्कृतियों के मध्य हुई यह परवरिश ही खुसरो के साहित्य की एक मजबूत कड़ी- 'सांस्कृतिक समता का बोध' की नींव साबित हुई। खुसरो ने भारत को आत्मीय विशेषणों से सम्बोधित करते हुए कहा है-

हिंद मेरा मौलिक-ओ-मादा-ओ वतन।

यह कथ्य खुसरो द्वारा अनायास ही नहीं कहा गया, उन्होंने सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति को समझा और उस संस्कृति के एक-एक कारकों के महत्व को अपने साहित्य द्वारा उच्चरित किया। अमीर खुसरो ने भारतीय जलवायु, वातावरण, तीज, त्योहार, फूल-पक्षी, ऋतुओं, मेवे-मिठाइयां, आबो-हवा, वस्त्रादि की प्रशंसा के गीत गाए हैं। खुसरो के देशप्रेम का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि वे पहले ऐसे मुस्लिम कवि हैं जिन्होंने भारत को अपनी जन्मभूमि व मातृभूमि समझते हुए भारत की वंदना की है। उनका यह समर्पण इस बात का साक्ष्य है कि उन्हें अपने हिन्दुस्तानी होने पर कितना अधिक गर्व था। गोपीचंद नारंग खुसरो के देश प्रेम एवम् प्रशंसा को लक्षित करते हुए कहते हैं-“वह हिंदुस्तान की प्रशंसा करते हैं, उनकी आत्मा झूम उठती है, और जैसे उनके मुंह से फूल झड़ने लगते हैं।”<sup>14</sup>

अमीर खुसरो के साहित्य का प्रभाव व विस्तार अत्यंत व्यापक क्षेत्रों में रहा है। यह भी खुसरो की सफलताओं में एक है कि वे न केवल भारत बल्कि अन्य देशों में भी प्रासंगिक रहे हैं। खुसरो की कविताएं जहां भी गई अपने साथ भारत की गौरवशाली परम्परा-गाथा भी साथ ले गई। भले ही साहित्य रचते समय उनकी भाषा हिंदी हो या

संस्कृत अथवा उर्दू-फारसी या फिर अरबी जैसी विदेशी भाषा ही रही हो खुसरो हिंदी, हिंदुस्तान और हिन्दुस्तानियों को सबसे ऊपर रखकर उनकी प्रशंसा करना नहीं भूलते। रोम और इराक जैसे देशों से हिंदुस्तान को श्रेष्ठतर मानते हुए खुसरो यह कहने में परहेज नहीं करते।

तरजी हे मुल्के हिन्द ब अक्ल अज हवाए खुश।

बर रोम व ईराक ब खुरासाने बर्कबार॥

खुसरो ने भारत के फल-फूल, मेवे-मिठाइयां, कपड़े, यहां की जलवायु तक को तुर्क/ईरान जैसे देशों से श्रेष्ठ है। आबो-हवा की तुलना करते हुए वे कहते हैं-

हर कि दर ई, मुल्क दमे आब खूरद

गश्त दिल अज आबे खुरासां निरा सर्द।

खुसरो ने भारत के मानचित्र का भी इस प्रकार से सुंदर प्रस्तुतिकरण किया है।

घुमैला लहंगा पहिने एक पांव से रही खड़ी।

आठ हाथ हैं उस नारी के सूरत उसकी लगे परी॥

सब कोई उसकी चाह करे है मुसलमान हिन्दू छत्री।

खुसरो ने यह कही पहली दिल में अपने सोच जरी॥

(छाता)

खुसरो ने अपने देश में कई यात्राओं कीं। उन्होंने जिन नगरों का विहार किया, उनके प्रशंसा के गीत गाए। उन नगरों में दिल्ली और अवध जैसे क्षेत्र महत्वपूर्ण हैं। दिल्ली की विशेषता के कारण उसे 'अदन की जन्नत', बागे हरम (स्वर्ग का बगीचा) कहा है। सोहनपाल सुमनाक्षर के अनुसार-“उनके शब्दों में यह शहर इतना पवित्र और आकर्षक है कि इस बास्तां (बाग) का किस्सा सुनकर मक्का भी हिंदुस्तान की तवाफ करता है।”<sup>15</sup>

हजरते देहली कनफे दीन व दाद

उन्नते अदनस्त कि आबाद बाद

गर सनूद किस्काई बोस्तां

मक्का शबाद तायफे हिन्दोस्तां।

अमीर खुसरो भारतीय भाषाओं एवं क्षेत्रीय बोलियां सभी से भली-भांति परिचित थे। देशीय भाषा व बोलियों के साथ-साथ कुछ विदेशी भाषाओं में भी उन्हें महारत हासिल थी। फिर भी उन्होंने इन सभी भाषाओं के स्थान पर 'हिन्दवी' को ही महत्व दिया। रामकुमार वर्मा का कहना है-“खुसरो ने जो सबसे बड़ा काम किया है, वह यह है कि उन्होंने तत्कालीन काव्य आदर्शों में बंधकर जन-साधारण की बोली में हिंदी रचना की। इससे हम

तत्कालीन बोलचाल की भाषा का स्वरूप जान सकते हैं। ...खुसरो ने दूसरा यह काम किया कि उन्होंने साहित्य की तत्कालीन अव्यवस्थित परिस्थितियों में फारसी के समान-सिंहासन पर हिंदी को आसीन किया। खालिकबारी कोष लिख कर उन्होंने अरबी, फारसी और हिंदी की त्रिवेणी को जन्म दिया। इन तीनों के पर्यायों से उन्होंने मुसलमानों और हिन्दुओं की भाषा और संस्कृति जोड़ने का पर्यायों से उन्होंने मुसलमानों और की भाषा और संस्कृति जोड़ने का प्रयत्न किया।”<sup>6</sup>

अमीर खुसरो ने अपने आप को हिंदवी का तोता कहा था—

चुन मन तूती-इ-हिंदम अर खस पुरसी  
जैमन हिंदवी पुरस्ना बगज गोयम

उन्हें ‘हिंदवी’ पर इस प्रकार का गर्व था कि वे कहते थे मैं हिंदुस्तान के बारे में सब-कुछ जानता हूँ अगर तुम कुछ पूछना चाहते हो तो हिंदवी में पूछो। मैं उसमें कुछ अनुपम बातें बताता रहूंगा।

तुर्क हिंदुस्तानियम मन हिंदवी गोयम जवाब  
जो मन हिंदवी पुरस, ता जगज गोयम।

खुसरो ने स्वयं माना है कि हिंदवी, फारसी की तुलना में कुछ कम नहीं है।

गलत कर्म गज अज दानिश जनी दम।  
न लफत हिंदीस्त अज फारसी कम।।

भाषाज्ञान एवं काव्यकर्म के साथ ही खुसरो ने भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में एक और विशेष योगदान दिया, वह भारतीय संगीत, संगीत परंपरा में महत्वपूर्ण पृष्ठ है। हिन्दुस्तानी संगीत परंपरा को वे विश्व-संगीत परंपरा से श्रेष्ठ समझते थे। उन्होंने संगीत के क्षेत्र में कई ऐसे नए प्रयोगों को किया, जिससे भारतीय संगीत उन्नत हुई। हिन्दुस्तानी और ईरानी संगीत परंपरा के मिश्रण से उन्होंने

एक नई धारा पल्लवित करने का कार्य किया। अमीर खुसरो ने नए वाद्य-यंत्रों का आविष्कार भी किया। उन्होंने ईरानी वाद्ययंत्रों तथा भारतीय वाद्ययंत्रों को मिलाकर भी कुछ नए खोज किए। सोहनपाल सुमनाक्षर इस संदर्भ में कहते हैं—“अमीर खुसरो का वाद्य और गायकी-दोनों क्षेत्रों में काफी योगदान रहा है। भारतीय वाद्ययंत्र ‘वीणा’ तथा ईरानी ‘तंबूरे’ के आधार पर खुसरो ने तीन तारों का ‘सेहतार’ नामक बाजा बनाया, जो बाद ने ‘सहतार’ और फिर ‘सितार’ नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने ‘पखावज’ को दो भागों में विभाजित करके तबला व ढोल का आविष्कार किया।”<sup>7</sup> इस प्रकार, गायन के क्षेत्र में भी खुसरो का अमूल्य योगदान रहा है। उन्होंने दो भिन्न संस्कृतियों को संगीत परंपरा को आमत्सात किया तथा अनेक राग-रागनियों का आविष्कार भी किया। ख्याल, तराना आदि का गायन उन्होंने ही आरंभ किया।

अमीर खुसरो के दृश्य बोध व उनकी सभी कलाओं की धारा भारतीय संस्कृति के संदर्भ में ही जाकर मिलते हैं। चाहे वह कविता हो या पहेलियां, उनकी संगीत कला या फिर भाषाओं का ज्ञान, खुसरो ने भारतीय संस्कृति को समेटना चाहा है। उनकी भरपूर कोशिश यही रही कि वे भारतीय संस्कृति की सुंदरता, सहजता एवं समरसता को अपनी कला के माध्यम से प्रतिबिम्बित कर सकें और खुसरो का साहित्य तथा उनकी कला उनकी सफलता की साक्षी है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं, खुसरो को भुलाकर न भारत की तथाकथित राष्ट्रभाषा हिंदी का इतिहास पूरा हो सकता है और न भारतीय संगीत परंपरा का ही, वे विभिन्न संदर्भों में अद्वितीय प्रतिभा के स्वामी रहे हैं।

शोधार्थी  
हिन्दी विभाग,  
पटना विश्वविद्यालय

### संदर्भ सूची

1. ‘दिनकर’, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.-32
2. ‘दिनकर’, रामधारी सिंह, संस्कृति, भाषा और राष्ट्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.-42
3. ‘जाकिर’, हुसैन जाकिर, अमीर खुसरो, भाषा, साहित्य और आध्यात्मिक चेतना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.-63

4. नारंग, गोपीचंद, अमीर खुसरो का हिन्दवी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.-25
5. सुमनाक्षर, सोहनपाल, अमीर खुसरो, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ.सं.-126
6. वर्मा, रामकुमार, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ.सं.-126
7. सुमनाक्षर, सोहनपाल, अमीर खुसरो, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, पृ.सं.-21



प्रीती

## आदिवासी समाज के संघर्ष और संस्कृति की गाथा : सहराना

‘प्रेमचंद’ का कहना था कि साहित्यकार राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। ऐसे ही साहित्यकार ‘पुन्नी सिंह’ हैं जिन्होंने हाशिये के समाज के लोगों को अपने साहित्य में आवाज दी है। हिंदी साहित्य में ‘पुन्नी सिंह’ का नाम उन साहित्यकारों में शुमार होता है, जिन्होंने अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में पिछड़े वर्ग और उनकी समस्याओं को साहित्य के केंद्र में लाया। ‘सहराना’ ‘पुन्नी सिंह’ द्वारा लिखा गया ऐसा ही उपन्यास है, जिसमें सहरिया आदिवासियों का चित्रण है। ‘सहराना’ उपन्यास में मध्यप्रदेश और राजस्थान की सीमा पर रह रहे सहरिया आदिवासियों की समस्याओं तथा संघर्षों का चित्रण है। ‘पुन्नी सिंह’ का ‘सहराना’ राजस्थान के आदिवासियों पर लिखा गया सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास है। राजस्थान के आदिवासियों पर साहित्य लेखन बहुत कम हुआ है, केवल धूणी तपे तीर, गमना, मीणा घाटी राजस्थान के आदिवासियों पर लिखे गये मुख्य उपन्यास हैं।

‘सहरिया’ शब्द पारसी के ‘सहर’ से बना है जिसका अर्थ है – जंगल। इतिहासकार ‘कर्नल टॉड’ ने अपनी पुस्तक ‘एनाल्स एंड एंटीक्विटीज’ में इनका उल्लेख किया है। ‘टॉड’ का मानना है कि “सहरिया शाहाबाद व किशनगंज के अतिरिक्त मध्यप्रदेश के मुरैना, ग्वालियर, शिवपुरी व गुना में निवास करते थे। इनकी मान्यता के अनुसार सहरिया यहाँ के घने जंगलों में रहते थे तथा धरती माता को ही अपनी आवश्यकता की पूर्ति का साधन मानते थे।”<sup>1</sup> सहरियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि स्पष्ट नहीं है न ही इनकी कोई अपनी भाषा नहीं है। ये हाड़ीती संभाग में

बोली जाने वाली भाषा का ही प्रयोग करते हैं और बुन्देलखंडी से प्रभावित हैं। इनका सबसे महत्वपूर्ण परम्परागत आर्थिक, आधार है जंगल से जड़ी-बूटी इकट्ठा करना और बेचना किन्तु यहाँ भी जड़ी-बूटी लेने वाले साहूकार सहरियों का शोषण करते हैं, उन्हें अग्रिम धन देकर जाल में फंसाते हैं ताकि वे जड़ी-बूटी कहीं ओर न बेच सकें। सरकार द्वारा इनके लिए जो भी योजनायें चलाई गयी वे केवल कागजों तक ही सीमित रहीं, विकास के नाम पर उन्हें सभ्य बनाने का प्रयास किया जा रहा है। वे भारत के दूसरे आदिवासियों की तरह अपने घर से बेदखल होकर विस्थापन की पीड़ा झेल रहे हैं। हालात को समझते हुए सहरियों ने अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने की ओर रुख किया है।

‘पुन्नी सिंह’ ने शिक्षा के महत्व को समझते सहरिया आदिवासी के प्रतीक के रूप में सोमा को अपने उपन्यास में चित्रित किया है। सोमा अपनी बेटी को पढ़ाना चाहता है। सहराना में फैले अज्ञान व अन्धकार को शिक्षा के द्वारा समाप्त करना चाहता है। “गत तीन चार साल से, जब उसकी बेटी पढ़ने के काबिल हुई है, तब से इस विषय पर उसने गंभीरता से सोचना शुरू किया, तभी से उसे बराबर उस बात का एहसास होता रहा कि घाटी का अंधकार निरंतर गहराता जा रहा है इसके चलते घाटी के सहरिया आज भी सबसे कठिन जिंदगी जी रहे हैं।”<sup>2</sup> सोमा जानता है कि आने वाली पीढ़ी अगर शिक्षा प्राप्त नहीं करेगी तो सहरियाओं की स्थिति में परिवर्तन नहीं आयेगा। जबकि गाँव के सेठ साहूकार नहीं चाहते कि सहरिया शिक्षा प्राप्त करे। उपन्यास के एक पात्र गोविन्द

पटेल का कथन है कि - “अये भिओ, जे घाटी में का हैवे जा रओ है? जो सैर के मोड़ा-मोड़ी पढ़वे लगे तो फिर है गओ बंटाढार ऐसो हाल तो कबऊ नाय सुनो हौ।”<sup>13</sup> गैर आदिवासी यह नहीं चाहते कि सहरिया बच्चे पढ़-लिखकर, उन पर हो रहे शोषण का सच जाने या उनके खिलाफ विद्रोह करें।

‘सहराना’ उपन्यास में कोई नायक नहीं है। इस उपन्यास की पूरी कथा सोमा के इर्द-गिर्द घूमती है और वह उपन्यास का सबसे सशक्त पात्र है। उसके बावजूद उपन्यासकार ने उस पर नायकत्व आरोपित नहीं किया है। डॉ. गंगा सहाय मीणा का कहना है कि “सहराना में कोई नायक नहीं है, पूरा सहराना ही नायक कहा जा सकता है।”<sup>14</sup> उपन्यास की कथा को उससे उम्मीद है लेकिन वह अपनी पत्नी को छोड़ उसी की मौसैरी बहन लाडली के साथ रहता है, तहसीलदार की हत्या करता है, समाज को शिक्षा के माध्यम से बदलना चाहता है, चंपा के अलावा किसी और लड़की को एस.डी.ओ. के सामने परोसे जाने पर उसे कोई आपत्ति नहीं है, बल्कि वह खुद उसमें इसकी मदद करता है। इस नकारात्मकता के बावजूद वह उपन्यास का महत्वपूर्ण पात्र है।

सहरिया जनजाति में जातिगत भेदभाव का अभाव है, लेकिन गैर-जनजाति द्वारा इनके साथ भेदभाव किया जाता है। उपन्यास में ‘पुन्नी सिंह’ सहरिया आदिवासियों के शत्रु के रूप में चुन्नी सेठ, मिश्रीलाल, गोबिंद पटेल, पुलिस, प्रशासन, नेता, साहूकार, गोटिया आदि को दिखाते हैं। ‘सहराना’ में दिखाया है कि चोरी किसी ने भी कि हो शक केवल सहरिया पर ही जाता है। एक प्रसंग में शक की बुनियाद पर बड़े मामाजी अंजनी काकी से कहते हैं- “अच्छा तो पटेल कि मूंगफली सोमा ई चुरा के लायो है। च्यों अंजनी, अब सोमा से जे धंधों करावे लगी है?”<sup>15</sup> ये लोग अपने साथ लाये हुए लठैतों से अंजनी काकी और फोदलिया को इतना पिटवाते हैं कि वे बेहोश हो जाते हैं। इसी तरह का एक और प्रसंग उपन्यास में देखने को मिलता है, जब दरोगा अंगदराम का तबादला करा दिया जाता है क्योंकि वह सहरियों कि पैरवी करता है।

हिंदू धर्म आदिवासियों को हिन्दू बनाने पर तुला हुआ है। वह चाहता है कि आदिवासी हिन्दू देव-देवताओं को पूजें। सहराना में इस बात को उजागर किया गया है। मिश्रीलाल मास्टर हर तरह से सहरियों को हिंदुत्व की

तरफ मोड़ने का प्रयास करता है इसलिए वह बार-बार उन्हें भागवत कथा के लाभ बताता रहता है लेकिन सोमा जब अपने साथ बैठकर खाने के लिए कहता है - “ऐसो घाटी में पहलेऊ कबऊ भओ है? तुमाये संग कोई बामन को जियेओ सो बेदीन नई है जायेगा?”<sup>16</sup> तो इस कथन पर सोमा कहता है कि - “च्यों बेदीन च्यों है जागो? भें पुरा वै भागवत के वखत अहीरन को बगल में बैठ के खात हो, तब बेदीन नाय होत हो, महाराज!”<sup>17</sup> सहरिया वर्षों से अन्धविश्वास से ग्रसित है। उनका कोई भी काम पुरोहितों के बिना नहीं होता। यहाँ तक कि अगर गाँव में कोई अनहोनी हो जाती है तो भी माना जाता है कि कोई पुराना पाप है जिससे केवल गोटिया ही बचा सकता है। फगुवा गोटिया ‘सहराना’ में पुरोहित की तरह है। ‘सहराना’ में नंदराम की औरत को पेट दर्द होता है तो उसे गोटिया की शरण में ले जाया जाता है। फगुवा गोटिया जैसे लोग ही धार्मिक विश्वास के नाम पर आदिवासियों को जाल में फंसाते हैं।

उपन्यासकार ‘पुन्नी सिंह’ ने उपन्यास में सहरियाओं के लोक जीवन को बखूबी चित्रित किया है। उन्होंने सहराना में होली और दिवाली को प्रमुख रूप से दिखाया है। उपन्यासकार बताते हैं कि फाग में बेड़िनी नृत्य होता है इसमें पुरुष जनाना पोशाक पहनकर बेड़िनी नृत्य करता है साथ ही रक्षाबंधन के दूसरे दिन घाटी में लहंगी नृत्य की तैयारी चलती है। उपन्यास में फाग गीत भी है-

“अये..... हाँ ..... भाई रे!

फगुवा आओ नीलों रंग

अचरा नीला रंगा, भाई नीलों रंगा

फगुवा आओ....।”<sup>18</sup>

फगुवा के अवसर पर बेड़िनी नृत्य भी होता है। उपन्यास में गौगेया नामक एक पुरुष पात्र ही महिला वेशभूषा में नृत्य करता है। सोमा मस्ती से ढोलक बजाता है और गाता है-

“बोल गयो पपीहा, ओ हो बोल गया!

बोल गयो पपीहा, ओ हो बोल गया!

आहा - आहा आहा ओहा...।”<sup>19</sup>

‘सहराना’ उपन्यास में नदी उत्सव को भी दिखाया गया है, इस उत्सव पर बकरे की बलि दी जाती है, पुरुष नदी पर जाकर पूजा करते हैं। उपन्यास में शाम के समय भैरो देवी की पूजा का भी वर्णन है, इसी प्रकार विभिन्न

नामों से भवानी की भी पूजा की जाती है। नामकरण और विवाह संस्कार का बहुत ही कम दृश्य 'सहराना' उपन्यास में देखने को मिलता है जबकि देखा जाये तो संस्कार आदिवासी समाज की विशिष्ट पहचान होते हैं। मृत्यु संस्कार की बात की जाये तो उपन्यास में जब बोधा की मृत्यु होती है तो उसके परिवार के लोगों पर यह निर्भर करता है कि वे सहराना के लोगों को खिलाएं या नहीं। "अगर वे चाहे तो बड़ा आयोजन कर सकते हैं अन्यथा एक डलिया पूरी बनाकर रख दें उसी से पूरा सहराना खा लेगा। सहरिया लोगों को इस बात की छूट है कि अगर वे अपने पुरखों का तेरह दिन का खर्चा नहीं उठा सकते तो जब तक सुविधा हो तभी तक कर सकते हैं।"<sup>10</sup>

'सहराना' उपन्यास में नारी पात्रों कि बात जाए तो पुन्नी सिंह के नारी पात्र सशक्त हैं, वे अपने अधिकारों के लिए गिड़गिड़ाते नहीं हैं बल्कि सीधे-सीधे बातें कहते हैं ऐसी बातें जो पुरुषवादी समाज के लिए चुनौती होती हैं। उपन्यास में चंपा अपने पति से हक के लिए लड़ती हुई दिखाई है - "तू मरद है एक नहीं चार बय्यर रख सकता है।"<sup>11</sup> इस कथन के माध्यम से 'पुन्नी सिंह' ने पुरुष जाति पर करारा व्यंग्य किया है। वहीं दूसरा नारी पात्र अंजनी काकी है, जिसे गढ़कर उपन्यासकार ने आदिवासी समाज की स्त्रियों को संघर्ष के लिए प्रेरित किया है। अंजनी काकी की पूरा सहराना इज्जत करता है, जहाँ सहरिया समाज की पंचायत में औरतों का मत मायने नहीं रखता वहीं अंजनी काकी पंचायत के हर फैसले में भाग लेती है - "अरे वा को पूछनों, वो तो इंदरा गाँधी तेऊ ऊपर है, हौ सहरियन में ऐसी जनीमांस कोऊ पैदा नई भई सहराना कि पंचायत मेंऊ बुलाई जात है।"<sup>12</sup> वहीं सहराना उपन्यास में दिखाया है कि किस तरह अंजनी काकी लिंग भेद को खत्म कर सहराना कि लीक तोड़ती है और लड़की के जन्म पर ढपला बजाती हैं - "अंजनी काकी ने सहराना की लीक तोड़ी थी। सहराने में पहली बार

किसी लड़की के भये पर ढपला बजा था।"<sup>13</sup> ऐसा माना जाता है कि आदिवासी समाज में यौन सम्बन्ध मायने नहीं रखते। 'सहराना' में भी प्रेम और यौन सम्बन्ध का उतना आग्रह नहीं दिखाया गया है। सोमा अपनी पत्नी को छोड़कर लाडली के साथ रहने लगता है तो पूरा सहराना इस बात को स्वीकार कर लेता है, उसके पश्चात जब लाडली बल्ला से प्रेम सम्बन्ध बनाती है तो उस पर भी कोई आपत्ति व्यक्त नहीं करता बल्कि चंपा भी लाडली को आसानी से माफ कर देती है। सहराना, सहराना उपन्यास का नायक होने के बावजूद स्त्री-पुरुष संबंधों की प्रस्तुति के मामले में सहराना एक कमजोर उपन्यास साबित हुआ है।

कहा जा सकता है कि उपन्यासकार 'पुन्नी सिंह' ने 'सहराना' उपन्यास में सहरिया जनजीवन को भली-भाँति दिखाया है। उन्होंने सहरियाओं के दुःख-दर्द की कहानी कहते हुए उनके जीवन के विविध पक्षों और उसमें हो रहे बदलावों को पूरी मार्मिकता से उकेरा है। 'सहराना' उपन्यास में सामाजिक संबंधों का बहुत सफलतापूर्वक निर्वाह किया गया है किन्तु उपन्यासकार कहीं-कहीं आदिवासी जीवन के साथ न्याय नहीं कर पाया है। सहरिया जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार होते हैं जबकि 'पुन्नी सिंह' ने 'सहराना' में सोमा चंपा का बहुत ही साधारण सा विवाह दिखाया है जो आदिवासी विवाह लगता ही नहीं है, सहरिया जनजाति में गोदना प्रथा का विशेष महत्व है, सहरिया कुशल गोदनाकार होते हैं जबकि उपन्यास में कहीं भी गोदना का जिक्र नहीं मिलता। अतः हम कह सकते हैं कि सहरिया समाज में आ रही चेतना की अभिव्यक्ति है सहराना।

शोधार्थी, हिंदी विभाग,  
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली  
ईमेल-[navpreet.pg@gmail.com](mailto:navpreet.pg@gmail.com)

## संदर्भ सूची

1. हेमलता, सहराना में सहरिया जनजाति का जीवन, पृष्ठ-20
2. सिंह. पुन्नी, सहराना, पृष्ठ-209
3. सिंह. पुन्नी, सहराना, पृष्ठ-209
4. अमीन, खान्ना प्रसाद, आदिवासी उपन्यास समय और
5. संवेदना पृष्ठ - 63
6. सिंह, पुन्नी, सहराना, पृष्ठ-31
7. वही, पृष्ठ-186
8. वही, पृष्ठ-186
9. वही, पृष्ठ-186
10. वही, पृष्ठ-197
11. वही, पृष्ठ-198
12. वही, पृष्ठ-17
13. वही, पृष्ठ-172
14. वही, पृष्ठ-17
15. वही, पृष्ठ-89



दुर्गेश नंदिनी\*



डॉ. सुधा निकेतन रंजनी\*\*

## सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारत में क्षेत्रीय स्तर पर इसके निहितार्थ

### शोध सार

संस्कृति राष्ट्रवाद का एक आवश्यक घटक है। इसके विभिन्न पहलू मिलकर एक राष्ट्र-राज्य की अवधारणा बनाते हैं। संस्कृति राष्ट्रवाद का मूल बनाती है और राष्ट्रवाद बदले में एक समाज के सांस्कृतिक पहलुओं को आकार देता है। एक राष्ट्र एक बड़े प्रकार का सामाजिक संगठन है, जो एक सामूहिक पहचान, एक राष्ट्रीय पहचान, किसी दी गई आबादी में साझा सुविधाओं के संयोजन से उभरा है, जैसे भाषा, इतिहास, जातीयता, संस्कृति, क्षेत्र या समाज। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक शब्द है जिसका उपयोग राष्ट्रवाद के विद्वानों द्वारा एक साझा संस्कृति पर जोर देने के माध्यम से राष्ट्रीय समुदायों के गठन को बढ़ावा देने के लिए बुद्धिजीवियों के बीच प्रयासों का वर्णन करने के लिए किया जाता है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ज्यादातर राष्ट्रीय पहचान के सांस्कृतिक ढांचे और मातृभूमि पर आधारित स्वायत्तता के राजनीतिक ढांचे के भीतर संचालित होता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवादी अक्सर राजनीतिक, यहां तक कि विद्रोही गतिविधियों में भी शामिल होते हैं जबकि राजनीतिक अर्थ वृहद स्तर पर एक संप्रभु राष्ट्र-राज्य की स्थापना का प्रतीक है। सांस्कृतिक अर्थकुल मिलाकर एक सामान्य संप्रभु राज्य के भीतर एक दिए गए प्रांतीय राजनीतिक स्थान में विशिष्ट सांस्कृतिक राष्ट्र/राष्ट्रीयता की सुरक्षा को रेखांकित करता है। इस पत्र का उद्देश्य संस्कृति, राष्ट्र और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विभिन्न स्वरूपों को समझना है। यह पत्र भारत में क्षेत्रीय स्तर पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के निहितार्थों को समझने का भी प्रयास करता है। यह लेख शोध पत्रिकाओं, लेखों, पुस्तकों, ऑनलाइन

वीडियो आदि जैसे द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।

### भूमिका

संस्कृति-एडवर्ड टायलर ने संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि “वह जटिल समग्र रूप है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता संबंधी नियम, विधान, प्रथा, और अन्य कोई भी क्षमताएँ तथा आदतें आ जाती हैं जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के नाते अर्जित करता है।”<sup>1</sup> अनॉल्ड ने माना कि संस्कृति हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण सभी मामलों पर, दुनिया में जो सबसे अच्छा सोचा और कहा गया है, उसे जानने के माध्यम से हमारी संपूर्ण पूर्णता की खोज है; और इस ज्ञान के माध्यम से, हमारी संगठित धारणाओं और आदतों पर ताजा और स्वतंत्र विचार की धारा को मोड़ना; हम जिस संस्कृति की अनुशंसा करते हैं, वह सबसे ऊपर, एक आंतरिक संचालन है। कैब्रिज डिक्शनरी के अनुसार “संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप में अंतर्निहित होता है। किसी विशेष समय पर किसी विशेष समूह के लोगों की जीवन शैली, विशेष रूप से सामान्य रीति-रिवाज और विश्वास के रूप में भी संस्कृति की व्याख्या की जाती है।”<sup>2</sup> तमाम व्याख्याओं और परिभाषाओं के बावजूद संस्कृति की कोई सर्वसम्मति परिभाषा निश्चित नहीं हो पाई है। दिनकर लिखते हैं कि-“संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं, किन्तु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते।”<sup>3</sup>

**राष्ट्रवाद:-**राष्ट्र की अवधारणा का पता 1648 में वेस्टफेलिया की शांति संधि से लगाया जा सकता है। राष्ट्र लोगों का एक समुदाय है जिसे आत्मनिर्णय के विचार के

ईर्द-गिर्द संगठित किया जा सकता है। राष्ट्रवाद की अवधारणा संप्रभुता के विचार से जुड़ी हुई है और इसलिए; इसे आत्मनिर्णय के सिद्धांत से जोड़ा जाना चाहिए। 19वीं शताब्दी में, जॉन स्टुअर्ट मिल ने तर्क दिया कि राष्ट्रवादी आंदोलन जातीयता, भाषा और संस्कृति पर निर्भर थे। 19वीं शताब्दी के मध्य में उपनिवेशवाद के चरम पर उपनिवेशित दुनिया ने एक आम भाषा, धर्म, जातीयता आदि के विचार पर जोर देने के साथ राष्ट्रवादी भावनाओं में वृद्धि देखी। जबकि राष्ट्रवाद के पश्चिमी विचार का उद्देश्य एक-राष्ट्र, एक-संस्कृति की स्थापना करना है, राष्ट्रवाद बहु-राष्ट्रीय, बहुलवादी संदर्भ में विभिन्न सिद्धांतों पर काम करता है। राष्ट्रवाद का विचार उत्तर-औपनिवेशिक दुनिया में बहुत अलग है, जहाँ राष्ट्रवादी भावना का आह्वान (आज और अतीत में) एक बड़ी 'राष्ट्रीय पहचान' के ढांचे के तहत एक अधिक विशिष्ट 'उप-राष्ट्रीय पहचान' को संरक्षित करने के लिए किया जाता है। राष्ट्रवाद बहुलवादी राष्ट्र-राज्यों में अलग तरह से प्रकट होता है। इन राष्ट्रों में, लोग प्रांतीय स्वायत्तता हासिल करने के लिए राष्ट्रवाद का आह्वान करते हैं, जो उन्हें लगता है कि जिस राष्ट्र में वे रहते हैं, उसकी आभासी पहचान के भीतर उनके स्थानीय मूल्यों के संरक्षण के लिए आवश्यक है। राष्ट्रवाद की उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, राष्ट्रवाद की इस विशिष्ट श्रेणी को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहा जा सकता है। स्वतंत्र भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पहला उदाहरण तेलुगु भाषियों के लिए एक अलग प्रांत की माँग से जुड़ा है। हालाँकि इस आंदोलन की उत्पत्ति औपनिवेशिक काल में हुई थी, लेकिन विरोध तब बढ़ा जब तेलुगु आबादी मद्रास प्रांत में तमिलों के आर्थिक और राजनीतिक वर्चस्व से असंतुष्ट थी। यह संघर्ष अंततः 1953 में आंध्र राज्य के गठन के साथ समाप्त हुआ। 19वीं शताब्दी के मध्य में उपनिवेशवाद अपने चरम पर था, जब उपनिवेशित दुनिया ने राष्ट्रवादी भावनाओं में उछाल देखा, जिसमें एक समान भाषा, धर्म, जातीयता आदि के विचार पर जोर दिया गया। व्यापक स्तर पर, राष्ट्रवाद को उपनिवेशवाद विरोधी माना जाता था, जिसका उद्देश्य देश को दमनकारी शासन से मुक्त कराना और एक संप्रभु राज्य की स्थापना करना था, जबकि अधिक स्थानीय स्तर पर, राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक चेतना का एक रूप माना जाता था, जिसका उद्देश्य विभिन्न सांस्कृतिक समुदायों को उनकी मातृभूमि के भीतर संरक्षित

करना था। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, एक प्रतिक्रिया के रूप में देखा गया कि इन प्रशासनिक सीमाओं में अलग-अलग लोगों की सीमाओं ने केवल विच्छेद को जन्म दिया, जिससे अंततः दी गई प्रांतीय इकाई का निर्माण हुआ।

**सांस्कृतिक राष्ट्रवाद-** प्रारंभिक समय में संस्कृति और राष्ट्रवाद की अवधारणाएँ अलग-अलग थीं और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद शब्द ने बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ही लोकप्रियता हासिल की। जीन-जैक्स रूसो, जोहान गॉटफ्रीड वॉन हर्डर, गिआम्बतिस्ता विको और इमैनुअल कांट संस्कृति और राष्ट्रवाद संबंधी अवधारणाओं के प्रमुख प्रतिपादक हैं। रेमंड विलियम्स ने संस्कृति की अवधारणा को लोकप्रिय बनाया और संस्कृति के मानवतावादी और मानवशास्त्रीय दृष्टिकोणों पर विचार किया। उन्होंने राष्ट्रवाद को राज्य और उसकी देशभक्ति से मुक्त किया।

मिरोस्लाव होच ने राष्ट्रवाद के तीन अलग-अलग चरणों की पहचान की : पहला चरण उन्नीसवीं सदी की लोककथाओं और रीति-रिवाजों को दर्शाता है, दूसरा राष्ट्रवाद एक राजनीतिक अभियान के रूप में अपनाया जाता है और तीसरे चरण में राष्ट्रवाद जन समर्थन और जन आंदोलनों में तब्दील हो जाता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पहले चरण में एक राष्ट्र के निर्माण की दिशा में काम करता है। यह आम तौर पर उन विचारों और प्रथाओं को संदर्भित करता है जो किसी कथित राष्ट्रीय समुदाय की संस्कृति के इच्छित पुनरुद्धार से संबंधित हैं। यदि राजनीतिक राष्ट्रवाद राजनीतिक स्वायत्तता की प्राप्ति पर केंद्रित है, तो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक राष्ट्र के परिष्कार पर केंद्रित है। यहाँ राष्ट्र की दृष्टि एक राजनीतिक संगठन नहीं, बल्कि एक नैतिक समुदाय है। इस प्रकार, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र की पहचान, इतिहास और नियति का एक दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास करता है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रमुख प्रतिनिधि बुद्धिजीवी और कलाकार हैं, जो राष्ट्र के अपने दृष्टिकोण को व्यापक समुदाय तक पहुँचाना चाहते हैं। आधुनिकता के साथ संपर्क में आने के परिणामस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उथल-पुथल के समय इस दृष्टिकोण को स्पष्ट और व्यक्त करने की आवश्यकता सबसे अधिक तीव्रता से महसूस की जाती है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद अक्सर एक राष्ट्रीय आंदोलन के शुरुआती चरण में होता है, कभी-कभी स्पष्ट रूप से

राजनीतिक राष्ट्रवाद प्रकट होने से पहले। लेकिन यह लंबे समय से स्थापित राष्ट्रीय राज्यों में भी दोहराया जा सकता है।

जोहान गॉटफ्रीड हेरडर (1744-1803) को अक्सर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की विचारधारा और व्यवहार को स्पष्ट करने के लिए श्रेय दिया जाता है। उन्होंने कई प्रथाओं के विकास में एक प्रभावशाली भूमिका निभाई जो उन्नीसवीं सदी के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से जुड़ीं, जैसे कि भाषाशास्त्र, इतिहास और लोक गीतों, मिथकों और अन्य प्रथाओं का संग्रह। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के फायदे हैं, लेकिन इसकी अधिकता से बहुलतावादी समाजों में प्रतिकूल परिणाम होंगे जिनमें सबसे बड़ा उदाहरण श्रीलंका है।

### क्षेत्रीय स्तर पर भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

भारत एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक राजनीतिक इकाई है। यह सर्वविदित है कि बहुलवाद, विविधता, भाषाएँ, धर्म, सांस्कृतिक विस्तार के तत्व, धर्म, समूह पहचान और उसके गठन के प्रतीक होते हैं। तथ्य यह है कि एक निश्चित क्षेत्र के लिए, एक राष्ट्र-राज्य उनकी प्रमुखता को बल देता है। भारत जैसे देश के लिए क्षेत्र मायने रखता है, लेकिन साथ ही, किसी भी चीज से ज्यादा लोग मायने रखते हैं। भारत जैसे राष्ट्र के पास कई भाषाई इतिहास, संस्कृति, मिथक हैं, जो क्षेत्रीय रूप से उसके बहुराष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करते हैं। मातृभूमि को नुकसान पहुँचाने का कोई भी प्रयास अटूट तनाव पैदा करेगा या यह संस्कृति प्रभावित होगी। भारत इन सभी और बहुत कुछ के मिश्रण के रूप में उभरा।

भाषा और क्षेत्र दोनों ने भारत में क्षेत्रीय राष्ट्रीय पहचान को आकार दिया है और अखिल भारतीयता वस्तुनिष्ठ रूप से क्षेत्रीय राष्ट्रीय चेतना के साथ सह-अस्तित्व में है। जी. एलॉयसियस (1997) का तर्क है कि राजनीतिक और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद दोनों ने भारत के निर्माण में योगदान दिया। अन्य जगहों के औपनिवेशिक अनुभव की तरह, भारत में भी अंग्रेजों ने प्रशासनिक प्रांत बनाए जो राष्ट्रीयताओं के वितरण और उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक संबद्धता से मेल नहीं खाते थे। उदाहरण के लिए, बंगाल प्रेसीडेंसी में विभिन्न राष्ट्रीयताएँ बंगाली, उड़िया, असमिया, मैथिली, भोजपुरी और समुदाय शामिल थे। मद्रास प्रेसीडेंसी में मलयाली और कन्नड़ लोग शामिल थे; जबकि बॉम्बे प्रेसीडेंसी में मराठी, गुजराती, कन्नड़ और कोंकणी शामिल

थे। उदाहरणों में, एक विशेष राष्ट्रीयता के लोगों को दो या अधिक प्रशासनिक प्रांतों में विभाजित किया गया था। प्रशासनिक उद्देश्यों की खातिर लोगों की सहमति और सांस्कृतिक विरासत का बलिदान दिया गया। बाद में संस्कृति विशेष रूप से भाषा अलग राज्यों की मांग के लिए बाध्यकारी और मार्गदर्शक शक्ति बन गई। जनजातीय पहचान भी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का सशक्त माध्यम बनी। हम संस्कृति की इन दोनों अभिव्यक्तियों का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

### औपनिवेशिक भारत में उड़िया राष्ट्रीय आंदोलन

उड़िया आंदोलन ब्रिटिश भारत में पहला सांस्कृतिक राष्ट्रवाद था जिसने एक अलग प्रांत की मांग की थी। 1911 से पहले, यह बंगाल का हिस्सा था। 1911 में, बिहार के साथ उड़ीसा बंगाल से अलग हो गया। अंत में, 1936 में अलग उड़ीसा प्रांत का गठन हुआ। यह ब्रिटिश भारत में रियासतों से अलग पहला भाषाई प्रांत था। सामंती शासकों द्वारा किए गए अत्यधिक आर्थिक शोषण और राजनीतिक उत्पीड़न के कारण रियासती राष्ट्रवाद में उड़िया भाषा और संस्कृति के लिए बाहरी खतरा था। फिर भी, उड़िया पहचान खोने का एक प्रत्याशित डर मंडरा रहा था। 1936 में एक अलग उड़ीसा प्रांत के गठन के साथ चरम आकांक्षा सामने आई। यह ब्रिटिश काल के दौरान सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का एक उदाहरण था, भारत को अपनी स्वतंत्रता मिलने से भी पहले।

### स्वतंत्रता के बाद सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उदाहरण भाषा के आधार पर

स्वतंत्रता के बाद, रियासतों का एकीकरण हुआ। भारत के प्रथम उप-प्रधानमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने राजनीतिक खींचतान और ताकत का इस्तेमाल करके देशी राज्यों का एकीकरण किया। जोधपुर, त्रावणकोर, हैदराबाद आदि को शामिल किया गया। जल्द ही लोगों की ओर से सांस्कृतिक आधार पर राज्य बनाने की मांग उठने लगी। अलग तेलुगु प्रांत के लिए संघर्ष मद्रास प्रांत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उदाहरण था। कार्यकर्ता पोर्टी श्रीरामुलु ने रायलसीमा और तटीय आंध्र के तेलुगु भाषी क्षेत्रों को आंध्र राज्य में शामिल करने की वकालत की। 1 अक्टूबर 1953 को मद्रास राज्य के तेलुगु भाषी हिस्से (तटीय आंध्र और रायलसीमा) के ग्यारह जिलों ने कुरनूल को अपनी राजधानी बनाते हुए आंध्र राज्य बनने के लिए मतदान किया। आंध्र

केसरी तंगुतुरी प्रकाशम पंतुलु नए तेलुगु राज्य के मुख्यमंत्री बने। दिसंबर 1953 में भाषाई आधार पर राज्यों के निर्माण की तैयारी के लिए राज्य पुनर्गठन आयोग की बैठक हुई राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 ने भारतीय राज्यों और क्षेत्रों की सीमाओं में सुधार किया, उन्हें भाषा के आधार पर व्यवस्थित किया। राज्य पुनर्गठन आयोग ने सिफारिश की कि “भाषा या संस्कृति के एकल परीक्षण के आधार पर राज्यों को पुनर्गठित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय है, बल्कि हमारी राष्ट्रीय एकता के हित में पूरी समस्या के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है।” बाद में जब राज्यों का पुनर्गठन किया गया तो कोई यह कह सकता है कि पुनर्गठन का आधार भाषाई, जातीय या प्रशासनिक उद्देश्य हो सकता है। भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन न केवल प्रशासन को आसान बनाने में मदद करेगा बल्कि स्थानीय भाषाओं का विकास भी करेगा जिसे अंग्रेजों ने नजरअंदाज कर दिया था। यहां तक कि सांस्कृतिक जुड़ाव को भी ध्यान में रखा गया था, उदाहरण के लिए, नागालैंड को आदिवासी जुड़ाव को ध्यान में रखते हुए बनाया गया था। हाल के दिनों में, संबंधित क्षेत्रों में बेहतर आर्थिक विकास के लिए छत्तीसगढ़ और झारखंड बनाए गए थे।

### जनजातीय राष्ट्रवाद पर आधारित

जनजाति भारत में राष्ट्रीयता निर्माण का एक व्यवहार्य आधार प्रदान करती है। जनजातीय लोग भारत की आबादी का लगभग 8 प्रतिशत हिस्सा हैं और जहाँ तक स्थानिक वितरण का सवाल है, वे कुछ इलाकों में भारी बहुमत बनाते हैं। जनजातियों की सबसे बड़ी सांद्रता मध्य और उत्तर-पूर्व भारत में देखी जाती है। हालाँकि, कुल मिलाकर, भारत में जनजातीय राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति आम जनजातीय पहचान, आम संस्कृति और आम क्षेत्रीय बंधनों पर आधारित है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद बोली भिन्नता में विकसित हुआ और उत्तर-पूर्व भारत में, गोरखा, बोडो, गारो, कार्बिस, राभा और रियांग जैसी कुछ जनजातियाँ अभी भी सांस्कृतिक-पहचान और मातृभूमि की अपनी खोज में लगी हुई हैं।

### धर्म के आधार पर

भाषा की तरह धर्म भी राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पंजाब और हरियाणा के लोगों ने सिख धर्म के आधार पर एक अलग मातृभूमि की मांग की। यह सिखों को परिभाषित करने के लिए एक

आंदोलन था – गौरवशाली पंच ककार ‘केश, कंधा, कच्छ, कड़ा, कृपाण’ प्रतीकों से लिया गया। दक्षिण भारत में एक अलग राज्य की मांग में एक संप्रभु धार्मिक तत्व की मांग थी। द्रविड़-तमिल राष्ट्रवाद आर्य विरोधी पहचान पर गढ़ा गया था। ये आर्य (ब्राह्मणवादी) भाषा और संस्कृति के खिलाफ खड़े थे। इसने भारत के उत्तरी और दक्षिणी हिस्से के बीच धार्मिक-सांस्कृतिक सीमा का निर्माण किया।

### क्षेत्रीय विषमताएँ और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

हाल ही में उड़ीसा में एक अलग कोशल राज्य की माँग ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के एक और रूप को उजागर किया है। इस भाषाई एकता में क्षेत्रीय विकासात्मक असंतुलन से उत्पन्न तनाव के कारण राष्ट्रवाद स्पष्ट होता है। बिहार प्रांत में अलग राज्यों की माँग उठाई गई है। यहाँ मैथिली भाषी लोगों के लिए मिथिलांचल को अलग राज्य बनाने की माँग की गई है। हाल ही में, लोगों ने बेहतर विकास के अवसर के लिए अलग राज्य की माँग के लिए खुद को संगठित किया है। बिहार में सीमांचल, उत्तर प्रदेश में बुंदेलखंड की माँग इसके उदाहरण हैं।

### निष्कर्ष:

यह विचार कि संस्कृति मानव जाति के अनुकूलन और विकास के लिए आवश्यक है, न केवल हमारे सांस्कृतिक संविधान को पुष्ट करने में, बल्कि हमें विशिष्ट परिस्थितियों में रखने, कल्याण की खोज में हमारे सामने आने वाली विशिष्ट चुनौतियों की पहचान करने में भी महत्वपूर्ण है। संस्कृति के विभिन्न रूपों ने अलग-अलग समय और अलग-अलग क्षेत्रों में राष्ट्रवाद के गठन को आकार दिया है। भारत जैसे उपनिवेशी देश ने राष्ट्रवाद को अलग तरीके से आगे बढ़ाया है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद स्थानीय सांस्कृतिक पहलुओं की अनदेखी करके राज्यों के गठन की प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। अपनी पुस्तक ‘थॉट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स’ में, अंबेडकर कहते हैं – एक भाषाई राज्य जिसकी अपनी क्षेत्रीय भाषा आधिकारिक भाषा है, आसानी से एक स्वतंत्र राष्ट्रीयता में विकसित हो सकता है। स्वतंत्र राष्ट्रीयता और स्वतंत्र राज्य के बीच का रास्ता बहुत संकीर्ण है। यदि ऐसा होता है, तो भारत आधुनिक भारत नहीं रह जाएगा हम प्रतिद्वंद्विता और युद्ध में लिप्त विभिन्न राज्यों से मिलकर बने मध्ययुगीन भारत बन जाएंगे। भारत में आर्थिक उदारीकरण ने अत्यधिक धन और गरीबी को एक साथ अस्तित्व में ला दिया।

निस्संदेह इसने सांप्रदायिक तनाव पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई क्योंकि इसने धार्मिक विभाजन को मजबूत किया। इस प्रकार, भारतीय स्थिति का मूल्यांकन करने पर पता चलता है कि भाषा, संस्कृति, जनजाति और, कुछ हद तक, धर्म को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और राज्य का दर्जा देने के महत्वपूर्ण आधार के रूप में संस्थागत किया गया है। इस सामाजिक-राजनीतिक वास्तविकता को देखते हुए, एक प्रांतीय इकाई के रूप में सांस्कृतिक सीमा को संप्रभुता के बिना मातृभूमि से जोड़कर बनाए रखने की इच्छा। भारत में, सभी सांस्कृतिक पहचानों को ग्रहण करते हुए वृहद स्तर पर राष्ट्रवाद हुआ। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सूक्ष्म स्तर पर उभरा जिसमें अलग-अलग सांस्कृतिक पहचान थीं लेकिन राष्ट्रीय स्तर के साथ तालमेल था। पश्चिम के विपरीत भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के तहत राज्यों की सांस्कृतिक पहचान बनती है। इन दोनों के बीच कोई संघर्ष नहीं था। अमर्त्य सेन अपनी किताबों द आर्गुमेंटेटिव इंडियन: राइटिंग्स ऑन इंडियन कल्चर, हिस्ट्री एंड आइडेंटिटी (2005) और आइडेंटिटी एंड वायलेंस: द इल्यूजन ऑफ डेस्टिनी (2006) के माध्यम से भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उदय की बात करते हैं। अमर्त्य सेन के अनुसार तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में अशोक द्वारा

प्रचारित सहिष्णुता और विधर्मिता को एक बार फिर से वापस लाया जाना चाहिए और प्रचारित किया जाना चाहिए। वे स्वयं बुद्ध और सम्राट अकबर से प्रभावित थे। कुल मिलाकर, भारत में, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सभी रूप समानता और पहचान के संदर्भ में हैं। कुछ मामलों में, समानता पहले से मौजूद सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का आधार है; अन्य में, समानता के लिए सांस्कृतिक राष्ट्रीयता बनाई गई है। किसी भी मामले में, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद सांस्कृतिक वंचना और दूसरे पर वर्चस्व की भावना से उत्पन्न होता है। हालाँकि, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद स्वायत्तता का र्ड का उपयोग करता है और इसलिए यह नागरिक-राजनीतिक राष्ट्रवाद के लिए कोई गंभीर खतरा नहीं है। नागरिक-राष्ट्रीय पहचान भारत के भीतर विभिन्न राष्ट्रों और राष्ट्रवादों के साथ सामंजस्यपूर्ण ढंग से सह-अस्तित्व में रह सकती है।

**\*वरिष्ठ शोध अध्येता, हिंदी विभाग  
वी.के.एस.यू., आरा  
आरा-802301, बिहार**

**\*\*असिस्टेंट प्रोफेसर, एम.एम. महिला कॉलेज  
वी.के.एस.यू., आरा  
आरा-802301, बिहार**

## संदर्भ सूची

1. <https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/69928/1/Unit-2-pdf> i`-112
2. <https://dictionary.cambridge.org/dictionary/english/culture>
3. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति भाषा और राष्ट्र, लोकभारती प्रकाशन, 2013, पृ. 11
4. हुसैन, एस. आबिद, भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, अनुवाद-दुर्गा शंकर शुक्ल, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2011
5. झा, प्रभात, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, प्रभात प्रकाशन, 2016
6. चंद्र, बिपन, आधुनिक भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, अनामिका पब्लिशर्स, 2019
7. [https://en-m-wikipedia-org.translate.google/wiki/Cultural\\_nationalism\\\_x\\\_tr\\\_sl%4en\\\_x\\\_tr\\\_tl%4hi\\\_x\\\_tr\\\_hl%4hi\\\_x\\\_tr\\\_pto%4tc](https://en-m-wikipedia-org.translate.google/wiki/Cultural_nationalism\_x\_tr\_sl%4en\_x\_tr\_tl%4hi\_x\_tr\_hl%4hi\_x\_tr\_pto%4tc)
8. अंबेडकर, भीमराव, थाउट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स, अमेजन डिजिटल सर्विसेज, 2018
9. नंदा, एस, कल्चरल नेशनलिज्म इन अ मल्टीनेशनल कांटेक्स्ट : द केस ऑफ इंडिया, सोशियोलॉजिकल बुलेटिन, 2006
10. <https://www.drishtiias.com/paper1/regionalism-in-india-upsc>
11. देसाई, ए आर, सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज्म, पोपुलर प्रकाशन, 2023



सीता मीना

## स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासी वीरांगनाएं

**ज**ब हम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में लड़ाई की बात करते हैं, तो हम अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी गयी लड़ाई की बात करते हैं। भारतीय इतिहासकारों ने सन् 1857 की क्रांति को स्वतंत्रता संग्राम का पहला आंदोलन माना है, परंतु क्या यह अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी गयी एक मात्र लड़ाई थी, परंतु ऐसा नहीं है। इसके पूर्व भी कई आदिवासी समुदाय, आदिवासी क्रांतिकारी अपने-अपने स्तर पर संघर्ष करते नजर आते हैं। और यह संघर्ष की घटनायें भारत के करीब-करीब सभी भू-भाग पर दिखाई देती हैं। अंग्रेजों के विरुद्ध ऐसी संघर्ष की घटनाएँ अनगिनत हैं, और इन संघर्षों के नायक-नायिकायें भी अनगिनत हैं। कुछ प्रमुख आदिवासी वीरांगनाओं का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान इस प्रकार है-

रानी गाइदिन्ल्यू : ऐसी ही एक स्वतंत्रता-सेनानी है, रानी गाइदिन्ल्यू जिन्हें नागालैंड की रानी लक्ष्मीबाई भी कहा जाता है। इनको रानी गिडालु के नाम से भी जानते हैं। इनका जन्म 26 जनवरी 1915 में, मणिपुर के तेमलोंग जिले के छोटे से गाँव नुंगकाओ में हुआ जिसे कई लोग लांगकाओ के नाम से भी जानते हैं।

रानी गाइदिन्ल्यू नागा जनजाति की थी जो जेलियांग्रांग में आती है। इनके पिता लोथॉगनाग, नागाओं पुरोहित थे। और इनकी माता का नाम केरोटलीनलीउ था। रानी गाइदिन्ल्यू रांगमेई आदिम जाति के प्रतापी कबीले की एकमात्र लड़की थी, जिसने विद्यालय में शिक्षा पाई। यह अपने चचेरे भाई हाथपौऊ जादोनांग से बहुत प्रभावित थी तथा उसे अपना गुरु भी मानती थी। जदोनांग नागा जनजातियों को एकजुट करने के लिए, अपने रीति-रिवाजों और

प्राचीन धर्म हेराका को ईसाई मिशनरियों के बढ़ते प्रभाव से बचाने के लिए हेराका आंदोलन चला रहे थे। रानी गाइदिन्ल्यू आंदोलन से जुड़ी। जदोनांग ने अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता का बिगुल बजाया, परंतु एक अंग्रेज को मारने के अपराध में, जदोनांग को 29 अगस्त 1931, को फाँसी की सजा हुई। भाई के शहीद होने के बाद रानी गाइदिन्ल्यू कबीले की मुखिया बनी और भाई के स्वतंत्रता संग्राम को आगे बढ़ाने का काम किया। उसके पास 4000 क्रांतिकारी थे जो गुरिल्ला युद्ध में कुशल थे। गाइदिन्ल्यू का मानना था कि “धर्म को खो देना अपनी संस्कृति को खो देना है और अपनी संस्कृति को खो देना अपनी पहचान को खो देना है।” गाइदिन्ल्यू, गांधी विचारधारा से प्रभावित थी और गांधी के अवज्ञा आंदोलन के तहत, अंग्रेजों के अमानवीय कर तथा नियमों के खिलाफ जेलियांग्रांग कबीले को एकजुट किया तथा ‘कर’ देने से मना कर दिया, तथा संकल्प लिया कि या तो अंग्रेज मरेंगे या मैं। गाइदिन्ल्यू 16-17 साल की उम्र में अंग्रेजों के खिलाफ गुरिल्ला युद्ध छेड़ा और अंग्रेजों की असम राइफल्स की उसके दल से कई बार मुठभेड़ हुई। 18 मार्च 1932, हंगरुड्ग से तकरीबन 50-60 लोगों ने अंग्रेजी सिपाहियों पर हमला बोल दिया। इस लड़ाई के बाद गाइदिन्ल्यू अंडरग्राउंड हो गयी तथा नागा नेशनल काउंसिल की स्थापना की। अंग्रेज सरकार गाइदिन्ल्यू के गुरिल्ला युद्ध से परेशान होकर असम राइफल्स के कैप्टन, मक्डोनाल्ड को गाइदिन्ल्यू को पकड़ने के लिए भेजा। 17 अक्टूबर 1932 की सुबह अंग्रेजी फौज ने अचानक रानी की फौज पर हमला कर दिया और उसे पुलोनी गाँव से गिरफ्तार कर

लिया। स्वयं रानी गाइदिन्ल्यू ने अपने शब्दों में कहा “मैं उनके लिये जंगली जानवर के समान थी। इसलिए एक मजबूत रस्सी मेरी कमर में बांधी गई। दूसरे दिन कोहिमा में मेरी व मेरे दूसरे छोटे भाई ख्युसिनांग की क्रूरता से पिटाई की गई? कड़कती ठण्ड में हमारे कपड़े छिन हमें रात भर ठिठुरने के लिए छोड़ दिया गया। अन्य अनेक यातनाएं भी दी गयीं पर मैंने धीरज नहीं खोया।”<sup>2</sup> उसके बाद रानी गाइदिन्ल्यू को कोहिमा तथा इम्फाल ले जाया गया, जहां उन पर हत्या और हत्या की साजिश रचने के आरोप में मुकदमा चला तथा इनको उम्र कैद की सजा हुई। रानी गाइदिन्ल्यू के साथियों पर भी मुकदमा चला और उनमें से कुछ को मौत की सजा तथा कुछ को उम्र कैद हुई। जब 1937 में प्रांतीय स्वशासन लागू हुआ तब नेहरू ने गाइदिन्ल्यू से जेल में भेंट की तथा उनकी रिहाई के भरसक प्रयास किये थे मगर उसे छोड़ा नहीं। एक ब्रिटिश सांसद नैन्सी एस्टोन ने रानी गाइदिन्ल्यू को छोड़ने की कोशिश की पर वो संसद में बहुमत हासिल नहीं कर पायी अंग्रेजों के लिए वह एक खतरनाक क्रांतिकारी थी। स्वयं नेहरू ने उसके बारे में लिखा है कि “उस नन्ही बहादुर लड़की ने अपनी देशभक्ति के जोश में एक विशाल साम्राज्य को चुनौती दी थी मगर उसे कितनी यातना और घुटन सहनी पड़ रही है। पहाड़ की ताजी खुशनुमा हवाओं में अब कभी नहीं गा सकेगी। ये छोटी सी उन्मुक्त रानी चुपचाप बैठी रहती होगी अँधेरे में कैद। छोटी सी कोठरी में अकेली, बिलकुल अकेली। अपने विद्रोह और अपनी यंत्रणा को चुपचाप झेलते हुए। अफसोस यह है कि हिंदुस्तान अपनी इस बहादुर बिटिया के बारे में जानता तक नहीं। भारत की ये बहादुर बेटी नागा पहाड़ियों की वह पवित्र संतान है, जिसकी सांस में पहाड़ी हवाओं की आजादी बसी हुई है। उसके प्रदेश के लोग उसे प्यार, इज्जत और दुख से याद करते हैं। एक दिन आएगा जब सारा हिंदुस्तान उसे याद करेगा, उसे इज्जत बख्सेगा और कैदखाने के दरवाजे खोलकर उसे बाहर ले आएगा।”<sup>3</sup> सन 1933 से 1947 तक 14 वर्ष जेल में रही। 1947 में जेल से रिहा होकर अपने भाई मारंग तुरंगसांग के साथ विमरफ गाँव में रही। 1960 में नागा नेशनल काउंसिल के विरोध के कारण फिर एक बार अंडरग्राउंड होना पड़ा। 1966 में भारत सरकार से बातचीत के बाद हिंसा का रास्ता छोड़ने का निर्णय लिया। 17 फरवरी 1993 में रानी

गाइदिन्ल्यू का निधन हो गया। भारत सरकार रानी गाइदिन्ल्यू को 1972 में स्वतन्त्रता सेनानी का ताम्र पत्र दिया तथा 1982 में पद्म-भूषण पुरस्कार दिया। भारत सरकार ने उनके सम्मान में 1996 में एक स्टाम्प व 2015 में एक सिक्का जारी किया।

### फूलो मुर्मू और झानो मुर्मू

फूलो और झानो का जन्म, सन् 1832 में भोगनाडीह गाँव, साहेबगंज जिला, बहरेट प्रखंड, झारखण्ड में एक संथाल परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम चुन्नी मांझी था। इनके परिवार में छः भाई-बहिन थे-सिदो मुर्मू, कान्हू मुर्मू, चाँद मुर्मू, भैरव मुर्मू, फूलो और झानो मुर्मू।

सिदो-कान्हो ने 1855 में ब्रिटिश सत्ता, साहूकारों एवं जमींदारों के खिलाफ जिस आन्दोलन की शुरुआत की थी, उसे संथाल विद्रोह या हूल विद्रोह के नाम से भी जाना जाता है और इस आन्दोलन में आदिवासी महिलाओं की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है।

सिदो-कान्हो ने हूल आन्दोलन को सफल बनाने के लिए फूलो और झानो को संदेशवाहक के रूप में चुना तथा गाँव-गाँव जाकर इस आन्दोलन के बारे में आदिवासियों को जाग्रत करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। फूलो और झानो घोंड़े पर बैठकर गाँव-गाँव जाती और सखुआ की डाली के जरिये घर-घर जाकर आदिवासियों तक सिदो-कान्हो का संदेश पहुंचाती और इस दरमियाँ कोई अंग्रेज सैनिक अथवा उनका कारिन्दा रास्ते में मिल जाता तो उसे घोंड़े से बांधकर, घसीटते हुए गाँव में ले आती। इनके जब्बे को देखकर सभी आदिवासी महिलाओं को विद्रोह की प्रेरणा मिलती।

संथालों ने सिदो-कान्हो की बातें सुनी कि आखिरकार कब तक वे आदिवासी, ब्रिटिश सेना, सूदखोरों और महाजनों का जुल्म, अत्याचार और मनमानी सहते रहेंगे। सिदो, कान्हो, चांद, भैरव ने कहा था अब संथाल लोग अत्याचार नहीं सहेंगे और संघर्ष करके अपने देश में अपना राज्य कायम करेंगे। सिदो-कान्हो ने कहा, “हम अपना संथाल देश बनाएंगे।”<sup>4</sup> सिदो-कान्हो ने उत्तेजित भीड़ को शांत करते हुए कहा, “अपने-अपने पारंपरिक हथियारों से लैस होकर तैयार रहो। हम सब कलकता जाएंगे और संथालों पर हो रहे अन्याय व अत्याचारों के बारे में शिकायत करेंगे। जमींदारों और महाजनों के जुल्म से हमें मुक्ति पानी है। हमारे रास्ते पर कोई अवरोध बनेगा

तो उसे कुचल दिया जाएगा।'<sup>5</sup>

हजारों की तादाद में संधाल सेना कलकत्ता की ओर कूच कर गई। 1855 में पाखुड जिले के संग्रामपुर स्थान पर सिदो-कान्हो की आदिवासी सेना का अंग्रेजी सेना के साथ भीषण युद्ध हुआ। एक ओर आदिवासी सेना पारम्परिक हथियारों के साथ तो दूसरी ओर आधुनिक हथियार और तकनीक के साथ अंग्रेजी सेना। आखिरकार कितने दिन तक आदिवासी सेना टिक पाती अंततः भारी संख्या में आदिवासी सेना के लड़ाके मारे गए। 9 जुलाई 1855 को सिदो-कान्हो के छोटे भाई चाँद और भैरव भी मारे गये। अंग्रेजी सेना ने रणनीति के तहत आदिवासी सेना को मैदानी इलाके में उतरने के लिए मजबूर कर दिया। क्योंकि वे जानते थे कि पहाड़ी इलाके में आदिवासी सेना से नहीं जीत पाएंगे क्योंकि आदिवासी सेना जंगलों से अच्छे से परिचित होने और गुरिला युद्ध में निपुण होने के कारण आदिवासी सेना को पराजित करना असम्भव था। आदिवासी सेना अंग्रेजों की चालाकी को समझ नहीं पाई और जैसे ही मैदानी इलाके में आये अंग्रेजी सेना ने घेराबन्धी करके गोलीबारी प्रारम्भ कर दी। युद्ध स्थल के पीछे अंग्रेजों के शिविर बने हुए थे।

फूलो और झानो गोलीबारी की प्रवाह ना कर हाथों में कुल्हाड़ी लिए दौड़ते हुए अंग्रेजी शिविरों में प्रवेश कर गयी और अँधेरा होने का इंतजार करने लगी और जैसे ही अँधेरा हुआ फूलो-झानो ने कुल्हाड़ी से अंग्रेजी सेना के 21 जवानों को मौत के घाट उतार दिया और जब अन्त में वे दोनों पकड़ी गईं, तो उन्हें आम के पेड़ पर फांसी दे दी गई।

हूल नायिकाओं फूलो और झानो के वीरता की गाथा आज भी झारखण्ड के जंगलों में गायी जाती है।

संथाली भाषा में हूल गीत की कुछ पंक्तियाँ-

“फूलो झानो आम दो तीर रे तलरार रेम साअकिदा,  
आम दो लट्टु बोध्या खोलहारे बहादुरी उदुकेदा,  
भोगनाडीह रे आबेन बना होड़ किरियाबेन,  
आम दो महाजन अत्याचार बाम सहा दाड़ी दा,  
आम दो बनासी ते तलवार रेम साउकेदा,  
अंगरेज आर दारोगा परति रे अड़ी अयम्मा रोड़केदा,  
केनाराम बेचाराम आबेन बड़ा होड़ ते बेन सिखोव केअकोवा,  
आम दो श अंगरेज सिपाही गोअ केअकोवा,  
आबेन बना होड़ाअ जुतुम अमर हुई ना...”<sup>6</sup>

इन पंक्तियों का हिंदी अनुवाद-

“फूलो झानो तुमने हाथों में तलवार पकड़ी,  
तुमने भाईयों से बढ़कर वीरता दिखलाई,  
भोगनाडीह में तुम दोनों ने शपथ ली,  
कि महाजनों सूदखोरों का अत्याचार नहीं सहेंगे,  
तुमने दोनों हाथों से तलवारें उठाई,  
अंग्रेजों और दारोगा के जुल्म के खिलाफ आवाज उठाई,  
तुम दोनों ने केनाराम बेचाराम को सबक सिखाया,  
इक्कीस अंग्रेज सिपाहियों को मार गिराया,  
तुम दोनों का नाम सदैव अमर रहेगा...”

**सम्मान**-1. बीएयू के तहत दुमका में फूलो-झानो डेयरी, 2. टेक्नोलोजी कॉलेज की स्थापना 19 अगस्त 2019, 3. दुमका के श्री अमडा में फूलो-झानो की विशाल प्रतिमा, 4. विशुनपुर के ज्ञान निकेतन परिसर में भी 30 अगस्त 2019 को फूलो-झानो की प्रतिमा का अनावरण किया गया।

शोध छात्रा,  
हिन्दी विभाग  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

### संदर्भ सूची

1. दि प्रिंट पत्रिका में लेख-आशा शाह, 26 जनवरी 2023
2. आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत प्रकाशन, हरीराम मीणा, पृ. 57
3. आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत प्रकाशन, हरीराम मीणा, पृ. 56
4. भारत की क्रांतिकारी आदिवासी औरतें, रमणिका फाउंडेशन प्रकाशन, वासवीकिड़ो, पृ. 50
5. भारत की क्रांतिकारी आदिवासी औरतें, रमणिका फाउंडेशन प्रकाशन, वासवीकिड़ो, पृ. 50
6. होर सेरेन, एक संथाल गीत पुस्तक, पहिल हतिन, मिशन प्रकाशन, डबल्यूजी आर्चर 1943



काम्या भारद्वाज

## सामाजिक यथार्थों में जीती मंगलेश डबराल की कविताएं

### सारांश :

समकालीन कविता के मुख्य हस्ताक्षर मंगलेश डबराल का जन्म 16 मई 1948 उत्तराखंड के टिहरी गढ़वाल क्षेत्र के काफलपानी गांव में हुआ था। मंगलेश डबराल हिन्दी साहित्य के वो दैदीप्यमान रवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दी भाषा को आलोकित और समृद्ध किया है। उनकी कविताएं यथार्थ के धरातल पर उकेरी गई अनुपम कृतियां हैं जो हिन्दी साहित्य की अनमोल निधि हैं। उनकी कविताओं में मानवता का संदेश है, समाज का नवीन रूप है, प्रेम की वाणी है, बदलाव की अभीप्सा है...।

हिन्दी कविता में मंगलेश डबराल जी अस्सी के दशक में अपने पहले काव्य संग्रह “पहाड़ पर लालटेन” से बहुचर्चित होते हैं। अपनी प्रथम कविता से लेकर अंतिम कविता तक वे समसामयिक मुद्दों, सामाजिक असमानताओं, सामान्य जन-जीवन की सच्चाई इत्यादि का निष्पक्षता एवं सजगता के साथ प्रतिनिधित्व करते नज़र आते हैं। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वे ‘मनुष्यता के कवि’ कहलाए जाते हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने समाज के विविध पक्षों, पारिवारिक व व्यक्तिगत संबंधों, समाज में व्याप्त विषमताओं इत्यादि का सशक्तता एवं निष्पक्षता के साथ वर्णन किया है। यही सब तो एक उच्च कोटि के साहित्यकार की पहचान है जिसकी कसौटी पर मंगलेश डबराल जी शत प्रतिशत खरे उतरते हैं।

### मुख्य शब्द

विसंगति, पृथक्करण, मूर्त, जिजीविषा, संवेदना, विद्रूपताओं, प्रतिबद्धता, मनोवृत्ति, अनुभूति, अभिव्यक्ति,

अस्तित्व, मर्म।

### प्रस्तावना

सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष को सशक्तता एवं निष्पक्षता के साथ उद्घाटित करना समकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति रही है। समकालीन कवियों ने अपनी स्वभावगत विशेषताओं के आधार पर इन प्रवृत्तियों को अपनी रचनाओं के माध्यम से उजागर किया है। मंगलेश डबराल जी समकालीन कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। जनवादी कवि, श्रेष्ठ विचारक पत्रकार एवं अनुवादक के रूप में प्रसिद्ध मंगलेश डबराल प्रारंभ से ही समाज के यथार्थ रूप को अपने शब्दों में निष्पक्षता के साथ उजागर करते नज़र आए हैं। वे मानवता के कवि हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से वह मानवता को जीवित रखने का संदेश देते हैं। उनकी कविताओं में सच्चाई है, निश्छलता है, परिवर्तन की अभिलाषा है। वे कहते हैं कि, “हमें एक राष्ट्र की नहीं, एक समाज की, एक अच्छे समाज की जरूरत है।” साहित्य समाज का दर्पण है और साहित्यकार समाज में रहकर सामाजिक व्यवस्था के विविध पक्षों, वर्ग संघर्षों इत्यादि का यथार्थ चित्रण अपने अनुभवों के आधार पर करता है जिससे पाठक वर्ग जागरूक बनता है। इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि साहित्य और समाज का संबंध अभिन्न है।

### मंगलेश डबराल की कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक चिन्तन

अस्सी के दशक में समाज प्राचीन और नवीन के बीच की संभावनाओं में उलझा हुआ था। पुरानी रुढ़ियां छूट रही थीं और नवीन संभावनाएं जन्म लेने के प्रयासरत

थीं। मंगलेश जी की रचनाओं में हम इसी नवीनता के आग्रह को स्पष्ट रूप देख सकते हैं क्योंकि उन्होंने सदैव समाज की चेतना को अपने शब्दों में परिलक्षित किया है। उनकी कविताओं में समाज का यथार्थ है, समाज की दशा है जिसमें साधारण जन की पीड़ा है, दुख है, पूंजीवादी विसंगतियों का वर्णन है, जीवन की वे सभी सच्चाईयां हैं जिनसे हम सभी जानबूझकर अनभिज्ञ होने का नाटक करते हैं। परंतु मंगलेश डबराल वे कवि हैं जो अपनी लेखनी की धारदार वाणी से समाज के कटु यथार्थ को निर्भयता एवं निष्पक्षता के साथ वर्णित करते हैं। वे कहते हैं-

“एक सरल वाक्य बचाना मेरा उद्देश्य है  
मसलन यह कि हम इंसान हैं  
मैं चाहता हूं इस वाक्य की सच्चाई बची रहे  
सड़क पर जो नारा सुनाई दे रहा है  
वह बचा रहे अपने अर्थ के साथ  
मैं चाहता हूं निराशा बची रहे  
जो फिर से उम्मीद पैदा करती है अपने लिए  
शब्द बचे रहें  
जो चिड़ियों की तरह कभी पकड़ में नहीं आते  
प्रेम में बचकानापन बना रहे  
कवियों में बची रहे थोड़ी लज्जा।”<sup>2</sup>

मंगलेश जी के शब्दों में, “आज की कविता का विषय वैविध्य और उसकी विषय सीमा दोनों मोटे तौर पर मध्यमवर्गीय है। उससे ज्यादा ऊपर या नीचे वह नहीं आ पा रही है, कभी-कभी लगता है वह एक प्रतिमा की तरह जितनी सुंदर या भव्य हो, वह अपनी ही जगह पर खड़ी है। उसे झकझोरने वाली कोई प्रेरणा चाहिए।”<sup>3</sup>

मंगलेश जी समाज में व्याप्त शोषण, दुख, वैमनस्य के खिलाफ संघर्ष करते नज़र आते हैं। उनका मानना है कि हमें जीवन में संघर्ष करना ही पड़ता है इसलिए हमें स्वयं को संघर्ष और यातना सहने के लिए तैयार रखना चाहिए। उनके शब्दों में-

“कुछ देर मैंने अन्याय का विरोध किया  
फिर उसे सहने की ताकत जुटाता रहा।”<sup>4</sup>

आज के समय में अधिकांश मनुष्य छल-कपट, निराशा, भय, अवसाद, वैमनस्य इत्यादि से स्वयं को घिरा हुआ पाते हैं। आज के समाज की स्थिति कुछ ऐसी है कि व्यक्ति समाज में रहते हुए भी स्वयं को अकेला पाता है।

आज के समय में अपनापन महज एक दिखावा प्रतीत होता है। व्यक्ति की प्रगति उसे दूसरों से काट देती है। एक की खुशी दूसरे का दुख बन जाती है। ये सभी स्थितियां समाज के लिए अभिशाप हैं। मंगलेश जी ने मनुष्य और समाज की दयनीय स्थिति पर अपनी रचनाओं के जरिए प्रकाश डाला है। मंगलेश जी की कविता ‘आयोजन’ का भाव यहां दृष्टव्य है-

“इन दिनों हर कोई जल्दी में है

लोग थोड़ी-थोड़ी देर के लिए झलकते हैं अकेले पीते हुए  
धुंधले आकारों जैसे वे एक दूसरे की तरफ आते हैं  
उनके हाथ में होता है वही अकेलेपन का गिलास।”<sup>5</sup>

आज के समाज में व्यक्ति भौतिकता को सर्वोपरि मानते हुए आत्मकेंद्रित हो गया है। आज का समाज, सत्ता एवं बाजारवाद के प्रभाव में होकर नैतिकता, अपनापन, ईमानदारी, गरिमा, मनुष्यता जैसे मूल्यों को भुला बैठा है। मंगलेश जी इस स्थिति को अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं-

“पहले हृद से हृद गुट हुआ करते थे। परिमल गुट, प्रगतिशील गुट, छायावादी गुट या मंडलियां। अब धड़ल्ले से गिरोह, माफिया, डॉन वगैरह का इस्तेमाल होने लगा है।”<sup>6</sup>

मंगलेश जी की रचनाओं में उनका चिन्तक व्यक्तित्व सर्वत्र उजागर हुआ है। चिन्तन ही है जो एक साधारण व्यक्ति को असाधारण व्यक्तित्व प्रदान करता है। मंगलेश जी ऐसे ही असाधारण और दार्शनिक व्यक्तित्व के धनी हैं। मंगलेश जी की कविताओं में एक सहज और उन्नतशील समाज का स्वप्न दिखाई देता है जिसे सभी के प्रयासों द्वारा साकार भी किया जा सकता है। अपनी लेखनी के माध्यम से मंगलेश जी अपने इसी स्वप्न को साकार करने की दिशा में प्रयासरत हैं। हालांकि मंगलेश जी के स्वप्निल समाज में और यथार्थ में बहुत अन्तर है। वे जिस मानवीय परिवेश को इस समाज में देखना चाहते हैं वह उस अमानवीय परिवेश में कहीं दबा रह गया है जो आज के समाज में व्याप्त है। वे लिखते हैं-

“यहां आते-जाते मैंने, शहर के बारे में सोचा  
जो फालतू सूर्यास्त और सनसनीखेज खबरों से  
लौटकर अपने मुखौटे छिपा रहा था।

\* \* \* \* \*

कुछ भी बचाया नहीं जा सकता  
रात में हम जो सपने देखेंगे

वे भी सुबह यहीं छूट जाएंगे  
बाहर एक सड़क होगी कहीं जाती हुई  
एक नौकरी होगी धमकाती काम कराती हुई।”<sup>7</sup>

मंगलेश जी वर्तमान के कवि हैं। वे आज की समस्याओं का अनुभव करते हैं और उनसे प्रभावित भी होते हैं। उनकी अधिकांश कविताएं तत्कालीन समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही लिखी गई हैं। वे समाज में व्याप्त असमानताओं एवं बुराईयों को स्पष्ट रूप से बिना किसी लाग-लपेट के वर्णित करते हैं। वे कहते हैं-

“भेड़िए और सियार अब जंगलों में नहीं रहते। मैंने उन्हें इसी बड़े शहर में देखा। बिच्छू अब पत्थरों से ऊपर आ चुके, जिनके डंक इस बीच इतने लंबे हो गए कि दूर से ही वे अपनी कार्यवाही करके भाग जाते। भेड़ियों ने कोट-पैंट सिलवा लिए। सियारों ने घर बनवा लिए और बिच्छुओं का वंश-वृक्ष फलने-फूलने लगा। अश्लीलता, अब तुम शरीर में नहीं रहतीं, उठकर दिमाग में आ गई हो।”<sup>8</sup>

मंगलेश जी अपने स्वप्न के समाज से इतर यथार्थ की ओर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि आज का समाज कई बुराईयों में उलझा हुआ है। समाज में व्याप्त ये बुराईयां मानवता के लिए एक बड़ी समस्या हैं। गरीबी, जाति-पाति, बेरोजगारी आदि समस्याएं समाज के लिए अभिशाप हैं। मंगलेश जी ने इन्हीं समस्याओं को आधार बनाकर अपनी कविताओं में लिखा है। जैसे-

“क्रेमलिन के चर्च में प्रार्थना में झुका बेरोजगार  
कारीगर कहता है  
वे फिर से छीन लिए गए  
अब वे मंहगी कारें चलाते हैं  
राहगीरों को लूटते हैं जुआघरों में किस्मत आजमाते हैं  
रात्रि क्लबों में नाचती औरतों की पोशाकें नोचते हैं  
अपने लिए एक एक क्रेमलिन बनाने का सपना देखते हैं।”<sup>9</sup>

बच्चे समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कड़ी हैं जो भावी समाज और देश की नींव हैं। मंगलेश जी ने समाज में उनकी स्थिति एवं समस्याओं को भी अपनी कविताओं के माध्यम से उजागर किया है। जिस आयु में एक बालक विद्यालय, किताबों और खिलौनों का हकदार होता है उस आयु में कुछ बच्चों से उनका हक छीनकर यह समाज मजदूरी और भिक्षावृत्ति जैसे कृत्य करने को विवश कर

उन्हें उनके हाल पर छोड़ देखता रहता है। इस दयनीय स्थिति का चित्रण यहां इन पंक्तियों में दृष्टव्य है-

“बारह तेरह बरस का लड़का  
भीड़ भरी बस में गाता था एक खुशी का मीठा गाना  
गले में नन्हा हारमोनियम लटकाए  
उसकी चारों बरस की बहन मांगती थी पैसा  
मुसाफिरों से घूम-घूम करा।”<sup>10</sup>  
एक अन्य दयनीय वर्णन दृष्टव्य है-

“एक कमजोर खिलौना दिखा  
उससे भी कमजोर एक बच्चे के हाथ में  
वह भी जब भूख से रोता  
मां उसकी थमा देती उसे खिलौना।”<sup>11</sup>

कवि ने जीवन के संघर्षों एवं आघातों की करुण अभिव्यक्ति बहुत ही आत्मीयता से अपनी कविताओं में वर्णित की है। उनकी इसी आत्मीयता एवं संवेदना के आधार पर विजय कुमार ने कहा है-“मंगलेश मूलतः अवसाद और करुणा के कवि हैं।”<sup>12</sup>

अवसाद एवं करुणा का यथार्थ उकेरने के बाद भी मंगलेश डबराल जीवन को एक उन्मुक्त हंसी के रूप में जीने का संदेश देते हैं। उनका आशावादी दृष्टिकोण भी सहज प्रभावित करता है। यही तो एक अच्छे और सच्चे साहित्यकार की पहचान होती है। बच्चे जीवन की प्रारंभिक कड़ी होते हैं जिन्हें भविष्य में जीवन के विभिन्न उतार चढ़ावों को पार करना है वह अपनी रचनाओं से उन्हें उत्साहित करते नजर आते हैं। बच्चों से ही जीवन है और उन्हीं से जीवन की नवीन ऊर्जा का संचार होता है। बच्चों से ही जीवन आनन्दमय है उनकी प्रगति देश की, दुनिया की, जीवन की प्रगति है।-

“प्यारे बच्चों जीवन एक उत्सव जिसमें  
तुम हंसी की तरह फैले हो।  
जीवन एक हरा पेड़ है जिस पर तुम  
चिड़ियों की तरह फड़फड़ाते हो  
जैसा कि कुछ कवियों ने कहा है  
जीवन एक उछलती गेंद है और  
तुम उसके चारों ओर एकत्र पैरों की तरह हो।”<sup>13</sup>

मंगलेश जी बच्चों की दयनीय अवस्था को समाज के विकास में सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। इस कारण वह बच्चों की स्थिति से अपनी कविताओं के माध्यम से हमें जागरुक करते हैं। असहाय और लाचार बच्चों की अवस्था

उनके करुण हृदय को द्रवित करती है जिस पर वह समाज का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करते हैं। मंगलेश जी केवल काल्पनिक सुखानुभूतियों में रहने वाली काल्पनिक दुनिया को रचने वाले कवि वर्ग का हिस्सा नहीं हैं वरन् वे कविता को सोद्देश्य मानते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि कविता में समाज को बदलने की शक्ति है। इसीलिए उनकी अधिकतर कविताएं आदर्शों की स्थापना एवं समाज के विविध पक्षों का निष्पक्ष वर्णन परिलक्षित करती हैं। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि साहित्य और समाज दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इसी संबंध में डा. नामदेव उतरकर का कथन है-

“समाज पति की तरह साहित्य का पालन-पोषण करता है और साहित्य पत्नी की तरह समाज को ठीक राह पर चलाने का प्रयत्न करता है।”<sup>14</sup>

मंगलेश डबराल सामाजिक कवि हैं। वे अपनी कवित्व शक्ति के माध्यम से राजनीति, नैतिकता, गरीबी, भ्रष्टाचार, जन-सामान्य जीवन इत्यादि का यथार्थ चित्रण प्रदर्शित करते हैं। बिम्बों के माध्यम से उन्होंने समाज का यथार्थ अंकित किया है। वे स्वयं कहते हैं कि-

“मेरी कविताओं में बिम्ब जरूर होंगे पर वह बिंबात्मक नहीं दृश्यात्मक ज्यादा हैं। कविता में एक चीज एक दृश्य के रूप में उपस्थित रहती है। बिम्ब एक शारीरिक उपस्थिति है। बिम्ब कंसेप्चुअल, अवधारणात्मक होता है जबकि दृश्य परसेप्चुअल है। उसे छुआ, घुमाया जा सकता है, उसमें गति और जीवन है। अगर यह कहा जाए कि कविता दृश्यों का वर्णन है, तो शायद वह मेरे ज्यादा अनुकूल रहेगा।”

समाज में चाहे जो कुछ भी क्यों न हो रहा हो, संबंध चाहे जैसे भी चल रहे हों, अपने और परायों का फर्क न नजर आ रहा हो, गरीबी कितनी ही बढ़ क्यों न जाए, राजनीति में चाहे कितनी भी उल्टी चालें चलें फिर भी

मंगलेश जी प्रकृति के बिंब के माध्यम से यह संदेश प्रेषित करते हैं कि अंधेरे कितने ही घने क्यों न हो खिड़की के बाहर एक नई सुबह इंतजार कर रही है-

“इस खिड़की के बाहर मेरा इंतजार हो रहा है

मुट्ठियां ताने हुए शब्दों की तरह

हरे पत्तों से भरपूर सुबह दिखेगी

एक बड़ी भूरी चिड़िया की तरह

कोहरा टहनियों पर टिका होगा।”

\* \* \* \* \*

सूरज होगा एक-एक दृश्य से टकराता हुआ

इस खिड़की के बाहर मेरा इंतजार हो रहा है।”

### निष्कर्ष

समकालीन कवि मंगलेश डबराल की कविताएं समाज के विविध पक्षों के यथार्थ को अपने पाठकों के समक्ष निष्पक्षता के साथ प्रस्तुत करती हैं। मंगलेश जी साहित्य एवं साहित्यकार दोनों के दायित्वों का निर्वाहन करते नजर आते हैं क्योंकि मंगलेश जी ने न केवल सामाजिक समस्याओं को उद्घाटित किया है वरन् अपनी कविताओं के माध्यम से ही उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। इनकी कविताओं में एक ओर आप अपने उलझे जीवन एवं दुखों की अनुभूति पाएंगे तो दूसरे ही ओर आप जीवन की उलझनों को सुलझाने का रहस्य और आशा की किरण भी पाएंगे। यही तो एक अच्छे साहित्यकार की पहचान है जो समस्या के उद्घाटन से लेकर उसके हल तक को व्यक्त करने में सर्वसमर्थ हों। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि मंगलेश डबराल जी जन-सामान्य के कवि हैं जिन्होंने समाज के यथार्थ का भलीभांति स्वभाविक चित्रण किया है।

NET-JRF, हिन्दी साहित्य

शोधार्थी

महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालयबि  
बरेली

### संदर्भ सूची

1. मंगलेश डबराल ललित कार्तिकेय से संवाद, ‘मेरे साक्षात्कार’, पृष्ठ 30
2. मंगलेश डबराल, ‘हम जो देखते हैं’, ‘मैं चाहता हूँ’ पृष्ठ 84-85
3. मंगलेश डबराल से ललित कार्तिकेय की बातचीत,
4. मंगलेश डबराल, ‘हम जो देखते हैं’, ‘कुछ देर के लिए’, पृष्ठ 11
5. मंगलेश डबराल, ‘आवाज भी एक जगह है’, ‘आयोजन’, पृष्ठ 87
6. मंगलेश डबराल, ‘कवि का अकेलापन’, ‘मरना भी

आलोचना 2003

रहना है,' पृष्ठ 189

7. मंगलेश डबराल, 'पहाड़ पर लालटेन', 'आते-जाते', पृष्ठ 12
8. मंगलेश डबराल, 'कवि का अकेलापन', 'मरना भी रहना है,' पृष्ठ 181
9. मंगलेश डबराल, 'आवाज भी एक जगह है', 'क्रेमलिन कथा', पृष्ठ 42
10. मंगलेश डबराल, 'आवाज भी एक जगह है', 'गाता हुआ लड़का' पृष्ठ 60
11. मंगलेश डबराल, 'घर का रास्ता', 'खिलौने', पृष्ठ 73
12. विजय कुमार, 'कविता की संगत', पृष्ठ 103
13. मंगलेश डबराल, 'हम जो देखते हैं', 'बच्चों के लिए एक चिट्ठी', पृष्ठ 30-31
14. डॉ. नामदेव उतरकर, नान्देड़ी, 'आठवें दशक की हिन्दी कविता में सामाजिक बोध', पृष्ठ 09
15. मंगलेश डबराल, 'पहाड़ पर लालटेन', 'खिड़की', पृष्ठ 36-37



डा. शिव कुमार

## गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में सत्संग की महिमा

**शोध सारांश :** गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' विश्व-विश्रुत महाकाव्य है। हिंदी साहित्य में अद्वितीय स्थान का अधिकारी है। 'रामचरितमानस' में मानव को विवेक एवं मंगल का ध्यान रखते हुए जीवन में सद्व्यवहार अपनाने पर बल दिया गया है। आचरण संबंधी सूत्रों का इस ग्रंथ में समावेश देखने को मिलता है। विवेक जागृति और मंगलकार्यों में सत्संग का विशेष योग रहता है। 'रामचरितमानस' में मानव को सत्संग की महिमा से न केवल तुलसीदास अवगत कराते हैं अपितु उसकी अनिवार्यता पर बल देते हैं। उनके मतानुसार सत्संग से विवेक जागृति होती है। सत्संग मिलना प्रभु-कृपा से ही संभव है। सत्संग से दुर्जन भी सुधर जाते हैं, उनका भी हृदय-परिवर्तन संभव है। संगत की अपनी रंगत होती है। संगत से मनुष्य का मान एवं प्रतिष्ठा में बढ़ोत्तरी होती है। सत्संग से मोह का निवारण होता है, भ्रम दूर होता है। सत्संग से ही प्रभु-प्रेम में दृढ़ता आती है। मनुष्य में परहित की भावना आती है, जो सभी धर्मों का सार है। भक्ति को सुखों की खान मानते हुए उनका मत है कि इसे सत्संग के बल से पाया जा सकता है। सत्संग संशय दूर करने वाला है। सत्संग सुमति की ओर ले जाता है। सुमति सुफलदायी होती है। सुमति ही सच्ची संपत्ति है। सत्संग वास्तव में भक्ति का सहज रूप है, इसे भक्ति, ज्ञान और योग में समवेत स्वर में स्वीकार किया गया है। सत्साहित्य का प्रयोजन भी मानव को सत्संग प्रदान करना ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में सत्संग की अतुलनीय महिमा एवं उसकी महत्ता को सविस्तार वर्णन किया है।

**बीज शब्द** - महाकाव्य, विवेक, आचरण, सत्संग,

प्रभु-कृपा, प्रतिष्ठा, मोह, भ्रम, परहित, संशय, संपत्ति, सत्साहित्य, सुमति, कुमति, महिमा।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' विश्व-विश्रुत महाकाव्य है। साहित्य हितभावना के आधार पर ही विश्व मानवता का अधिकारी कहलाता है। साहित्य विवेक जागृत करता है। मानव के गिरते मनोबल को उठाता है। विवेक के द्वारा ही मानव मंगल एवं अमंगल में भेद कर पाता है। विवेक-जागृति में सत्संग का विशेष योग रहता है। संगत से आचरण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। मानव सुपथ पर चले, वह विश्व-कल्याण में अपना योग दे, इसके लिए साहित्य पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है। उचित-अनुचित का ज्ञान कराते हुए उसे सत्कर्म की ओर प्रवृत्त करता है।

तुलसीदास का जीवन-विषयक दृष्टिकोण समन्वयवादी रहा। उनकी सुप्रसिद्ध रचना 'रामचरितमानस' में विवेक और मंगल शब्द का अनेक प्रसंगों में प्रयोग मिलता है। विवेक जागृति और मंगलकार्यों में सत्संग के महत्त्व को उन्होंने न केवल स्वीकार किया है अपितु मानव को सत्संग के प्रभाव की अनिवार्यता से अवगत कराया है। 'रामचरित-मानस' का कथा वाचन, जागरण इस सत्संग को बढ़ावा देता है। सत्संग मानव मूल्यों का संरक्षण करते हुए साहित्य के महान दायित्व की पूर्ति में योगकारी भूमिका का वहन करता है।

सत्संग शब्द का शब्दकोशीय अर्थ है - 'सत्' अर्थात् सत्य, साधु, सज्जन, धीर, स्थायी, विद्वान्, शुद्ध, श्रेष्ठ तथा 'संग' अर्थात् साथ उठना, बैठना, भली संगत।<sup>1</sup> एक अन्य शब्दकोशानुसार सत्संग का अर्थ भली संगत, अच्छी सोहबत,

साधु, महात्माओं का संग दिया गया है।<sup>2</sup> इस प्रकार सत्संग से अभिप्राय साधु, सज्जन, विद्वान्, श्रेष्ठ एवं महात्माओं के साथ उठना, बैठना अर्थात् भली संगत माना जा सकता है।

‘रामचरितमानस’ में गोस्वामी तुलसीदास ने सत्संग की महिमा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। सुमति-कुमति के संदर्भ में विवेक-अविवेक और मंगल-अमंगल के संदर्भ में संग के प्रभाव के प्रति मानव को सचेत किया है। संगत की संगत को दर्शाया है और मानव को भली संगत अर्थात् सत्संग के द्वारा सुपथ पर अग्रसर रहने की प्रेरणा दी है। सत्संग से वंचित मनुष्य का जीवन अपूर्ण ही रहता है। “भक्ति की सिद्धि के लिए सत्संगति और आचरण की पवित्रता को विशेष महत्त्व दिया गया है। मानस के आरंभ में ही तुलसीदास ने सत्संग की महिमा का विशद वर्णन किया। सत्संगति के प्रभाव से स्वभाव में क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाता है। कौआ कोयल हो जाता है और बगुला हंस। सज्जन के संग से भक्ति अनायास ही उत्पन्न हो जाती है। तुलसीदास का विश्वास है कि बिना सत्संग के भक्ति हो ही नहीं सकती।”<sup>3</sup>

सत्संग की महिमा अपार है, वह किसी से छिपी हुई भी नहीं है। मानवीय गुणों का विस्तार सत्संग से ही होता है और यह सत्संग प्रभु कृपा से ही मिलता है। तुलसीदास कहते हैं -

**बिनु सतसंग विवेक न होई।**

**राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥**

**सतसंगत मुद मंगल मूला।**

**सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥”<sup>4</sup>**

एक ओर सत्संग जहाँ विवेक प्रदान करता है, उचित-अनुचित का बोध कराता है वहाँ दूसरी ओर यह आनंद और कल्याण का आधार है। सत्संगति के प्रभाव से दुष्ट भी सुधर जाते हैं, वे कहते हैं -

**“सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।**

**पारस परस कुधात सुहाई।”<sup>5</sup>**

सत्संग के साथ तुलसीदास ने कुसंग के प्रभाव को भी दर्शाया है। संगत का असर ही प्रभावी होता है। वे कहते हैं -

**“धूम कुसंगति कारिख होई।**

**लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥**

**सोइ जल अनल अनिल संघाता।**

**होइ जलद जग जीवन दाता॥”<sup>6</sup>**

सत्संग का सुफल यह है कि विवेक जागृत होने पर

प्रभु कथा सुनने, समझने से मनुष्य का मोहरूपी भ्रम नष्ट होता है। मन, वचन, कर्म से ईश्वर प्रेम में दृढ़ता आती है। यह उपलब्धि सत्संग द्वारा ही जीवन में संभव है। तुलसी कहते हैं -

**“होइ बिबेक मोह भ्रम भागा।**

**तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥**

**सखा परम परमारथु एहू।**

**मन क्रम बचन राम पद नेहू॥”<sup>7</sup>**

सत्संग परमार्थ के मार्ग पर ले जाने वाला होता है। मानव जीवन पाकर सत्संग विमुख जीवन को व्यर्थ मानते हुए कवि ने कहा है कि ऐसे अभागों को प्रभु का सुयश भी अच्छा नहीं लगता। परहित धर्म सत्संग से ही स्वभाव में आता है। साधु संगत के विषय में वे कहते हैं -

**जे नहि साधु संग अनुरागे।**

**परमारथ पथ बिमुख अभागे॥**

**जे न भजहिं हरि नर तनु पाई।**

**जिन्हहिं न हरि हर सुजसु सोहाई॥”<sup>8</sup>**

तुलसीदास के भक्तिभाव में सत्संग के महत्त्व को रेखांकित करते हुए श्री शरण का मानना है कि “भक्तिभाव को परिपुष्ट करने के लिए तुलसीदास ने सत्संग को एक अनिवार्य तत्त्व स्वीकारा और प्रतिपादित किया है। सत्संग का माहात्म्य बताते हुए कविवर तुलसीदास स्पष्ट कहते हुए देखे-सुने जा सकते हैं।”<sup>9</sup> सत्संग से हरिकथा सुनकर मोह का निवारण होता है। यही मोह निवारण भ्रम को दूर कर प्रभु चरणों में हमारे अनुराग को दृढ़ करता है। भक्ति मार्ग में सत्संग सूत्रधार बनता है, हमें पुण्य प्राप्त होता है। सत्संग प्रभु कृपा से मिलता है। सुखों की खान स्वतंत्र भक्ति को सत्संग के अभाव में पाया नहीं जा सकता और संत भी पुण्य कर्म के योग से ही मिलते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं-

**भक्ति सुतत्र सकल सुख खानी।**

**बिनु सत्संग न पावहिं प्राणी॥**

**पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता।**

**सतसंगति संसृति कर अंता॥”<sup>10</sup>**

भक्तिकाल में संत-काव्य में सत्संग की महिमा को आधार रूप में स्वीकार किया गया है। साधु-संगति से मानवता एवं जीवन-मूल्यों के संरक्षण को माना गया है। डॉ० भोलानाथ तिवारी के मतानुसार, “इनका (संतों का) ज्ञान पुस्तक पर आधारित न होकर सत्संग एवं आत्मानुभूति पर रहा है। सत्संग के द्वारा इन लोगों ने नाथों, सिद्धों,

वैष्णवों, सूफियों तथा वेदांतियों से बहुत कुछ ग्रहण किया। गुरु के प्रति इनमें अटूट श्रद्धा रही है। ये लोग समन्वयवादी रहे हैं। हर क्षेत्र से अच्छी बातों को लेकर इन लोगों ने अपनाया है और बुरी बातों का विरोध किया है।<sup>11</sup>

गोस्वामी तुलसीदास सत्संग की अतुलनीयता को रेखांकित करते हैं। जनमानस की धारणा को पुष्ट करते हैं। स्वर्ग और मोक्ष के सब सुखों से भी अधिक सुख क्षण मात्र के सत्संग में है। ऐसा माना जाता है कि सत्संग की ढाई घड़ी तप के हजार वर्षों के बराबर होती है।

**तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।**

**तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥<sup>12</sup>**

सुसंगति और कुसंगति के प्रभाव के विषय में कवि का मानना है कि कुसंग से ज्ञान की हानि होती है, वहीं सुसंगति मिलने पर विवेक का उदय एवं विस्तार होता है। बादलों के अंधकार को दूर कर सुसंग सूर्य के प्रकाश अर्थात् ज्ञान को उदय करने वाला होता है।

**कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रकट पतंग।**

**बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥<sup>13</sup>**

सत्संग का प्रभाव न केवल मनुष्य पर पड़ता है बल्कि पशु-पक्षी भी इसके प्रभाव में आते हैं। साधु-असाधु के संग रहने वाले तोता-मैना भी वही वाणी निकालते हैं जो वे सुनते हैं। वे कहते हैं -

**साधु असाधु सदन सुक सारीं।**

**सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी॥<sup>14</sup>**

लोक और वेद के प्रमाण से तुलसी इसकी पुष्टि करते हुए अपना मत रखते हैं -

**हानि कुसंग सुसंगति लाहू।**

**लोकहुँ बेद बिदित सब काहू॥<sup>15</sup>**

अर्थात् कुसंग सदैव हानिकारक ही होता है जबकि सुसंगति में लाभ ही लाभ है। एक स्थान पर कवि संत और असंत अर्थात् सज्जन और दुर्जन दोनों की वंदना करते हुए कहते हैं कि दोनों ही दुख देने वाले हैं लेकिन दुख में बहुत अंतर है। जहाँ सज्जन के बिछुड़ने से दुख प्राण हर लेने के समान होता है वहीं दुर्जन का मिलना ही दारुण दुख देता है। वे कहते हैं -

**बंदऊँ संत असज्जन चरना।**

**दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥**

**बिछुरत एक प्राण हरि लेही।**

**मिलत एक दुख दारुन देही॥<sup>16</sup>**

भले और बुरे को अमृत और विष के माध्यम से

तुलसीदास उनके प्रभाव, स्वभाव को बतलाते हैं। भले मनुष्य का स्वभाव संग भलाई करना ही होता है, वही उसका फल है जबकि दुष्ट का स्वभाव एवं फल दुष्टता ही है।

**भलो भलाईहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।**

**सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु॥<sup>17</sup>**

दुर्जन की प्रकृति के विषय में तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के उत्तरकांड में विस्तार से वर्णन किया है। वे अकारण ही दुख देते हैं। उनसे किसी का सुख देखा नहीं जाता। दूसरे को दुख देने में ही वे सुख महसूस करते हैं। उनके साथ जो भलाई करता है, उसका भी वो बुरा सोचते हैं, करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सत्संग नहीं सुहाता। वे परनिंदा एवं लोभवृत्ति में ही मग्न रहते हैं। झूठ ही उनका व्यापार होता है। उनका हृदय कठोर होता है। वे झूठा ही व्यवहार करते हैं। तुलसीदास कहते हैं -

**झूठइ लेना झूठइ देना।**

**झूठइ भोजन झूठ चबेना।**

**बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा।**

**खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥<sup>18</sup>**

कुसंग के प्रभाव से मनुष्य माता-पिता की बात और सत्संग से मुँह फेरते हैं। मोहवश विरोध में उलझे रहते हैं तथा प्रभुकथा में अरुचि रखते हैं -

**माता पिता गुरु बिप्र न मानहिं।**

**आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥**

**करहिं मोह बस द्रोह परावा।**

**संत संग हरि कथा न भावा॥<sup>19</sup>**

तुलसीदास ने जनमानस के बीच विभिन्न क्रियाकलापों को, आचरण की शुद्धता को, सत्संग के महत्त्व को, अच्छाई-बुराई के पहलुओं एवं मनोभावों की बारीकियों को रखा है, यही उनकी कविता की लोकप्रियता का कारण बना। इस विषय में डॉ० शिवकुमार मिश्र का मत है कि "जनता से जुड़ने की बातें सब करते हैं किंतु जनता से जुड़ना कहते किसे हैं, इसे हमें गोस्वामी जी बताते हैं, वे संत तथा भक्त बताते हैं जो जनता के लिए और जनता के उज्ज्वल भविष्य की सदिच्छा लिए मरे। और सदा-सदा के लिए जनता के दिलों में अमर हो गए। निश्चय ही जनता के बीच तुलसीदास की लोकप्रियता का आधार महज साधारण जनता का पिछड़ापन और उसकी मध्यकालीन मानसिकता ही नहीं है। ऐसा मानना आत्मप्रवंचना के अलावा और कुछ नहीं होगा। हमें मानना होगा कि तुलसीदास कहीं न कहीं किसी न किसी स्तर पर इस जनता के मन-

प्राणों को गहराई में जाकर छूते हैं, उसे ऐसी परितृप्ति प्रदान करते हैं जो न तो उनके अपने समय का कोई रचनाकार उसे दे सका न बाद के समयों का। हमें इस तथ्य को स्वीकार करना होगा।<sup>20</sup>

गोस्वामी तुलसीदास जनता के मन-प्राणों को गहराई से छूते हैं। उन्हें विवेकपूर्ण उचित-अनुचित, मंगल-अमंगल का विचार कर सत्संग के लिए प्रेरित करते हैं। सत्संग से सुमति और कुसंग से कुमति आती है। सुमति और कुमति का प्रभाव समस्त जीवन पर पड़ता है। वे कहते हैं -

**सुमति कुमति सब के उर रहहीं।**

**नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥**

**जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।**

**जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥<sup>21</sup>**

अर्थात् दोनों अच्छी और खोटी बुद्धि सबके हृदय में है। सुमति से सुख और कुमति से दुख ही मिलता है। तुलसीदास कहते हैं कि सत्संग से सभी संशय दूर हो जाते हैं। सत्संग हमें अनवरत दीर्घकाल तक करना चाहिए।

**तबहिं होइ सब संसय भंगा।**

**जब बहुकाल करिअ सतसंगा॥<sup>22</sup>**

‘लंकाकांड’ में विभीषण-हनुमान संवाद के अंतर्गत विभीषण से कहलवाया है कि सत्संग की प्राप्ति हरिकृपा के आधार पर ही मिलती है। जिस पर प्रभु कृपा होती है; उस पर सबकी कृपा होती है। यह कृपा उनके प्रति मन से भक्ति और प्रेम के बल पर ही हो सकती है।

**अब मोहि भा भरोस हनुमंता।**

**बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥<sup>23</sup>**

निर्गुण, सगुण दोनों भक्ति धाराओं में सत्संग की विशेष महिमा है। कृष्ण काव्यधारा में अष्टछाप कवियों के यहाँ सत्संग भक्ति का सहज रूप है। “अष्टछाप के भक्त कवियों ने ईश्वर-प्रेम एवं सत्संग की विशेष महत्ता प्रतिपादित की है, क्योंकि इसके द्वारा प्राणी सांसारिक विषयों से मुक्त हो जाता है। वे चाहते थे कि जीवन में वैराग्य का सहज रूप से समावेश हो जाए, न कि ज्ञान और योग-मार्गों की ज़बरदस्ती से। इसलिए भक्त के लिए वन और भवन में कोई अंतर नहीं है। लकतु कुछ ऐसी मान्यताएँ भी हैं जिन्हें भक्ति, ज्ञान और योग ने समवेत स्वर में स्वीकार किया है, यथा सत्संग, शास्त्रलचतन और सद्गुरु का महत्त्व।<sup>24</sup>

भक्तिकाल के अंतर्गत सत्संग की महिमा को समवेत स्वर में न केवल स्वीकार किया है अपितु सत्संग को

भक्ति का सहज रूप माना है। तुलसीदास कहते हैं कि सत्संग से हरिगुण सुनने को मिलते हैं जिससे प्रभु प्रेम बढ़ता है और मोह घटता है।

**बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भागा।**

**मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुरागा॥<sup>25</sup>**

भक्ति में सत्संग की अनिवार्यता कहते हुए श्रीराम जी कथा के अधिकारी गोस्वामी जी उन्हें ही मानते हैं, जिन्हें सत्संग प्रिय है। सत्संग विहीन प्राणी को यह कथा नहीं सुनानी चाहिए। वे कहते हैं -

**राम कथा के तेइ अधिकारी।**

**जिन्ह के सत संगति अति प्यारी॥<sup>26</sup>**

तुलसीदास ‘रामचरितमानस’ में सत्संग को भक्ति-मार्ग का अभिन्न हिस्सा मानते हैं। उन्होंने सत्संग महिमा का सविस्तार वर्णन किया है। सत्संग हमें सुपथ की ओर ले जाता है, सुमति लाता है जो सुफलदायी होती है। सुमति ही सच्ची संपति है। सत्संग से वंचित जीवन अपूर्ण है। सत्संग भक्ति का सहज रूप है, मोह का निवारण करने वाला है, प्रभु-चरणों में विश्वास को दृढ़ करने वाला है। सत्संगति से अनुशासित आचरण की पवित्रता आती है। सत्संग ही विवेक उत्पन्न करने वाला है; उचित-अनुचित का ज्ञान कराने वाला है। यह मंगल-अमंगल ही पहचान कराने वाला है। सत्संग से ही परहित, परमार्थ का भाव आता है। सत्संग में लाभ ही लाभ है। सत्संग का प्रभाव मनुष्य पर ही नहीं पशु-पक्षियों पर भी देखा जा सकता है। सत्संग से दुष्ट भी सुधर जाते हैं। सत्संग से संशय दूर होते हैं। सत्संग का मिलना हरिकृपा से ही संभव है। भक्ति एवं जीवन-पद्धति में सत्संग के इसी महत्त्व एवं प्रभाव के कारण समस्त भक्ति काव्यधाराओं ने इसे भक्ति, ज्ञान और योग में समवेत स्वर में स्वीकार किया है। सत्साहित्य का प्रयोजन भी मानव को सत्संग प्रदान करना ही है। मानवीय मूल्यों का विकास कर स्वस्थ समाज-निर्माण में साहित्य की उपादेयता इसी मत का समर्थन करती है। अतः गोस्वामी तुलसीदास ने ‘रामचरितमानस’ में विभिन्न स्थलों पर संदर्भानुसार सत्संग की अतुलनीय महिमा को समाज के सम्मुख उसके प्रभावों के साथ वर्णित किया है।

**एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग,**

**महाराजा अग्रसेन कॉलेज,**

**दिल्ली विश्वविद्यालय,**

**shivkrmac@gmail.com**

## संदर्भ सूची

1. लघु हिंदी शब्दसागर, सं० पं० करुणापति त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, तृतीय संस्करण, सं० 2050, पृष्ठ-967
2. हिंदी शब्दकोश, डॉ० हरदेव बाहरी, राजपाल एंड संस, दिल्ली, सं० 2009, पृष्ठ-799
3. तुलसी का मानवतावाद, डॉ० जगदीश्वर प्रसाद, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ-153
4. गोस्वामी तुलसीदास विचरित, रामचरितमानस, टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर, अस्सीवाँ पुनर्मुद्रण, सं० 2081, 1.2.4, पृष्ठ-22
5. वही, 1.2.5, पृष्ठ-22
6. वही, 1.6.6., पृष्ठ-27
7. वही, 2.92.3, पृष्ठ-420
8. वही, 2.167.3, पृष्ठ-483
9. तुलसीदास : व्यक्तित्व और कृतित्व, श्रीशरण, आधुनिक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृष्ठ-87
10. गोस्वामी तुलसीदास विचरित, रामचरितमानस, टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर, अस्सीवाँ पुनर्मुद्रण, सं० 2081, 7.44.3, पृष्ठ-952
11. कबीर : जीवन और दर्शन, डॉ० भोलानाथ तिवारी, साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1978, पृष्ठ-15
12. गोस्वामी तुलसीदास विचरित, रामचरितमानस, टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर, अस्सीवाँ पुनर्मुद्रण, सं० 2081, पृष्ठ-718
13. वही, 4.15 (ख), पृष्ठ-697
14. वही, 1.6.6, पृष्ठ-27
15. वही, 1.6.4, पृष्ठ-26
16. वही, 1.4.2, पृष्ठ-24
17. वही, 1.5, पृष्ठ-25
18. वही, 7.38.4, पृष्ठ-947
19. वही, 7.39.3, पृष्ठ-948
20. भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, डॉ० शिवकुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संशोधित प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ-206
21. गोस्वामी तुलसीदास विचरित, रामचरितमानस, टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर, अस्सीवाँ पुनर्मुद्रण, सं० 2081, 5.39.3 पृष्ठ-751
22. वही, 7.60.2, पृष्ठ-965
23. वही, 5.6.2, पृष्ठ-720
24. सूरदास, सं० हरबंसलाल शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा सं० 2011, पृष्ठ-266-267 (रविशंकर शर्मा 'राकेश' के लेख से)
25. गोस्वामी तुलसीदास विचरित, रामचरितमानस, टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर, अस्सीवाँ पुनर्मुद्रण, सं० 2081, 7.61 पृष्ठ-966
26. वही, 7.127.3, पृष्ठ-1043